श्रीश्री सद्गुरु संग

श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

(प्रथम भाग)

ॐ

श्रीश्री सद्गुरु संग

(प्रथम भाग)

{मेरी दीक्षा, साधना, त्राटक, कुम्भक, असाध्य रोग, अयोध्या गमन, अनुभूति, ज्योति-दर्शन, लोकनाथ ब्रह्मचारी का संग, स्कूल-त्याग, मूँगेर गमन, स्वप्न में उपदेश, साधु-संग, चक्र-शक्ति की अनुभूति, तर्पण, पाप-पुरुष का आक्रमण, वृन्दावन-यात्रा, ब्रह्मचर्य-दीक्षा}

श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

अनुवादक— अविनाश ब्रह्मचारी

श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ

स्टेशन रोड, रघुनाथपुर

जिला: पुरुलिया (प॰ बं॰)

पिन: 723 133

प्रकाशक

श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ

स्टेशन रोड, रघुनाथपुर

जिला : पुरुलिया (प॰ बं॰)

पिन : 723 133

Website : www.gosaiji.com

Email : info@gosaiji.com

प्रथम संस्करण (द्वितीय भाग)

रास (कार्तिक) पूर्णिमा

14 नवम्बर, सन् 2016 ई॰

सहयोग राशि

नर-नारायण सेवार्थ :— Rs॰ 150.00

मुद्रक

गोयल पेपर उद्योग

जुगसलाई, जमशेदपुर — 831 006

फोन : 0657—2291651, 2292887

Email : goyalpaper@hotmail.com

‘श्रीश्री गुरुदेवाय नमः’

अनुवादक की ओर से दो शब्द

परमहंस रामकृष्णदेव के समकालीन, उन्नीसवीं शताब्दी में अवतरित सद्‌गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के आश्रित शिष्य ब्रह्मचारी कुलदानन्दजी ने अपने जीवन की आध्यात्मिक, सामाजिक, पारिवारिक, व्यावहारिक, शारीरिक उन्नति-अवनति का एवं अपने आन्तरिक उतार-चढ़ाव की अवस्था का दैनिक विवरण अपनी डायरी में खुलकर लिखा है। इसमें सन् 1886 ई॰ में गोस्वामीजी के सान्निध्य में आने के बाद से गोस्वामीजी के देह त्याग करने तक का अर्थात् सन् 1899 ई॰ तक, चौदह वर्षों की अद्‌भुत घटनावली का वर्णन है; परन्तु इस डायरी का पुस्तकाकार में सर्वप्रथम जो प्रकाशन ‘श्रीश्री सद्‌गुरु संग’ के नाम से बंगला भाषा में हुआ है, उसमें गोस्वामीजी जब सन् 1894 ई॰ में प्रयाग कुम्भ मेले में गए थे तब तक का अर्थात् आठ वर्षों का ही वर्णन मिलता है। बंगला भाषा में इन आठ वर्षों के विवरण को पाँच भागों में प्रकाशित किया गया है। इन्हीं पाँच भागों का अन्य भाषाओं में अनुवाद हुआ है। अन्य छः वर्षों का विवरण प्राप्त करने का प्रयास किया गया, किन्तु निराशा ही हाथ लगी।

ब्रह्मचारीजी जब यह डायरी लिख रहे थे, उस समय श्रीश्री गोस्वामीजी ने कहा था– **“ब्रह्मचारी जो लिख रहे हैं, सौ साल बाद वह देश का शास्त्र होगा।”** वास्तव में अब सौ साल बाद देखा जा रहा है, इस ग्रन्थ का हिन्दी, मराठी, गुजराती, अँग्रेजी, कन्नड एवं अन्य भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हो गया है और हो रहा है। इसके अतिरिक्त बंगला ग्रन्थ के द्वितीय खण्ड का हिन्दी अनुवाद, जिसमें सन् 1890–91 ई॰ में हुई गोस्वामीजी की श्रीवृन्दावन लीला का विवरण है, उसका प्रकाशन श्री अमित ब्रह्मचारीजी की प्रेरणा से 16 मार्च, सन् 2014 ई॰ को इंटरनेट (gosaiji.com) में ई-बुक के रूप में हो चुका है। इसी प्रकार से ब्रह्मचारी कुलदानन्दजी के इस ग्रन्थ का देश-विदेश में प्रचार का कार्य चलता जा रहा है।

बंगला ग्रन्थ के प्रथम खण्ड में सन् 1886 ई॰ से 1890 ई॰ तक का विवरण, द्वितीय खण्ड में सन् 1890 ई॰ से 1891 ई॰ तक गोस्वामीजी की श्रीवृन्दावन लीला का विवरण, तृतीय खण्ड में सन् 1891 ई॰ से 1892 ई॰ तक का, चतुर्थ खण्ड में सन् 1892 ई॰ से 1893 ई॰ तक का विवरण तथा पंचम खण्ड में सन् 1893 ई॰ से सन् 1894 ई॰ तक कुम्भ मेले आदि का वर्णन है।

लगभग 65 वर्ष पहले सर्वप्रथम श्री लल्ली प्रसाद पाण्डेय जी ने बंगला ‘श्रीश्री सद्‌गुरु संग’ ग्रन्थ के प्रथम तीन खण्डों का हिन्दी में अनुवाद किया था,

तत्कालीन क्षेत्रिय हिन्दी भाषा को वर्तमान समय में समझ पाना कुछ कठिन लगा। अतएव पूज्य स्वामी आलोकानन्द सरस्वतीजी एवं स्व॰ स्वामी अमलानन्द सरस्वतीजी महाराज की प्रेरणा से पुनः बंगला ग्रन्थ से हिन्दी अनुवाद का कार्य आरम्भ हुआ। यह दैनिक डायरी है– अनुवाद के समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है; अतः इसमें परिवर्तन नहीं किया गया, यथावत् रखने का ही प्रयास किया गया है; इस हिन्दी ग्रन्थ से अन्य भाषाओं में अनुवाद की सुविधा का ध्यान रखा गया है। श्री लल्ली प्रसाद पाण्डेय जी के प्रथम तीन खण्डों के हिन्दी अनुवाद के बाद श्रीमती रत्ना मुखोपाध्याय (रायपुर) ने चौथे व पाँचवे खण्ड का अनुवाद किया था। अब पाठकों की सुविधा के लिए मूल ग्रन्थ के बंगला सन् एवं तिथि को ईसवी सन् एवं दिनांक में परिवर्तित किया गया है एवं पाँच खण्डों में प्रकाशित इस दैनिक डायरी के आठ वर्षों के विवरण को यहाँ चार भागों में विभाजित किया गया है।

प्रथम भाग में अगस्त, सन् 1886 से अगस्त, सन् 1890 ई॰ तक की डायरी का विवरण एवं द्वितीय भाग में अगस्त, सन् 1890 से दिसम्बर, सन् 1891 ई॰ तक का विवरण दिया गया है। तृतीय भाग में जनवरी, सन् 1892 से मई, 1893 ई॰ तक की डायरी का विवरण एवं अन्तिम भाग में जून, सन् 1893 से अप्रेल, 1894 ई॰ तक का विवरण दिया गया है। अभी प्रथम भाग एवं द्वितीय भाग का अलग-अलग प्रकाशन हुआ है।

हिन्दी भाषा एवं प्रूफ संशोधन के कार्य में श्रीमती तपती भट्टाचार्य (कोलकाता), श्री अनिल पुरोहित (रायपुर) तथा श्री सुभाषचन्द्र शर्मा जी (जयपुर) ने आन्तरिक सहयोग देकर ग्रन्थ का उत्कर्ष साधित किया है। भक्तों के विभिन्न प्रकार के सहयोग से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। गोस्वामी प्रभु से हम इन लोगों के लिए मंगल-प्रार्थना करते हैं।

महामहोपाध्याय स्व॰ श्रीयुत् पण्डित गोपीनाथ कविराजजी ने ब्रह्मचारीजी के इस ग्रन्थ को पढ़कर उस समय ग्रन्थ के विषय में जो अपने विचार व्यक्त किए थे, उसे यहाँ दिया गया है। इसके अतिरिक्त श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी का संक्षिप्त परिचय भी इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है। भक्त पाठकगण इसका रसपान कर जीवन का मार्ग आलोकित करेंगे, यही विनम्र अपेक्षा है।

प्राक्कथन

लेखक :— महामहोपाध्याय श्रीयुत् पण्डित गोपीनाथजी कविराज, एम॰ ए॰, भूतपूर्व अध्यक्ष गवर्नमेंट संस्कृत कॉलेज, बनारस।

धर्म प्रेमी हिन्दी-भाषा-भाषियों का बड़ा सौभाग्य है कि श्रीश्री सद्‌गुरु संग नामक अमूल्य ग्रन्थ का अनुवाद आज हिन्दी में प्रकाशित हो रहा है। इस ग्रन्थ के प्रणेता श्रीमत् कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी बहुत समय तक पूज्यपाद महात्मा श्रीश्रीमत् विजयकृष्ण गोस्वामीजी के आश्रय में रहकर और उनकी संगति तथा उपदेश प्राप्त करके, उनके बतलाए हुए मार्ग पर चले और साधन-भजन का सौभाग्य पाने के अधिकारी हुए। इस समय के बीच उन्होंने आध्यात्मिक साधन पथ पर सर्वतोमुखी उन्नति के लिए उक्त महापुरुष की अनुकम्पा को नाना प्रकार से प्राप्त किया था। मनुष्य के साधारण जीवन में जिस प्रकार बाल्य, यौवन और वार्द्धक्य आदि अनेक दशाओं का उदय एक के पश्चात् दूसरी का, स्वाभाविक नियम से होता रहता है उसी प्रकार साधारण नियम के अधीन धर्म-जीवन की विभिन्न अवस्थाओं का विकास होता है। इन सभी अवस्थाओं के क्रमिक आविर्भाव और तिरोभाव से अभ्यन्तरित शक्ति की स्फूर्ति धीरे-धीरे पूर्ण रूप से होने पर जीव सभी आवरणों से विनिर्मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेता है और अपने-अपने स्वभाव के अनुसार परमानन्दमय महाभाव का आस्वादन करके कृतकृत्य हो जाता है। ब्रह्मचारीजी ने इस ग्रन्थ में अपने आध्यात्मिक जीवन की बातों की आलोचना अकपट भाव से हृदय खोलकर की है। उस आलोचना से एक ओर जिस प्रकार उनकी सरलता, निर्भयता और आत्मोन्नति के लिए किए गए कठोर संग्राम प्रभृति का पूरा परिचय मिलता है उसी प्रकार दूसरी ओर उनके परमाराध्य गुरुदेव की अपार करुणा और अनन्त शक्ति का खेल भी पग-पग पर दृष्टिगोचर होता है। सद्‌गुरु की शक्ति विश्वानुग्राहक श्रीभगवान् की ही साक्षात् शक्ति है। इसलिए इस ग्रन्थ में दुर्बल वासना-परवश और भयभीत साधक की निष्ठा तथा लगन के साथ निरन्तर साधनशील जीवन के धारावाहिक इतिहास के बीच होकर जीवों का उद्धार करने के व्रती, कृपासागर, क्षमासागर श्रीभगवान् की करुणा की कहानी ज्यों-की-त्यों लिखी गई है, इसीलिए यह ग्रन्थ आत्मोन्नति चाहने वाले सभी साधकों को इतना प्रिय लगता है।

गुरु की प्राप्ति होने के पश्चात् ही वास्तविक रूप से साधन-जीवन का आरम्भ होता है। यद्यपि हृदय में वैराग्य की प्रबलता और अप्राकृत सत्य वस्तु के लिए व्याकुलता का उदय होते ही निवृत्ति मार्ग पर चलने का समय हो जाता है—

क्योंकि संसार के प्रति वैराग्य और परमार्थ के लिए व्याकुलता वास्तव में श्रीभगवान् का ही आह्वान है— तथापि जब तक मार्ग का परिचय नहीं हो जाता तब तक मार्ग पर चलना आरम्भ नहीं होता। यथार्थ मार्ग का दिखना गुरु के उपदेश पर ही अवलम्बित है। जीव अनादि बहिर्मुखता के कारण, अभिमान के प्रभाव से, शुभ और अशुभ तरह-तरह के कर्म करके तदनुसार नट की भाँति अनेक वेष बनाकर ऊर्ध्वलोक से लेकर अधःलोक तक विशाल ब्रह्माण्ड में इधर-उधर घूमता रहता है और पिछले कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुःख भोगा करता है। महामाया की मोहिनी शक्ति से जीव अपने परम रूप को भुला बैठा है और साथ-ही-साथ श्रीभगवान् के स्वरूप और उनके साथ अपने नित्य सम्बन्ध को भी भूल गया है। इसी से वह स्थूल का अभिमानी होकर अनित्य और परिणाम में दुःखदायक जागतिक वस्तु को उपादेय समझता है एवं उसी को प्राप्त करने के व्यर्थ उद्योग में अनेक जीवनों को— मरीचिका से जल प्राप्त करने के प्रयत्न की भाँति— लगाकर सुस्त हो जाता है। जब तक आत्मस्वरूप का सम्यक् दर्शन नहीं हो जाता तब तक पराभक्ति रूप परमानन्द का आस्वादन और पराशान्ति की प्राप्ति नहीं होती तथा जब तक यह नहीं हो जाता तब तक यह कठिन अतृप्ति और अपार पिपासा शान्त नहीं हो सकती। विशुद्ध ज्ञान के उन्मेष और विकास के बिना अनादि काल का मोहावरण छिन्न होने का नहीं। इसीलिए तो ज्ञानदाता सद्गुरु की आवश्यकता होती है। यद्यपि श्रीभगवान् ही सद्गुरु हैं एवं वे प्रत्येक मनुष्य के हृदय में समान रूप से विराजमान हैं तथापि वैसी भगवत्सत्ता से किसी प्रकार का फल होने की आशा नहीं है; क्योंकि काष्ठ में स्थित अग्नि बिना रगड़ के अथवा जलती हुई बाहरी आग से संयुक्त हुए बिना, जिस प्रकार प्रज्वलित होकर लकड़ी को नहीं जला सकती उसी प्रकार मनुष्य के हृदय का भगवद्भाव तीव्र संवेग के प्रभाव से अथवा प्रबुद्ध महापुरुष के सजीव संस्पर्श से उद्दीपित हुए बिना किसी कार्य का साधन करने योग्य नहीं हो पाता। संसार में तीव्र संवेग बहुत ही दुर्लभ है। इसी से साधारणतया भीतर के शुद्ध भाव को जागरित करने के लिए बाहरी सहायता की आवश्यकता पड़ती है। जो इस प्रकार से अपनी जागरित शक्ति के द्वारा दूसरे के सुप्त भाव को जगा सकते हैं वे ही सद्गुरु हैं।

ब्रह्मचारीजी को सौभाग्य से ऐसे ही सद्गुरु मिल गए थे जो इच्छामात्र से शक्ति-संचार करके दीक्षा-दानपूर्वक शिष्य को मुक्ति मार्ग पर स्थापित कर देते थे। शक्ति का संचार हो जाने से शिष्य की कुलकुण्डलिनी शक्ति, अधिकार-भेद से अल्प अथवा अधिक परिणाम में विक्षुब्ध होती है और चेतना प्राप्त कर लेती है। मनुष्य उस समय जन्म-जन्मान्तर के स्वप्न-जीवन को त्यागकर सत्य के स्पर्श से पूर्ण सत्य की खोज में ब्रह्म-मार्ग पर ऊर्ध्वमुख होकर दौड़ पड़ता है— महाजागरण

की ओर अग्रसर हो जाता है। इस गति के सामने अनेक प्रकार के दिव्य दर्शन हुआ करते हैं, कितनी ही विलक्षण अनुभूतियाँ होती हैं, और इन्द्रियों की शक्ति, मन की शक्ति तथा अन्यान्य कई शक्तियाँ क्रमशः वृद्धिगत होकर शुद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेती हैं। उस समय एक ओर जिस तरह अभिनव अभिज्ञता का आनन्द साधक को मुग्ध करने की चेष्टा करता है उसी तरह पूर्व संचित मलिन कर्म संस्कारों का समुदाय ब्रह्म तेज के स्पर्श से जागकर चित्तक्षेत्र को आन्दोलित कर डालता है। साधक के लिए यह विषम परीक्षा की अवस्था है– एक सद्‌गुरु ही उस समय अभयवचन देकर साधक को ढाढ़स बँधाते हैं एवं अलक्ष्य रूप से उसकी रक्षा निरन्तर किया करते हैं। देखते-देखते गुरुशक्ति की महिमा से सारी बाधाएँ और विपत्तियाँ कट जाती हैं।

गोस्वामीजी जीवन में आरम्भ से ही धर्मपिपासु और सरल प्रकृति के थे। इसी से विभिन्न अवस्थाओं के भीतर होकर श्रीभगवान् ने उन्हें अलौकिक रूप से पूर्ण सत्य में प्रतिष्ठित कर दिया था। वर्तमान जगत् के जीवों के लिए गोस्वामीजी की जीवन-कथा अनुशीलन करने की बड़ी आवश्यकता है। दुःख-कातर जीव का हृदय गोस्वामीजी के जीवन के महनीय आदर्श से नवीन बल प्राप्त करेगा और श्रीभगवान् की अपरिसीम करुणा का जाज्वल्यमान उदाहरण देखकर उनकी ओर लक्ष्य स्थापन करना सीखेगा।

इस ग्रन्थ में जो आदेश और उपदेश संगृहीत हैं वे विशिष्ट अवस्था में व्यक्तिविशेष को दिए गए थे ठीक है– सर्वसाधारण को उद्देश्य करके नहीं दिए गए थे– फिर भी वे सर्वसाधारण की सम्पत्ति हैं। क्योंकि वे उपदेश और आदेश किसी विशिष्ट सम्प्रदाय के नहीं, मानवमात्र के उपयुक्त हैं। जिनको उपदेश दिए गए थे वे तो एक निमित्त थे। साधन-मार्ग पर चलने वाले जिज्ञासुमात्र को इनसे शान्ति, शिक्षा और आनन्द की प्राप्ति अवश्य होगी। वास्तव में ऐसा ग्रन्थ किसी भी साहित्य में विरल है। इन उपदेशों की बार-बार आलोचना करके कार्य रूप देने से ही जीवन अमृतमय हो जाता है।

आशा है, जहाँ-जहाँ हिन्दी भाषा का प्रचार है वहाँ-वहाँ इस अपूर्व धर्मग्रन्थ का समुचित आदर अवश्य होगा।

———

श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारीजी का संक्षिप्त परिचय

भारत के पूर्वी बंगाल में अनेक महापुरुषों का जन्म हुआ है। धर्म-साधना में जो लोग चिरस्मरणीय हुए हैं उनमें श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी के शिष्य कुलदानन्द ब्रह्मचारी अन्यतम हैं। इनके पिता श्री कमलाकान्त बन्द्योपाध्याय बड़े निष्ठावान् ब्राह्मण एवं सज्जन व्यक्ति थे और माता पुण्यशीला हरसुन्दरी देवी भी बहुत धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। धर्मनिष्ठ माता-पिता की कनिष्ठ सन्तान के रूप में 11 नवम्बर, 1867 ई॰ को बैकुण्ठ चतुर्दशी के दिन कुलदाकान्त का जन्म हुआ। इनके देवतुल्य भाइयों ने भी श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी की कृपा प्राप्त की थी। प्रसिद्ध नेत्री सराजनी नायडू इनकी बड़ी बहिन के पति मथुरानाथ चट्टोपाध्याय की भतीजी थीं।

16 दिसम्बर, सन् 1886 ई॰ को श्रीश्री गोस्वामीजी से दीक्षा प्राप्त करने के बाद 27 जुलाई, 1890 ई॰ को गोस्वामीजी से ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेकर कुलदाकान्त के साधन-जीवन का नया अध्याय आरम्भ हुआ। तब इनका नाम कुलदानन्द हुआ। छः वर्ष ब्रह्मचर्य पालन करने के बाद गोस्वामीजी ने इनको नैष्ठिक ब्रह्मचर्य पालन करने के लिए कहा। इस प्रकार गुरुकृपा से कठोर साधना द्वारा ये धीरे-धीरे सिद्धि के पथ पर अग्रसर होने लगे। पूरी में, गोस्वामीजी के अन्तिम दिनों में जब ये गुरुदेव की अविश्रान्त सेवा करते थे, तब एक दिन गोस्वामीजी ने स्नेहपूर्वक इनसे कहा– **'जिस प्रकार अपने को सेवा में लगा रहे हो, यह व्यर्थ नहीं होगा; जीवन सार्थक होगा। गुरुशक्ति अदृश्य रूप से तुम्हारे भीतर संचारित हो रही है। जीवन मधुमय हो जाएगा। हजारों नर-नारी तुम्हारी सेवा के लिए व्याकुल होंगे।'** कुलदानन्दजी उनके श्रीचरणों में गिर पड़े। तब गोस्वामीजी ने इनके मस्तक पर हाथ रखकर कहा– **'मेरा कुछ ऐसा कार्य है जो इस शरीर में रहते हुए नहीं हो सकता। यथासमय वह कार्य आरम्भ होगा।'**

14 जुलाई, सन् 1904 ई॰ ब्रह्मचारीजी के सद्‌गुरु जीवन का विशेष स्मरणीय दिन था। इस दिन श्यामपुर के अनेक नर-नारियों ने इनसे दीक्षा ली। यह इनका सद्‌गुरु रूप में प्रथम परिपूर्ण आत्मप्रकाश था। इसके बाद सहस्र-सहस्र लोगों ने इनका शिष्यत्व प्राप्त किया एवं इनके अनेक योगेश्वर भी प्रकट हुए।

26 जून, सन् 1930 ई॰ अमावस्या को इन्होंने अपने इष्टदेव को हाथ जोड़कर प्रणाम करके प्रातः 9 बजकर 22 मिनट पर 63 वर्ष की आयु में मर्त्यलीला समाप्त करके दिव्यधाम में महाप्रस्थान किया। पुरीधाम में श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी (जटियाबाबा) के समाधि-मन्दिर के सामने इनके प्रतिष्ठित आश्रम में ही इनकी देह को समाधिस्थ किया गया।

|| श्री श्री गुरवे नमः ||

निवेदन

मेरे परमपूज्य गुरुदेव भगवान् श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी इस देश में सुविख्यात हैं। उन्होंने सन् 1841 ई॰ की झूलन (राखी) पूर्णिमा के दिन श्रीधाम शान्तिपुर (बंगाल) के विशुद्ध अद्वैत-वंश में परम भगवत्भक्त श्रेष्ठ पण्डित श्री आनन्दकिशोर गोस्वामीजी के पुत्र के रूप में जन्म ग्रहण किया था।

बाल्यकाल में उनके जिन सब स्वाभाविक सद्‌गुणों और अद्‌भुत क्रिया-कलापों को देखकर उनके आत्मीयजन और शान्तिपुरवासी एक समय विस्मित हो गए थे, उससे लोगों को अवगत कराना मेरी इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है।

यौवनकाल में सरल विश्वास से ब्राह्मधर्म का आश्रय ग्रहण करके दूसरों के दुःख से व्याकुल होकर उस समय की दुर्नीति-दुराचार को दूर करने के लिए एवं समय के अनुकूल धर्म की स्थापना के लिए भयंकर अत्याचार-उत्पीड़न सहन करके जिस प्रकार उन्होंने तीव्र उत्साह से देश के पुनरुत्थान के लिए कार्य किया था, गुरुदेव के उस समय के जीवन की सब घटनाओं की जाँच-पड़ताल करके प्रचार करना भी मेरी इस पुस्तक का अभिप्राय नहीं है।

केवल विशुद्ध धर्ममत से एवं अनादि अनन्त सत्यस्वरूप परमेश्वर के अस्तित्व के ध्यान से सन्तुष्ट न होकर, प्रत्यक्ष रूप से जीवन में उस परम वस्तु को प्राप्त करने के लिए जिस प्रकार उन्होंने विभिन्न धर्म-सम्प्रदाय की उपासना-प्रणाली का आश्रय लेकर तीव्र तपस्या और कठोर साधना की थी एवं उससे भी अपनी लक्षित वस्तु भगवान् को साक्षात् रूप से प्राप्त न कर पाने के कारण, जिस अवस्था में पहाड़-जंगल जैसे दुर्गम स्थानों पर सद्‌गुरु की खोज में आहार-निद्रा त्यागकर उन्मत्त की भाँति दौड़-धूप की थी, वह सब विवरण उनके ही श्रीमुख से सुनकर मैं चकित हो गया और उसे लिखकर रख लिया।

अन्त में, उनकी प्रौढ़ अवस्था में अलौकिक रूप से गयाधाम के पहाड़ पर मानससरोवर निवासी श्रीश्री ब्रह्मानन्द परमहंसजी अचानक आविर्भूत होकर उनको शक्ति-संचारपूर्वक दीक्षा प्रदान करके क्षणभर में अदृश्य हो गए। उसी समय से उन्होंने अपनी चिर-आकांक्षित वस्तु सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् का साक्षात् रूप में दर्शन करके जिस अवस्था में शेष दिन व्यतीत किया, लगभग 13-14 वर्ष उनके साथ रहकर उसे प्रत्यक्ष देखकर समय-समय पर मुग्ध और स्तम्भित हुआ हूँ। हाय, कुछ दिन पहले उस चित्त-विमोहन, परम मनोरम व्यवहार की छवि मात्र को हम लोगों के सम्मुख रखकर 5 जून, सन् 1899 ई॰ को दुःसह ज्येष्ठ महीने में

नीलसागर के समीप श्रीश्री नीलाचल (पुरीधाम) में, आश्रित भक्तों के मन को शोभित करने वाला हम लोगों का वह शीतल दीप्तिमान् तत्त्वज्ञान का ज्योतिस्वरूप चन्द्रमा अचानक अस्त हो गया। घोर कृष्ण द्वादशी के अन्धकार में अभागे भक्तगणों के सिर पर इस प्रकार अचानक बिजली गिर पड़ी। उस भीषण दुर्दिन के हृदय विदारक दृश्य को अंकित करके मैंने अपनी डायरी का अन्तिम पृष्ठ चिरकाल के लिए समाप्त कर दिया।

प्रायः 10 वर्ष की बाल्यावस्था से मेरा डायरी लिखने का अभ्यास था। अतएव गुरुदेव ठाकुर का आश्रय ग्रहण करने के बाद से उनके चिर-समाधि लेने तक का विवरण मैंने अपनी डायरी में लिख रखा है। ठाकुर के पास सर्वदा किसी एक का रहना आवश्यक था, अतएव वह कार्यभार मेरे ही ऊपर अर्पित था। मैं अपने आहार-निद्रा का समय छोड़कर प्रायः सब समय उनके पास ही बैठा रहता था। ठाकुर से साधन प्राप्त करके लगभग 13-14 वर्ष तक मैं निरन्तर उनके साथ रहा। उस समय उनके वार्तालाप, आचार-व्यवहार, क्रिया-कलाप को जिस दिन जैसा देखा है और सुना है, वह सब अपने साध्यानुसार यथावत् एवं विस्तारपूर्वक मैंने डायरी की उसी-उसी तारीख में लिख रखा है। अपनी डायरी में विशेष रूप से अपने ही जीवन की नाना प्रकार की दुरावस्था और आकस्मिक दुर्दशा में ठाकुर का अनुशासन, उपदेश, दया और सहानुभूति के साथ-साथ उनके अलौकिक जीवन की अद्‌भुत घटनावली का दृष्टान्त– जिसे उन्होंने समय-समय पर अभिव्यक्त किया था– जैसे-जैसे प्राप्त होता था, उसे सरल एवं निष्कपट भाव से लिख रखता था। फिर सर्वदा एक साथ रहने के कारण, ठाकुर के उस-उस समय के नित्यसंगी मेरे श्रद्धेय गुरुभाइयों की तत्कालीन किसी-किसी घटना के साथ मेरा विशेष सम्बन्ध रहने के कारण एवं उन सबके साथ ठाकुर के आदेश, उपदेश और व्यवहार का विशेष रूप से सम्बन्ध रहने के कारण वह सब भी मेरी डायरी के अन्तर्गत आ गया है। हम सभी यदि सत्पुरुष, शान्त, जितेन्द्रिय होकर निष्कलंक जीवन के साथ ठाकुर का आश्रय लेकर रहते, तो फिर उनकी कृपा और महिमा का पूर्ण प्रमाण किस प्रकार मिलता? फिर उनकी पतितपावनता ही किस प्रकार पूर्णतः प्रस्फुटित होती? उत्पीड़न की अधिकता का प्रकाश हुए बिना क्षमा की विशेषता समझी नहीं जाती। एक ओर जिस प्रकार अत्याचार और अबाध्यता है, दूसरी ओर उसी प्रकार धैर्य और सहिष्णुता है; एक ओर हीनता और अधोगति है, दूसरी ओर दया और सहानुभूति है। इसलिए ठाकुर की असाधारण कृपा और उनके अद्‌भुत जीवन का बिन्दुमात्र परिचय स्मृति में रखने के अभिप्राय से उस समय के नित्य संगी गुरुभाइयों के साधारण व्यवहार एवं विशेष रूप से अपने निजी जीवन की त्रुटियाँ, जिस दिन जिस प्रकार हुई, उसे इस डायरी में लिख रखा है।

मेरे डायरी लिखने के अभ्यास से अनेक गुरुभाई अवगत हैं। अतः वे लोग ठाकुर के अन्तर्द्धान होने के बाद से उनका एक जीवन-चरित्र लिखने के लिए मुझसे लगातार अनुरोध कर रहे हैं; परन्तु ठाकुर के साथ रहकर, इन 13-14 वर्षों में उनके जिन सब कार्यों को देखा है, उससे उनका जीवन-चरित्र लिखना अथवा उस विषय में प्रयास करना भी मुझे अत्यन्त असम्भव लगा। मेरा यह विश्वास है कि उनकी सम्पूर्ण जीवनी को लिखा नहीं जा सकता। भाषा द्वारा जिसे व्यक्त नहीं किया जा सकता, उनके जीवन की उन सब इन्द्रियातीत तत्त्वानुभूति की बात को लक्ष्य करके मैं यह नहीं कह रहा हूँ; अत्यन्त निम्न स्तर के योगैश्वर्य से प्राप्त शक्तिपुंज की जिन सब क्रिया और फलानुभूति को उनके पंचभौतिक देह में सर्वदा होते देखा है एवं देवता और सिद्ध महापुरुषगण से सम्बन्धित, लोगों के विश्वास के अतीत, जिन समस्त अलौकिक घटनाओं को प्रतिदिन ही मैंने प्रत्यक्ष किया है, उन सबका विचार करके भी मैं यह बात नहीं कह रहा हूँ। मेरी स्पष्ट धारणा है कि ठाकुर के जीवन में साधारण लोगों के विश्वास योग्य एवं समझ में आने योग्य ऐसी कितनी ही घटनाएँ विभिन्न स्थानों में विभिन्न अवस्था में साधारण लोगों की दृष्टि के बाहर घटित हुई हैं कि उनको अपने नित्य संगी शिष्यगणों के समक्ष व्यक्त करने का भी उन्हें अवसर नहीं मिला; फिर कभी किसी घटना को प्रसंगवश अन्य लोगों के समक्ष उन्होंने प्रकाशित भी किया है। अतएव इन सबको जानकर एवं सुनकर उनकी एक स्थूल जीवनी प्रकाशित करना मेरे लिए कितना दुःसाहस का कार्य है, सभी समझते हैं। इन समस्त कारणों से मेरी ऐसी स्पष्ट धारणा है कि ठाकुर के सम्बन्ध में जितनी ही बातें क्यों न लिखूँ, उसके द्वारा उनका सम्पूर्ण रूप से परिचय प्रदान करना असम्भव है। इसलिए ठाकुर के अप्रकट होने के बाद से लेकर इतने समय तक मैंने इस विषय में कोई प्रयास ही नहीं किया; क्योंकि उनकी प्रेरणा के बिना उनकी जीवनी को संकलित करने का मेरा साहस नहीं होता। भविष्य में उनकी प्रेरणा और सहायता मिलने से उस विषय में प्रवृत्त हो सकता हूँ।

गत 1913 ई॰ में हैजा से पीड़ित होकर जब मैं बिल्कुल मरणासन्न हो गया था, तब सभी ने मेरे जीवन की आशा छोड़ दी थी। मेरी डायरी प्रकाशित नहीं हुई, यह सोचकर उस समय अनेक लोगों ने अत्यन्त खेद प्रकट किया था। ठाकुर की कृपा से मेरे स्वस्थ होने के बाद मेरे श्रद्धेय गुरुभाइयों का स्नेहपूर्ण अनुरोध एवं आग्रह पुनः मेरे ऊपर हावी होने लगा। मैं उसे टाल न सका और अपनी उस विस्तृत 14 वर्षों की डायरी को प्रकाशित करने का संकल्प किया; परन्तु एक बार में उसका प्रकाशित होना सम्भव नहीं था, इसलिए सन् 1892 ई॰ की डायरी को अत्यन्त पुराने कागज में पेन्सिल से लिखी होने के कारण नष्ट होने की अवस्था में रखी देखकर, क्रम के विरुद्ध होने पर भी उसे ही सर्वप्रथम तृतीय खण्ड के रूप

में प्रकाशित किया था।

इस बार, मेरी दीक्षा के समय से क्रमानुसार सन् 1886 ई॰ से अप्रेल 1890 ई॰ की डायरी प्रथम खण्ड एवं सन् 1890 ई॰ से अप्रेल 1991 ई॰ की डायरी द्वितीय खण्ड के रूप में मुद्रित हुई।

ठाकुर के कथन को स्मरण में रखकर, अत्यन्त सावधानी के साथ एवं विशेष कुछ अंश को संक्षिप्त करके इसे प्रकाशित किया गया है। इस बात को कहने का तात्पर्य यह है कि ठाकुर ने अन्तर्द्धान होने के कुछ समय पहले एक दिन मुझसे कहा था– **'ब्रह्मचारी, प्रत्यक्ष सत्य भी जिस किसी से नहीं कहते। यदि कहना ही हो, तो आँखों के सामने उन्हें प्रमाण सहित दिखाना होगा। नहीं तो श्रीमन्त सौदागर* के जैसी दशा होगी; इसका ध्यान रखना।'** इसीलिए सब बातों को एक गूँगे के स्वप्न देखने की भाँति मेरे पास लिखने का उपाय नहीं है।

मैंने जिस अवस्था में रहकर, जिस घटनाक्रम में पड़कर ठाकुर का आश्रय प्राप्त किया एवं उसके बाद उनके निरन्तर संग प्राप्ति के विरोध में जो सब आपद्-विपद् एक-एक करके उस समय मेरे साथ घटित हुए थे, वह सब उनकी ही कृपा लगती है, इसलिए अपने जीवन की उस समय की घटनाओं का बहुत संक्षेप में दो-तीन विवरण यहाँ दिए बिना सन्तुष्ट नहीं हो पा रहा हूँ; मेरी इस निर्लज्जता पर सब लोग दया करके क्षमा करेंगे, यही प्रार्थना है।

"लगभग छः वर्ष की अवस्था में एक दिन मैं घर के पास एक मैदान में संध्या के समय समवयस्क लड़कों के साथ खेल रहा था, किसी ने मुझे अचानक बुलाकर कहा, 'अरे, तेरे घर में गोसाँईजी आए हैं, शीघ्र जा।' यह सुनते ही मैंने दौड़कर घर जाकर देखा– भगवान् के कमरे के पास हरसिंगार पेड़ के नीचे हमारे आत्मीय ब्रह्मसमाजी स्व॰ नवकान्त चट्टोपाध्याय जी के साथ एक व्यक्ति खड़े हैं। उनके हाथ में एक मोटी लाठी है, जूते पहने हुए हैं एवं कुर्ते के साथ मयूरपंख के रंग की जाकेट पहने हैं; लम्बा-चौड़ा शरीर है। उलंग अवस्था में दौड़ते हुए उनके

---

* एक बार एक सौदागर ने सिंहल राज्य की ओर जाते समय मार्ग में कमलों के वन में लक्ष्मीजी का दर्शन किया। उनके मुँह से यह बात सुनकर सिंहल देश के राजा ने उनके बतलाए हुए स्थान पर लक्ष्मीजी की खोज करने में असफल होकर उन्हें कारागार में डाल दिया। उधर घर पर उनकी गर्भिणी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र भी बड़ा होकर सिंहल राज्य की ओर जाते समय लक्ष्मीजी का दर्शन किया एवं उसने सिंहल देश के राजा को भी लक्ष्मीजी का दर्शन कराया, फलस्वरूप उसके पिता को कारागार से मुक्त कर दिया गया और बेटे को आधे राज्य के साथ राजकुमारी भी प्राप्त हुई। अविश्वासी पिता राजा को लक्ष्मीजी का दर्शन नहीं करा सके थे। – अनुवादक

सामने जाकर मेरे खड़े होते ही उन्होंने स्नेहपूर्ण दृष्टि से देखकर थोड़ा मुस्कुराते हुए मुझसे अच्छे परिचित की भाँति कहा– **'खेल रहे थे क्या? अच्छा! अच्छा!! जाओ, जाकर खूब खेलो।'** यह कहकर वे नवकान्त बाबू के साथ जाने लगे; जाते-जाते मुख घुमाकर वे बार-बार मेरी ओर देखने लगे। उनकी वह आकृति और उनका स्नेहपूर्वक देखना आज भी मैं भूल नहीं पाया। किसी के द्वारा गोसाँई शब्द कहने पर मैं इन्हीं गोसाँईजी को समझता था।"

"हमारे बस्ती में एक वृद्ध ब्राह्मण प्रतिदिन कृत्तिवासजी की रामायण का सुर के साथ पाठ करते थे। सुनकर बड़ा अच्छा लगता था। प्रतिदिन मैं आहार के बाद ग्राम के दूसरे प्रान्त में उनके पास जाता एवं संध्या तक रहकर उनसे श्रीराम की कथा सुनता। राम मुझे बड़े अच्छे लगते थे। राम मानो हमारे परिवार के ही सदस्य हैं, हमें छोड़कर जंगलों में इधर-उधर घूम रहे हैं– सोचकर राम के लिए रोता था। लड़कों के साथ खेलने के लिए जंगल में पहुँचते ही मैं चारों ओर देखता, कि वहाँ राम हैं या नहीं। राम का वर्ण दूब की भाँति है; इसलिए बड़ी उत्सुकता के साथ दूब की ओर देखा करता। दूब पर पैर लगने से, राम के शरीर में लगेगा सोचकर वहाँ लोट जाता, राम को प्रणाम करता। तीर-धनुष सब समय हाथ में रखता था। एक फटी हुई रामायण मिल गई थी, दिनभर उसे साथ में रखता, रात्रि के समय उसे सिर के नीचे रखकर सोता था। इस समय मैंने बाल-शिक्षा की भी पढ़ाई नहीं की थी। बाद में बालमन्दिर में और प्राइमरी स्कूल में बाल-शिक्षा की पढ़ाई हो जाने पर मँझले भैय्या (श्री वरदाकान्त बन्द्योपाध्याय जी) मुझे पढ़ाई-लिखाई के लिए ढाका ले गए। इस समय मेरी आयु 10 वर्ष थी। मँझले भैय्या ने परिश्रम करके मुझे डायरी लिखने की शिक्षा दी। दिनभर में कितनी मिथ्या बातें कही, किसके साथ झगड़ा किया, क्या-क्या अपराध किया, सब प्रतिदिन डायरी में लिखना होता था। इसी समय से डायरी लिखने का मेरा अभ्यास है।"

"मेरे अनेक आत्मीयजन ब्रह्मसमाजी हैं। मेरे सब बड़े भाई भी ब्राह्म-मत के अनुयायी थे। क्रमशः मँझले भैय्या प्रति रविवार को मुझे ब्राह्म-समाज में ले जाते थे। ब्रह्मसमाजियों की उपासना प्रणाली के प्रति थोड़े दिनों के भीतर ही मेरा आकर्षण बहुत बढ़ गया। प्रतिदिन दोनों समय नियमित रूप से मैं प्रार्थना करने लगा। प्रार्थना करते-करते जिस दिन रोना नहीं आता, उपासना नहीं हुई सोचकर सारा दिन कष्ट से बिताता था। कपट और असत्य व्यवहार को बड़ा अपराध जानकर, सार्वजनिक रूप से जनेऊ त्यागकर ब्राह्मधर्म में दीक्षा लेने का निश्चित किया। आत्मीयजनों के भीतर इसे लेकर बड़ी हलचल मच गई। इस समय ढाका ब्राह्म-समाज में गोस्वामीजी आचार्य थे। गोस्वामीजी की असाम्प्रदायिक भाव से हृदय-स्पर्शी प्रार्थना और उपासना से एवं प्रतिदिन कीर्तन में उनके महाभाव से

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सम्प्रदाय के धर्मार्थीगण भी आकर्षित होकर ब्राह्म-समाज में आने लगे। प्रतिदिन ब्राह्म-समाज लोगों से परिपूर्ण रहता! प्रत्येक रविवार को ही बड़ा उत्सव होने लगा। सम्प्रदाय और जाति-भेद के न रहने के कारण जीवन्त धर्म के जागृत भाव से सभी अभिभूत होने लगे। जीवन में ऐसा कभी देखा नहीं।"

सन् 1886 ई॰ आश्विन महीने के शारदीय उत्सव में मैं ब्राह्मधर्म में दीक्षा ग्रहण करने की प्रत्याशा से अधीरता के साथ उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा। इस समय से जो मैंने डायरी लिखी, वही अब प्रकाशित हो रही है। इति–

जटिया बाबा की समाधि,
पुरी।

कुलदानन्द ब्रह्मचारी

—: सूची पत्र :—

प्रथम भाग

अगस्त—सितम्बर, सन् 1886 ई॰

• प्रस्तावना
• ढाका ब्राह्म-समाज में गोस्वामीजी ... 2
• गोस्वामीजी के ब्राह्म-समाज-विरोधी कार्य का प्रतिवाद ... 3
• ब्राह्मधर्म में दीक्षित होने के लिए व्याकुलता ... 4
• अद्‌भुत स्वप्न : गोस्वामीजी का आह्वान ... 5

अक्टूबर, सन् 1886 ई॰

• दीक्षा प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा ... 7

नवम्बर, सन् 1886 ई॰

• दीक्षा प्राप्ति में छोटे भैय्या बाधक ... 8
• सरल विश्वास में अद्‌भुत शक्ति ... 11
• दीक्षा प्राप्ति में मँझले भैय्या बाधक ... 12
• निराशा में आश्वासन ... 13

दिसम्बर, सन् 1886 ई॰

• दीक्षा प्राप्ति के लिए बड़े भैय्या की अनुमति ... 14
• ब्राह्म-समाज में वार्षिक उत्सव ... 15
• गोस्वामीजी का उपदेश : प्रार्थना के प्रकार ... 16
• दीक्षा प्राप्ति के लिए माँ की अनुमति ... 18
• मेरी दीक्षा ... 19

जनवरी, सन् 1887 ई॰

• साधन की बैठक ... 21
• यह क्या योग-शक्ति है? ... 22
• माघोत्सव में नवीन घटना ... 24
• भोजन के समय भाव की विचित्रता : अद्‌भुत उपासना ... 26
• अव्यक्त प्रवचन ... 29

फरवरी, सन् 1887 ई॰

• आसन को प्रणाम करने का कुसंस्कार ... 30
• ब्राह्म-समाज में आन्दोलन : गोसाँईजी का पदत्याग का संकल्प ... 31

फरवरी—मार्च, सन् 1887 ई॰

• बारदी के ब्रह्मचारीजी की चर्चा ... 31

मई—जून, सन् 1887 ई०

• दरभंगा में गोस्वामीजी की प्राण-संकट पीड़ा ... 33
• आकाश-पथ से ब्रह्मचारीजी का दरभंगा गमन ... 33
• गोस्वामीजी का दरभंगा आदि स्थानों में वास ... 34
• व्याधि से मुक्ति का अद्‌भुत विवरण ... 36

जुलाई, सन् 1887 ई०

• धर्म और नीति के सम्बन्ध में उपदेश ... 38
• त्राटक साधना की प्रणाली ... 41
• गोसाँईजी की प्रवचन देने में अहमति ... 42
• साधु की अवज्ञा का दण्ड ... 43

अगस्त—नवम्बर, सन् 1887 ई०

• गुप्त रूप से प्राणायाम एवं उच्छिष्ट के विरोध में उपदेश ... 44
• कुम्भक ... 44
• ढाका में जन्माष्टमी की शोभा-यात्रा ... 45
• अद्‌भुत फकीर ... 47
• ब्राह्म-समाज में शास्त्रीय व्याख्या और हरि-संकीर्तन : ब्राह्मगणों का आन्दोलन ... 48
• गोस्वामीजी का दैनिक आचरण और साधन की 'बैठक' ... 49
• गोसाँईजी के शिष्यों की कथा ... 52
• विलुप्त मन्त्र-शक्ति के उद्धार के उपाय का निर्देश ... 54
• शक्ति-हरण ... 55

दिसम्बर, सन् 1887 ई०

• वार्षिक उत्सव में महासंकीर्तन : भावावेश का विवरण ... 56
• कुछ अद्‌भुत घटनाओं का सारांश ... 58
• मेरा असाध्य रोग ... 59
• अयोध्या जाने का संकल्प और गोसाँईजी का आदेश ... 61
• स्वप्न — अद्वैत भाव : गोसाँईजी की कृपा ... 62
• प्रार्थना की व्यर्थता का बोध ... 63
• इष्ट-नाम की उत्पत्ति की अनुभूति ... 65
• भावुकता में गोस्वामीजी का शासन ... 66

जनवरी, सन् 1888 ई०

• भक्त का प्रतिकूल आचरण ... 66
• माघोत्सव में उपासना ... 67
• बिना विचार किए ब्राह्म-दीक्षा देने का प्रतिवाद ... 69
• साधनानुभूति में प्रोत्साहन : भक्त माली की इच्छा-पूर्ति ... 70

• इछापुरा ग्राम में गोसाँईजी और लाल :
महोत्सव में मल्लवेश में नृत्य ... 72
• चन्द्र-ग्रहण ... 75

फरवरी–मार्च, सन् 1888 ई॰

• साधना का संकल्प ... 76
• ज्योति दर्शन से चेतना का विलोप ... 76

अप्रेल, सन् 1888 ई॰

• ढाका का टर्नेडो ... 78

मई–जून, सन् 1888 ई॰

• ब्रह्मचारी का संग :
विचित्र जीवन-कथा : अज्ञात भूगोल का वृत्तान्त ... 80
• मेरी दैहिक दुरावस्था और मानसिक दुर्गति ... 88

जुलाई–अगस्त, सन् 1888 ई॰

• स्थिर उज्ज्वल ज्योतिर्मण्डल का दर्शन ... 91
• ज्योति विलुप्त ... 92
• पतित पर अयाचित दया ... 93
• विचित्र स्वप्न : पथ–प्रदर्शन ... 94
• महापुरुषों को पहचानने का उपाय ... 97
• धर्म का महास्त्रोत : फिर वही सत्युग ... 98
• गेण्डारिया आश्रम में प्रवेश :
गोसाँईजी के हाथ से प्रथम हरि-लूट ... 99
• गेण्डारिया आश्रम-प्रतिष्ठा उत्सव ... 99

सितम्बर, सन् 1888 ई॰

• दर्शनादि के सम्बन्ध में उपदेश :
अलौकिक रूप से चरणामृत प्राप्त ... 100
• प्रारब्ध क्षय के उपाय का निर्देश ... 101
• नगेन्द्र बाबू का असाम्प्रदायिक उपदेश ... 102
• सत्यनिष्ठा का उपदेश ... 103
• मन्त्रशक्ति का प्रमाण ... 104
• आहार के सम्बन्ध में उपदेश : आनुषंगिक बातें ... 105

अक्टूबर–नवम्बर, सन् 1888 ई॰

• चरणामृत प्राप्ति और उसके विषय में उपदेश ... 107
• बारदी के ब्रह्मचारी का संग :
महापुरुष का विचित्र उपदेश और असाधारण आचरण ... 108
• ब्रह्मचारी के संग का निषेध ... 110

दिसम्बर, सन् 1888 ई॰

• बड़े भैय्या की अयाचित दीक्षा-प्राप्ति में मेरी खिन्नता :
ठाकुर की सान्त्वना ... 111
• एक महीने में सिद्धि प्राप्ति का उपाय ... 112
• गेण्डारिया आश्रम में ठाकुर की कुटिया ... 113
• साधक के लिए दैनिक प्रतिपालन योग्य नियम ... 115
• स्कूल की पढ़ाई-त्याग और पश्चिम में जाने का आदेश :
ध्यान और आसन का उपदेश ... 116
• गुरु-शिष्य सम्बन्ध :
एक गुरुशक्ति ही पूरे विश्व में व्याप्त है ... 119
• स्वप्न : साधन प्राप्ति हेतु मँझले भैय्या की व्याकुलता ... 122
• मुँगेर जाने का आदेश ... 123
• एक मेम की महानता ... 124
• सतीश के प्रति गोसाँईजी की कृपा ... 125

जनवरी, सन् 1889 ई॰

• आदेश उल्लंघन से दुर्भोग ... 126
• प्रथम स्वप्न :
कष्टहारिणी के घाट से संलग्न गुप्त पथ का रहस्य ... 127
• पीरपहाड़ और सीताकुण्ड ... 129
• स्वप्न की सफलता : मुँगेर आगमन की सार्थकता :
मँझले भैय्या की दीक्षा हेतु प्रार्थना : गोसाँईजी की सहमति ... 131
• द्वितीय स्वप्न : फूल के पेड़ की अस्वाभाविक मृत्यु ... 132
• तृतीय स्वप्न : गंगासागर-संगम की यात्रा :
गुरुनिष्ठा का उपदेश ... 133
• कष्टहारिणी और मुँगेर नाम की सार्थकता ... 135
• चतुर्थ स्वप्न : गुरु के आदेश पालन में संकोच ... 135
• मुँगेर की विशेषता ... 136

फरवरी—मई, सन् 1889 ई॰

• भागलपुर में वास ... 136
• अयोध्या गमन : साधु-संग ... 137

जुलाई—अक्टूबर, सन् 1889 ई॰

• कोलकाता में गोसाँईजी का दर्शन :
साधु-महात्माओं के संग का विवरण ... 138
• नागा बाबा ... 138
• पतितदास बाबाजी ... 141
• गोपालदास बाबा ... 142

• तुलसीदास बाबा ... 143
• अन्ध बाबाजी ... 143
• योगजीवन और शान्तिसुधा का परिणय-उत्सव ... 144
• श्रीधर का पागलपन और ठाकुर का शासन ... 145
• धूलट-उत्सव ... 146

नवम्बर, सन् 1889 ई०

• लाल के योगैश्वर्य से गुरुभाइयों की मुग्धता ... 148
• भागलपुर में पुनरागमन ... 148

जनवरी, सन् 1890 ई०

• बहुत दिनों बाद डायरी लिखने की प्रवृत्ति ... 149
• सत्संग-प्राप्ति : गंगा की महिमा और तर्पण में आस्था ... 150
• तन्द्रावेश में चक्र-शक्ति की अनुभूति ... 153
• विचित्र सूर्य-मण्डल का दर्शन ... 154
• साधना में अक्षमता के कारण कौशल करना ... 155
• त्राटक साधना में दर्शन का क्रम ... 155

फरवरी, सन् 1890 ई०

• तर्पण में छायारूप का दर्शन : कुत्ते की घटना ... 157
• भागलपुर में साधु पार्वतीबाबू : इष्टदेव को प्रसन्न रखना ही साधना और सदाचार का उद्देश्य ... 157
• कर्म ही धर्म है ... 160
• पगले साधु का निष्काम कर्म ... 162
• निष्काम कर्म ही धर्म है ... 163
• ज्योति-दर्शन ... 164
• मेरी वर्तमान मानसिक अवस्था : कर्म-त्याग ही धर्म है ... 164
• दर्शन के विषय में विचार ... 166
• अनादर से रूप का अन्तर्धान ... 167
• लाल का प्रभाव और योगैश्वर्य ... 169
• मेरे लिए लाल का उपदेश ... 174

मार्च—मई, सन् 1890 ई०

• स्वप्न : वाक्य संयम ... 175
• स्वप्न : सन्यास की अवस्था के सम्बन्ध में उपदेश ... 175

मई—जून, सन् 1890 ई०

• पाप पुरुष का आक्रमण ... 178
• कौन हो तुम ? ... 180
• असह्य रोग-यन्त्रणा : जीवन में अरुचि अप्रत्यक्ष रूप से गुरुदेव का आह्वान ... 182

जुलाई, सन् 1890 ई०

• श्री वृन्दावन-यात्रा ... 183
• प्रयागधाम के प्रभाव की अनुभूति ... 184
• ज्योतिर्मय श्रीवृन्दावन में उपस्थित : गुरुदेव की दया ... 185
• दण्डाघात ... 188
• मेरा उभय संकट ... 189
• श्रीवृन्दावन वास की विधि ... 190
• ब्रह्मचारीजी का अनुताप और शेषकालीन कथा ... 191
• सद्गुरु की कृपा के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर ... 194
• गोपीनाथजी के मन्दिर में महोत्सव : ठाकुर का नृत्य ... 196
• माता ठाकुरानी का श्रीवृन्दावन में आगमन : दाऊजी का मन्दिर ... 197
• ठाकुर की कृपा-दृष्टि से उत्कट रोग की शान्ति : विविध प्रकार की बातें ... 199
• गोसाँईजी और माता ठाकुरानी का कलह ... 201
• माता ठाकुरानी का अलौकिक रूप से अन्तर्धान ... 202
• योगजीवन का गृहस्थी में रहने का आदेश ... 205
• वानर 'कृष्णदास' ... 206
• भक्त बूढ़े वानर का कार्य ... 207
• ठाकुर के भोजन की अत्यन्त दुरावस्था ... 208
• दामोदर को दाऊजी महाराज का दण्ड ... 210
• कुतु की बात : माता ठाकुरानी की वापसी ... 210
• मेरे कौमार्य की आकांक्षा का प्रकाश ... 213
• ब्रह्मचर्य ग्रहण के सम्बन्ध में आलोचना : ठाकुर की अनुमति ... 215
• ठाकुर के साथ महापुरुष के दर्शन ... 217
• ब्रह्मचर्य ग्रहण का दिन निर्धारित ... 218
• केलिकदम्ब के वृक्ष में राधाकृष्ण नाम ... 219
• मनोरम वन की शोभा : हिंसारहित वृन्दावन ... 221
• ब्राह्मण का विशेषत्व : सदगुरु आश्रित लोगों की गति ... 222
• पितृ-ऋणादि के सम्बन्ध में उपदेश ... 224
• बारदी के मार्ग में श्रीधर का काण्ड ... 226
• ब्रह्मचर्य दीक्षा ... 230
• विचारपूर्वक दान का उपदेश ... 232
• आसन का ग्रन्थ ... 233
• दृष्टि-साधना ... 233
• श्रीविग्रह दर्शन का उपदेश ... 234
• स्वप्न : गंगा के भँवर में डूबना ... 234

• श्रीवृन्दावन की रज ... 236
• मथुरा के पथ पर श्रीधर की कीर्ति ... 237

अगस्त, सन् 1890 ई॰

• स्वप्न : गृहस्थ नहीं होना पडेगा ... 240
• वृक्षरूपी वैष्णव महापुरुष ... 241
• श्रीवृन्दावन में अपार मच्छर ... 243
• साधना में विविध अनुभूतियों का क्रम ... 244
• लाल के सम्बन्ध में ठाकुर का अनुशासन ... 246
• साधना के प्रभाव से देहतत्त्व का ज्ञान ... 247
• गेरुआ क्या है? ... 247
• प्रतिदिन नये तत्त्व का प्रकाश : परतत्त्व ... 248
• नवीन तिलक : श्रीअद्वैत प्रभु द्वारा संस्कार ... 249
• श्रीवृन्दावन में साम्प्रदायिक भाव ... 250
• दर्शन में विरोध करने वाले प्रभुसन्तान को उत्कट शिक्षा ... 251
• साधक का सुरापान क्या है? ... 253
• नाम-जप से ठाकुर की शुष्कता और ज्वाला : परमहंसजी की सान्त्वना ... 255
• हरिमोहन और मेरे वृन्दावन छोडने के सम्बन्ध में ठाकुर का कथन ... 257
• वैराग्य, वासना और वैध कर्म ... 259
• गोसाँईजी प्रदत्त उपवीत की शक्ति ... 261
• श्राद्ध से प्रेतात्मा की यन्त्रणा की शान्ति ... 263
• चीरघाट में नौका-लीला ... 264
• माता ठाकुरानी को ठाकुर के साथ रखने की बात ... 265
• कैलास-यात्रा का विवरण ... 266
• तिब्बत में बंगाली बाबू ... 268
• माता ठाकुरानी का योगैश्वर्य और आकांक्षा ... 269
• स्वप्न में भूत का उपद्रव ... 272
• प्रकृति का रोग : कर्म ही धर्म है ... 272
• मातृ-सेवा एवं भ्रातृ-सेवा का आदेश ... 274
• कंगाल के ब्रह्माण्डवेद में ठाकुर की दीक्षा और शक्ति-संचार की बातें ... 275
• नाना स्थानों से ठाकुर को मन्त्र प्राप्त : विविध साधना परमहंसजी से दीक्षा : तैलंग स्वामी की कथा ... 279

क्रमशः

—: चित्र सूची :—

- परमात्मतत्त्वज्ञ श्री विजयकृष्ण गोस्वामी
- सद्‌गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी
- माता योगमाया देवी
- ब्राह्म-समाज, ढाका
- गेण्डारिया आश्रम, ढाका
- ब्रह्मतत्त्वज्ञ श्री विजयकृष्ण गोस्वामी
- श्रीश्री लोकनाथ ब्रह्मचारी
- श्री वरदाकान्त बन्द्योपाध्याय (कुलदानन्दजी के मँझले भाई)
- श्री योगजीवन गोस्वामी
- श्री श्रीधर घोष
- श्रीश्री तेलंग स्वामी
- श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

—————

श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ

हिन्दी ग्रन्थ :–

1. साधना पथ - Rs. 20
2. श्रीश्री विजयकृष्ण कथामृत - Rs. 75
3. सद्‌गुरु स्वामी असीमानन्द लीला प्रसंग - Rs. 75
4. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (प्रथम खण्ड) - Rs. 125
5. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (द्वितीय खण्ड) - Rs. 130
6. प्रश्नोत्तर एवं प्रवचन - Rs. 25
7. श्रद्धांजलि (भजन संग्रह) - Rs. 40

अँग्रजी ग्रन्थ :–

1. Life of Swami Asimananda Saraswati and our Memoirs - Rs. 130
2. Sadhana Path (Path of Spiritual Practice) With Goswamiji's Lectures - Rs. 60
3. Shri Shri Sadguru Sanga (in the Company of Sadguru) Part- I - Rs. 200
4. Shri Shri Sadguru Sanga Part- II - Rs. 250

बंगला ग्रन्थ :–

1. साधना पथ - Rs. 20
2. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (प्रथम खण्ड) - Rs. 55
3. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (द्वितीय खण्ड) - Rs. 55
4. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (तृतीय खण्ड) - Rs. 80
5. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (चतुर्थ खण्ड) - Rs. 40
6. श्रीश्री विजयकृष्ण परिजन (पंचम खण्ड) - Rs. 40
7. स्मृति कुसुमांजलि - Rs. 55
8. सद्‌गुरु स्वामी असीमानन्द लीला प्रसंग - Rs. 75

कन्नड ग्रन्थ :–

1. Shri Shri Vijaykrishna Kathamrita - Rs. 100
2. Life of Swami Asimananda Saraswati and our Memoirs - Rs. 130
3. Shri Shri Sadguru Sanga Part- I - Rs. 400
4. Shri Shri Sadguru Sanga Part- II - Rs. 400

गुजराती :—

1. श्रीश्री विजयकृष्ण कथामृत - Rs. 130

ई-बुक :—

श्रीश्री सद्‌गुरु संग (द्वितीय खण्ड— श्रीवृन्दावन लीला) - gosaiji.com

उपलब्ध अन्य ग्रन्थ

हिन्दी :—

1. माँ-मणि (जीवन-दर्शन एवं लीला अनुभूतियाँ) - Rs. 100
2. माँ-मणि (द्वितीय खण्ड) - Rs. 80
3. महापातकी के जीवन में सद्‌गुरु की लीला - Rs. 75
4. श्रीश्री विजयकृष्ण वचनामृत (गुरु-शिष्य संवाद सहित) - Rs. 100

गुजराती :—

सद्‌गुरु सानिध्यां (श्रीश्री सद्‌गुरु संग)

1. प्रथम खण्ड - Rs. 160
2. द्वितीय खण्ड - Rs. 200

—: ग्रन्थ प्राप्ति स्थल :—

1. श्रीश्री विजयकृष्ण भक्त संघ
   स्टेशन रोड, रघुनाथपुर, जिला : पुरुलिया— 723 133
   फोन : 08016113131, 09432051887, 09932607101

2. खण्डेलवाल एण्ड सन्स
   आठखम्बा बाजार, वृन्दावन— 281 121
   फोन : 0565 — 2443-101, 2442-100

3. सुशील कुमार ताम्बी
   'प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक केन्द्र'
   ए—3, आर्यनगर (Near N. K. Public School)
   मुरलीपुरा, जयपुर— 302 023
   फोन : 0141 — 2233-765, 0982954773

4. इंडिका बुक्स

डी– 40/18, गोदलिया, वाराणासी– 221 001

फोन: 0542–2450-818, 09415697008

Website : www.indicabooks.com

Email : indicabooksindia@gmail.com

5. श्री प्रकाश सिंघानिया, कोलकाता

फोन: 033–6519-7523, 2498-7997, 09163360695

6. श्री संजय कुमार सिंघानिया, रायपुर (छत्तीसगढ़)

फोन: 0771–2281-133, 08982665595

7. श्री मनीष व्यास, रायपुर (छत्तीसगढ़)

फोन: 0771–2423-627, 09827972127

8. श्री नवीन कुमार क्याल, नई दिल्ली– 110 019

फोन: 011–4610-9101, 09311177771

9. श्री अभिषेक पोद्दार, बैंगलोर– 560 102

फोन: 09880777130

10. श्री रामगोपाल अग्रवाल, मैंगलोर– 575 003

फोन: 09448131755

11. श्री रामअवतार शर्मा, जयपुर– 302 021

फोन: 0914522108, 09820166899

12. श्री सुशील अग्रवाल, जमशेदपुर– 831 006

फोन: 0657–2291577, 6560539

13. www.gosaiji.com

———–

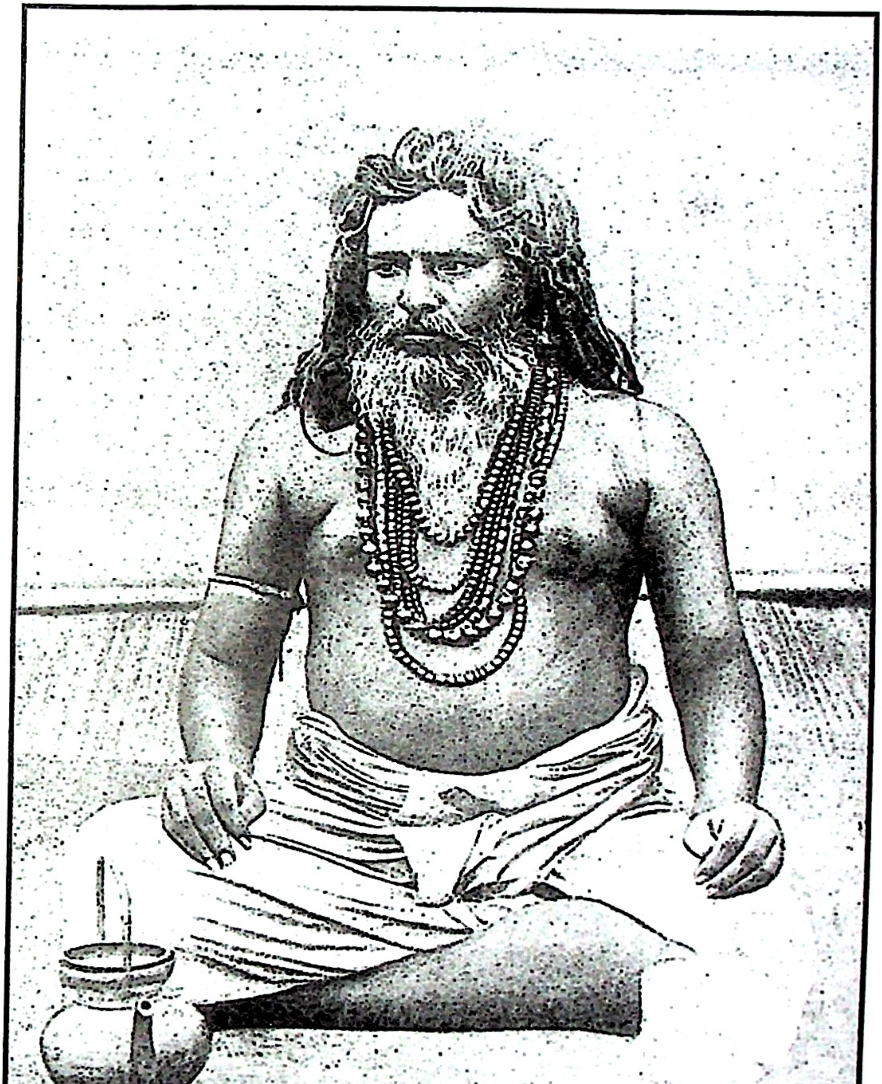

परमात्मतत्त्वज्ञ श्री विजयकृष्ण गोस्वामी

स्वाध्याय योग सम्पत्या परमात्मा प्रकाशते

— उपनिषद्

सद्गुरु श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी

जटिने दडिने नित्यं लम्बोदर शरीरिणे।
कमण्डलु निषंगाय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः।।
(महाभारत– शान्तिपर्व)

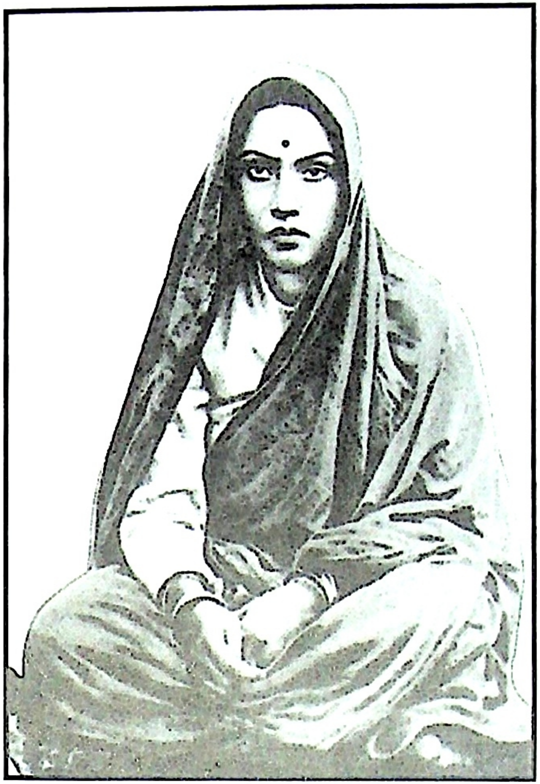

श्रीश्री माता योगमाया देवी

(गोस्वामीजी की पूर्वाश्रम की सहधर्मिणी)

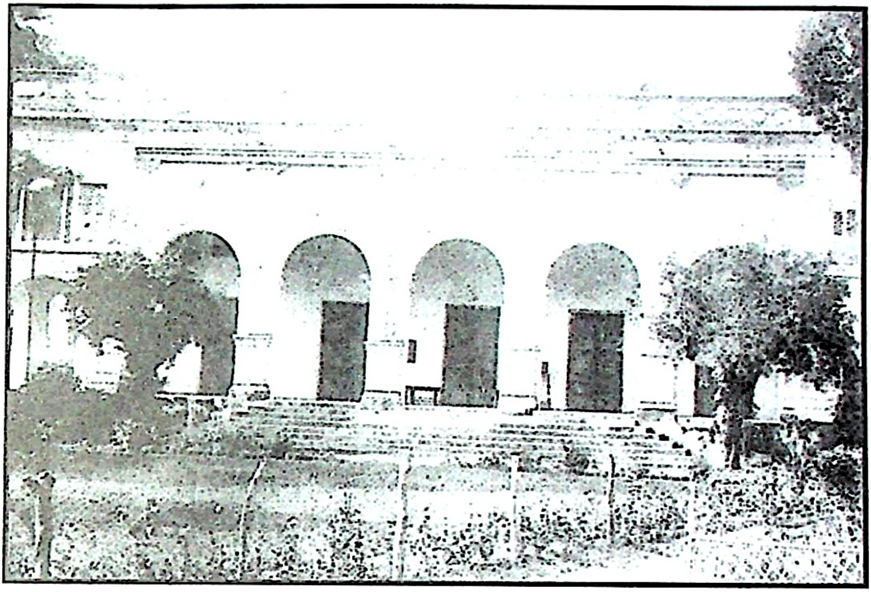

ब्राह्म–समाज, ढाका

गेण्डारिया आश्रम, ढाका

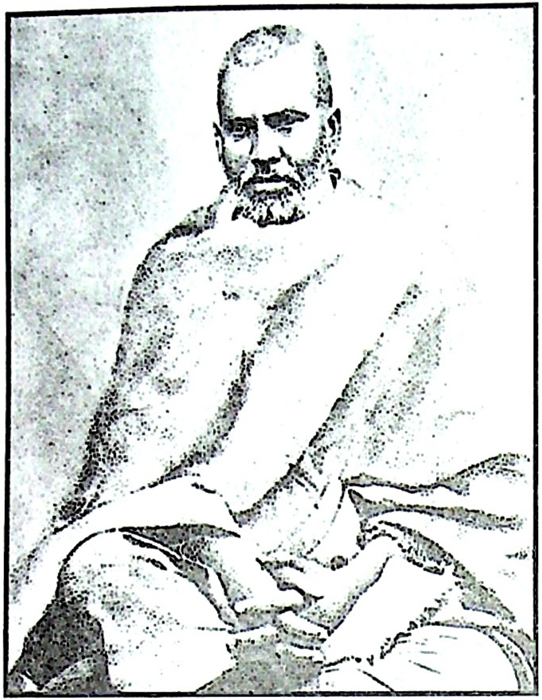

ब्रह्मतत्त्वज्ञ श्री विजयकृष्ण गोस्वामी

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज् ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।

—श्रीमद्भागवत

श्रीश्री लोकनाथ ब्रह्मचारी

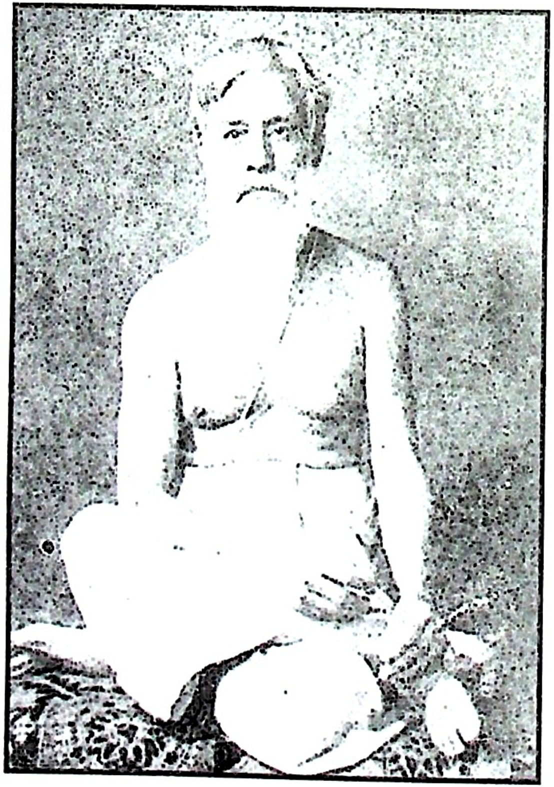

श्री वरदाकान्त बन्द्योपाध्याय
(मँझले भैय्या)

श्री योगजीवन गोस्वामी
(गोस्वामीजी के पुत्र)

श्री श्रीधर घोष

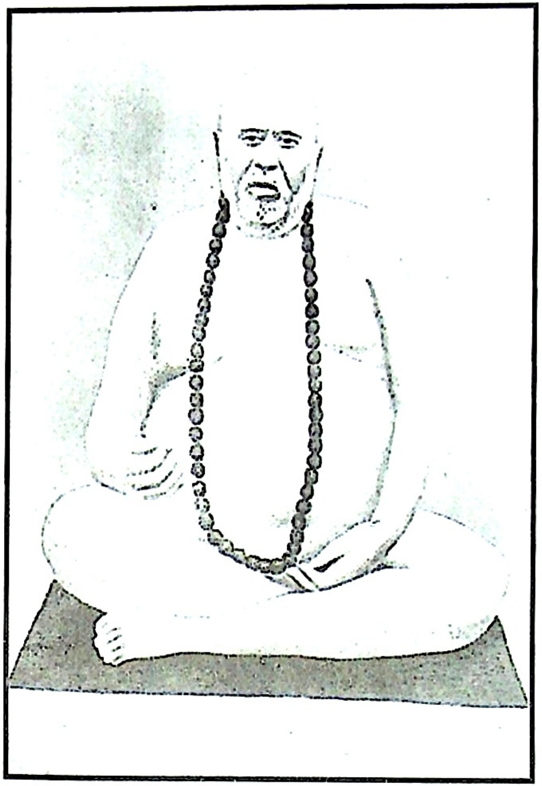

श्रीश्री तैलंग स्वामी

।श्रीश्री गुरुदेवाय नमः।

श्रीश्री सद्गुरु संग

प्रस्तावना

श्री विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने मानससरोवर निवासी परमहंसजी से योग-धर्म में दीक्षा प्राप्त की। प्राचीनकाल के श्रीमन्नारायण द्वारा प्रवर्तित देवर्षि और ब्रह्मर्षिगण के परम आदर की दुर्लभ दीक्षा प्राप्त करके उन्होंने निर्जन पहाड़ों पर कुछ समय तीव्र साधन-भजन करते हुए बिताया। लोकालय में पुनः लौटने का उनका बिल्कुल भी विचार नहीं था; परन्तु उनके गुरुदेव ने अचानक एक दिन प्रकट होकर कुछ विशेष प्रयोजन हेतु उन्हें अपने प्रान्त में लौटने का आदेश दिया। तब गोसाँईजी ने कहा–

'अब भी प्रचार आदि कार्य का भार मेरे ऊपर ही देकर आप मुझे संसार में रखना चाहते हैं? ये सब कार्य तो स्वयं आपके द्वारा होने से और भी अच्छा होगा।' उस पर परमहंसजी ने कहा– 'यह मेरा कार्य नहीं है। यह कार्य तुम्हारे द्वारा ही होगा; तुम आचार्य की सन्तान हो, स्वयं भी आचार्य हो। तुम्हारे उपदेश को लोग जिस प्रकार श्रद्धा के साथ ग्रहण करेंगे, मेरे वाक्य को उस प्रकार से ग्रहण नहीं करेंगे। जगत् को, देश को शिक्षा देने का अधिकार तुम्हारा ही है, मेरा नहीं। तुम पहले जिस प्रकार परिवार के बीच वास कर रहे थे, अभी भी तुम उसी प्रकार रहो। उससे तुम्हारे साधन-भजन में कोई विघ्न नहीं होगा।'

गोस्वामीजी आदरपूर्वक गुरुवाक्य को स्वीकार करके कोलकाता आ गए। उन्हें निर्जन में प्राणायामयुक्त योग-साधना करते, बिना विचार किए गुरुवाक्य का अनुसरण करते, गुप्त रूप से विशिष्ट योग्य व्यक्ति को शक्ति-संचारपूर्वक दीक्षा प्रदान करते एवं विभिन्न सम्प्रदाय के धर्मार्थीगण को सरल भाव से निष्ठा के साथ अपने-अपने धर्म के अनुष्ठान में उत्साह प्रदान करते देखकर ब्राह्मगणों के घर-घर में भयंकर हलचल एवं आलोचना होने लगी। तत्कालीन ब्राह्म-समाज के साम्प्रदायिक मत का प्रचार न करके सार्वभौमिक सत्य का प्रचार करने से वे ब्राह्म-समाज के लोगों के आपत्ति और दुःख का कारण बनेंगे जानकर, गत 22 मार्च, 1886 ई॰ को उन्होंने कोलकाता साधारण ब्राह्म-समाज के प्रचारक पद का परित्याग कर दिया; लेकिन उसी समय ढाका 'पूर्वबंग ब्राह्म-समाज' के सज्जनों ने पुनः उन्हें आचार्य पद पर मनोनीत करके, शीघ्र ही ढाका में आने के लिए आग्रहपूर्वक अनुरोध किया। कुछ दिन पहले गोस्वामीजी ढाका आ गए एवं ब्राह्म-समाज के प्रचारक निवास में रहकर नियमित रूप से उपासनादि का कार्य कर रहे हैं।

आजकल गोस्वामीजी के आगमन से ब्राह्म-समाज में नित्य आनन्द की लहर बहती है; प्रतिदिन अपराह्न के समय प्रचारक निवास लोगों से परिपूर्ण रहता है। विभिन्न श्रेणी के बाउल, वैष्णव और तान्त्रिक साधकों के साथ हिल-मिलकर गोस्वामीजी जिस भाव से वार्त्तालाप करते हैं, वह कुछ समझ में नहीं आता; फिर जो समझ में आता है, वह भी अच्छा नहीं लगता। गोस्वामीजी जैसे नीतिमान, सत्यनिष्ठ, आदर्श साधु-पुरुष को राधाकृष्ण-विषयक, स्त्री-पुरुष के प्रणय सम्बन्धी गीत सुनकर आँसू बहाते और रोते-रोते अधीर होकर समय-समय पर मूर्च्छित होते देखकर मैं एकदम चकित हो जाता हूँ। कुछ दिन पहले ही हमारे घर के आसपास रास्तों में, मैदान में जगह-जगह किसान जैसे निम्न श्रेणी के लोगों के मुँह से इस प्रकार के गीत सुनकर मैं उन लोगों को लाठी दिखाकर खदेड़ चुका हूँ। हाय, हाय! नीति के आदर्श-स्थान ब्राह्म-समाज के आचार्य गोस्वामीजी का इस प्रकार का भाव!! यह सब देख-सुनकर मन में बड़ा कष्ट होता है।

———

अगस्त–सितम्बर, सन् 1886 ई॰

ढाका ब्राह्म-समाज में गोस्वामीजी

आजकल पूर्वी-बंगाल में सर्वत्र ही गोस्वामीजी की चर्चा है। हिन्दू-समाज, ब्राह्म-समाज, देशीय ईसाइयों आदि के बीच, जहाँ-तहाँ केवल गोस्वामीजी का ही गुणगान हो रहा है। बड़े घरानों के लोगों में, ऑफिस के बाबुओं में, स्कूल-कॉलेजों के छात्रों के बीच अब केवल गोस्वामीजी के असाधारण साम्यभाव, अद्‌भुत भावावेश और अपूर्व असाम्प्रदायिक धर्मानुशीलन की ही चर्चा होती है। हिन्दू-समाज के मुखिया प्रसिद्ध ब्राह्मणगण, पाठशाला के स्वधर्मपरायण धर्म-निष्ठ पण्डितगण– जो कुछ दिन पहले 'ब्राह्म' शब्द सुन लेने के साथ ही अवज्ञा के साथ 'राम-राम, राम-राम' उच्चारण करते थे– अब देख रहा हूँ, उनमें भी अधिकांश लोग घर का पैसा खर्च करके विक्रमपुर, पारज्वर आदि दूर-दूर स्थानों से प्रत्येक रविवार को गोस्वामीजी की उपासना में सम्मिलित होने के लिए ब्राह्म-मन्दिर में आ रहे हैं। उपासना के समय अनेक मुसलमान और ईसाई लोग भी शान्त भाव से बैठे दिखाई पड़ते हैं। ब्रह्मसमाजियों की तो प्रसन्नता की सीमा ही नहीं है। वे कहते हैं, 'जिनका कहना है कि ब्राह्म-समाज में कुछ नहीं है; वे लोग एक बार आकर गोस्वामीजी को देखें न! इस प्रकार का एक भी व्यक्ति हिन्दू-समाज से या अन्य किसी समाज से बाहर निकालें तो! ब्राह्मधर्म क्या वस्तु है, ब्राह्म-समाज में कैसी विलक्षण वस्तु तैयार होती है, एक बार आकर गोसाँईजी को देखें और समझ लें।' हिन्दू लोग कहते हैं–

'गोसाँईजी अब ब्राह्म नहीं रहे। दुर्लभ वस्तु पाने के बाद सोच-समझकर उन्होंने ब्राह्मधर्म त्याग दिया है; सिर मुड़ाकर गेरुआ धारण करके वे हिन्दू हो गए हैं। वे अब साकार की उपासना करते हैं; राधा-कृष्ण, काली-दुर्गा नाम सुनते ही रोने लगते है; हरि-संकीर्तन, गौर-कीर्तन में वे भावस्थ हो जाते हैं। यह क्या कोई ब्रह्मसमाजी का लक्षण है? ब्रह्मसमाजी क्या हरि-हरि कहकर नाचते हैं?– या उन लोगों में कभी इस प्रकार महाभाव का प्रकाश होता है?' जो भी हो, देख रहा हूँ, सभी सम्प्रदाय के धर्मार्थियों का गोसाँईजी के प्रति आकर्षण है और उनके सत्संग के लिए वे लालायित रहते हैं। ब्राह्म-समाज में प्रतिदिन ही भीड़ रहती है। रविवार को तो सभागृह में खड़े रहने के लिए भी स्थान नहीं मिलता। अनेक लोग बैठने का स्थान पाने के लिए संध्या होने के पहले ही पहुँच जाते हैं। भीतर-बाहर का स्थान लोगों से परिपूर्ण रहता है। वेदी का कार्य पूर्ण होने तक कोई हिलता-डुलता भी नहीं। असाम्प्रदायिक भाव से गोस्वामीजी का उद्‌बोधन, प्रार्थना, उपासना और उपदेश सभी लोगों को विमोहित कर डालता है। वेदी पर बैठकर गोसाँईजी के कार्य आरम्भ करने के साथ-साथ सब लोगों के भीतर एक विचित्र भाव की तरंग उठा करती है, चारों ओर रोने का कोलाहल होने लगता है। थोड़े समय के भीतर ही यह अद्‌भुत घटना आरम्भ हो जाती है, अनेक लोग अचेत होकर गिर पड़ते हैं। भूमि पर लेटकर कोई-कोई व्याकुल होकर रोया करते हैं। धन्य है ब्राह्म-समाज!

गोस्वामीजी के ब्राह्म-समाज-विरोधी कार्य का प्रतिवाद

ब्राह्म-समाज के अन्तर्गत छात्र-समाज के कुछ समवयस्क लड़कों को साथ लेकर ब्राह्म-समाज के अधिकारी श्री रजनीकान्त घोष, श्री नवकान्त चट्टोपाध्याय आदि के पास जाकर गोस्वामीजी के सम्बन्ध में मैंने बात उठाई; गोस्वामीजी के आसन-गृह में चारों ओर दीवालों पर राधा-कृष्ण, गौर-निताई, हर-पार्वती, नन्द-यशोदा इत्यादि के चित्र क्यों लगे हुए हैं एवं वे बाउल, वैष्णव आदि कुसंस्कारी व्यक्तियों को धर्म के नाम पर शारीरिक विकारयुक्त भाव के उत्तेजक प्रेम-संगीत आदि गाने के लिए क्यों प्रश्रय एवं उत्साह देते हैं– इस विषय में पूछा। इसे लेकर कई दिनों तक आलोचना होती रही। फिर उन लोगों ने कहा– 'प्रचारक निवास में अभी गोस्वामीजी ही रहते हैं। अतः अपने घर में कौन क्या करता है, क्या नहीं करता, हमें वह देखने की आवश्यकता नहीं है। घर में एक पंचांग रखते हैं, तो उसमें भी राधा-कृष्ण, काली-दुर्गा का चित्र रहता है; इसमें फिर दोष क्या है? बाउल, वैष्णव लोग जो भिक्षा करने आते हैं, कितना कुछ गान करते हैं; तो क्या उन लोगों का मुख बन्द करने का किसी को अधिकार है? यह सब भी उस प्रकार ही समझो। अब तक गोस्वामीजी जिस भाव से चल रहे हैं, उसे ब्राह्म-समाज सह सकता है।

जब बात अधिक बढ़ेगी तब प्रतिवाद किया जाएगा।'

अधिकारियों का यह निर्णय सुनकर मन में बड़ा दुःख हुआ। उन लोगों में से किसी-किसी के प्रति कटाक्ष करते हुए कहा, अश्लील, टप्पा-ठुमरी, पाँचाली (ग्राम्य संगीत), कवि-गान संग्रह करके प्रेम-संगीत के नाम पर देश-विदेश में, घर-घर में प्रचार करने को जो ब्राह्म दोष नहीं मानते; जिसका मूल ही असत्य है, इस प्रकार की कुछ कल्पित अथवा मिथ्या घटनाओं के व्यर्थ चित्रण को उपाख्यान और उपन्यास आदि के रूप में प्रचार करके, जो लोग मनुष्य को असत्य से खींचकर सत्य के आलोक में ले जाना चाहते हैं, वे फिर गोस्वामीजी के कार्यों का प्रतिवाद करके जाएँगे कहाँ? मेरी बात सुनकर कई लोग थोड़ा उत्तेजित हो गए। मेरे घनिष्ठ आत्मीय एक ग्रामवासी श्री नवकान्त चट्टोपाध्याय जी ने कहा– 'जाति-भेद तुम्हें अपराध लगता है, तो उसके चिह्न जनेऊ को क्यों धारण किए हो? हिन्दू-समाज के साथ सम्बन्ध रखकर मूर्ति-पूजा को तुम भी क्या प्रोत्साहन नहीं दे रहे हो?'

ब्राह्मधर्म में दीक्षित होने के लिए व्याकुलता

उन्होंने मुझसे यथार्थ बात ही कही है, समझकर लज्जित होते हुए दुःखी मन से अपने निवास-स्थान पर लौट आया; उसी बात को लेकर मेरे भीतर सब समय हलचल होने लगी। कुछ समय से अपने भीतर की दुर्बलता और कपटपूर्ण आचरण के लिए मैं स्वयं बड़ा कष्ट भोग रहा था। अब नवकान्त बाबू की उस बात से मेरे भीतर की आग और भी जल उठी है। मैंने अपने मित्रों के बीच प्रचार कर दिया– दिसम्बर महीने में वार्षिक उत्सव के समय मैं जनेऊ त्यागकर सार्वजनिक रूप से ब्राह्मधर्म में दीक्षा ग्रहण करूँगा। मेरी यह बात सर्वत्र फैल गई। ब्रह्मसमाजी मित्र मुझे खूब उत्साह देने लगे; लेकिन चारों ओर आत्मीयजनों के बीच बड़ी हलचल मच गई। मेरे विरुद्ध जितना आन्दोलन होने लगा, आत्मीयजन मुझे अत्याचार-उत्पीड़न का जितना ही डर दिखाने लगे, मेरा उत्साह और साहस उतना ही बढ़ने लगा। गत चार-पाँच महीनों से प्रतिदिन दोनों समय की उपासना में भीतर की ज्वाला के कारण रो-रोकर प्रार्थना करता आ रहा हूँ– 'प्रभु, जनेऊ पहने रहकर इस असत्य के आवरण में कब तक अपने को ढँककर रखूँगा? कपटपूर्ण आचरण से मेरा उद्धार करो। तुमको प्राप्त करने का वास्तविक पथ तुम ही मुझको दिखला दो। दया करके मुझको निष्कपट भाव से सत्यपथ पर चलने की शक्ति दो।'

अद्भुत स्वप्न: गोस्वामीजी का आह्वान

4 सितम्बर, शनिवार। अन्यान्य दिनों की भाँति उपासना के अन्त में आज भी इसी प्रकार प्रार्थना करके शयन किया। रात्रि साढ़े 3 बजे एक अद्भुत स्वप्न देखकर अचानक जाग उठा। स्वप्न में देखा, मैं ब्राह्म-मन्दिर के द्वार पर पहुँचा। बगीचे में हरसिंगार के पेड़ के नीचे खड़े गोस्वामीजी ने स्नेहपूर्वक मुस्कुराहट के साथ हाथ हिलाकर मुझको बुलाते हुए कहा–

'अरे, शीघ्र इधर चले आओ। जो वस्तु तुम चाहते हो, मैं तुम्हें वही दूँगा।'

मैं तब गोस्वामीजी की कृपापूर्ण दृष्टि और प्रेमपूर्वक आह्वान देखकर आनन्द से विह्वल हो गया और भगवत् प्राप्ति की आकांक्षा से रोते-रोते जाकर उनके चरणों में गिर पड़ा; फिर तुरन्त नींद टूट गई। जागने के बाद भी गोस्वामीजी की उस सौम्य, शान्त, शीतल दयामय पवित्र मूर्ति को कुछ क्षणों तक जैसे आँखों के सामने देखने लगा। कानों में भी उनके वह शब्द मानो बारम्बार गूंजने लगे। स्वप्न मन के संस्कार का विकृत परिणाम या कल्पना का ही एक मिथ्या फल है– बहुत पहले की मेरी इस निश्चित धारणा का स्मरण ही नहीं रहा। जागृत अवस्था में भी रोने के वेग को मैं किसी प्रकार भी रोक न सका। बार-बार मन में केवल ऐसा लगा, मानो गोस्वामीजी बगीचे में मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं कुछ समय तक बिछौने में पड़े-पड़े रोता रहा। फिर मैंने प्रार्थना की– 'प्रभु, मैं तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। तुम्हारी प्राप्ति के यथार्थ पथ पर दया करके तुम्हीं मुझको ले चलो।' प्रार्थना के साथ-साथ मेरी अधीरता और भी बढ़ गई। मैं तुरन्त दौड़कर, रात्रि के अन्तिम प्रहर में ब्राह्म-समाज का दरवाजा बन्द रहने पर भी दीवाल फाँदकर बगीचे में जा पहुँचा और निर्दिष्ट स्थान को लक्ष्य करके चलने लगा।

कुछ दूर आगे जाकर देखा, ब्राह्म-मन्दिर के पूर्व दिशा की ओर दीवाल के किनारे उसी हरसिंगार वृक्ष के नीचे– जैसा कि स्वप्न में देखा, ठीक उसी प्रकार– मुण्डित मस्तक, खड़ाऊ पहने, गैरिक वस्त्र पहने पवित्रमूर्ति गोस्वामीजी हाथ में दण्ड लिए मुस्कुराते हुए मेरी ओर देख रहे हैं। जैसे ही मैं उनके पास पहुँचा, उन्होंने मुझे हरसिंगार का फूल दिखलाकर कहा–

"देखो, कितना सुन्दर है! दूब के ऊपर मानो लाई खिली हुई है।"

इतने समय से मैंने कभी भी सिर झुकाकर या पैर छूकर गोस्वामीजी को प्रणाम नहीं किया; उसे घोर कुसंस्कार और असभ्यता का कार्य मानता आया हूँ; केवल हाथ उठाकर अथवा सिर हिलाकर ही उनका सम्मान किया करता था; लेकिन आज पता नहीं क्यों उस विषय का ध्यान ही नहीं रहा! व्याकुल होकर

रोते-रोते उनके चरणों में गिर पड़ा एवं कहा, आप मुझ पर दया कीजिए।

गोस्वामीजी ने कहा– **"तुम्हें और भी पहले आना चाहिए था, अब समय निकल गया है। अब कुछ दिन प्रतीक्षा करो।"**

मैं– मेरी अभी दीक्षा लेने की इच्छा होती है।

गोस्वामीजी– **वह तो बड़े आनन्द की बात है। यही तो समय है, इसी समय तो यह सब करना चाहिए। अभी से नियमानुसार इन सब साधन-पथ पर चलोगे, तो अनन्तकाल इसका एक सुफल भोग करोगे। 'बाद में करूँगा'– इस भरोसे में रहना ठीक नहीं है। बाद में कितनी बाधाएँ आ सकती है। अभी मैं शीघ्र ही पश्चिम की ओर जा रहा हूँ। पश्चिम से घूमकर आता हूँ। तुम लोगों के भी तो स्कूल की छुट्टी है– घर चले जाना। घर से आ जाओ, फिर दीक्षा होगी। इस समय दीक्षा होने पर कम-से-कम 15 दिन हमारे पास तुम्हारा रहना आवश्यक होगा। अभी उसमें असुविधा है।**

मैं– घर जाकर किस नियम से चलूँगा?

गोसाँईजी– **नियम और क्या? जैसे चल रहे हो, वैसे ही चलना। अच्छे पवित्र भाव से रहना। मन में किसी प्रकार की खराब चिन्ता मत आने देना– उससे बड़ी हानि होती है। मन को सदैव ही पवित्र और प्रसन्न रखना। चित्त प्रफुल्ल न रहने से धर्म-कर्म कुछ भी नहीं होता। बहुत व्याकुल होकर भगवान् के चरणों में प्रार्थना करनी चाहिए और मन में सर्वदा प्रार्थना का भाव रखना चाहिए। लिखाई-पढ़ाई करते समय, बातचीत करते समय, रास्ते में चलते-फिरते समय सर्वदा पाँच-सात मिनट के अन्तर-अन्तर में थोड़ा-थोड़ा अवसर निकालकर दो-एक मिनट के लिए भगवान् का स्मरण करना चाहिए। वे सदा साथ-साथ रहते हैं, मुझको कितना प्रेम करते हैं, प्रतिक्षण मुझ पर कितनी प्रकार से दया करते हैं– यह सब विचार करके बारम्बार उन्हें प्रणाम करना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक कार्य में उनका स्मरण करके चलने से, थोड़े समय में ही उनकी कृपा प्राप्त की जा सकती है। इस समय पढ़ाई-लिखाई पर विशेष रूप से ध्यान रखना कर्त्तव्य है; पढ़ाई-लिखाई की अवेहलना करने से परिणाम में सभी ओर बड़ी हानि होती है। अभी इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर चलने का प्रयास करो, उपकार होगा।**

अक्टूबर, सन् 1886 ई०

दीक्षा प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा

कुछ दिन बाद ही दुर्गा-पूजा के उपलक्ष्य में हमारे स्कूल में छुट्टी लग गई। 1 अक्टूबर, शुक्रवार को दोपहर में भोजन के बाद प्रसिद्ध 'मीराबाग' के माँझी लोगों की नाव किराये पर लेकर मँझले भैय्या, छोटे भैय्या आदि के साथ घर के लिए निकल पड़ा। तालतला नहर से कुछ दूर जाकर माँझी लोग रास्ता भूल गए थे। रात्रि में लगभग साढ़े 9 बजे हम लोग घर पहुँचे। इस बार की वर्षा से पद्मा नदी का पानी बहुत बढ़ गया है। इस प्रान्त के प्रायः सभी घर पानी में डूबने को हैं। हमारे घर में भी सात-आठ इंच पानी चढ़ गया है। एक घर से दूसरे घर में जाने के लिए पहले से ही आँगन के ऊपर बाँस के पुल बना लिए गए हैं। मोहल्ले में प्रायः सभी के घर में छोटी नौका रहने से एक-दूसरे से मिलने-जुलने में विशेष कोई असुविधा नहीं होती। प्रतिदिन अपराह्न में समवयस्क 12-14 लड़कों को लेकर नवकान्त बाबू के घर जाता हूँ। वहाँ संकीर्तन, उपासनादि करके प्रायः रात 9 बजे घर आता हूँ। मेरे प्रोत्साहन से दो मित्रों ने ब्राह्मधर्म का अवलम्बन कर लिया है; परन्तु जनेऊ न रहने पर भी उनको लेकर हमारे समाज में कोई हलचल नहीं है। मोहल्ले के वृद्धजनों ने उन लोगों को जनेऊ धारण करने के लिए बहुत समझाया, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। अब वे लोग उस प्रयास से निराश होकर कहते हैं– 'अरे हम लोगों के दुर्नीति के चिह्नस्वरूप गले की डोरी– उसे तो त्याग दिए हो, तुम्हारी ब्राह्म सभ्यता के सुनीति के चिह्न कमीज को पहने रहना क्यों छोड़ दिए? उसे पहने रहना ही अच्छा है।' मैं अभी तक जनेऊ का त्याग नहीं कर पाया हूँ, इसलिए ब्राह्म मित्र बड़े दुःखी हैं। वे सर्वदा मुझसे उस सम्बन्ध में पूछा करते हैं और कभी-कभी मुझे डरपोक भी कहते हैं। इस बार छुट्टी के बाद ढाका जाकर सार्वजनिक रूप से ब्राह्म-समाज में प्रवेश करूँगा, सभी ऐसा अनुमान लगा रहे हैं। माँ इस डर से बड़ी घबराई हुई हैं। तुलसी के पेड़ के सामने निर्जन में चुपचाप बैठकर माँ रो-रोकर तुलसी को मन का दुःख सुनाती हैं। उनका विश्वास है, तुलसी की कृपा हो जाने से मैं फिर ब्राह्म नहीं होऊँगा। छुट्टी समाप्त होने पर, ढाका जाते समय माँ ने मुझसे कहा, 'धर्म-धर्म करके जनेऊ को फेंक मत देना। ठाकुर तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेंगे। गले में जनेऊ रखकर ही तू धर्म-कर्म कर– यही प्रार्थना करते हुए प्रतिदिन मैं शिवजी के ऊपर बेल पत्ता चढ़ाया करती हूँ।' यह कहकर उन्होंने अपने हाथों की तीन अंगुलियों को अपनी जिह्वा से स्पर्श करके उसमें पैर की धूल लगाकर मेरे माथे में रगड़ दी। माँ को प्रणाम करके मैं ढाका के लिए निकल पड़ा।

ढाका पहुँचने पर सुना कि गोस्वामीजी अभी तक यहाँ पर नहीं आए हैं; परन्तु शीघ्र ही आ जाएँगे। मैं रात-दिन उनके आगमन की आकांक्षा से अधीर होकर समय व्यतीत करने लगा। जनेऊ का परित्याग और ब्राह्मधर्म में दीक्षा ग्रहण करने की ओर मेरा झुकाव कम हो गया है। गोस्वामीजी मुझे कौन-सा साधन देंगे, मैं सर्वदा केवल वही सोचने लगा।

नवम्बर, सन् 1886 ई॰

नवम्बर महीने के मध्य में गोस्वामीजी ढाका आ गए। छात्र-समाज में बड़ी धूमधाम मच गई; ब्रह्मसमाजियों के आनन्द की तो सीमा नहीं है! सभी के मुख पर प्रसन्नता झलक रही है। गोस्वामीजी के आगमन से ब्राह्म-मन्दिर में पुनः लोगों की भीड़ आ रही है। पुनः ब्राह्म-समाज में प्रतिदिन उत्सव की लहर बहने लगी। प्रतिदिन संध्या-कीर्तन में भाव के विचित्र विकास और आवेश से सभी का चित्त गोस्वामीजी के प्रति आकृष्ट होने लगा। सुना है, इस बार गोस्वामीजी काकिनिया आदि स्थानों में जाकर उपासना, प्रवचन और संकीर्तन-उत्सव द्वारा जीवन्त धर्म की एक अपूर्व लहर प्रवाहित करके आए हैं।

दीक्षा प्राप्ति में छोटे भैय्या बाधक

नवम्बर महीने का अन्तिम सप्ताह। आगामी शनिवार को छात्र-समाज में प्रवचन देने हेतु गोस्वामीजी से अनुरोध करने के लिए कुछ मित्रों को लेकर प्रचारक निवास में गया। देखा कि प्रवचन देने का उत्साह गोस्वामीजी में अब पहले जैसा नहीं रहा। जो भी हो, उन्होंने शरीर स्वस्थ रहने पर चेष्टा करने की बात कही। मेरे मित्र लोग यह बात सुनकर तुरन्त चले गए; परन्तु मैं उनके ही पास बैठा रहा। उस समय वहाँ पर केवल श्री श्रीधर घोष और अनाथबन्धु मौलिक जी बैठे थे। उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम्हें क्या एकान्त में कुछ पूछना है?' उस बात पर गोस्वामीजी ने मेरी ओर देखकर कहा– **"क्या पूछना है, कहो न। इन लोगों के सामने कहने पर कोई डर नहीं है, निर्भय होकर कहो।"**

मैंने कहा– स्कूल बन्द होने के पहले मैंने एक बार कहा था।

गोस्वामीजी– **हाँ, वही बात? दीक्षा लेना चाहते हो? अच्छा, दीक्षा की नियम-प्रणाली सब जानते हो तो?**

मैं– जितना प्रकाशित है, केवल उतना ही जानता हूँ।

गोस्वामीजी– **यह साधन लेने पर जो जिस अवस्था के लोग हैं, उन्हें उस प्रकार के सभी कार्य करने पड़ते हैं। गृहस्थ लोगों को गृहस्थी के कार्यों की अवहेलना करने से अन्याय होता है। उसी प्रकार छात्रों को भी नियमानुसार मन लगाकर पढ़ाई-लिखाई करनी होगी, नहीं तो अनिष्ट होता है। जाकर इस विषय में अच्छे-से सोचो; फिर कल आकर मुझसे कहना। और भी जो कुछ कहने का है, कल कहूँगा।**

गोस्वामीजी की बात सुनकर मैं प्रचारक निवास से बाहर आ गया। बूढ़ी गंगा के किनारे जाकर, एक निर्जन स्थान में बैठकर सोचने लगा– 'ये क्या हुआ? साधन मिलने से पहले ही गोसाँईजी सीधे मेरे सिर पर डंडा मार दिए! दो महीने से प्रतिदिन मन-ही-मन संकल्प करता आ रहा हूँ– एक बार योग-साधन मिलने पर पढ़ाई-लिखाई के झंझट से मुक्ति मिल जाएगी; किसी निर्जन पहाड़ पर जाकर, अपनी इच्छा से ऋषि-मुनियों की भाँति रात-दिन उपासना करते हुए यह जीवन बिता दूँगा; लेकिन गोसाँईजी ने आज यह क्या कर दिया? मेरे इतने दिनों के आन्तरिक संकल्प को बिल्कुल चूर्ण कर दिया! रात्रि में लगभग साढ़े 9 बजे तक यही सब सोचते-सोचते अत्यन्त उद्विग्न और बेचैन हो उठा। फिर अन्य कोई उपाय न देखकर, हृदय से गोसाँईजी के चरणों को लक्ष्य करके प्रणाम करते हुए मैंने प्रार्थना की– 'गोसाँईजी, मुझ पर दया करो। मैं प्रतिज्ञाबद्ध नहीं हो पाऊँगा। 'नियमित' 'मनोयोग'– आपकी इन सब बातों पर मैं राजी नहीं हो पाऊँगा। पढ़ाई-लिखाई करूँगा, केवल यही कह सकता हूँ। मुझे इस आशा से तुम निराश न करना। मन के कष्ट को समझकर दया करो– यही तुम्हारे चरणों में प्रार्थना है।' गोसाँईजी मन की बात समझ लेते हैं– मैं इस पर बिल्कुल ही विश्वास नहीं करता; किन्तु भीतर के आवेग से ऐसी प्रार्थना अपने-आप निकल पड़ी, उसे रोक न सका।

दूसरे दिन समय देखकर गोस्वामीजी के पास पहुँच गया। प्रणाम करके बैठते ही उन्होंने मुझसे कहा– **"क्यों? क्या हुआ?"**

मैंने कहा– जी हाँ। पढ़ाई-लिखाई करूँगा।

गोस्वामीजी ने थोड़ा हँसकर कहा– **"अच्छा! और भी एक बात मुझे कहनी है। अभी मुझे और कोई आपत्ति नहीं; केवल तुम्हारे अभिभावक की अनुमति होने से ही हो जाएगा। अभिभावक के मत के बिना साधन देने का नियम नहीं है। सौ वर्ष के वृद्ध के भी यदि कोई अभिभावक हैं, तो उनकी अनुमति लेनी पड़ती है। तुमसे और कुछ कहने का नहीं! अभिभावक की अनुमति मिलने से हो जाएगा।"**

यह बात सुनकर मानो मेरे सिर पर बिजली गिर पड़ी। सोचा– 'गोसाँईजी

ने यह तो मुझे और भी बड़े संकट में डाल दिया।' उनसे कहा– अभिभावक की अनुमति मैं किस प्रकार लाऊँ? मेरे तीनों भाई ही तो मेरे अभिभावक हैं।

गोसाँईजी ने कहा– **"ठीक है; यहाँ तुम्हारे जो भाई हैं, उनका एक पत्र मिलने से निश्चिन्त होकर सन्तोषपूर्वक मैं तुम्हें साधन दे सकूँगा। कई लोग सोचते हैं, छोटे-छोटे लड़कों को यह साधन देकर मैं उनको निकम्मा कर दे रहा हूँ। बिना अनुमति के साधन देने से उनका अभिशाप मुझको लेना पड़ता है।"**

गोसाँईजी के एक वकील शिष्य श्री हरिचरण चक्रवर्ती ने उसी समय पूछा– 'क्या इसे साधन मिलेगा?'

गोसाँईजी ने कहा– **"कल देखा व्याकुलता अच्छी है, इस बार अवस्था ठीक हो गई है।"**

फिर मुझसे कहा– **"तुम घबराओ नहीं; साधन तो तुम्हें मिलेगा ही। कुछ दिन धैर्य रखो।"**

भाइयों की अनुमति मुझे कभी नहीं मिलेगी, यह निश्चित रूप से जानता हूँ; परन्तु गोसाँईजी की ये दोनों बातें सुनकर मुझे कुछ आशा हुई। संध्या के समय अपने निवास-स्थान पर आकर छोटे भैय्या श्री शारदाकान्त बन्दोपाध्याय जी को अपना अभिप्राय बतलाकर, गोसाँईजी से दीक्षा लेने के लिए अनुमति-पत्र माँगा। गोसाँईजी से साधन लेने की बात सुनकर वे चिढ़ गए एवं कभी अनुमति नहीं देंगे, उन्होंने स्पष्ट कह दिया। छोटे भैय्या की बात सुनकर और उनकी गतिविधि देखकर मेरा सिर चकराने लगा। मैं रजाई ओढ़कर सो गया। रात्रि 10 बजे के लगभग मेरे अन्तःकरण की वेदना इतनी असह्य हो गई कि मैं फिर अपने को रोक नहीं पाया, फूट-फूटकर रो पड़ा। तब छात्रावास के लड़के, 'क्या हुआ? क्या हुआ?' कहते हुए, पढ़ना-लिखना छोड़कर मेरे पास आ गए और मुझे घेरकर खड़े हो गए। छोटे भैय्या भी आ गए एवं मुझे बुलाकर वहाँ से बाहर सड़क पर ले गए। उन्होंने बहुत विरक्त होकर कहा– 'मेरे सामने प्रतिज्ञा करके कहो, हम लोगों की राय के विरुद्ध कभी भी कोई कार्य नहीं करोगे; जब तक पढ़ाई-लिखाई करने को कहेंगे, पूरे मनोयोग के साथ पढ़ाई-लिखाई करोगे; हमारे परिवार का जिससे अहित हो ऐसा कोई भी कार्य कभी नहीं करोगे।' मैंने कहा– ठीक है; अनुमति-पत्र दीजिए, जो कहोगे वही करूँगा। भैय्या ने थोड़ा रुककर कहा– 'अच्छा, कल और भी बातों की सूची बना दूँगा, उसके अनुसार चलने की प्रतिज्ञा करने पर अनुमति दूँगा।' जिस प्रकार भी हो, अनुमति लेना होगा सोचकर मैंने छोटे भैय्या की बात मान ली।

28 नवम्बर, रविवार। प्रातः छोटे भैय्या के पास जाकर अनुमति-पत्र की बात

उठाते ही, उन्होंने बहुत क्रुद्ध होकर मुझे धमकाते हुए कहा– 'वह सब नहीं होगा। योग करने से भयंकर रोग हो जाता है। दिमाग तो बिल्कुल खराब हो जाता है। अच्छे-अच्छे लोग उसके चक्कर में पड़कर सदा के लिए बिल्कुल मन्दबुद्धि वाले निकम्मे ही हो गए हैं। मैं तो अनुमति दूँगा नहीं, भैय्या लोग को भी कोई अनुमति न देने के लिए चिट्ठी लिखूँगा।' यह सब कहकर उन्होंने मुझे खूब गालियाँ दी। भैय्या से गाली खाकर क्रोध और क्लेश से मेरी छाती जलने लगी। अब क्या करूँ? कोई उपाय न देखकर गोसाँईजी के पास गया। उनको सारा विवरण स्पष्ट रूप से कह दिया।

गोसाँईजी ने कहा– **"वे स्वयं अनुमति न दें। भाइयों को थोड़ा लिख देने में आपत्ति क्या है?"**

सरल विश्वास में अद्‌भुत शक्ति

इसी समय प्रचारक निवास में कई लोग आ गए। फिर कोई बात हुई नहीं। आज रविवार है, दिनभर प्रचारक निवास में गोस्वामीजी के पास भीड़ रहेगी। अपराह्न में स्कूल-कॉलेज के छात्र, ऑफिस के बाबू एवं बाउल, वैष्णव, मुसलमान और ईसाई आदि लोगों के समागम से ब्राह्म-समाज का प्रांगण परिपूर्ण हो गया। गोस्वामीजी के आसन-गृह में कृष्णकान्त पाठक का गीत 'जार जार जेरूप भाव उदय होय मोने, समये सेरूपेर देखा मिले कोई?' (जिसके-जिसके मन में जिस रूप का भाव उदय होता है, उस रूप का दर्शन कहाँ मिलता है?) अच्छा जम गया। बाहर जो लोग थे, वे भी भाव में विह्वल होकर गिरने लगे। क्रमशः संध्या हो गई। नियमित समय में वेदी का कार्य नहीं हो पाएगा सोचकर गान रोक दिया गया। गोस्वामीजी आँख-मुँह पोंछकर, सभागृह में जाकर उपासना करने हेतु बैठ गए। कमरे के बाहर जो जिस अवस्था में थे, आरम्भ से लेकर वेदी का कार्य समाप्त होने तक उसी प्रकार बैठे रहे। गोस्वामीजी की उपासना में एक बार कुछ क्षण के लिए भी कोई सम्मिलित हो जाए, तो फिर अन्त तक वह उठने का नाम नहीं लेता। आज के 'उद्‌बोधन' में उपदेश आदि ऐसा लगा मानो मेरे लिए ही कह रहे हैं। सरल विश्वास से यथार्थ व्याकुलता के साथ कोई भगवान् से प्रार्थना करता है, तो भगवान् निश्चय ही उसकी प्रार्थना पूर्ण करते हैं। इसका दृष्टान्त देते हुए उन्होंने एक घटना का उल्लेख किया। एक बार यूरोप के किसी देश में दीर्घकालव्यापी भयंकर अकाल पड़ गया। वर्षा के लिए सर्वत्र प्रार्थना होने लगी। उस समय एक शहर में, सभी एकत्रित होकर वर्षा के लिए प्रार्थना करेंगे– इस अभिप्राय से विज्ञापन दिया गया। निर्दिष्ट दिन संध्या होने के पहले ही सब

नगरवासी गिरजाघर में उपस्थित होने लगे। उस समय एक बालक हाथ में छाता लेकर उपासना स्थल पर आया। बालक के हाथ में छाता देखकर सब उससे कहने लगे– 'क्यों रे, तुम तो बड़े मूर्ख लगते हो! इस समय छाता क्यों लाए हो?' बालक ने कहा– 'आज वर्षा के लिए प्रार्थना होगी। भगवान् वर्षा करेंगे, तब क्या करूँगा? छाता नहीं रहने से तो भीगते-भीगते घर जाना होगा।' सभी बालक की बात सुनकर चकित हो गए। प्रार्थना के बाद वास्तव में ही वर्षा आरम्भ हो गई। तब बालक ने सबसे कहा– 'भगवान् के ऊपर तुम लोगों को यदि विश्वास रहता, तो छाता छोड़कर नहीं आते। अब देखो, तुम सब लोग रह गए, मैं जा रहा हूँ।' इस घटना के ऊपर ही गोस्वामीजी ने बहुत समय तक 'सरल विश्वास से व्याकुलता के साथ प्रार्थना' विषय पर उपदेश दिया; उसके बाद उपासना के अन्त में उन्होंने हाथ जोड़कर सभी को प्रणाम करते-करते कहा–

"तुम लोगों के पैर पड़कर कहता हूँ, एक बार माँ को पुकारो! बच्चा जैसे माँ को पुकारता है, एक बार उसी भाव से व्याकुल होकर पुकारो। माँ की कितनी दया है! मेरे जैसे पापी पर भी माँ जब कृपा करती हैं, तब फिर कोई वंचित नहीं होगा। विश्वास के साथ माँ को पुकारने से निश्चय ही माँ को पाओगे। मैं सुनी हुई बात नहीं कह रहा हूँ, कल्पना की बात नहीं कह रहा हूँ, यथार्थ बात कह रहा हूँ, अपने जीवन की देखी हुई बात कह रहा हूँ, स्वयं प्रत्यक्ष करके कह रहा हूँ। सरल भाव से माँ को पुकारने से माँ को पा सकते हैं। एक बार माँ को पुकारकर देखो; केवल एक बार उस भाव से माँ को पुकारकर देखो, अवश्य दया करेंगी। मेरे मस्तक पर चरण-धूलि डालकर सभी आशीर्वाद दीजिए। जय माँ! जय माँ! जय माँ! तुम ही सत्य हो, तुम ही सत्य हो, तुम ही सत्य हो।"

दीक्षा प्राप्ति में मँझले भैय्या बाधक

30 नवम्बर, मंगलवार। आज स्कूल से आने के बाद छोटे भैय्या ने कहा– 'मँझले भैय्या (श्री वरदाकान्त बन्द्योपाध्याय जी) ढाका आ गए हैं। वे एकरामपुर में अपने श्वसुरजी के यहाँ ठहरे हैं; उन्होंने कल संध्या के समय तुम्हें बुलाया है।' मँझले भैय्या की बात सुनते ही मेरा हृदय धड़कने लगा। अवश्य ही साधन के सम्बन्ध में बात उठाकर वे अच्छे-से धमकाएँगे, समझ गया। सारी रात और अगले दिन का समय असह्य उद्वेग के साथ व्यतीत करके, निर्दिष्ट समय में उनके निवास पर गया। मँझले भैय्या के पास जाकर प्रणाम करके खड़े होते ही वे क्रोध से आग-बबूला हो गए एवं तीव्र कर्कश स्वर में गालियाँ देते-देते मानो पागल हो उठे।

जूता हाथ में लेकर मुझ पर प्रहार करने के लिए दो-चार कदम अग्रसर हुए; भाग्यवश तब भाभी के रोकने से वे रुक गए। अन्त में उन्होंने मुझसे कहा– 'योग शब्द यदि तेरे मुँह से फिर कभी सुनने को मिला, तो जूते मार-मारकर पीठ की चमड़ी उधेड़ दूँगा। हम लोगों का जितने प्रकार से अपमान किया जा सकता है, कर रहा है; तेरे मरने से हम लोगों को सब उत्पात से शान्ति मिलेगी'– इत्यादि। लगभग आधे घण्टे तक इस प्रकार गालियाँ खाकर, रोते-रोते मैं उस मकान से बाहर आ गया। नारी के सामने यह अपमान! क्रोध, अभिमान और क्लेश से मेरी आत्महत्या करने की इच्छा हुई। एक बार फिर योग-साधन प्राप्त करने का प्रयास करके देखूँगा, विफल होने के पश्चात् जो करना होगा करूँगा, निश्चय किया। आज भगवान् को साक्षी मानकर प्रतिज्ञा की– यदि उनकी कृपा से जीवन में यह साधन प्राप्त होता है, तो अपनी योगशक्ति का भयंकर विपरीत बुद्धि वाले मँझले भैय्या के ऊपर और फिर छोटे भैय्या के ऊपर सर्वप्रथम प्रयोग करके उन लोगों को गोसाँईजी के चरणों में लाकर बलि दूँगा। दीक्षा प्राप्त करने के बाद सर्वप्रथम मेरे इस संकल्प से ही साधन-भजन व तपस्या आरम्भ होगी।

निराशा में आश्वासन

अभिभावकों की अनुमति लेकर दीक्षा ग्रहण करना मेरे लिए कभी सम्भव नहीं होगा, सोचकर गोस्वामीजी के ऊपर बहुत क्षुब्ध होने लगा। निश्चय किया, फिर एक बार दीक्षा के लिए बोलकर देखूँगा, इस बार भी यदि गोस्वामीजी पहले की भाँति टाल-मटोल या कौशल करें, तो अच्छे-से सुनाकर आऊँगा– क्यों? ब्राह्मधर्म में हजारों-हजारों लोगों को जो आपने दीक्षा दी है, उसमें क्या कभी किसी के अभिभावक की अनुमति की अपेक्षा की है? उसके बाद, यदि किसी एक परिवार का मुखिया नास्तिक होता है, तो फिर उस परिवार के किसी को भी क्या भगवान् का नाम लेने का अधिकार नहीं रहेगा? अभिभावक की अनुमति लेने का प्रयोजन क्या सभी के लिए है या यह व्यवस्था केवल मेरे लिए ही है?

स्कूल की छुट्टी के बाद सीधा गोस्वामीजी के पास जा पहुँचा। भाइयों की अनुमति नहीं मिली, यह कहते ही उन्होंने मुझसे पूछा– **"तुम्हारे बड़े भैय्या कहाँ पर हैं?"**

मैंने कहा– बड़े भैय्या (श्री हरकान्त बन्द्योपाध्याय जी) उत्तर-पश्चिम अँचल के फैजाबाद में असिस्टेंट सर्जन हैं।

गोसाँईजी– **अच्छा तुम अनुमति के लिए उनको लिख दो। वे तुम्हें अनुमति दे देंगे। घबराओ मत, सब ठीक हो जाएगा।**

'यदि बड़े भैय्या भी अनुमति न दें तब क्या होगा?' यह कहना जैसे ही आरम्भ किया, श्री हरिचरण चक्रवर्ती आदि गोसाँईजी के कुछ शिष्यों ने मुझे यह बात कहने से रोक दिया और हाथ पकड़कर बाहर ले जाकर कहा– 'ये क्या? गोसाँईजी की बात का प्रतिवाद कर रहे थे! उससे अपराध ही होता। उन्होंने जो कहा है, वही करो; बड़े भैय्या को पत्र लिख दो। उन्होंने जब कहा है, तो निश्चय ही वे अनुमति देंगे।' मैं यह बात सुनकर चकित हो गया; मुझे हँसी भी आई। सोचा– 'हे भगवान्! ऐसे कुसंस्कारी लोग भी ब्राह्म-समाज में आते हैं!' जो भी हो, किसी से फिर कुछ न कहकर अपने निवास-स्थान पर आ गया एवं अनुमति के लिए सब बातें स्पष्ट रूप से पत्र में लिखकर बड़े भैय्या को बतलाया।

———

दिसम्बर, सन् 1886 ई॰

दीक्षा प्राप्ति के लिए बड़े भैय्या की अनुमति

दिसम्बर का प्रथम सप्ताह। बड़े भैय्या ने मेरा पत्र पाकर शीघ्र उत्तर दे दिया। गोस्वामीजी से योग-साधन ग्रहण करने की बात जानकर उन्होंने सन्तोषपूर्वक मुझे उत्साह देते हुए, अनुमति प्रदान कर दी। फिर पत्र के अन्त में उन्होंने लिखा है– 'भगवान् को प्राप्त करने के लिए तुम जिस पथ का अवलम्बन करने के लिए व्याकुल हो रहे हो, उसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, वरन् सन्तोष के साथ उत्साह ही देता हूँ; किन्तु हमारी माँ अभी हैं, इसलिए इस विषय में केवल मेरे से न पूछकर, माँ की भी अनुमति लेना उचित है।' पत्र पढ़कर तुरन्त मैं गोसाँईजी के पास गया। भैय्या के पत्र का आशय बतलाने पर, उन्होंने उसे सबके सामने पढ़कर सुनाने को कहा। सुनकर सभी ने भैय्या की बहुत प्रशंसा की, गोसाँईजी ने मुझसे कहा–

"यह पत्र तुम्हारे लिए दस्तावेज है, अच्छे-से सम्भालकर रख दो। इस बार तुम्हारा प्रायः सभी काम पूर्ण होने को है; एक काम बचा है। उसके होने से ही सब हो जाऐगा। तुम्हारे भैय्या ने माताजी की अनुमति लेने के लिए लिखा है। अब तुम एक दिन घर जाकर अनुमति ले आओ, तो फिर हो जाएगा।"

मैंने कहा– योग की बात सुनकर माताजी मुझे कभी अनुमति नहीं देंगी। इससे वे समझेंगी, मैं धर्म-धर्म करके घर-बार छोड़कर चला जाऊँगा।

गोसाँईजी ने कहा– **"तुम माँ से योग-वोग की बात नहीं कहना, 'साधन लूँगा'– केवल यही कहना। तो फिर वे अनुमति देंगी।"**

गोसाँईजी की बात सुनकर सोचने लगा– 'अब किस उपाय से घर जाऊँ? घर जाना चाहूँगा तो भैय्या कारण पूछेंगे।' तब तो सब बातें खुलकर कहनी होगी। घर जाना भी इस समय मेरे लिए कितना कठिन है, यह एक बार बतलाने की इच्छा हुई, पर उसी समय कुछ लोगों के आ जाने से उसका अवसर नहीं मिला। मैं अपने निवास-स्थान पर चला आया।

ब्राह्म-समाज में वार्षिक उत्सव

आज वार्षिक उत्सव के उपलक्ष्य में ब्राह्म-समाज स्त्री-पुरुषों से परिपूर्ण है। मन्दिर और चारों ओर आँगन में लोग समा नहीं रहे हैं। गोस्वामीजी अपने आसन से उठकर उपासना करने के लिए वेदी पर बैठे। शारदीय नवरात्रि के आगमन से, नवरात्रि का समय आ रहा है, यह विचार करते ही यहाँ के लोगों के मन में किस प्रकार एक आनन्द और उत्साह का उदय होता है– उसका वर्णन करके उन्होंने उपासना के पहले ही सबके भीतर एक अद्‌भुत भाव का संचार कर दिया। उपासना आरम्भ करके, दो-चार बातें कहते ही भाव में डोलते-डोलते गिरने लगे।

"ये तो है माँ! ये तो हमारी माँ आ गई हैं! माँ आज अपने कंगाल लड़कों को खिलाने के लिए हाथ में प्रसाद की थाली लेकर आई हैं। माँ प्रसाद के लिए मुझसे अनुरोध कर रही हैं! माँ, आज मैं अकेले नहीं लूँगा, सबको तुम अपने हाथ से प्रसाद दो, तभी मैं लूँगा।"

यह सब कहकर, मानो भगवान् को साक्षात् देखकर, गदगद भाव से रोदनपूर्ण स्वर में हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। गोस्वामीजी की प्रत्येक बात के प्रत्येक शब्द के साथ-साथ शरीर रोमांचित होने लगा। एक अव्यक्त भाव से उन्होंने सभी को पूर्णतः अभिभूत कर दिया। मन्दिर के बाहर-भीतर, चारों ओर भाव के स्फुरण की 'हुँ–हुँ' ध्वनि होने लगी। स्त्री-पुरुषों के बीच क्रन्दन की विचित्र ध्वनि उठने लगी। श्री डॉ॰ पी॰ के॰ राय आदि दो-चार प्रमुख ब्राह्म पदाधिकारियों ने गड़बड़ को रोकने के लिए उच्च स्वर में 'ठहरिए, ठहरिए, शान्त हो जाइए, शान्त हो जाइए' कहकर चीत्कारने लगे। उस समय फिर कौन किसकी बात सुनता है? उपाय न देखकर श्री चन्द्रनाथ राय ने हारमोनियम लेकर गाना आरम्भ कर दिया। उधर गोस्वामीजी 'जय माँ, जय माँ,' कहकर वेदी से कूद पड़े। उच्च स्वर में संकीर्तन होने लगा। गोस्वामीजी नृत्य करने लगे। चारों ओर बालक, वृद्ध, युवक, सभी अचेत होकर गिरने लगे। हुँकार, गर्जन और भाव के स्फुरण की विचित्र ध्वनि से ब्राह्म-मन्दिर गूँज उठा। स्त्री-पुरुष सब आज इस महोत्सव में मतवाले हो गए। कितना समय इस प्रकार से बीत गया, पता नहीं। अन्त में गोस्वामीजी **'हरि बोल,**

स्थिर हो जाओ, स्थिर हो जाओ'– कहते हुए हाथ से सब लोगों के मस्तक को स्पर्श करते-करते घूमने लगे। उनके हाथ के स्पर्श से जो नृत्य कर रहे थे वे बैठ गए, जो चीख रहे थे वे शान्त हो गए एवं जो अचेत हो गए थे उनमें भी चेतना आ गई। अद्भुत दृश्य लगा! देखते-देखते ब्राह्म-मन्दिर में पुनः शान्त, स्तब्ध और गम्भीर भाव का वातावरण छा गया। गोस्वामीजी उठकर फिर से वेदी पर बैठ गए। आज के इस भाषातीत, निःशब्द उपासना के भाव को व्यक्त करना सम्भव नहीं है। भविष्य में स्मरण रखने हेतु इस घटना का थोड़ा आभास मात्र यहाँ लिख रखा है। इस प्रकार की घटना मैंने ब्राह्म-मन्दिर में इसके पहले कभी नहीं देखी।

गोस्वामीजी का उपदेश: प्रार्थना के प्रकार

आज गोस्वामीजी वेदी पर बैठकर उपदेश देने लगे–

"धर्म को जीवन में दृढ़ता के साथ अपनाए बिना वह कभी नहीं टिकता, अधिक दिन स्थायी नहीं रहता। परमेश्वर को हम चार प्रकार की अवस्थाओं में पुकारते हैं। जल, वायु, आहार, उत्ताप आदि द्वारा जिस प्रकार इस शरीर की रक्षा होती है, पुष्टि होती है; इनमें से किसी का अभाव होने से ही शरीर जिस प्रकार स्वभावतः उसे चाहता है, नहीं मिलने तक स्थिर नहीं हो पाता; उसी प्रकार आत्मा के कल्याण के लिए, आत्मा की उन्नति के लिए परमेश्वर की उपासना भी आवश्यक है। आत्मा स्वभावतः परमेश्वर को पुकारती है, उनकी उपासना करती है; अन्यथा स्थिर नहीं हो पाती। परमेश्वर से कोई अभिलाषा नहीं करते, प्रार्थना नहीं करते, मुक्ति नहीं चाहते, भक्ति भी जानते नहीं। वे प्राणों के प्राण हैं, उनको पुकारे बिना रह नहीं पाते, इसलिए उनको पुकारते हैं; इस प्रकार स्वभाव से उन्हें पुकारना बड़ा दुर्लभ है एवं यही सर्वश्रेष्ठ है।"

"अभाव का बोध होने पर भी हम भगवान् को पुकारा करते हैं। किसी विषय में किसी प्रकार का अभाव बोध होने पर, उसको पूर्ण करने के लिए जब कोई नहीं मिलता, अपने अभाव के क्लेश को दूर करने के लिए अपनी विद्या-बुद्धि, चेष्टा-सामर्थ्य जब बिल्कुल परास्त हो जाते हैं, उस समय चारों ओर अन्धकार देखकर उनके ही शरणागत होते हैं, उन्हीं को पुकारते हैं। इस भाव से भगवान् को पुकारना भी अच्छा है; इससे भी आत्मा का पर्याप्त कल्याण होता है। किन्तु अभाव में उनको पुकारे, अभाव दूर होने पर फिर उनके साथ कोई सम्पर्क ही नहीं रहा; रोग की यन्त्रणा से पीड़ित होने पर पुकारे, फिर रोग ठीक होने पर

उनको भूल गए– इस प्रकार होने से, इस प्रकार पुकारने से आत्मा का कोई उपकार नहीं होता। अतः कृतज्ञता बनाए रखने में ही मंगल है, अन्यथा सब व्यर्थ है।"

"जिज्ञासु भाव से संशय निवृत्ति के लिए भी हम लोग भगवान् को पुकारा करते हैं। 'सुनते हैं, धर्म नाम की एक बड़ी अद्‌भुत वस्तु है; धर्म-कर्म करने से, भगवान् को पुकारने से क्लेश नहीं रहता, किसी प्रकार की अशान्ति हृदय को स्पर्श भी नहीं कर पाती! अच्छा तो एक बार धर्म-कर्म करके, जप-तप करके, भगवान् को पुकारकर देख ही क्यों न लें, सत्य है या नहीं। हिन्दूधर्म की अपेक्षा ब्राह्मधर्म उत्तम है! अच्छा, कुछ दिन ब्राह्म-समाज में जाकर देख ही क्यों न लें? लोग धर्म-धर्म करके कितना स्वार्थ त्याग करते हैं, कितना अपमान, अत्याचार, यन्त्रणा भोगते हैं! इसके भीतर थोड़ी बहुत आराम की वस्तु हो भी सकती है। अच्छा, एक बार प्रयास करके देख ही क्यों न लिया जाए इसमें कुछ है या नहीं'– इसी भाव के लोग ही आजकल अधिक हैं। ऐसे लोगों की प्रार्थना, उपासना आदि समस्त ही सन्देह से परिपूर्ण रहती है। मानो भगवान् की परीक्षा करने ये लोग आते हैं। ये लोग श्रद्धा-भक्ति विहीन संशयित मन से भगवान् को पुकारते हैं, इससे कोई फल नहीं मिलता।"

"अनुकरण के भाव से भी हम लोग भगवान् को पुकारा करते हैं। 'जो धार्मिक हैं, लोग किस प्रकार से उनका एक सम्मान करते हैं, धार्मिक लोगों पर सभी कैसा विश्वास करते हैं! थोड़ा धर्म-कर्म का अनुष्ठान करने से, भगवान् का नाम लेने से लोक-समाज में यदि थोड़ी प्रतिष्ठा होती है, तो क्या हानि है? मनुष्य सम्मान पाने के लिए कितना कुछ तो करता है! मैं यदि थोड़ा धर्म का अनुकरण करके, कीर्तन आदि में दो-चार बार 'हरि बोल' कहकर चीख-पुकार करने और कूद-फाँद करने से अथवा उपासना में थोड़ा आँसू बहा देने से ही वह सम्मान पाता हूँ, तो लाभ ही है, हानि तो कुछ है नहीं। एक बार देखा क्यों न जाए? करके देख ही क्यों न लें?' इस प्रकार के कपटपूर्ण भाव से धर्म का अनुकरण करना बहुत ही निकृष्ट है। इससे कल्याण तो कुछ होता नहीं, वरन् आत्मा की अधोगति होती है।"

दीक्षा प्राप्ति के लिए माँ की अनुमति

उत्सव के बाद, एक दिन संध्या के समय छोटे भैय्या ने कहा– 'कुछ आवश्यक सामान घर ले जाने के लिए मँझले भैय्या ने कहा है। कल ही वह सब लेकर तुमको घर जाना होगा।' मेरे ऊपर भगवान् की कितनी अद्भुत कृपा है! अगले दिन प्रातः घर के लिए निकल पड़ा। इधर वार्षिक उत्सव समाप्त हो गया। इसी उत्सव में मैं जनेऊ त्यागकर ब्राह्मधर्म की दीक्षा ग्रहण करूँगा, सर्वत्र यही प्रचार हो गया था। श्री रजनीकान्त घोष, डॉ॰ पी॰ के॰ राय एवं नवकान्त बाबू आदि अनेक लोगों ने मुझे उत्साह देते हुए कहा था– 'ब्राह्म हो जाने पर यदि तुम्हारे भाई पढ़ाई-लिखाई का खर्चा बन्द कर देंगे तो हम तुम्हारे खर्चे का भार वहन करेंगे।' माताजी भी समझी थीं कि इस बार मैं कुछ तो करूँगा। अचानक बेसमय घर पहुँचते देखकर माँ थोड़ा घबरा गई। फिर गले में जनेऊ देखकर शान्त हुई। अवसर देखकर, अगले दिन माताजी के पूजा-पाठ के बाद उनके पाँव छूकर प्रणाम करके कहा– 'माँ, मैं अब दीक्षा लूँगा, मुझे अनुमति दीजिए।' सुनते ही माँ काँप उठी, बोलीं– 'तू क्या जनेऊ फेंककर ब्रह्मसमाजी हो जाएगा?' मैंने कहा– नहीं माँ, मैं गोसाँईजी से साधन लूँगा। तुम आशीर्वाद देकर अनुमति नहीं दोगी तो वे मुझे साधन नहीं देंगे। यह कहकर झुकते हुए पुनः माँ के दोनों पैरों को पकड़ लिया। माँ ने तब मेरे सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद देते हुए कहा– 'मैं तो स्वयं धर्म-कर्म कुछ नहीं कर पाई। तुम लोग यदि करो, तो मना क्यों करूँ? तू धर्म-कर्म कर, साधन-भजन कर, उसके लिए मेरी अनुमति है, उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता ही होगी। तू जनेऊ फेंकना नहीं और मैं जब तक जीवित हूँ घर-बार छोड़कर मत जाना– इतना करना। संसार में रहकर धर्म-कर्म कर। भगवान् तेरी मनोकामना पूरी करेंगे। मैं तुझे यही आशीर्वाद देती हूँ।'

माताजी की चरण-धूलि मस्तक में लगाकर मैं ढाका के लिए निकल पड़ा। यथासमय गोस्वामीजी के पास पहुँचकर सभी बातें बतलाई। उन्होंने सन्तोष प्रकट करते हुए कहा–

"ठीक है। तुम गुरुवार को प्रातः स्नान करके आओ, तो फिर हो जाएगा।"

यह बात गोस्वामीजी के मुख से बाहर निकलते ही, 'ऐसा न हो कि फिर किसी चक्कर में डाल दें', यह सोचकर क्षणभर भी विलम्ब न करके वहाँ से निकलकर अपने निवास-स्थान पर चला आया।

मेरी दीक्षा

16 दिसम्बर, गुरुवार, कृष्ण पक्ष पंचमी। मन में चिन्ता के कारण रात में ठीक से नींद नहीं हुई। रात्रि में साढ़े 3 बजे उठकर बूढ़ी गंगा में स्नान करके ब्राह्म-मन्दिर के प्रचारक निवास के द्वार पर जा पहुँचा। गोस्वामीजी मँजीरा बजाकर प्रातःकालीन कीर्तन कर रहे हैं। सुनने लगा– **'जय ज्योतिर्मय, जगदाश्रय, जीवगण-जीवन'**– यह गीत गाते-गाते बीच-बीच में भाव के आवेश में उनका गला रुद्ध हो जाता और वे गिरने लगते। मैं कुछ क्षण द्वार पर ही बैठा रहा। कीर्तन हो जाने पर गोस्वामीजी बाहर आए एवं मुझे सामने देखकर उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा–

"इतने भोर में आ गए? अच्छा ठीक है। अभी समाज-मन्दिर में बैठो; थोड़ा सबेरा हो जाए, फिर शुभ मुहूर्त जानकर तुम्हें बुला लूँगा।"

मैं जाकर समाज-मन्दिर में बैठ गया। लगभग एक घण्टे के बाद गोस्वामीजी ने मुझे पुकारा। गोस्वामीजी के पास पहुँचते ही उन्होंने आसन से उठकर कहा– **"चलो ऊपर चलते हैं, वहीं काम होगा।"** मैं उनके पीछे-पीछे चलने लगा। श्री अनाथबन्धु मौलिक, श्रीधर घोष, श्यामाकान्त चट्टोपाध्याय जी भी हमारे साथ-साथ चलने लगे। ऊपर पूर्व दिशा के कमरे में प्रवेश करके देखा, उस कमरे के दक्षिण-पूर्व कोने में दो आसन बिछे हुए हैं। गोस्वामीजी दीवाल से सटकर पश्चिम की ओर मुख करके बैठे एवं अपने सामने लगभग साढ़े तीन फीट के अन्तर में रखे दूसरे आसन पर मुझे बैठने के लिए बोले। गोस्वामीजी की बेटी श्रीमती शान्तिसुधा ने उसी समय धूपदानी में अग्नि लाकर दी। गोस्वामीजी धूप, धूना, गुग्गुल, चन्दन इत्यादि उसमें डालते हुए, हाथ जोड़कर बारम्बार प्रणाम करके शान्त भाव से बैठ गए। उनके दोनों गालों से होकर लगातार अश्रुधारा बहने लगी। अब कुछ समय के लिए गोस्वामीजी भावस्थ रहेंगे, यह अनुमान करके व्याकुल हृदय से, दीन भाव से मैं मन-ही-मन भगवान् के चरणों में प्रार्थना करने लगा– "हे ज्ञानस्वरूप जाग्रत पुरुष, हे सर्वसाक्षी, सर्वव्यापी, दीनजनों के एकमात्र आश्रय परमेश्वर, हे पतितपावन दयामय प्रभु, तुम्हारे ऊपर मैं विश्वास करूँ या न करूँ, तुम यहाँ हो, मेरे भीतर की सब अवस्था देख रहे हो। बहुत दिनों से तुम्हारे चरणों को प्राप्त करने की आकांक्षा में वृद्धि करके तुम प्रत्येक दिन मुझे बेचैन करते हो, नाना प्रकार के विघ्न उत्पन्न करके तुम ही फिर दया करके उससे मेरा उद्धार करते हो। प्रभु, जिस प्रकार आशा जगाए हो, फल भी उसी प्रकार दो। तुम्हें प्राप्त करने का उपाय मैं नहीं जानता। प्रभो, तुम घट-घट में पूर्ण रूप से विराजमान हो। आज गोसाँईजी के भीतर रहकर तुम्हीं मुझे दीक्षा दो। तुम्हारे श्री चरणों को प्राप्त करने का पथ तुम्हीं मुझे बतला दो। अब मैं अपने को तुम्हारे शान्तिप्रद अभय

चरणों में समर्पित करता हूँ। हे, सर्वशक्तिमान्, सत्यस्वरूप, पुराणपुरुष, इस समय गोस्वामीजी के मुख से तुम्हीं मुझे साधन दो। उनके उस मुख से मुझे तुम्हीं अपना सबसे प्रिय 'नाम' कह दो। अब गोसाँईजी के मुख के प्रत्येक शब्द को तुम्हारी ही अभ्रान्त-वाणी समझकर मैं ग्रहण करूँगा। तुम्हारे श्री चरणों में मेरी इस प्रार्थना के विषय में तुम ही मेरे एकमात्र साक्षी हो। तुम स्वयं ही मुझे आज दीक्षा न दो, तो गोसाँईजी का मुख अचानक बन्द हो जाए। और क्या कहूँ, तुम मुझ पर दया करो।"

प्रार्थना के बाद प्रणाम करके देखा, गोस्वामीजी बार-बार सिहर उठते हैं, उनका शरीर रोमांचित हो रहा है। हाथ जोड़कर गद्गद स्वर में– '**नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः। या देवः सर्वभूतेषु शान्ति रूपेण संस्थितः।**'– इत्यादि स्तोत्र पढ़ रहे हैं। फिर उन्होंने कई बार गायत्री मन्त्र का उच्चारण करके महानिर्वाण तन्त्रोक्त ब्रह्मस्तोत्र का पाठ किया। फिर '**जयगुरु, जयगुरु, जयगुरु**' कुछ एक बार कहकर रोते-रोते पूर्णतः अचेत हो गए; कुछ क्षण उसी दशा में रहे, फिर भाव का संवरण करते हुए उन्होंने सिर उठाकर धीरे-धीरे मुझसे कहा–

"परमहंसजी,* दया करके तुम्हें यह मन्त्र दे रहे हैं– तुम ग्रहण करो!"– यह कहकर उन्होंने मुझे अप्राकृत दुर्लभ मन्त्र प्रदान किया एवं 'नाम' (मन्त्र) का अर्थ स्पष्ट रूप से समझा दिया। उसके बाद शास्त्रसम्मत गुरुमुखी प्राणायाम दिखलाकर कहा– **"इस प्रकार करो तो!"** मैं उसी प्रकार करने लगा। गोसाँईजी तब उच्च स्वर में '**जयगुरु, जयगुरु**' कहने लगे, भावावेश से उनका कण्ठ रुद्ध हो गया, वे समाधिस्थ हो गए। चैतन्य होने पर उन्होंने कहा– **"प्रतिदिन दोनों समय इसी प्रकार करने का प्रयास करना।"**

मुझे साधन का और कोई उपदेश उन्होंने नहीं दिया। मैं मन-ही-मन नाम-जप करते-करते कमरे से बाहर चला आया। सुना है, इसके पहले गोस्वामीजी के पास मेरे से कम आयु वालों में केवल फणिभूषण घोष (श्री कुंज घोष के पुत्र) और गोसाँईजी के बेटे-बेटियों ने ही दीक्षा ली है। यह भी सुना कि मेरी दीक्षा के समय श्रीधर घोष जी ने, 'मैं जिससे वीर्यधारण करने में समर्थ होऊँ', इस आशय से बड़ी व्याकुलता के साथ प्रार्थना की थी। गोस्वामीजी दीक्षा देते समय दीक्षार्थी के भीतर एक अप्रकट शक्ति का संचार किया करते हैं, सर्वत्र यह बात प्रचारित है; परन्तु मेरे भीतर किसी शक्ति का संचार किए हैं, ऐसा मुझे कुछ लगा नहीं। अपने ही मत, संस्कार और भाव के अनुकूल मन्त्र पाकर मुझे बड़ा आनन्द मिला।

------

*गोस्वामीजी के गुरुदेव, कैलाश पर्वत के समीप मानससरोवर निवासी श्रीमत् ब्रह्मानन्द परमहंसजी।

जनवरी, सन् 1887 ई०

साधन की बैठक

6 जनवरी, गुरुवार तक। दीक्षा मिलने के बाद से गोस्वामीजी के पास बारम्बार जाने लगा। स्कूल-कॉलेज के छात्र और ऑफिस-अदालत के बाबू आदि अनेक लोग प्रतिदिन अपराह्न में गोस्वामीजी के पास पहुँच जाते हैं। प्रचारक निवास के पूर्व दिशा वाले कमरे के उत्तर-पूर्व कोने में गोस्वामीजी का आसन है। दोपहर एवं संध्या के समय जब भी जाता हूँ, गोस्वामीजी को कभी अपने आसन के सामने की ओर एकटक देखते हुए तो कभी आँखें बन्द करके ध्यानस्थ अवस्था में स्थिर बैठे हुए देखता हूँ। श्री आशानन्द बाउल और श्री रामकृष्ण परमहंसजी के आश्रित भक्त श्री केदार बाबू प्रतिदिन ही संध्या के समय गोस्वामीजी के पास आते हैं। गोस्वामीजी के सामने और दाहिनी ओर उनके बैठने के लिए निर्दिष्ट आसन है। गोसाँईजी के ध्यानस्थ अवस्था में रहने पर भी वे लोग कृष्ण-कथा आरम्भ कर देते; कभी-कभी तो राधा-प्रेम का गीत या गौर-कीर्तन भी सम्मिलित कर देते हैं। धीरे-धीरे गोस्वामीजी का भी ध्यान टूट जाता है। बाउल-वैष्णवों के इन सब गीतों से गोस्वामीजी को भावावेश होने पर हम लोगों को वह देखने में अच्छा नहीं लगता; अतएव बीच में थोड़ा अवसर मिलते ही हम लोग भी उच्च स्वर में ब्राह्म-संकीर्तन आरम्भ कर देते हैं। बाउल-वैष्णव लोग उस समय धीरे-धीरे उठकर चले जाते हैं। संध्या का समय इसी प्रकार निकल जाता है। संध्या के बाद गोस्वामीजी शौच के लिए जाते हैं। फिर आसन पर आकर धूप-धूना जलाकर स्वयं मंजीरा बजाकर सायंकालीन कीर्तन करते हैं। इस कीर्तन के बाद ही दरवाजा बन्द हो जाता है। गोस्वामीजी के आश्रित शिष्यों के सिवा तब प्रचारक निवास में अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं रह पाता। गोस्वामीजी ने बीच-बीच में मुझे 'बैठक' (सामूहिक साधना) में सम्मिलित होने के लिए कहा है। अतः मैं भी 'बैठक' में जाता हूँ। प्राणायाम आरम्भ होने से पहले ही गोसाँईजी मुझे अपने सामने, तीन फीट के अन्तर पर बैठने के लिए कहते हैं। लगभग 7-8 बजे प्राणायाम आरम्भ होता है एवं लगातार एक घण्टा प्राणायाम करने के बाद एक गीत होता है, उसके बाद पुनः प्राणायाम चलता है। इस प्रकार तीन बार प्राणायाम करने में हमें लगभग ढाई-तीन घण्टे लग जाते हैं। केवल प्राणायाम में मन एकाग्र होते ही गोसाँईजी मुझसे नाम में भी चित्त लगाने के लिए कहते हैं। बाहर प्राणायाम, भीतर में नाम– यह मुझसे किसी प्रकार भी नहीं हो पाता। 'बैठक' में गोसाँईजी के शिष्यों के भीतर नाना प्रकार के भावावेग देखकर एवं गोसाँईजी जब अश्रुपूरित होकर गद्गद स्वर में **'जय बारदी के ब्रह्मचारी! जय रामकृष्ण परमहंसजी! जय माताजी! जय गुरुदेव! जय गुरुदेव!!'** कहते-कहते समाधिस्थ हो जाते हैं, तब वह देखकर मुझे बड़ा अच्छा लगता है।

'बैठक' के समय उन सब महात्माओं का सम्भवतः आविर्भाव होता है; गोसाँईजी के शिष्यों में कोई-कोई वह दर्शन करके अचेत हो जाते हैं; किन्तु मैंने कुछ देखा नहीं। फिर भी गोस्वामीजी के मुख से निकले प्रत्येक शब्द से मेरा शरीर रोमांचित हो उठता है; भीतर एक ऐसी अवस्था हो जाती है कि उसे प्रकट नहीं कर पाता। वास्तव में महापुरुषों का अविर्भाव होता है या नहीं, इस सम्बन्ध में जाँच-पडताल करने का अत्यन्त कौतूहल होने लगा। उस समय कई दिनों तक लगातार मुझे 'बैठक' में उपस्थित होते देखकर गोस्वामीजी ने कहा– **"छात्रावस्था में मन लगाकर पढ़ाई-लिखाई करना ही सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। सप्ताह में एक दिन तुम 'बैठक' में आओ, तो भी हो जाएगा।"** गोस्वामीजी के कथनानुसार सप्ताह में एक दिन ही 'बैठक' में जाने लगा।

यह क्या योग-शक्ति है?

छोटे भैय्या के एक मित्र की माताजी की मृत्यु हो गई। मित्र को यह बात बतलाए बिना घर पहुँचाना आवश्यक हो गया। मैं उन्हें लेकर उनके घर पहुँचा। माता की मृत्यु हो गई, यह सुनकर वे रोते-रोते मूर्च्छित हो गए। घर में सभी लोगों के रोने के कोलाहल से मेरा मन विचलित हो उठा। सोचने लगा, मेरी माँ की भी यदि अचानक मृत्यु हो जाए तो क्या करूँगा! हमारी माँ मृत्युशय्या पर पड़ी हुई हैं, इस प्रकार की एक चिन्ता से मैं व्याकुल हो उठा एवं माँ को देखने तुरन्त ही घर के लिए निकल पड़ा। लगभग पाँच कोस पैदल चलकर घर पहुँचते ही मैंने देखा, बड़ी गम्भीर स्थिति है। मोहल्ले के प्रायः सभी लोग हमारे घर पर हैं। जगह-जगह पर लोग गाल पर हाथ रखकर बैठे-बैठे रो रहे हैं। मुझे देखकर उन्होंने कहा– 'माँ तो जाने को हैं; तुम आ गए, अच्छा हुआ। एक बार माँ को इस समय देख लो।' रास्ते के क्लेश से मेरा शरीर अवसन्न हो गया था, उस पर माँ को छटपटाते देखकर मैं एकदम निराश होकर रोने लगा। मन में ऐसा लगा, इस समय गोसाँईजी यदि हमारी माँ की रक्षा करें तभी आशा है, अन्यथा कोई भरोसा नहीं। मैं गोसाँईजी का स्मरण करके व्याकुल मन से प्रार्थना करने लगा। दौड़कर गोसाँईजी के पास जाने की इच्छा हुई। कुछ समय व्यतीत होते ही मेरी एक भतीजी को भी उल्टी-दस्त होने लगे। डॉक्टर ने आकर कहा– 'माँ के बचने की अब आशा नहीं है, लेकिन भतीजी के जीवन की अभी आशा है।' हैजा रोग की कुछ औषधि का परचा उन्होंने लिख दिया, परन्तु गाँव में वह नहीं मिली। गोसाँईजी के पास जाने का यह सुयोग समझकर मैं माँ को छोड़कर दवाई लाने के लिए शीघ्र ढाका चला गया। ढाका पहुँचकर सीधा ब्राह्म-समाज में गोसाँईजी के पास गया। गोसाँईजी ने मुझे देखकर कहा– **"क्यों? तुम इस समय यहाँ? घर गए नहीं?**

ओह, लगता है, घर से आ रहे हो?"

मैंने कहा– अभी घर से ही आ रहा हूँ।

गोसाँईजी– **क्यों, अवस्था कैसी है?**

मैंने कहा– माँ और एक भतीजी को हैजा हो गया है।

गोसाँईजी– **तो तुम दवाई लेने आए हो?**

मैं– जी हाँ!

गोसाँईजी– **तब तो तुम्हारा विलम्ब करना उचित नहीं है। लड़की क्या छोटी है?**

मैंने कहा– सात-आठ वर्ष की होगी।

गोसाँईजी ने यह सुनकर 'आह-आह' करके दुःख प्रकट करते हुए आँखें बन्द कर लीं एवं क्लेश-सूचक 'ऊह-ऊह' शब्द करके दो-तीन मिनट स्थिर रहे। इस बीच मैं माताजी के आरोग्य हेतु मन-ही-मन गोसाँईजी से प्रार्थना करने लगा। गोसाँईजी ने आँखें पोंछते हुए स्नेहपूर्वक मेरी ओर देखकर कहा–

"माँ के लिए चिन्ता मत करो। औषधि ले जाओ, उससे ग्रामवासियों का उपकार होगा।"

मैं शीघ्र ही औषधि लेकर घर के लिए निकल पड़ा। रास्तेभर गोसाँईजी की बात पर ही विचार करता रहा। इस समय मैं घर छोड़कर यहाँ हूँ, देखकर गोसाँईजी चकित क्यों हुए? और फिर मैं घर से ही आ रहा हूँ, यह भी वे किस प्रकार जान गए? 'क्यों, अवस्था कैसी है?'– बिना कुछ जाने उन्होंने इस प्रकार का प्रश्न भी क्यों किया? लड़की की बात सुनकर जिस प्रकार का भाव प्रकट किए, उससे तो लगता है कि लड़की अब नहीं रही। 'औषधि से मोहल्ले के लोगों का उपकार होगा' तो कहा, लेकिन लड़की की बात नहीं कही। अतः यह औषधि अब लड़की के काम नहीं आएगी– इसी बात को तो अन्य प्रकार से उन्होंने कहा है। माँ के लिए चिन्ता करने को मना किया। तो क्या हमारी माँ अच्छी हो जाएँगी? देखा जाए, ये सब बातें कहाँ तक ठीक हैं? मैं द्रुत गति से चलकर घर पहुँचा तो सुना, सबेरे ही लड़की चल बसी और माँ की अवस्था अब अच्छी होने लगी है।

क्रमशः माँ स्वस्थ हो गईं। इस घटना से गोस्वामीजी के सम्बन्ध में मेरे चित्त में एक हलचल होने लगी। सोचा– 'गोसाँईजी क्या ज्योतिष जानते हैं? लेकिन वह जानने पर भी तो गणना करने में कुछ समय लगता है। कहाँ, वह तो देखा नहीं। तब तो लगता है, गोसाँईजी ने योग-शक्ति प्राप्त कर ली है। योग-शक्ति द्वारा चैतन्यमय ईश्वर के साथ युक्त होने पर विश्व-ब्रह्माण्ड की सारी घटनाएँ– यहाँ

तक कि छोटे-से-छोटे परमाणु के प्रत्येक तत्त्व तक प्रकट हो जाते हैं। लगता है, उसी शक्ति के प्रभाव से ही गोसाँईजी मनुष्य के मन की बात समझ सकते है एवं भविष्य देखकर बतला सकते हैं।' फिर सोचा– 'वह भी क्या इतना सहज है? गोसाँईजी का इतने कम समय में वैसी अवस्था प्राप्त करना क्या सम्भव है? गोसाँईजी बड़े भले व्यक्ति हैं, इसलिए स्वाभाविक रूप से सहानुभूति प्रकट करके उन्होंने यह सब बातें कही थी, ठीक-ठीक मेरे ऊपर चरितार्थ होने के कारण ही उनके ऊपर मेरा अन्धविश्वास उत्पन्न हो रहा है।' जो भी हो, मेरे कुछ निर्धारित नहीं कर पाने पर भी इस घटना से मेरा चित्त एक प्रकार से थोड़ा प्रभावित हुआ एवं अपने-आप गोसाँईजी के प्रति कुछ श्रद्धा उत्पन्न हो गई। माताजी के कुछ स्वस्थ होते ही मैं गोसाँईजी को देखने ढाका के लिए निकल पड़ा।

माघोत्सव में नवीन घटना

22 जनवरी, शनिवार। माघ महीने के प्रारम्भ से ही ब्राह्म-समाज में बड़ी धूमधाम होने लगी। माघोत्सव का समय जैसे-जैसे निकट आ रहा है, समाज-मन्दिर में उतनी ही भीड़ बढ़ती जा रही है। मैमनसिंह, बरीसाल, फरीदपुर आदि विभिन्न स्थानों से अनेक गणमान्य लोग इस उत्सव के उपलक्ष्य में यहाँ आए हैं। गोस्वामीजी की उपासना में सम्मिलित होने के लिए कोलकाता और उसके आसपास के स्थानों से भी अनेक ब्रह्मसमाजी ढाका आए हैं। कांगाल फिकिरचन्द फकीर (हरिनाथ मजूमदार एवं प्रफुल्ल मुखोपाध्याय) के गीत आजकल बंगाल में सर्वत्र ही प्रचारित हो गए हैं। सब ओर उनकी ही चर्चा है। सभी सम्प्रदाय के लोग उनके गीत सुनकर मतवाले हो गए हैं। कुछ दिनों से वे भी गोस्वामीजी के साथ आनन्द करने के लिए ढाका ब्राह्म-समाज में आकर उनके निवास में ठहरे हुए हैं।

प्रातः ब्राह्म-समाज में जाकर देखा, प्रचारक निवास लोगों से परिपूर्ण है। गोस्वामीजी के सामने बैठे हुए कांगाल फिकिरचन्द फकीर बड़े उत्साह के साथ भाव में उन्मत्त होकर उच्च स्वर में गा रहे हैं– 'माँ, नाई आमि से छेले; जार आछे साधनेर जोर, से कि माँ तोर भय करे तूई भय देखाले?' (माँ, नहीं हूँ मैं वह लड़का; जिसका है साधना का जोर, वह क्या डरता है तुम्हारे डर दिखाने से?) कमरे के भीतर-बाहर सभी लोग शान्त भाव से एक ही अवस्था में बैठे हुए हैं, केवल गोस्वामीजी अपने आसन के ऊपर खड़े हैं; दृष्टि सामने की ओर स्थिर है, एकटक देख रहे हैं; उज्ज्वल तारों की भाँति दोनों नेत्र जगमगा रहे हैं। मुख सूज गया है, दोनों ओंठ कम्पित हो रहे हैं, दोनों गालों से होकर निरन्तर अश्रुधारा बह रही है। उनका बायाँ हाथ छाती पर है, दाहिना हाथ करमुद्रा की अवस्था में माथे पर है।

वे बार-बार सिहर उठते हैं, उनका शरीर रोमांचित हो रहा है। बीच-बीच में उच्च स्वर में 'हरि बोल, हरि बोल' कहकर वे दो-तीन फीट ऊपर तक उछल जाते हैं, फिर स्थिर भाव से क्षणभर खड़े रहकर सिर से पैर तक थरथर काँपने लगते हैं। गिर पड़ने की दशा देखते ही श्यामाकान्त पण्डित जी उन्हें पकड़कर सँभाल लेते। कुछ क्षण बाद गोस्वामीजी खिल-खिलाकर हँस पड़े। यह हँसी भी एक विचित्र प्रकार की है। हँसी की अद्‌भुत ध्वनि से मानो पूरा कमरा कम्पित होने लगा। क्रमशः हँसी का वेग बढ़ने लगा। लम्बे समय तक लगातार चलने वाली इस हँसी की विचित्र ध्वनि से मेरा शरीर रोमांचित हो उठा, मैं अवसन्न हो गया। इस प्रकार की हँसी जीवन में कभी सुनी नहीं। लगातार सात-आठ मिनट तक वे इसी प्रकार हँसे, लेकिन इस अवस्था में भी उनकी अश्रुधारा रुकी नहीं; वरन् और अधिक वेग से प्रवाहित होकर छाती को भिगाने लगी। इसी समय अचानक हँसी रुक गई। सतृष्ण नयनों से सामने की ओर देखकर बार-बार चौंकने लगे। फिर माथे पर रखे दाहिने हाथ को सामने की ओर रखकर तर्जनी (अंगुलि) से संकेत करते हुए, गद्‌गद भाव से, उच्च स्वर में कहने लगे–

'वह देखो, वह देखो, तुम सब देख लो, वह देखो पगला आया है। वह तो खड़ा है पगला। पगला जाना चाहता है। (दो-चार कदम आगे बढ़कर बहुत व्यग्रता के साथ उच्च स्वर में कहा) पकड़ो, पकड़ो, पकड़ो! नहीं, फिर आ रहा है। देखो! देखो! पगला इधर ही आ रहा है; वह देखो, वह देखो। बाप-रे, कितनी बड़ी गाय! वह कैसी है, देखो– वाह उसके कपाल पर एक आँख है, वह कितनी चमक रही है! सूर्य की भाँति– यह तो सूर्य ही देख रहा हूँ! वाह! अब यह क्या है? ऊह, कितना बड़ा सींग! आहा, वह देखो नन्दी व भृंगी। सोचा था, वे लोग नहीं हैं। पगला के साथ वे लोग यहीं आ रहे हैं।' चौंकते हुए दो-चार कदम पीछे होकर सामने की ओर एकटक देखने लगे एवं काँपते-काँपते हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहने लगे– **'जय माँ! जय माँ! सब लोग देखो मेरी माँ आई हैं। धन्य हैं माँ, धन्य हैं माँ! आहा, कितने योगी, कितने ऋषि माँ के चारों ओर नाच रहे हैं! वह देखो, श्रीचैतन्य, वाल्मीकि, नारद वशिष्ठ आदि हैं; और भी कितने लोग हैं!– नाम नहीं जानता। आहा, घर के सामने सभी तो आ गए! ये लोग कितने प्रसन्न हो रहे हैं! हमारी माँ को लेकर आनन्दित हो रहे हैं! आहा, वहाँ सभी तो हैं; हमारे परिचित कितने ही लोग हैं। वाह, फिर खेल देखो– हमारी माँ सभी के साथ नाच रही हैं! वह देखो, माँ मुझे बुला रही हैं।'** यह कहकर वे बहुत ऊपर तक उछलने लगे। फिर भूमि पर लेटकर साष्टांग प्रणाम करके स्थिर भाव से बैठ गए। आँखों से

लगातार आँसू की धारा बहने लगी; रह-रहकर पूर्ववत् खिल-खिलाकर हँसने लगे। कुछ क्षण बाद ही समाधिस्थ हो गए। सभी लोग स्तम्भित हो गए। 11 बजे तक गोसाँईजी को समाधिस्थ रहते देखकर, धीरे-धीरे सब लोग अपने घर चले गए। मैं भी अपने निवास-स्थान पर चला आया।

निवास-स्थान पर आने के बाद कई घण्टे तक चित्त बड़ा सरस एवं प्रफुल्लित रहा; फिर धीरे-धीरे मन में हलचल होने लगी। सोचने लगा– 'गोसाँईजी यह सब क्या कर रहे हैं? निराकार ब्रह्मज्ञानियों के प्रधान आचार्य होकर अनायास ब्राह्म-मन्दिर में खड़े होकर मूर्तिपूजा का प्रचार कर रहे हैं! नन्दी, भृंगी, वाल्मीकि, नारदादि का दर्शन और समय-समय पर उनकी स्तुति करना– यह सब क्या है? शिक्षित सभ्य लोगों के सामने, विशेषकर ब्राह्म लोगों के समाज में बैठकर, उन लोगों के सामने यह सब अंडबंड कहना क्या स्वाभाविक मानसिकता का लक्षण है? इस प्रकार के कार्य में ब्राह्म लोग कुछ नहीं कह रहे हैं, क्यों?' मैंने अत्यन्त उत्तेजित होकर, बड़ी बेचैनी के साथ तुरन्त नवकान्त बाबू, रजनी बाबू आदि के पास जाकर इस सम्बन्ध में चर्चा की। उन्होंने कहा, 'माघोत्सव हो जाए, इस विषय पर इस बार बड़ा आन्दोलन होगा। इस समय कुछ गड़बड़ न करना ही अच्छा है।'

भोजन के समय भाव की विचित्रता: अद्भुत उपासना

23 जनवरी, रविवार। भोजन के बाद दोपहर में लगभग डेढ़ बजे ब्राह्म-समाज में गया। वहाँ प्रचारक निवास में आश्चर्यजनक दृश्य देखकर मैं चकित हो गया! गोस्वामीजी के योग-पथावलम्बी बहुत-से लोग, फिकिरचन्द के कुछ लोग एवं ब्राह्म-समाज के अनेक लोग बैठे हुए हैं। ये सभी भोजन करने बैठे थे। दाल, भात, तरकारी इत्यादि भोजन की सामग्री सभी के सामने रखी हुई है, लेकिन कोई भी खा नहीं रहा है– सभी भाव में मग्न हैं। श्री कुंजलाल नाग जी अकेले गा रहे हैं और स्वयं ही मृदंग बजा रहे हैं। उनको भी बाह्यज्ञान नहीं है। दोनों हाथ की थाप मृदंग पर बराबर पड़ रही है, दृष्टि गोस्वामीजी की ओर स्थिर है। उच्च स्वर में गा रहे हैं और उन्मत्त होकर उछल रहे हैं। मृदंग से आज एक अपूर्व ध्वनि निकल रही है, गाने की तो बात ही नहीं। ऐसा लगा जैसे बहुत-से मृदंग एक ही ताल में बज रहे हैं और अनेक लोग एक स्वर में गा रहे हैं। इस प्रकार की अद्भुत घटना और कहीं देखी नहीं। जो लोग भोजन करने बैठे थे, दो-चार ग्रास खाते-खाते उनका भी बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। किसी के हाथ में भात का ग्रास रखा हुआ है, फिर कोई पत्तल के ऊपर गिरा पड़ा है; मुख का भात (ग्रास) मुख में ही रखे हुए कोई-कोई अचेत हो गए हैं; फिर थोड़ा बाह्यज्ञान होते ही कोई-कोई उसी दाल,

भात, तरकारी को बेधड़क सारे देह में मल रहे हैं। किसी की आँखों से लगातार आँसू की धारा बह रही है, तो कोई काँपता हुआ बार-बार चमक उठता है। किसी-किसी का तीव्र गति से श्वास-प्रश्वास चल रहा है और किसी-किसी के मुख से एक प्रकार की अद्भुत ध्वनि निकल रही है। शिक्षित ब्राह्म जैसे लोगों का भी इस प्रकार विचित्र भाव देखकर भूतों की घटना का आभास होने लगा। जूठे थाली और पत्तल पर किसी-किसी को गिरते देखकर मैं झटपट थाली-पत्तल हटा देता। महाभाव की तरंग और बढ़ गई। मृदंग और गाने की ध्वनि भी चार गुना बढ़ गई। पास वाले कमरे में उपस्थित महिलाएँ भी उन्मत्त हो उठीं। उनके रोने, चीत्कारने, 'आह-ऊह' करने की एवं अत्यधिक सिसकने की एक अद्भुत ध्वनि होने लगी। बारम्बार प्राणायाम की ध्वनि घर में चारों ओर फैल गई। आज भीतर-बाहर का भी भेद नहीं रहा– सब एकाकार हो गया। खुले स्थान में सबके सामने प्राणायाम की प्रक्रिया चलने लगी। बरामदे और आँगन में उपस्थित लोगों की भी नाना प्रकार की अवस्था हो गई। किसी को बाह्यज्ञान है, ऐसा लगता नहीं। कोई हँस रहे हैं, कोई रो रहे हैं, कोई भंयकर चीत्कार रहे हैं। फिर कुछ लोग जड़वत् बैठे हुए हैं। गोस्वामीजी अचेत होकर पड़े हुए हैं। कांगाल फिकिरचन्द आदि भी साष्टांग प्रणाम करने की अवस्था में पड़े हुए हैं। कुंज बाबू के भीतर असामान्य शक्ति प्रवेश कर गई। वे भाव में उन्मत्त होकर उछल-कूद करते-करते मृदंग बजाकर गाने लगे। चारों ओर भाव की तरंग बहने लगी। उस समय मृदंग अथवा गाने के बोल कुछ भी समझ नहीं पाया। एक प्रकार की अद्भुत एवं सब दिशाओं को कम्पित करने वाली ध्वनि की प्रबल तरंग बहने लगी एवं क्षण-क्षण में उसके प्रभाव से मेरा शरीर भी कम्पित होने लगा। भीतर-बाहर बड़ी हलचल मच गई। मुझे फिर अन्य किसी ओर देखने का अवसर नहीं मिला। इस प्रकार कितना समय बीत गया, पता नहीं। कुछ समय बाद देखा, दिन ढल गया है, गाना भी रुक गया। गोस्वामीजी अपने आसन पर बैठे हुए हैं; नशाखोर की भाँति झूम-झूमकर दाएँ-बायें एवं सामने की ओर बार-बार गिर पड़ते हैं; बीच-बीच में आँखें खोलकर इधर-उधर ताक रहे हैं। चारों ओर सन्नाटा है! गोस्वामीजी धीरे-धीरे कहने लगे– **'गहरे महासागर के एक चुल्लूभर पानी में आज गिर पड़े थे। सागर की जो लहर है, वह एक धक्के में फिर तट पर ले आई। आहा, इस महासागर में जो लोग एक बार गिरे हैं, तरंग के साथ-साथ वे लोग कितना नृत्य करते हैं, कितना आनन्द करते हैं!'**– इत्यादि।

संध्या होते ही ब्राह्म-मन्दिर और उसके चारों ओर का बरामदा लोगों से परिपूर्ण हो गया। गोस्वामीजी यथासमय प्रचारक निवास से भाव-विभोर अवस्था में झूमते-झूमते निकलकर ब्राह्म-मन्दिर में वेदी के ऊपर बैठ गए। चन्द्रनाथ बाबू ने

हारमोनियम बजाकर मधुर स्वर में गीत गाया। 'उद्‌बोधन' आरम्भ करने पर भावावेश से गोस्वामीजी का कण्ठ रुद्ध होने लगा। चन्द्र बाबू फिर गाने लगे। प्रार्थना के समय गोस्वामीजी भगवान् को बड़ी व्याकुलता से पुकारकर रोने लगे। मन्दिर के भीतर और बाहर उपस्थित सभी लोग मानो जड़वत् हो गए। ऐसा लगा जैसे भगवान् के आविर्भाव से उत्पन्न जीवन्त भाव सम्पूर्ण ब्राह्म-मन्दिर और उसके चारों ओर फैल गया है। गोस्वामीजी कहने लगे–

'माँ, आ गई? आहा, तुम्हारे साथ कितने लोग हैं! वह जो कितने ऋषि-मुनि, कितने साधु-महात्मा साथ में हैं! माँ, तुम्हारे चारों ओर ये लोग कितने आनन्द से नृत्य कर रहते हैं! वहाँ तो अपने कितने परिचित लोगों को देख रहा हूँ! माँ मुझे बुलाती क्यों हो? मैं क्या वहाँ जा सकूँगा? तुम कृपा करके मुझे हाथ से पकड़ोगी? मुझमें जाने की क्षमता नहीं है। फिर मैं जाऊँगा भी कहाँ? वहाँ? नहीं, वैसा क्या होता है? माँ, क्यों मुझे धोखा दे रही हो? मेरी क्या क्षमता है, वहाँ जा सकूँ, वहाँ पर बैठ सकूँ? माँ, मुझे वहाँ बैठने दोगी, बार-बार क्यों कहती हो? मैं तो बड़ा पापी हूँ। उन सब ऋषि-मुनियों के सामने कैसे बैठूँगा माँ?'– कुछ क्षण इस प्रकार कहकर गोस्वामीजी अचेत हो गए। एक के बाद एक गीत होने लगे, लेकिन गोस्वामीजी की चेतना नहीं लौटी। क्रमशः समाज का कार्य बन्द हो गया, एक-एक करके सब चले गए। गोस्वामीजी वेदी के ऊपर एक ही भाव से अचेत अवस्था में बैठे रहे, रात्रि में कितने समय तक इस भाव में रहे, पता नहीं।

24 जनवरी, सोमवार। इस बार माघोत्सव में अद्‌भुत दृश्य देख रहा हूँ। समाज-प्रांगण में अनेक लोगों का समागम होने से स्थान छोटा पड़ जा रहा है। सभी श्रेणी के धर्मार्थियों को गोस्वामीजी के प्रति आकृष्ट होते देखकर हम लोग सोचने लगे, ब्राह्म-समाज की ही शोभा बढ़ रही है। अन्य लोगों के साथ बातचीत करते समय भी हम लोग गोसाँईजी को लेकर ब्राह्म-समाज का गर्व करते हैं; लेकिन आजकल गोस्वामीजी यहाँ किस धर्म का अनुष्ठान करते हैं, साकार या निराकार किस मत के पक्ष में हैं, उसका ठीक स्पष्ट रूप से कुछ अनुमान नहीं कर पा रहे हैं। खुली सभा में वे एक बार खड़े होकर अपने धर्म-मत को व्यक्त कर दें, तो इस सम्बन्ध में सभी की आशंका दूर हो जाएगी। इसी अभिप्राय से हम लोगों ने 'साकार और निराकार उपासना' विषय में प्रवचन देने के लिए गोस्वामीजी से अनुरोध किया; परन्तु वे इस विषय पर कोई प्रवचन देने के लिए राजी नहीं हुए। 'मूर्ति-पूजा और ब्रह्मज्ञान' के सम्बन्ध में भी कुछ कहने के लिए राजी नहीं हुए। अन्त में 'ब्रह्म-उपासना' के सम्बन्ध में अपना मत प्रकट करने के लिए अनुरोध करने पर उन्होंने 'ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मवादी' विषय पर प्रवचन देने की सम्मति प्रकट की।

हम लोगों ने भी शीघ्र ही शहर में सर्वत्र इसका विज्ञापन दे दिया। आज ही संध्या के समय प्रवचन होगा।

अव्यक्त प्रवचन

अपराह्न में जाकर समाज में देखा, मन्दिर और बरामदे में थोड़ी भी जगह नहीं है। चारों ओर की विशाल भूमि भी लोगों से भर गई है। स्थानाभाव के कारण प्रवचन सुनने में असुविधा होगी, सोचकर कई लोग समाज से लौट जा रहे हैं। रोमन कैथोलिक चर्च के पादरी बर्नार्ड साहेब आकर एक कोने में चुपचाप बैठे हैं। संध्या होने के कुछ क्षण बाद ही गोस्वामीजी प्रवचन-स्थल पर आकर खड़े हुए। हाथ जोड़कर सभी का अभिवादन करके इस प्रकार कहने लगे–

"प्राचीनकाल में वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, सनक-सनातन आदि ब्रह्मर्षिगण ने जिस ब्रह्म की उपासना की थी– शास्त्र-पुराण, वेद-वेदान्त, उपनिषदादि जिस ब्रह्म की महिमा का कणमात्र वर्णन करने में पार न पाने से 'अव्यक्त अनिर्वचनीय' कहकर निर्वाक् हो गए– तुच्छ से भी तुच्छ मैं अबोध– मेरे मुख से आज आप लोग उसी महान् ब्रह्म की कथा सुनने आए हैं!" इत्यादि कहते-कहते वे बच्चों की भाँति रोने लगे। प्रवचन आरम्भ करने के लिए बारम्बार प्रयास करते, लेकिन रोने के वेग को रोक नहीं पाते; फिर वे बैठ गए। पाँच-छः मिनट के बाद पुनः कहना आरम्भ किए। इस बार भी महर्षिगण के ध्यानगम्य, परात्पर परब्रह्म के विषय में दो-चार बातें कहते ही उन्हें रोना आ गया। बार-बार प्रयास करके कहने जाते और कहते-कहते ही रुक जाने लगे; फिर भाव के अदम्य आवेग का संवरण न कर पाने से मुख को कपड़े से ढँककर बैठे रहे। कुछ क्षण इसी प्रकार व्यतीत करके, बैठे-बैठे ही हाथ जोड़कर रोते-रोते सब लोगों से कहने लगे– **'आज आप लोग मुझे आशीर्वाद दीजिए। आप सब लोग दया करके मेरे मस्तक पर पदाघात करके मेरे अहंकार को चूर्ण कीजिए। मैं बड़ा अभिमानी– मैं उनकी बात कहूँगा? मैं जानता ही क्या हूँ? मैं तो धूल हूँ! धूल!'** ऐसा कहकर उसी अनादि, अनन्त, एकमात्र अद्वितीय पुराणपुरुष की स्तुति के कुछ श्लोक पढ़ते ही भावावेश से उनका कण्ठ रुद्ध हो गया। अस्फुट भाषा में, भावमग्न अवस्था में **'त्वं हि, त्वं हि'** कहते-कहते ही समाधिस्थ हो गए।

जनपूर्ण ब्राह्म-समाज में बिल्कुल सन्नाटा हो गया। गोसाँईजी के उस 'त्वं हि, त्वं हि' कहने के साथ-साथ न जाने क्या हो गया; सब लोग उनकी ओर प्रसन्न मन से ताकते हुए कुछ क्षण स्तब्ध रहे। इस प्रकार पाँच-सात मिनट बीत गए। फिर चन्द्रनाथ बाबू हारमोनियम बजाकर गाने लगे। गोसाँईजी को सुधबुध नहीं है।

धीरे-धीरे सब उठ गए। ब्राह्म-समाज के परिसर में लोग जगह-जगह एकत्र होकर बातें करने लगे। प्रवचन सुनकर जो उपकार होता, आज गोसाँईजी की अवस्था देखकर हम लोगों का उसकी अपेक्षा अधिक उपकार हुआ। धन्य है ब्राह्म-समाज!

फरवरी, सन् 1887 ई॰

आसन को प्रणाम करने का कुसंस्कार

1 फरवरी, मंगलवार। गोसाँईजी मैमनसिंह (स्थान का नाम) घूमकर ढाका लौट आए हैं। उनको देखने प्रचारक निवास में पहुँचा; सुना, वे शौच के लिए गए हैं। मैं वहीं कमरे में बैठा रहा। कुछ क्षण बाद श्रद्धेय मनोरंजन गुह ठाकुरता जी आए। उन्होंने गोस्वामीजी के आसन के सामने जाकर, माथा टेककर प्रणाम किया। मनोरंजन बाबू को हम लोग उत्साही ब्रह्मसमाजी समझते हैं। उन्हें इस प्रकार रिक्त आसन को प्रणाम करते देखकर मैं चकित हो गया। मैं फिर शान्त न रह सका, उनसे पूछा– आप आनुष्ठानिक ब्राह्म हैं न? वहाँ प्रणाम क्यों किए? उन्होंने कहा– 'आनुष्ठानिक ब्राह्म होने से क्या गोसाँईजी को प्रणाम न करें?'

मैं– वहाँ गोसाँईजी हैं कहाँ? वे तो शौच के लिए गए हैं।

मनोरंजन बाबू– गए हैं, तो ठीक है। मैंने तो वहाँ गोसाँईजी को स्मरण करके प्रणाम किया है। मैं नहीं समझता, इसमें कोई दोष है।

मैं– इस बात को ब्राह्म-समाज में बैठकर कहने का आप साहस करते हैं? यदि ऐसा है, तो फिर आप हिन्दुओं को 'अन्ध-विश्वासी, कुसंस्कारी' क्यों कहते हैं? इन सब बातों को लेकर मनोरंजन बाबू के साथ मेरा तर्क होने लगा।

इस बीच गोसाँईजी शौच से आकर पास के कमरे में जलपान कर रहे थे। वे हम लोगों का यह सब वाद-विवाद सुनकर अपनी सास (श्री मुक्तकेशी देवी) 'बूढ़ी महाराजिन' से कहा– **"रिक्त आसन के सामने अब कोई प्रणाम न करें, आप इनको बतला देना! इसे लेकर फिर आलोचना अशान्ति होगी।"** मुझे अब वहाँ रुकना अच्छा नहीं लगा। नवकान्त बाबू के निवास पर चला आया। कुछ ब्रह्मसमाजी को वहाँ देखकर उन लोगों को झगड़े का विवरण सुनाया एवं और भी कई बातें उठाकर, प्रचारक निवास में मूर्ति-पूजा होने लगी है, वह भी बतलाया। 'गोस्वामीजी से योग-धर्म की दीक्षा लेते ही अच्छे-अच्छे लोग भी बिगड़ जाते है, उनकी ऐसी ही दुर्दशा होती है'– ऐसा कहकर उन लोगों ने मुझे सतर्क कर दिया।

ब्राह्म-समाज में आन्दोलन: गोसाँईजी का पदत्याग का संकल्प

फरवरी, द्वितीय सप्ताह तक। अब देख रहा हूँ, सभा-समिति करके गोस्वामीजी के कार्य-कलाप, साधन-भजन को लेकर ब्राह्म-समाज में आन्दोलन होने लगा है। 'गोसॉईजी जिस भाव से चल रहे हैं, उससे उनके द्वारा प्रचारक का कार्य नहीं होगा। एकान्त प्रिय गोस्वामीजी के ध्यान-धारणा-समाधि से ब्राह्म-समाज का कोई उपकार नहीं हो रहा है। उनके द्वारा समाज की कोई उन्नति की आशा नहीं है। व्यक्तिगत भाव से वे जो भी क्यों न करें, प्रकट रूप से जब वे गुरुवाद को स्वीकार करते हैं तथा 19वीं शताब्दी में उच्च शिक्षित समाज के नेता होकर भी जब वे बड़े अज्ञानियों की भाँति 'शास्त्र अभ्रान्त है' इस कुसंस्कारी मत का प्रचार कर रहे हैं, तब उनके द्वारा इस समाज के यश वृद्धि की आशा कहाँ है? असाम्प्रदायिक भाव से धर्म का प्रचार करना है, तो 'ब्राह्मधर्म प्रचारक' नाम क्यों है? हिन्दू देवी-देवता, हिन्दुओं की आचार-पद्धति एवं हिन्दुओं के प्राचीन कुसंस्कार के विरुद्ध कुछ न कहकर वरन् अब वे समय-समय पर उन सबको बढ़ावा ही दे रहे हैं। इस प्रकार की स्थिति में तो गोस्वामीजी द्वारा ब्राह्म-समाज का भयंकर अनिष्ट ही हो रहा है।' इस प्रकार की बहुत-सी बातों की आलोचना ब्रह्मसमाजियों के घर-घर में, खुली सभाओं में एवं प्रमुख ब्राह्म संवाद-पत्रों में होने लगी। प्रचारक का कार्य गोस्वामीजी न करें, अधिकांश ब्रह्मसमाजियों की अब यही इच्छा है।

सुना है, गोस्वामीजी सम्भवतः प्रचारक-पद का परित्याग करके स्वाधीन भाव से उदासीन रहकर अवशिष्ट जीवन निर्जन में साधन-भजन करके बिताएँगे, इस प्रकार का आशय वे प्रकट कर रहे हैं। अतिशीघ्र वे गया के आकाशगंगा पहाड़ पर चले जाएँगे।

फरवरी—मार्च, सन् 1887 ई०

बारदी के ब्रह्मचारीजी की चर्चा

फरवरी-मार्च। आज रात्रि की साधन-बैठक में सम्मिलित होने के विचार से स्कूल की छुट्टी के बाद मैं प्रचारक निवास में जा पहुँचा। गोस्वामीजी के आसन के पास एक जोड़ी खड़ाऊँ रखा हुआ देखा। गोस्वामीजी तब आसन पर नहीं थे। खड़ाऊँ को बहुत बड़ा व पुराना देखकर, उसे हाथ में लेते हुए पूछा— यह खड़ाऊँ किसका है? गोस्वामीजी की सास ने कहा— 'ब्रह्मचारीजी ने गोसाँई को दिया है।' मैंने कहा— अब ये ब्रह्मचारीजी कौन हैं? उन्होंने कुछ चकित होकर कहा— 'तुमने ब्रह्मचारी के बारे में नहीं सुना? समाधि-अवस्था में गोसाँई को पता चला कि बारदी

में एक महापुरुष गुप्त रूप से हैं। गोसाँई उसके बाद उनका दर्शन करने गए थे। उनकी आयु अभी 156 वर्ष है। ब्रह्मचारीजी ने अपना परिचय देकर कहा है, वे गोसाँई के पितामह के चाचा लगते हैं। पूर्वजों के चिह्नस्वरूप उन्होंने यह खड़ाऊँ और वह कम्बल गोसाँई को दिया है।' ब्रह्मचारीजी के बारे में जानने का मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। साधन-बैठक में बैठकर रात्रि में शिष्यों के साथ प्राणायाम करते समय गोस्वामीजी प्रायः ही गद्गद भाव से 'जय ब्रह्मचारी! जय रामकृष्ण परमहंस! जय माताजी! जय परमहंसजी! जय गुरुदेव, जय गुरुदेव'– इस प्रकार कहते-कहते समाधिस्थ हो जाते हैं। उस समय महापुरुषों के आविर्भाव से गुरुभाइयों के भीतर अद्भुत भाव का स्फुरण और अलौकिक अवस्था आदि का विकास होते देखता हूँ। ये ब्रह्मचारीजी क्या उन सब महापुरुषों में से ही एक हैं? एक भजनशील गुरुभाई से ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में पूछने पर उन्होंने कहा– 'कुछ दिन पहले समाधि-अवस्था में गुरुदेव को बारदी में एक महापुरुष की उपस्थिति ज्ञात हुई। उसी समय ब्रह्मचारीजी को भी गोस्वामीजी के विषय में ज्ञात होने पर, हमारे ही कुछ गुरुभाइयों से उन्होंने कहा– 'गोसाँई एक बार आकर हमें दर्शन देंगे नहीं? उनके नहीं आने पर मुझे ही जाना पड़ेगा। भले व्यक्ति हैं सुना है, कोई विशेष सम्बन्ध भी हो सकता है; नहीं तो उनकी ओर मन का इतना आकर्षण क्यों है?' गोसाँईजी शिष्यों के मुख से यह बातें सुनकर ब्रह्मचारीजी का दर्शन करने गए थे। उस समय का विवरण पता करके और भी विस्तारपूर्वक जानने की मुझे बड़ी उत्सुकता है।

बारदी से आकर गोस्वामीजी इन गुप्त महापुरुष ब्रह्मचारीजी का सब लोगों के समक्ष प्रचार करने लगे। ढाका, विक्रमपुर, मैमनसिंह, फरीदपुर आदि स्थानों से बड़ी संख्या में शिक्षित सज्जन अब ब्रह्मचारीजी का दर्शन करने बारदी जा रहे हैं। कुछ ही दिनों के भीतर पूरे पूर्वबंगाल में ब्रह्मचारी का नाम प्रचारित हो गया। ब्रह्मचारीजी की जो घटनाएँ सुन रहा हूँ, मैं उस पर विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ। यदि कभी उनका दर्शन हुआ, तब तो साक्षात् उनके मुख से ही उनके जीवन का अद्भुत विवरण सुनकर 'डायरी' में लिख रखने की इच्छा है।

———

मई–जून, सन् 1887 ई॰

दरभंगा में गोस्वामीजी की प्राण-संकट पीड़ा

14 मई, शनिवार। स्कूल की छुट्टी लगते ही घर आ गया। कई दिनों से गोसाँईजी की कोई खबर नहीं मिली। गुरुभाइयों के पास जाने के लिए मन बड़ा बेचैन हो गया। ढाका के लिए निकल पड़ा। शंकरटोला के गुरुभाई डॉ॰ प्रसन्नकुमार मजूमदार जी के निवास के विपरीत ओर, अपने एक मित्र के निवास पर रुका। सबेरे खिड़की खोलकर बैठा हूँ, प्रसन्न बाबू के निवास पर बहुत-से लोगों का कोलाहल सुनाई पड़ा। राम मजूमदार जी ने मुझे देखकर कहा– 'आपको गोसाँईजी की कुछ खबर है? वे बहुत ही अस्वस्थ हैं।' यह बात सुनते ही मैं डॉ॰ बाबू के निवास पर गया। वहाँ देखा– अनेक गुरुभाई-बहिन विभिन्न स्थानों पर गोसाँईजी की चर्चा कर रहे हैं, कोई-कोई रो रहे हैं। पूरा विवरण जानने के लिए व्यग्र होकर राम बाबू से पूछने पर उन्होंने कहा– 'दरभंगा में गोस्वामीजी को डबल निमोनिया होने से दोनों फेफड़े सड़ने लगे हैं। अवस्था खराब है। गोसाँईजी का परिवार, योगजीवन, कुंज घोष, प्रसन्न बाबू ये लोग कल ही दरभंगा गए। कल प्रातः हम लोगों ने यहाँ से अर्जेंट टेलिग्राम भी किया, अभी तक कोई समाचार नहीं मिला। क्या हुआ, पता नहीं।' गोसाँईजी की अवस्था के बारे में सुनकर हृदय काँप उठा; भीतर के कष्ट से सिसकने लगा। अपने निवास-स्थान में आकर दरवाजा बन्द करके 7 बजे से लेकर दिन के लगभग 1 बजे तक अविराम रोते हुए भगवान् के चरणों में एवं गोसाँईजी के गुरु परमहंसजी से उनके आरोग्य के लिए प्रार्थना की। हृदय में जलन होने लगी। जगत् अन्धकारमय लगने लगा। गोसाँईजी के आरोग्य का समाचार पाने के लिए रात-दिन छटपटाते हुए समय काटने लगा।

आकाश-पथ से ब्रह्मचारीजी का दरभंगा गमन

दरभंगा में इस बार गोस्वामीजी ने जिस प्रकार से आरोग्य प्राप्त किया, वह एक अद्भुत वृत्तान्त है। शुक्रवार को प्रातः 'टेलिग्राम' आया– 'गोसाँईजी की अवस्था खराब है, डबल निमोनिया होने से दोनों फेफड़े सड़ने लगे हैं। बचने की आशा नहीं है।' 'तार' पाकर उसी दिन गोसाँईजी के पूरे परिवार के साथ कुछ गुरुभाई दरभंगा के लिए निकल पड़े। इधर हमारे गुरुभाई श्री श्यामाचरण बक्शी जी यह बुरा समाचार सुनकर तुरन्त ब्रह्मचारीजी के पास बारदी चले गए एवं ब्रह्मचारी के चरणों में साष्टांग प्रणाम करके हाथ जोड़कर रोते-रोते उन्होंने कहा– 'हमारे गुरुदेव की आप दया करके रक्षा कीजिए। मेरे जीवन का आधा अंश लेकर उन्हें बचा लीजिए।' ब्रह्मचारीजी ने कहा– 'उनके जाने से क्या होता है, मैं तो हूँ।'

सरल गुरुनिष्ठ बक्शी जी ने कहा, 'हम आपको नहीं चाहते, उनको ही चाहते हैं।' उनकी निष्कपट गुरुनिष्ठा देखकर ब्रह्मचारी कुछ क्षण के लिए ध्यानस्थ हो गए, फिर एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर उन्होंने कहा, 'अन्तिम समय में आया है, अब और क्या होगा? मैंने तो उनको कमरे में नहीं देखा। या तो मृत्यु हो गई है या उनके गुरुजी ने उनको देह से बाहर रहने की शक्ति दी है। अच्छा तू जा; यदि मंगलवार के भीतर 'तार' आए, तो समझना डर नहीं है। चिन्ता मत कर। मैं वहाँ जाता हूँ।' इसके पश्चात् अपने आसन से उठकर ब्रह्मचारीजी ने सबको बुलाकर कह दिया– 'जितने दिन तक भीतर से दरवाजा न खोलूँ, कोई इस दरवाजे पर धक्का नहीं देना अथवा इसे खोलने का प्रयास नहीं करना।' ब्रह्मचारीजी ने कमरे में जाकर भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया।

उस दिन ढाका से भी योगजीवन आदि सब लोग दरभंगा जा रहे थे; ग्वालन्द के जहाज पर सवार होकर सब उदास बैठे थे, कुछ लोग रो रहे थे; अचानक योगजीवन आकाश की ओर देखकर अंगुलि से संकेत करते हुए कह उठे– 'वह देखो, ब्रह्मचारीजी भी दरभंगा जा रहे हैं। मुझसे उन्होंने हाथ हिलाकर कहा, मैं भी दरभंगा जा रहा हूँ। तुम लोग चिन्ता मत करो, कोई डर नहीं है।' मुक्तकेशी देवी ने भी दरभंगा पहुँचकर देखा था, पास के कमरे में ब्रह्मचारीजी गोसाँईजी की ओर ताकते हुए बैठे हैं। मंगलवार तक ढाका के गुरुभाई टेलिग्राफ ऑफिस में दौड़धूप कर रहे थे; वहाँ खबर आई गोस्वामीजी स्वस्थ हो रहे हैं।

गोस्वामीजी का दरभंगा आदि स्थानों में वास

गत फरवरी के मध्य से जुलाई के मध्य तक गोस्वामीजी ढाका में नहीं थे। अतएव उनका इस समय का कोई भी विवरण मेरी डायरी में नहीं लिखा है। गुरुभाई श्री कुंजबिहारी गुह ठाकुरता, श्री ज्ञानेन्द्र मोहन दत्त जी ने अपनी डायरी में गोसाँईजी की इस समय की अद्‌भुत घटनावली विस्तृत रूप से लिख रखी है। किस समय गोस्वामीजी कहाँ और किस प्रकार थे, उनकी डायरी देखकर उसका संकेत मात्र यहाँ लिख रखा हूँ।

21 फरवरी, सोमवार को गोस्वामीजी पश्चिम की ओर जाने के अभिप्राय से कोलकाता के लिए निकले। वहाँ एक दिन रुककर अगले दिन श्यामनगर गए। वहाँ से नौका द्वारा चुँचुड़ा पहुँचकर, बुधवार को उन्होंने महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के साथ भेंट की। महर्षि उन्हें देखकर खूब आनन्द प्रकट करते हुए बोले– 'अहा! सब कहते है, गोसाँई पागल हो गए हैं, मूर्तिपूजकों के जैसा व्यवहार करते हैं; लेकिन कहाँ? मैं तो इनको धूप-धूने की सुगन्ध और धुएँ से आवृत्त उज्ज्वल दुर्गा प्रतिमा की भाँति देख रहा हूँ।'

इसी समय महर्षि के पास एक पत्र आया। किसी प्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी ने कुछ प्रश्न करके उनको लिखा– 'आपने निर्जन में कई दिनों तक रहकर धर्म-साधना की है– इससे क्या मिला एवं इस सम्बन्ध में आप क्या उपदेश देते हैं?' इत्यादि। महर्षि ने पत्र का उत्तर देने हेतु अपने अनुगत भक्त श्री प्रियनाथ शास्त्रीजी से कहा– 'लिख दो अब से ..... गोसाँईजी जो कुछ कहते हैं, वह मेरा ही कथन है।'

महर्षि के साथ भेंट करके गोस्वामीजी वर्द्धमान गए। वहाँ ब्राह्म-समाज के पास ही समाज के सचिव के निवास में रहकर प्रतिदिन संकीर्तन में आनन्द की तरंग बहाने लगे। श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय आदि प्रसिद्ध ब्राह्मगण कोलकाता एवं अन्य दूर-दूर के स्थानों से आकर गोसाँईजी की उपासना में सम्मिलित होने लगे। दिनभर गोसाँईजी के साथ धर्म-चर्चा में सब लोग बड़ा आनन्द प्राप्त करने लगे। एक दिन गोसाँईजी पलाश के एक वृक्ष को देखकर एकाएक रुक गए। फिर उसके प्रत्येक फूल में भगवती का आविर्भाव देखकर मूर्च्छित हो गए। अन्य एक दिन महाराजा के गुलाब-बगीचे में गुलाब की शोभा देखते-देखते समाधिस्थ हो गए। वर्द्धमान में रहते समय उन्होंने श्री कुंजबिहारी गुह, श्री देवेन्द्रनाथ सामन्त आदि को दीक्षा प्रदान की। उसके बाद शिष्यों को साथ लेकर दरभंगा की ओर निकल पड़े।

मार्च के अन्त में गोस्वामीजी दरभंगा पहुँच गए। कुछ दिन बाद उनके छाती के निचले भाग में एक प्रकार की वेदना होने लगी। होमियोपैथी चिकित्सा में 'नक्स वामिका' के सेवन से कुछ दिन ठीक रहे; किन्तु उससे फिर कोई लाभ नहीं हुआ। तब समस्तीपुर के प्रसिद्ध डॉक्टर नगेन्द्र बाबू को बुलाया गया। इधर बाँकीपुर के वकील श्री ब्रजेन्द्रमोहन दास जी ने वहाँ के सुप्रसिद्ध दो डॉक्टरों को भेज दिया। चार बड़े-बड़े डॉक्टरों के साथ गोसाँईजी के शिष्य डॉ॰ प्रिय बाबू भी थे; पर इनकी चिकित्सा से गोसाँईजी की पीड़ा कुछ कम नहीं हुई, वरन् वह क्रमशः बढ़ने लगी। उनमें उठने की भी शक्ति नहीं रही; बिछौने में लेटे-लेटे ही मल-मूत्र त्यागने लगे। रोग की वृद्धि के साथ-साथ डबल निमोनिया के शोचनीय परिणाम से गोसाँईजी के जीवन के विषय में सब लोग बिल्कुल निराश हो गए। फिर एक दिन उनकी मरणासन्न अवस्था होने पर अचानक उनके गुरु मानससरोवर निवासी परमहंसजी कुछ महापुरुषों के साथ सूक्ष्म शरीर में आकर अलौकिक शक्ति के प्रयोग से गोस्वामीजी को स्वस्थ करके चले गए।

गोस्वामीजी स्वस्थ होकर 1 जून, बुधवार को अपने परिवार एवं शिष्यों के साथ देवघर के लिए निकल पड़े। रास्ते में मोकामाघाट से गाड़ी बदलनी होती है। इस समय ज्ञान बाबू टिकट लेने बुकिंग ऑफिस में गए। लौटकर उन्होंने देखा कि गाड़ी में बहुत-सी लीचियाँ रखी हुई हैं। उन्होंने पूछा– 'लीची कहाँ से आई?' गोसाँईजी ने कहा– **"दरभंगा में रहते समय लीची खाने की इच्छा हुई थी,**

इसलिए परमहंसजी दे गए।" सभी को आश्चर्य हुआ। कौन कब लीची दे गए, किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि उस क्षेत्र में अभी लीचियाँ पकी भी नहीं– ऐसी अच्छी पकी लीचियाँ कहाँ से मिल गईं?

देवघर पहुँचकर गोस्वामीजी ने रहने के लिए स्कूल का कमरा लिया। विविध स्थानों का भ्रमण करके एवं विग्रह आदि का दर्शन करके, अगले दिन प्रातः आदर्श ब्रह्मसमाजी श्री राजनारायण बसु जी के घर गए। उस दिन परम भक्त वृद्ध राजनारायण बाबू के साथ धर्म-चर्चा में ऐसी आनन्द की लहर बही कि दोपहर का समय बीत गया, भूख-प्यास, स्नान-आहार की ओर किसी का एक बार ध्यान भी नहीं गया। देवघर से गोसाँईजी कोलकता आ गए। कोलकाता से जून के दूसरे सप्ताह में वे सबको लेकर शान्तिपुर पहुँचे। 12 जून, रविवार को उन्होंने शिष्यों के साथ शान्तिपुर के समीप 'बाबला' जाकर श्री अद्वैतप्रभु के पीठ-स्थान का दर्शन किया। स्थान अत्यन्त निर्जन एवं सुन्दर है, तपस्या के लिए बड़ा ही उपयुक्त है। इस स्थान पर गोस्वामीजी ने सबसे कहा– **"देवताओं के स्थान में जाने से विग्रह के ऊपर दृष्टि स्थिर रखकर एकाग्रता के साथ नाम-जप करते रहने से प्रकृत देवता के दर्शन हो सकते हैं।"** अद्वैत प्रभु का दर्शन पाकर गोसाँईजी ने साष्टांग प्रणाम किया।

13 जून, सोमवार को गोस्वामीजी चुवाडाँगा पहुँच गए; उनके परिवार के लोग कुमारखाली चले गए। जून के मध्य में सब लोग एक साथ ही ढाका पहुँचे। दो-चार दिन विश्राम करके गोसाँईजी सबको लेकर ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने बारदी गए। ब्रह्मचारीजी ने कहा– 'दरभंगा जाकर तुमको तो कमरे में देखा नहीं!' गोसाँईजी ने कहा– **'मेरे गुरुदेव ने मुझे देह से बाहर निकाल रखा था।'** बारदी में कुछ दिन रहकर अब वे ढाका आकर ब्राह्म-समाज के प्रचारक निवास में पूर्ववत् वास कर रहे हैं।

व्याधि से मुक्ति का अद्‌भुत विवरण

गोस्वामीजी ढाका आ गए हैं। सायं साढ़े 5 बजे गोस्वामीजी का दर्शन करने समाज-मन्दिर में गया। गोसाँईजी की धर्मपत्नी को आज पहली बार मैंने पैर छूकर प्रणाम किया। प्रचारक निवास में आज लोग समा नहीं पा रहे हैं। गोसाँईजी को प्रणाम करके बैठ गया। एक बात भी कहने का मुझे अवसर न मिला। गोसाँईजी का चेहरा देखकर मुझे बड़ा कष्ट होने लगा। शरीर अत्यन्त पीड़ित है। सिर पर बाल नहीं– मुंडे हैं। रंग बिल्कुल काला, शरीर बहुत दुर्बल एवं दुबला-पतला है। हाथ, पैर, यहाँ तक कि सिर भी सूख गया है। अच्छे परिचित लोग भी गोसाँईजी

को अब पहचानने में भ्रमित हो जाते हैं। वे सिद्धासन में एक ही भाव में बैठे हैं, उनकी दृष्टि स्थिर है। साधना के सिवा और कोई काम नहीं। कोई कुछ प्रश्न करे, तो चौंक जाते हैं; बहुत संक्षेप में उत्तर देकर पुनः अपने भाव में मग्न हो जाते हैं। बहुत समय तक बैठे रहने के बाद अपने निवास-स्थान पर चला आया।

गोस्वामीजी के आरोग्य के विषय में सुनने के लिए बड़ा कौतूहल होने लगा। उनके शिष्यों के मुख से जो सब आश्चर्यजनक बातें सुन रहा हूँ, उस पर मैं विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ। दो-चार दिन प्रचारक निवास में आना-जाना करके पण्डित जी, श्रीधर आदि के मुख से गोस्वामीजी के आरोग्य का जो अद्‌भुत वृत्तान्त सुना और गोस्वामीजी ने स्वयं भी समय-समय पर उस विषय में जिस प्रकार कहा, उसमें कोई अन्तर नहीं है। अद्‌भुत घटना को जैसा सुना, लिखकर रख लेता हूँ।

गोस्वामीजी के रोग की दशा बहुत गम्भीर होने से उनके साथ रहने वाले शिष्यगण बिल्कुल पागल-से हो गए। बड़े-बड़े विद्वान डॉक्टर सब समय आ-आकर यथासाध्य गोस्वामीजी की चिकित्सा करने लगे। खर्च भी बहुत अधिक होने लगा। बहुत प्रयास करने के बाद भी गोस्वामीजी की अवस्था क्रमशः बिगड़ती ही गई; तब सभी लोग निराश हो गए। इसी समय गोस्वामीजी के शिष्यों के बीच कुछ लोग उनके बिछौने की ओर देखकर बीच-बीच में अचानक चौंकने लगे। उन्होंने देखा, चार सूक्ष्म-देहधारी– एक मुण्डित-मस्तक, एक सफेद दाढ़ी-मूँछ के साथ जटाधारी, एक श्याम वर्ण के और एक बड़े तेजस्वी गौर-वर्ण, स्थूल व दीर्घाकृति के प्राचीन महापुरुष गोसाँईजी के चारों ओर क्षण-क्षण में प्रकट होते हैं, फिर तुरन्त अदृश्य हो जाते हैं। वे कौन हैं; क्यों अचानक प्रकट होते हैं और अदृश्य हो जाते हैं– शिष्यों के भीतर वही चर्चा चलने लगी। कुछ लोग यह अद्‌भुत घटना देखकर, आने वाली विपत्ति की आशंका से अत्यन्त भयभीत और व्याकुल हो गए; किन्तु कुछ लोग उन महात्माओं के बीच परिचित बारदी के ब्रह्मचारीजी महाराज को देखकर, इसे मंगलमय मानकर आनन्दित एवं आश्वस्त होने लगे। इधर गोस्वामीजी की चेतना विलुप्त हो गई, फिर नाड़ी में स्पन्दन नहीं रहा। डॉक्टर लोग आकर उन्हें एक बार देखे और बाहर जाकर कह गए– 'अब समय नहीं है, इस बार वे गए।' तब राधाकृष्ण बाबू विचलित होकर अत्यन्त दुःखी मन से एकतारा लेकर भगवान् का नाम गान करने लगे। गोस्वामीजी का शरीर स्थिर, चैतन्यहीन था। पता नहीं किस प्रकार, किस शक्ति के संचार से वे दो-एक बार सिर हिलाते हुए अचानक डरे हुए की भाँति उछल पड़े एवं उच्च स्वर में **'हरि बोल, हरि बोल'** कहते हुए दौड़-दौड़कर उद्दाम नृत्य करने लगे। 'ये क्या! ये क्या हुआ, ये क्या देख रहे हैं, यह भगवान् की ही असाधारण कृपा साक्षात् रूप से प्रकाशित हुई है! जय दयालु ठाकुर, बोल हरि बोल'– कहकर गुरुभक्त शिष्यगण भाव के वशीभूत होकर भगवान्

की महिमा का कीर्तन करने लगे। संकीर्तन की उच्च ध्वनि चारों दिशाओं को कम्पित कर दी। गोसाँईजी पर विपत्ति का अनुमान करके कई लोग दौड़-दौड़कर कीर्तन-स्थल पर आ गए। तब वे लोग अद्‌भुत भावावेश में गोस्वामीजी को नृत्य करते देखकर एवं उनकी हुंकार-गर्जन के साथ उच्च स्वर में **'हरि बोल'** की ध्वनि सुनकर आश्चर्यचकित हो गए। डॉक्टर लोग भी संकीर्तन-स्थल पर आ गए, गोस्वामीजी को उछल-उछलकर 'हरि बोल, हरि बोल' कहते हुए नृत्य करते देखकर वे लोग स्तब्ध हो गए। क्रमशः कीर्तन बन्द हो गया। गोस्वामीजी भगवान् को साष्टांग प्रणाम करके धीरे-धीरे उठकर बैठ गए। तब डॉक्टरों ने कहा– 'महाराज, हमारा चिकित्सा-शास्त्र मिथ्या है। हम लोग कुछ जानते ही नहीं, कुछ समझते भी नहीं– आज आपके जीवित बचने से वह स्पष्ट प्रमाणित हो गया।'

——————

जुलाई, सन् 1887 ई॰

6 जुलाई, बुधवार। गोस्वामीजी उसके बाद एक बार सपरिवार बारदी के ब्रह्मचारीजी के साथ भेंट करने गए थे। वहाँ भी सम्भवतः अनेक आश्चर्यजनक घटनाएँ हुई थी।

धर्म और नीति के सम्बन्ध में उपदेश

9 जुलाई, शनिवार। आजकल गोस्वामीजी को लेकर सर्वत्र जिस प्रकार चर्चा हो रही है, वह अब हम लोगों को सहन नहीं होती। किसी प्रकार से गोस्वामीजी के मुख से प्राचीन हिन्दूधर्म के कुसंस्कार और हिन्दू-समाज की दुर्नीति के विरुद्ध दो-चार बातें सुन लें, तो हम लोग गोसाँईजी को अपने ही समान ब्राह्मतावलम्बी कहकर अन्य लोगों का मुँह बन्द कर सकते हैं; लेकिन वे धर्म के विषय में कोई बात किसी सम्प्रदाय के विरुद्ध कहते ही नहीं, यह एक बड़ी मुस्किल हो गई है। आज गोसाँईजी से 'धर्म और नीति' विषय पर प्रवचन देने का अनुरोध किया गया। शरीर अत्यन्त दुर्बल होने पर भी वे इसके लिए राजी हो गए। सायं साढ़े 5 बजे वे ब्राह्म-मन्दिर में आकर एक साधारण बेंच के ऊपर बैठकर इस प्रकार कहने लगे। मैं नोट करने लगा, यथा–

आज के वक्तव्य का विषय है– 'धर्म और नीति'। धर्म कहने से हमारा क्या तात्पर्य है? जिस प्रकार अग्नि का धर्म दाहिका शक्ति है, जल का धर्म शीतलता है; उसी प्रकार धर्म भी मानव का स्वभाव है। जो सभ्य-असभ्य, ज्ञानी-अज्ञानी, शिशु-वृद्ध आदि सभी प्रकार की अवस्था

के लोगों के भीतर साधारण रूप से विद्यमान है, वही मानव का स्वाभाविक गुण है। इस गुण को तीन भागों में विभक्त किया जाता है– ज्ञान, प्रेम और इच्छा। इन तीनों गुणों की वृद्धि करना ही मानव-जीवन का उद्देश्य है– यही मानव का धर्म है।

धर्म सत्य वस्तु है। जो सत्य लोगों के समक्ष सत्य प्रतीत होता है, जिसे प्रत्येक जाति में, प्रत्येक सम्प्रदाय में सत्य मानकर विश्वास करते हैं, जिसमें व्यक्ति-विशेष का भी मत-विरोध नहीं है, जो सबके लिए सत्य है, वही मानव प्रकृति का धन है– स्वभाव का सत्य है।

जगत् की किसी ने सृष्टि की है, जगत् है, मैं एक मनुष्य हूँ। इन तीनों बातों का ज्ञान सभी मानव को स्वभावतः होता है। इसे कहीं सीखना नहीं पड़ता। सत्य बात कहना उचित है, अन्य के प्रति अत्याचार करना अनुचित है आदि कुछ विषय स्वभाव के सत्य हैं। जहाँ मनुष्य हैं, वहीं ये सब सत्य विद्यमान हैं। सत्य का बोध स्वभाव के साथ-साथ है। मन के इन सब सहज सत्य को जो जिस परिमाण में समझ सकते हैं, ज्ञान उनके भीतर उसी परिमाण में प्रकाशित होगा। सहज सत्य का अनुसरण करके धर्म प्राप्त किया जाता है। मानव की यथार्थ प्रकृति अथवा सहज सत्य ही मानव का धर्म है। चित्त में सन्तोष न रहने से धर्म कभी प्राप्त नहीं होता। सरल भाव से सत्य का अनुसरण करने से चित्त में सन्तोष प्राप्त होता है। असत्य कार्य, असत्य चिन्ता करने से चित्त में असन्तोष उत्पन्न होता है। चित्त की सन्तुष्टि के लिए सर्वदा सरल भाव से सत्य का अनुसरण करना पड़ता है।

सहज सत्य का जो लोग अनुष्ठान करेंगे, वे मन की स्वाभाविक वृत्ति के अनुरोध से करेंगे, किसी के भरोसे में नहीं रहेंगे; लोगों की ओर, समाज की ओर, किसी के उपकार या अनिष्ट की ओर, यहाँ तक कि स्वयं के मंगल-अमंगल की ओर भी दृष्टि नहीं रखेंगे; अपना कर्त्तव्य अपने मन से करते जाएँगे। उनका कार्य लोगों को दिखाने के लिए नहीं होगा। किसी की ओर ताके बिना चन्द्र-सूर्य की भाँति अपना कार्य चुपचाप करते जाएँगे! इस प्रकार कोई चलता है, तो आसपास के लोग उनका जीवन देखकर जीवन प्राप्त करेंगे, धन्य हो जाएँगे।

नीति क्या है? जो सब सहज सत्य की बात कही गई है– अर्थात् सत्य कहना, किसी का अनिष्ट नहीं करना, अश्लील और अनिष्टकारी व्यवहार से दूर रहना इत्यादि– यही साधारण नीति है। इस साधारण नीति को सभी मानते हैं। प्राकृतिक और मानव जाति की स्वाभाविक

नीति– यह सभी के लिए पालन करने योग्य है। इसके सिवा और भी अन्य प्रकार की नीति है। वह देश, काल, पात्र की भिन्नता के अनुसार कभी तो आवश्यक होती है, फिर कभी नहीं भी होती। यह नीति सब जगह समान नहीं होती। एक देश के लिए जिसे कर्त्तव्य मानकर अवलम्बन किया जाता है, अन्य देश के पक्ष में उसे घोर पाप मानकर त्याग किया जाता है। कहीं पर लोग मत्स्य-मांसाहार को तो कर्त्तव्य मान लेते हैं, फिर कहीं उसे जघन्य पाप कहकर विषवत् त्याग देते हैं। किसी स्थान में मलेरिया आरम्भ होने पर दूषित जलवायु और स्थान को सुधारने के लिए, लोगों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए नई नीति का थोड़ा अवलम्बन करना आवश्यक होता है; परन्तु मलेरिया के कम हो जाने पर फिर उस नीति को लेकर काम करने की आवश्यकता नहीं होती। विपरीत समय में जो नीति आवश्यक है, समय अनुकूल हो जाने पर फिर वह अनावश्यक बोध होती है। इसके साथ बहुत कम लोगों का सम्बन्ध रहता है। हत्यारों को फाँसी दी जाती है, वर्तमान समय में इस देश के लोगों के पक्ष में यही नीति है; परन्तु अमेरिका आदि कई स्थानों में इस नीति को अत्यन्त निन्दित मानकर स्वीकार नहीं करते। अतएव देश के आधार पर नीति इस देश में है, अन्य देश में नहीं। काल के आधार पर नीति आज है कल नहीं; फिर पात्र के आधार पर नीति मेरे लिए है, तुम्हारे लिए नहीं। सहज धर्म-नीति, जो देश-काल-पात्र के आधार पर नहीं होती, वह किन्तु सर्वत्र सर्वदा एक जैसी है। वह आत्मा के कल्याण के सम्बन्ध में, आत्मा की उन्नति के विषय में सभी के लिए समान है। अवस्था के अनुसार किन्तु मनुष्य की साधारण नीति और कर्त्तव्य की पृथकता रहेगी ही।

एक आम के पेड़ के पाँच आम खाकर उसकी गुठली को पाँच-सात फीट के अन्तर-अन्तर में रोपण करने पर भी उससे निकले वृक्ष ठीक एक जैसे नहीं होंगे। फिर एक ही पेड़ के पाँच आम बिल्कुल एक जैसे कभी देखे नहीं जाते। स्वाद, वजन, आकार में एक के साथ अन्य का थोड़ा प्रभेद रहेगा ही; बीज की प्रकृति और शक्ति के अनुसार जलवायु, उष्णतादि के आकर्षण से भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। उसी प्रकार एक ही माता के गर्भ से जन्म ग्रहण करके भी भिन्न-भिन्न अवस्था के पाँच सगे भाई भिन्न-भिन्न कर्त्तव्य के अधीन होते हैं। मानव शरीर में जो सब माँसपेशी, हड्डी, शिरा, नाड़ी, अँतड़ी, हाथ-पैरादि का रहना आवश्यक है; वह प्रत्येक का एक जैसा होने पर भी, रुचि, अनुभव और कार्य ठीक एक

जैसा देखा नहीं जाता। उसी प्रकार कर्त्तव्य और मूल धर्म-नीति यद्यपि सभी के लिए एक है, तथापि उसका आचरण प्रत्येक के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार का है। सभी मनुष्य का कर्त्तव्य एक जैसा नहीं है।

मनुष्य का कर्त्तव्य सभी का एक न होने पर भी देशगत, समाजगत, कालगत नीति का एवं जो जिसे कर्त्तव्य समझकर स्वीकार कर ले, उसका स्पष्ट अनुचित बोध न होने तक सम्पूर्ण रूप से प्रतिपालन करना आवश्यक है। जिसे कर्त्तव्य समझकर मान लेंगे, वही हमारा धर्म है। मूल धर्म-नीति का प्रतिपालन न करने से जिस प्रकार अनिष्ट होता है, अपराध होता है, देशगत, समाजगत और कालगत स्वीकृत कर्त्तव्य के विरुद्ध में चलने से भी ठीक उसी प्रकार पापग्रस्त होना पड़ता है। अतएव जो जिसे कर्त्तव्य समझकर विश्वास करता है, सरल मन से सत्य समझकर स्वीकार करता है, उसका वही धर्म है, उसके लिए वही अवश्य पालनीय है।

शरीर अत्यन्त दुर्बल होने के कारण गोसाँईजी फिर अधिक कह नहीं पाए। गोसाँईजी का व्याख्यान बहुत अच्छा लगा; लेकिन हम लोगों के उद्देश्य के अनुसार कुछ भी उन्होंने नहीं कहा, इसलिए थोड़ा दुःख हुआ।

त्राटक साधना की प्रणाली

16 जुलाई, शनिवार। प्रतिदिन जैसे अपराह्न में ब्राह्म-समाज में जाया करता हूँ, आज भी उसी प्रकार गया। श्री श्यामाकान्त पण्डित जी ने मुझे देखकर कहा– 'साधना का एक नया अंग गोस्वामीजी ने हम लोगों को बतलाया है, क्या तुम्हें भी बतलाए हैं? नहीं बतलाए हों तो अभी जाकर तुम गोसाँईजी से पूछ लो।'

मैं उसी समय गोस्वामीजी के पास गया। देखा, वहाँ अन्य कोई नहीं है। प्रणाम करके खड़े होते ही उन्होंने पूछा– **"कैसे हो? साधना कैसी चल रही है?"** मैंने प्राणायाम करने को ही प्रधान साधना समझ रखी है; इसलिए कहा– घर पर साधना होती नहीं। अभी एक प्रकार से चल रही है।

गोस्वामीजी ने कहा– **"नाम का जप करते तो हो? नाम-जप करने से कैसा लगता है?"** मैंने कहा– नाम-जप करने से कभी-कभी आनन्द मिलता है। पहले की अपेक्षा अब भगवान् के ऊपर निर्भर रहने में ही अच्छा लगता है। गोसाँईजी ने कहा– **"ठीक है। कम आयु में साधन लिए हो, जीवन में बहुत उन्नति कर सकोगे। मुझे तो समय बीत जाने पर साधन मिला था, बूढ़ी अवस्था में अब फिर क्या करूँगा? तुम किस क्लास में पढ़ते हो?**

पढ़ाई-लिखाई अच्छी चल रही है तो?" गोसाँईजी की बात पर मैंने केवल 'हाँ' कहकर उनसे पूछा– आपने कोई एक नई साधना की बात कही है? पण्डित जी ने वही आपसे पूछने के लिए कहा है। मैं भी क्या उसे कर सकता हूँ?

गोसाँईजी ने कहा– **"हाँ तुम भी कर सकते हो।"**

यह कहकर उन्होंने आँखें बन्द कर ली। मैंने फिर साहस करके कहा– नियमादि तो कुछ जानता नहीं। उन्होंने सिर उठाकर मेरी ओर देखते हुए कहा– **"पण्डित जी से पता कर लो।"** यह कहकर उन्होंने पुनः आँखें बन्द कर लीं। मैं तुरन्त जाकर पण्डित जी से पूछा। उन्होंने मुझे गोस्वामीजी के बताए अनुसार योग-क्रिया के 'त्राटक साधन' के विषय में बतला दिया।

अवसर देखकर मैंने गोस्वामीजी से उस साधना की अनुष्ठान प्रणाली अच्छे स्पष्ट रूप से जान ली। क्रम के अनुसार पंचभूतों में यह साधना करनी पड़ती है। पहले क्षिति पर अभ्यास करते हैं; उसकी प्रणाली बतला दी। हरे छोटे पेड़ को सामने रखकर उसके किसी एक स्थान पर एकटक देखते हुए प्रयास करके दृष्टि एकाग्र करनी पड़ती है। गुरु के संकेत के अनुसार भीतर और बाहर निर्दिष्ट लक्ष्य स्थान पर मन को एकाग्र करके गुरु प्रदत्त इष्ट मन्त्र का जप करना पड़ता है। बारम्बार प्रयास द्वारा बिना विकार के, बिना अश्रुपात के अन्ततः एक घण्टे तक एक आसन में स्थिर बैठे रहने के अभ्यस्त हो जाने पर, साथ-साथ अन्य भूतों (जल, तेज, वायु और आकाश) पर साधना करनी पड़ती है। सारे पंचभूत की साधना के समय दर्शन की विचित्र अवस्था गुरु को बतलाकर, उनके आदेशानुसार उपयोगी क्रम-कौशल का सहारा लेना पड़ता है। संकेत समझकर मैं भी 'अनिमेष साधन' करने लगा।

गोसाँईजी की प्रवचन देने में असहमति

22 जुलाई, शुक्रवार। कई दिनों से मैं ब्राह्म-समाज में बहुत जाया करता हूँ। ब्राह्म-परिवारों में भी मेरा आवागमन अधिक है; उत्सवादि के आयोजन में मेरा दौड़-धूप, उछल-कूद सबसे अधिक है– यह सब देख-सुनकर सब लोग मुझे एक बड़ा उत्साही ब्राह्म-युवक समझते हैं। मैंने गोसाँईजी से योग-धर्म की दीक्षा ली है, इस कारण ब्राह्म-समाज के कार्यकर्त्ता गोस्वामीजी के ब्राह्ममत-विरुद्ध अनुष्ठानादि की खोज-खबर मुझसे ही लेने की चेष्टा करते हैं। मैं भी कई बातें कहा करता हूँ। आज रजनी बाबू आदि के कहने पर कुछ मित्रों को साथ लेकर गोसाँईजी के पास जाकर कहा– कल शनिवार को संध्या के समय आप 'अभ्रान्त शास्त्र और गुरुवाद' विषय पर एक प्रवचन दें, साधारण ब्रह्मसमाजी आपसे यही अनुरोध कर रहे हैं।

गोस्वामीजी ने सुनकर कहा– **"इसके विरुद्ध मैं कुछ कह नहीं सकूँगा। मैं जिसे ग्रहण करने योग्य कहूँगा, ब्राह्म-समाज कहेगा वह परित्याग करने योग्य है। प्रवचन कैसे होगा?"** हमने ब्राह्म-समाज के कार्यकर्त्ताओं के पास जाकर गोस्वामीजी की बात कह दी। इस बात को लेकर ब्राह्म-समाज में बड़ी हलचल मच गई। गोस्वामीजी अब अधिक दिन तक वेदी का कार्य नहीं कर पाएँगे, कई लोग इस प्रकार कहने लगे।

साधु की अवज्ञा का दण्ड

24 जुलाई, रविवार। इस बार दरभंगा से लौटने के बाद विभिन्न श्रेणी के साधक एवं नाना प्रकार के लोग प्रायः सब समय गोस्वामीजी के पास आ रहे हैं। मणिपुर के भयानक जंगल और पुराने रमना के घने जंगल में टूटी मस्जिद के भीतर लोकालय-त्यागी जो सब प्राचीन मुसलमान फकीर हैं, उनमें से कोई-कोई समय-समय पर गोस्वामीजी के पास आते हैं। हिन्दू जटाधारी कई संन्यासी भी गुप्त रूप से आकर एकान्त में गोस्वामीजी के साथ सत्संग करके चले जाते हैं। आज संध्या के समय ब्राह्म-समाज में जाकर सुना, बहुत समय से एक जटाधारी उदासी साधु गोस्वामीजी के पास हैं। गोसाँईजी उनकी बड़ी श्रद्धा-भक्ति करते हैं। उनके शिष्यों ने तो उनके लिए प्रचारक निवास में गाँजे की व्यवस्था कर दी है एवं वे भी स्वेच्छानुसार गाँजे का दम मारते हैं। संन्यासी देखने में बड़े तेजस्वी, भजनानन्दी और शान्त स्वभाव के हैं। उनके इस कार्य में बाधा देने का किसी ने साहस नहीं किया। गोस्वामीजी भी देख-सुनकर इस गर्हित कार्य का कोई प्रतिवाद नहीं किए। समाज-मन्दिर में बैठकर ब्राह्म लोग इस सम्बन्ध चर्चा कर रहे थे।

सुनकर मेरा हृदय जल उठा। मैंने सबसे कहा– आप लोग प्रतीक्षा कीजिए। उस गंजेड़ी को एक बार गाँजा पीते देख लूँ, तो मैं तुरन्त उसको समाज 'कम्पाउंड' से चले जाने के लिए कहूँगा। यह कहकर बड़े अहंकार के साथ जैसे ही जाने लगा, अचानक सीढ़ी समझकर रिक्त स्थान पर पैर रखते ही 'धड़ाम्' से नीचे गिर पड़ा। पैर में बहुत चोट लगी; प्रायः एक घण्टा वहीं पर यन्त्रणा से छटपटाते हुए बिताया। थोड़ा अन्धकार होने पर मेरे एक मित्र ने गोद में उठाकर मुझे निवास-स्थान पर पहुँचा दिया। दो-तीन दिन तक चलने में असमर्थ रहा। बाद में ब्राह्म-समाज में आकर गुरुभाइयों के मुख से सुना– वह संन्यासी एक उच्च कोटि के महात्मा हैं, उनका परिचय नहीं मिला। लोकालय के लिए तो बहुत सौभाग्य की ही बात है, उस प्रकार के सिद्ध पुरुषों का वहाँ आगमन हुआ करता है।

—————

गुप्त रूप से प्राणायाम एवं उच्छिष्ट के विरोध में उपदेश

2 अगस्त, मंगलवार। कई गुरुभाई सोचते हैं, साधना के भीतर की कई बातें मैंने ब्राह्म-समाज के लोगों से कह दी है। गोसाँईजी के साथ मेरा अधिक तर्क और खुलेआम सभा में साधना सम्बन्धी प्रश्न करना ही उनके इस संशय का कारण है। आज गोस्वामीजी ने मुझसे कहा– **"प्राणायाम लोगों के समाने मत करना। लोग उसको लेकर तुम्हारी हँसी उड़ाएँगे, चिढ़ाएँगे। फिर ये सब जितना गुप्त रूप से होता है, उतना ही लाभ है।"**

गोसाँईजी से मैंने पूछा– हम लोगों को तो उच्छिष्ट नहीं खाना चाहिए? भुक्तावशिष्ट ही तो उच्छिष्ट है? तो फिर दूसरे के साथ बैठकर एक ही पात्र में खा सकता हूँ?

गोस्वामीजी ने कहा– **"नहीं, वह भी निषिद्ध है।"**

मैं– हमारे मोहल्ले में मेरा एक मित्र है– भुवन (भुवनमोहन चट्टोपाध्याय, बैरिस्टर)। वह ब्राह्म हो गया है। बचपन से उसके साथ मेरी बहुत घनिष्टता है। कभी मैं अस्वस्थ होता हूँ, तो बहुत दूर रहने पर भी उसको आभास हो जाता है– वह बेचैन हो जाता है। उसके ऊपर भी कुछ संकट आता है, तो मैं ह्रदय में वह अनुभव करता हूँ। बचपन से एक थाली में एक साथ हम भोजन करते आ रहे हैं। अब क्या मैं उसके साथ एक पात्र में भोजन नहीं कर पाऊँगा? गोसाँईजी ने थोड़ा हँसते हुए कहा– **"ठीक है, ठीक है, केवल उसके साथ कर सकते हो। उससे तुम्हारी कोई हानि नहीं होगी। तुम लोगों का आपस में जो सद्भाव है, उससे उच्छिष्ट का कोई भी दोष तुमको स्पर्श नहीं करेगा।"**

कुम्भक

7 अगस्त, रविवार। कुछ दिनों से गोसाँईजी अस्वस्थ हैं। किसी से भी उनकी भेंट नहीं होती। श्री मन्मथनाथ मुखोपाध्याय जी वेदी का कार्य किया करते हैं। आज श्यामाकान्त पण्डित जी ने मुझे एकान्त में बुलाकर कहा– 'साधना का और एक नया अंग अवलम्बन करने का आदेश हुआ है। गोसाँईजी ने वह तुम लोगों को बतला देने के लिए कहा है। उसे देख लो।' यह कहकर उन्होंने एक प्रकार की अद्भुत प्रक्रिया दिखला दी। इसको कुम्भक कहते हैं। प्रतिदिन साधना के समय आरम्भ और अन्त में तीन-तीन बार यह कुम्भक करना होगा। गाँव में ब्राह्मण-पण्डितों को संध्या-उपासना के समय बाहर की वायु खींचकर, नाक दबाकर उसे रोकते

हुए जिस प्रणाली से कुम्भक करते देखा हूँ, यह कुम्भक उस प्रकार का है ही नहीं। हम लोगों की गुरु-प्रदत्त प्रणाली के अनुसार प्राणायाम द्वारा कौशलपूर्वक केवल प्राणवायु को धीरे-धीरे खींचकर उसे सीधे मूलाधार में लाकर स्थापन करना होगा। फिर ऊपर-नीचे की समस्त इन्द्रियों के छिद्रों को रुद्ध करके श्वास-प्रश्वास और साधारण वायु की अन्तर्गति को पूर्ण रूप से रोककर, 'नाम' में चित्त लगाकर दृढ़ता के साथ उसे यथासाध्य धारण करके रखना होगा। इस प्रक्रिया के अनुष्ठान के साथ-साथ बाहर की सम्पूर्ण स्मृति– यहाँ तक कि देह का संस्कार तक धीरे-धीरे विलुप्त हो जाता है एवं तब केवल नाम के अस्तित्व का ही अनुभव हुआ करता है। मुझे कुछ-कुछ उसका आभास हुआ। सुना है, प्राणायाम के इस कुम्भक के विषय में मात्र श्रीमद्भगवत् गीता में संक्षेप में कहा गया है। सामान्य लोगों में इसका प्रचार नहीं है। यह 'गुरुमुखी' है; इसलिए मैंने भी इसका संकेत में ही उल्लेख किया है।

ढाका की जन्माष्टमी की शोभा-यात्रा

आज जन्माष्टमी की शोभा-यात्रा है। जगह-जगह से कितने लोग आज यह शोभा-यात्रा देखने ढाका आए हैं। शहर आज भीड़ से अस्त-व्यस्त हो गया है। स्कूल, कॉलेज एवं अदालत आदि की प्रतिवर्ष शोभा-यात्रा के दिन छुट्टी रहती है। एक दिन नवाबपुर से और एक दिन इस्लामपुर से परस्पर स्पर्धा के साथ शोभा-यात्रा निकालते है। लूट-पाट, दंगा, हंगामा और नाना प्रकार के उपद्रव को रोकने के लिए प्रतिवर्ष प्रशासन द्वारा इस समय पुलिस की बहुत बड़े पैमाने में व्यवस्था की जाती है।

इस वर्ष भी प्रतिवर्ष की भाँति दोपहर में 3 बजे यह शोभा-यात्रा निकली। मुख्य मार्ग से होकर अण्टाघर के मैदान, बंगलाबाजार, पटुआटोली आदि स्थानों से घूमते हुए आज की शोभा-यात्रा चलने लगी। उत्साही नवाबपुरवासियों के सम्मिलित प्रयास और निपुणता से शोभा-यात्रा आज इतनी लम्बी हो गई कि प्रायः तीन मील दूरी की मण्डलाकार परिक्रमा एक ओर समाप्त हुई नहीं कि वह नहर के किनारे से होते हुए आरम्भ स्थल पर आकर मिल गई। यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

सबसे आगे मल्ल-क्रीड़ा का एक दल, क्षेत्रीय बाजों (वाद्य) के दो-तीन दल के पीछे-पीछे दण्ड, कुश्ती और लाठीचाल के विविध कौशल दिखाते-दिखाते अग्रसर होने लगा। उनके साथ ग्वाला लोग नन्दोत्सव करते हुए चल रहे हैं। विभिन्न रंगो के ऊँचे झंडे और विविध प्रकार के मूल्यवान दण्ड (गदा) ले-लेकर अनेक लोग उनके पीछे-पीछे चलने लगे। फिर बड़ी संख्या में, बहुमूल्य स्वर्ण

जड़ित विविध शिल्प कलाकृति से युक्त विचित्र रंगों की मखमली चादर (झूल) से सुसज्जित बड़े-बड़े हाथी शृंखलाबद्ध होकर मनोहर धीमी चाल से निकलने लगे। वे माथे पर उज्ज्वल सोने और चाँदी की बड़ी ढाल लेकर जब गर्व के साथ मस्तक हिलाते-डुलाते अँग्रेजी बाजों के साथ-साथ ताल में ताल मिलाते हुए चलने लगे, तब दर्शक-मण्डली का चित्त हर्षोल्लास से नाच उठा। हस्ति-सज्जा के बाद बड़ी संख्या में घोड़े भी उसी प्रकार शोभायुक्त विचित्र साज-सज्जा के साथ निकले। उसके बाद ढाका की असाधारण शिल्प-निपुणता का आदर्श 'चौकी' (झाँकी) का समूह एक-एक करके निकलने लगा। इसमें रांगा और अभ्रक द्वारा निर्मित सोने और चाँदी की प्रतिमाएँ झलमला रही हैं; विविध आकार के मन्दिर, मठ, नौका, और अट्टालिका के मध्य कौतूहल बढ़ाने वाले पौराणिक एवं अन्यान्य घटनाओं के दृश्य दिखाई पड़ रहे हैं। कहीं पर कुरु-सभा में द्रौपदी के वस्त्र-हरण के अत्याचार से भीम की फड़फड़ाहट, युधिष्ठिर का अमानुषिक धैर्य एवं विपत्ति में असहाय शरणागत द्रौपदी को भगवान् की कृपा से वस्त्र प्राप्ति का दृश्य दिखाया गया है; कहीं पर पिता की आज्ञा का पालन करके श्री रामचन्द्र का वन-गमन का दृश्य, फिर बड़े भाई राम को पुनः राज्य में लाने के लिए भरत का व्याकुल होकर रोते हुए प्रार्थना करने का दृश्य दिखाया गया है। किसी में जन्मेजय का सर्प-यज्ञ, उसमें ज्वलन्त अग्नि में ऋषियों द्वारा सर्पाहुति, तो किसी में नैमिषारण्य में ऋषियों का पुराण-श्रवण– इस प्रकार अनेक पौराणिक दृश्य दिखाते-दिखाते सब झाँकियाँ एक के बाद एक क्रमानुसार जाने लगीं। प्रत्येक झाँकियों के आगे-पीछे हरि-संकीर्तन, बाउल-वैष्णवों का संगीत, मनसा देवी का विसर्जन, दुर्गा देवी के गीत इत्यादि भी चलने लगे। फिर विभिन्न प्रकार के स्थानीय व्यंग-चित्रादि दिखाई पड़ने लगे। इसमें शोभा-यात्रा का एक दल प्रतिपक्षी दूसरे दल के भेद और दुराचार अथवा दुर्व्यवहार के सब विषयों को चित्रों द्वारा जनसाधारण के समक्ष प्रकाशित या प्रचार करने में संकोच नहीं करते। ये सब निकल जाने के बाद फिर बहुत बड़ी-बड़ी झाँकी निकलने लगी। कितनी निपुणता से, कितने आश्चर्यजनक रूप से उन लोगों ने इन सब बड़ी चौकियों को बनाया है, सोचकर वास्तव में बहुत आश्चर्य होता है। 20-25 फीट चौकोन लकड़ी की मचान बनाकर उसके ऊपर प्रायः 40-50 फीट ऊँचा तीन तल्ला, चार तल्ला मन्दिर की भाँति चक्राकार आकृति का ढाँचा बाँधकर रखा जाता है। शोभा-यात्रा निकलने के दो-तीन घण्टे पहले भिन्न-भिन्न स्थानों के लोग बाँस के भिन्न-भिन्न सैकड़ों 'टट्टर' (चिक) लेकर आते हैं। सभी टट्टर का बाहरी भाग सुन्दर विचित्र कागजों द्वारा आवृत्त रहता है। आश्चर्य का विषय यह है कि इन्हें जब 'मचान' पर एक के बाद एक बाँधा जाता है, तब ये ठीक समान रूप से लग जाते हैं– मचान या टट्टर कहीं भी दो-तीन इंच छोटे-बड़े या बेमेल नहीं होते।

इस प्रकार झाँकी में क्रम से 50-60 या उससे अधिक 'टट्टर' लग जाने पर, शिल्प निपुणता की परकाष्ठास्वरूप बहुत-सी शिल्प कलाकृतियाँ, अत्यन्त अनुपम एवं दोषरहित बड़े-बड़े मन्दिर, मठ, अट्टालिका, दुर्ग इत्यादि प्रस्तुत हो जाते हैं और प्राचीन किसी कीर्ति को प्रदर्शित करते दिखलाई पड़ते हैं। इस प्रकार की झाँकियाँ पाँच-छः से अधिक नहीं होतीं। शोभा-यात्रा सम्पन्न हो जाने पर प्रायः प्रतिवर्ष ही इन सब झाँकियों की फोटो खींचने के लिए, किसी को मुख्य मार्ग पर या अन्टाघर के मैदान पर, तो किसी झाँकी को नहर के किनारे कुछ दिनों तक रखा जाता है। संध्या के बाद सुन्दर दीपक द्वारा उन्हें सजाया जाता है।

रात में लोगों की हलचल कम होने के बाद जन्माष्टमी शोभा-यात्रा की बड़ी झाँकियों को देखने के लिए गोस्वामीजी के साथ निकला। गज-कच्छप को लेकर गरुड़ आकाशमार्ग से उड़कर एक वृक्ष की डाली पर बैठने का प्रयास कर रहा है, यह दृश्य इतनी कुशलता से प्रस्तुत किया गया है कि गोसाँईजी लगभग 20 मिनट तक उसकी ओर देखते रहे। कुस्तुनतुनिया का किला भी बहुत ही सुन्दर हुआ है। इन सबको देखकर गोस्वामीजी ने कहा– **"ढाका के जन्माष्टमी की शोभा-यात्रा के जैसी शोभा-यात्रा एवं ऐसी अद्भुत शिल्प कलाकृतियाँ वर्तमान में और कहीं देखी नहीं जाती। शान्तिपुर का रास और ढाका की जन्माष्टमी की शोभा-यात्रा देखने योग्य हैं, देश का एक गौरव है।"**

बड़ी 'चौकियाँ' देखने के बाद गोस्वामीजी के साथ समाज-मन्दिर में गया। आज रात्रि साधना में सम्मिलित होकर लगभग 10 बजे अपने निवास में आ गया।

अद्भुत फकीर

संध्या के समय प्रचारक निवास में जाकर देखा, कमरा लोगों से परिपूर्ण है। एक फकीर गोस्वामीजी के समक्ष बैठे हैं। फकीर साहेब की वेशभूषा कुछ नहीं केवल लंगोटी पहने हैं, एक काला पुराना कम्बल ओढ़े हुए हैं। गोस्वामीजी के साथ वे सब बातचीत संकेत में ही कर रहे हैं। उनकी उस फकीरी भाषा और अभिप्राय को मैं बिल्कुल समझ न सका। समाज के आँगन में और जहाँ-तहाँ अनेक लोग आपस में बातचीत करने लगे कि ये फकीर बहुत उन्नत अवस्था के हैं। मैंने सोचा, 'यह अच्छा है! बिना अर्थ वाले कुछ शब्दों को मिला-जुलाकर प्रयोग करने से ही वह भाव की बात हो गई, फिर मुसलमान होकर गुरुतत्त्व की चर्चा कर लेने से ही वे एक महात्मा हो गए।' वह जो भी हो, कौतूहलवश मैं फकीर साहेब में कोई विशेषता है या नहीं, जाँच करने लगा। कमरे में एक धीमा दीपक जल रहा था। फकीर साहेब ने कई बार मेरी ओर मुख घुमाया। उनकी आँखों की ओर देखते ही

मैं आश्चर्यचकित हो गया। देखा, मानो दो उज्ज्वल तारे चमकते हुए जल रहे हैं। अन्धकार में इस प्रकार आँखों की ज्योति फूटकर बाहर निकलते इससे पहले मैंने कभी नहीं देखा। लोगों की भीड़ देखकर वे गोस्वामीजी को प्रणाम करके चल दिए। मैं उनका पीछा करने लगा। फकीर साहेब रास्ते में पैदल नहीं चले, द्रुत गति से लम्बे-लम्बे डग मारकर टेढ़ी चाल से कूदते-कूदते खुली सड़क पर भागने लगे। पटुआटोली से कुछ दूर तक उनके पीछे-पीछे बड़े कष्ट से चलकर गया, फिर लौट आया। वे किस दिशा से होकर अचानक कहाँ चले गए, समझ नहीं पाया।

ब्राह्म-सामाज में शास्त्रीय व्याख्या और हरि-संकीर्तन ब्राह्मगणों का आन्दोलन

गोस्वामीजी आजकल जिस भाव से वेदी का कार्य कर रहे हैं, उससे सब बहुत सन्तुष्ट हैं; परन्तु साधारण ब्राह्मगण गोस्वामीजी के इस प्रकार असाम्प्रदायिक भाव के उपदेश और प्रवचन से सन्तुष्ट नहीं हैं। उन लोगों की इच्छा है, गोस्वामीजी उनके भाव और इच्छानुसार उपदेश और प्रवचन आदि दें। वेदी पर बैठकर उपदेश देते समय गोस्वामीजी अधिकतर शास्त्र आदि की बातें कहते हैं। पुराण के एक-एक प्रसंग को लेकर उसकी आध्यात्मिक व्याख्या करते हैं। पुराण की आध्यात्मिक व्याख्या गोस्वामीजी ने ही सर्वप्रथम आरम्भ की है। सुना है, इसके पहले ऐसी व्याख्या सम्भवतः और कभी नहीं हुई। इस प्रकार की रूपक व्याख्या सुनकर ब्राह्म-भाव के अनेक लोग महाभारत, रामायण और पुराणादि के प्रति धीरे-धीरे आकृष्ट हो रहे हैं; लेकिन मुझे लगता है, ब्राह्म-समाज में शास्त्र-पुराणादि को प्रचलित करने के लिए गोसाँईजी की यह एक पक्की चाल है।

गोसाँईजी के पास प्रतिदिन संध्या के समय संकीर्तन होता है। शनिवार एवं रविवार को प्रचारक निवास के सामने आँगन में बहुत समय तक कीर्तन होता है; कभी-कभी समाज-मन्दिर के सामने मैदान में भी हुआ करता है। इस कीर्तन में अनेक लोगों का समावेश होता है। संकीर्तन में गोस्वामीजी और उनके शिष्यों के भाव का स्फुरण देखकर सभी चकित हो जाते हैं। संकीर्तन की मधुर ध्वनि एवं मृदंग की ध्वनि सुनते ही गोसाँईजी अन्य प्रकार के हो जाते हैं। बहुत ऊपर तक उछलकर 'हरि बोल, हरि बोल' कहते-कहते अचेत हो जाते हैं, कभी मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। उनकी इस प्रकार उन्मत्तता से बहुतों का भाव जाग उठता है। साधारणतः उनके कुछ शिष्यों में ही उछल-कूद का भाव अधिक देखा जाता है। हम कुछ लोग भी भाव-विभोर होने का प्रयास करते हैं, पर विशुद्ध भाव होता नहीं। केवल 'मेहनत' ही सार होती है, इसलिए मन में बड़ा दुःख होता है।

आज प्रचारक निवास के आँगन पर संकीर्तन में बड़ी धूमधाम मची है। आनन्द का कोलाहल पूरे ब्राह्म-समाज के प्रांगण में फैल गया। अनेक लोग आज भावावेश में विभोर हैं। चारों ओर अगण्य लोग खड़े रहकर कीर्तन सुन रहे हैं। श्रीधर बाबू उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। उनका नृत्य देखकर ऐसा लगा मानो एक पुतला नाच रहा है। बाह्य-चेतना न रहने पर भी इस प्रकार श्रृंखलाबद्ध नृत्य करना एक विशेष शक्ति के प्रभाव के बिना सम्भव नहीं होता। श्रीधर उन्मत्त होकर नृत्य करते-करते बहुत उच्च स्वर में 'अल्ला हो अकबर, अल्ला हो अकबर' कहते-कहते दौड़ने लगे। हमारे एक पूज्य ब्राह्म श्रीधर की वैसी अवस्था देखकर 'भाई रे, भाई रे', कहते हुए श्रीधर को जकड़ लिए एवं उनके साथ नृत्य करने लगे। श्रीधर के नेत्र स्थिर हैं। वे अचानक ऊँची छलांग के साथ आकाश की ओर अंगुलि दिखाकर चीखने लगे– 'वह देखो काली, वह देखो काली!' निष्ठावान् ब्राह्म महोदय श्रीधर को जकड़कर बड़े आनन्दित हो रहे थे; लेकिन वह काली शब्द जैसे ही सुने, वैसे ही श्रीधर को धक्का देकर हटाते हुए उन्होंने कहा– 'हट साले! बोल परब्रह्म, बोल परब्रह्म।' वे 'बोल परब्रह्म, बोल परब्रह्म' कहकर चीत्कारने लगे। श्रीधर 'जय काली! जय काली!' कहते-कहते मूर्च्छित हो गए।

संकीर्तन के बाद कुछ ब्रह्मसमाजियों ने इस विषय को लेकर कुछ क्षण आलोचना की। उन लागों ने कहा– "गोस्वामीजी ने ब्राह्म-समाज में हरिनाम चला दिया, अब उनके शिष्य काली, दुर्गा आदि नाम भी चलाने का प्रयास कर रहे हैं। यह तो और भयानक है! प्रतिवाद करना उचित है। वे बड़े निष्ठावान् ब्राह्म हैं। भावावेश के समय काली नाम सुनने से उनके विवेक को बड़ा आघात लगा; इसलिए अचानक उनके मुख से 'साला' निकल पड़ा! इसमें उनको कभी दोष नहीं दिया जाएगा।"

गोस्वामीजी का दैनिक आचरण और साधन की 'बैठक'

प्रतिदिन प्रातः लगभग 7 बजे गोस्वामीजी चाय पीया करते हैं। चाय पीने के बाद आसन पर बैठकर आँगन में लगे हरसिंगार के पेड़ की ओर बहुत समय तक एकटक देखा करते हैं। थोड़ा दिन चढ़ने पर पाठ आरम्भ होता है। प्रायः 11 बजे तक धार्मिक ग्रन्थों का पाठ चलता है।

दोपहर में भोजन के बाद गेण्डारिया के जंगल में 'आनन्द मास्टर के बगीचे' में जाते हैं। वहाँ पूर्व की ओर एक आम के पेड़ के नीचे बैठकर साधना में तीन घण्टे का समय बिता देते हैं।

अपराह्न में फिर समाज-मन्दिर में आते हैं। 4 बजे के बाद प्रतिदिन प्रचारक

निवास में अनेक लोग आया करते हैं। केदार बाबू (रामकृष्ण परमहंसदेव के आश्रित भक्त) और आशानन्द बाउल प्रतिदिन आते हैं। गोस्वामीजी के शिष्य और अन्य बहुत-से लोग इस समय आते हैं। तब नाना धर्म-प्रसंग के बाद प्रतिदिन ही गान हुआ करता है।

संध्या के समय लगभग एक घण्टा संकीर्तन होता है। तत्पश्चात् कमरे का दरवाजा बन्द होता है। तब साधना करने वाले ही कमरे के भीतर रह सकते हैं। रात्रि लगभग साढ़े 9-10 बजे तक साधना चलती है। सभी मिलकर मात्रा और क्रम एक समान रखकर एक घण्टा प्राणायाम करते हैं। फिर एक या दो गान होते हैं। गाने के बाद फिर एक घण्टा पूर्ववत् प्राणायाम चलता है। सब महिलाएँ भी समीप के कमरे में बैठकर एक साथ प्राणायाम करती हैं। 'बैठक' साधना के समय पृथक-पृथक आसन का कोई नियम या व्यवस्था नहीं है। साधना करते-करते इस समय बहुतों के भीतर पारलौकिक आत्माओं का आवेश हो जाता है। किसी की भावावेश में चेतना विलुप्त हो जाती है; कोई-कोई बहुत भयंकर चीत्कार करते हैं; फिर किसी-किसी साधक की भयंकर ठहाके के साथ हँसी आरम्भ हो जाती है। इस समय नाना प्रकार के भाव के स्फुरण से नाना प्रकार की अवस्था बहुतों के भीतर घटती रहती है। गोस्वामीजी फिर इन अनियन्त्रित आवेश के वेग का संवरण करते हैं। वे इस साधन-बैठक में कभी-कभी भावावेश में अनेक बातें कहते हैं। देवी-देवता, ऋषि-मुनि और महात्माओं का प्रकाश देखकर स्तुति करते हैं। 'बैठक' में जो लोग सम्मिलित होते हैं, उनमें से बहुतों को कुछ न कुछ दर्शन मिलता है। सभी एक ही दृश्य देखते हैं, ऐसा नहीं है। भिन्न-भिन्न देवी-देवता, भिन्न-भिन्न ज्योति, भिन्न-भिन्न आकृति अथवा रूप– एक-एक लोग एक-एक प्रकार का दर्शन करते हैं; लेकिन मेरा केवल श्वास लेना-छोड़ना ही सार होता है, कुछ दर्शन ही नहीं होता। रामकृष्ण परमहंसदेव एवं बारदी के ब्रह्मचारीजी साधना के समय प्रायः ही आते हैं। गोस्वामीजी और भी जिन सब महात्माओं का नाम लेते हैं, उनमें से किसी को भी मैं जानता नहीं। सूक्ष्म शरीर में उपस्थित महात्माओं का दर्शन पाना सबके भाग्य में नहीं होता; फिर भी एक अलौकिक कुछ घटा है, यह समझने में किसी को संशय नहीं रहता। गोस्वामीजी के स्वयं की अवस्थादि के सम्बन्ध में लोगों के मुख से जो सुनता हूँ, उस पर मैं विश्वास नहीं कर पाता। फिर जो सब विषय देखने-सुनने में चमत्कारी लगते हैं, उसे भी लोगों के सामने कहने का साहस नहीं होता। अतएव सब लोग जो कुछ प्रतिदिन प्रत्यक्ष देख रहे हैं, उसको ही स्मृति में रखने के लिए संकेत में लिखता जाता हूँ।

आजकल गोस्वामीजी की समाधि का कोई निर्दिष्ट समय या नियम नहीं है। किसी-किसी दिन भोजन करने बैठते हैं, फिर हाथ का ग्रास मुख में रखते ही वे

समाधिस्थ हो जाते हैं– मुख का भात मुख में ही रह जाता है। डेढ़-दो घण्टे एक ही अवस्था में बीत जाते हैं। परिचित या अपरिचित लोगों के साथ भी साधारण विषय में बातचीत करते-करते वे अचानक आत्म-विस्मृत हो जाते हैं; फिर बहुत समय तक कोई स्पन्दन नहीं रहता। भीतर क्या होता है, उसे वे ही जानते हैं। पाठ करते-करते कण्ठ रुद्ध हो जाता है, फफककर रोते-रोते अचेत हो जाते हैं। इसी अवस्था में बहुत समय बीत जाता है। संकीर्तन के समय भगवान् का नाम सुनते ही वे उछल पड़ते हैं और नृत्य करते-करते मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। शरीर जड़वत् निस्तेज हो जाता है, अवश हो जाता है। उस समय कोई सामने बैठकर बहुत समय तक भगवान् का नाम लेता है, तब बाह्य-स्फूर्ति होती है।

प्रचारक निवास में नाना प्रकार के लोग आते हैं। वे गोसाँईजी को सुनाकर नाना प्रकार की बातचीत, आलोचनादि करते हैं। गोसाँईजी सभी की बातों में 'हाँ, हाँ' करते जाते हैं एवं अपने भाव में ही विभोर रहकर झूमते-झूमते गिर पड़ते हैं। मन मानो सदैव अन्य किसी ओर लगा हुआ है। जिन सब गीतों में भगवान् के नाम की गन्ध भी नहीं है, वरन् स्त्री-पुरुष प्रणय सम्बन्धी भाव का ही उद्दीपन होता है, उन गीतों से भी गोसाँईजी भाव-विभोर हो जाते हैं। प्रेम-संगीत आदि बड़े आग्रह के साथ सुनते एवं उसमें 'आहा, आहा' करते-करते व्याकुल होकर रोने लगते हैं। राधा-कृष्ण या गौर-निताई सम्बन्धित गान होते ही गोसाँईजी का वंशगत भाव जाग उठता है। ब्रह्म-संगीत की अपेक्षा उन सब गीतों में गोसाँईजी की रुचि अधिक है एवं भाव का स्फुरण अधिक देखा जाता है। कृष्णकान्त पाठक के गीत को वे बहुत ही पसन्द करते हैं। आनुष्ठानिक ब्राह्म श्री नवकान्त चट्टोपाध्याय जी प्रतिदिन अपराह्न में एक बार गोस्वामीजी के पास आते हैं। वे बहुत अच्छा गाते हैं। गोसाँईजी की रुचि देखकर कई बार वे कृष्णकान्त पाठक के गीत गाया करते हैं। उनकी संकलित संगीत मुक्तावली और प्रेम-संगीत से भी समय-समय पर वे निम्नलिखित गीत गाया करते हैं; यथा– (बंगला गीत) 'जले ढेउ दिओ ना सखि, आमि काल रूप निरखि,' (जल की तरंग मत बहाओ सखी, मैं कृष्ण के रूप को देख लूँ); 'तारे दिए प्राण कुलमान चरण पेलाम ना स्वजनि, आमि होलाम गौर कलंकिनी! (उनको प्राण एवं कुल का मान देकर भी उनके चरण प्राप्त नहीं हुए, मुझे गौर का कलंक ही लगा!) इत्यादि। गोसाँईजी ये सब गान सुनकर भाव में आकर झूमने लगते हैं। उनका भाव देखकर उपस्थित सभी लोग मुग्ध हो जाते हैं। यह आश्चर्य की बात है कि गीत किस भाव का है, उसे ब्रह्मसमाजी भी एक बार विचार करके देखने का अवसर नहीं पाते। जो भी हो, उसके बाद संध्या के समय छात्र-समाज के हम सब समवयस्क गायक श्री रेवती मोहन सेन के साथ मिलकर उच्च स्वर में संकीर्तन आरम्भ करते हैं– 'गाओ रे आनन्द से सब जय ब्रह्म जय।'

गोसाँईजी को अच्छा लगने के कारण, 'जीवेर थाकते चेतन हरि बोलो मन, दिन गेलो दिन गेलो' (जीव की जब तक चेतना है रे मन, हरि का नाम ले लो, दिन बीत गए, दिन बीत गए) – वैरागियों का यह गीत भी हम लोग प्रायः प्रतिदिन गाया करते हैं। संकीर्तन में गोसाँईजी की जिस प्रकार की अवस्था होती है, उसे व्यक्त करने का उपाय नहीं है। गोसाँईजी रात-दिन मानो किसी भाव में मग्न रहते हैं– समय-समय पर उन्हें देखकर यही समझ में आ रहा है। फिर भी भक्ति-भाव के आधिक्य के कारण विशुद्ध ब्राह्ममत छोड़कर गोसाँईजी बहुत-कुछ प्राचीन भ्रान्तमत के चक्कर में पढ़ गए हैं, उनके ऊपर बहुत श्रद्धा होने पर भी मेरी उनके सम्बन्ध में यही धारणा है।

गोसाँईजी के शिष्यों की कथा

जिन लोगों को गोसाँईजी से योग-साधन मिला है, उन लोगों के भीतर की अवस्था को समझने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है। फिर मिलने-जुलने, बातचीत से जितना कुछ समझ में आया, उससे बड़ा आश्चर्य होता है। लगभग दो वर्ष से गोस्वामीजी ने विशेष-विशेष लोगों को यह साधन प्रदान करना आरम्भ किया है। इतने कम समय में ही साधन प्राप्त करने वालों में किसी-किसी के भीतर आश्चर्यजनक भाव, अलौकिक शक्ति और अद्भुत योगैश्वर्य विकसित हो गया है। संकीर्तन के भाव का स्फुरण इन लोगों के भीतर जो देखने को मिलता है, वह एक नये प्रकार का है, पहले कभी इस प्रकार का भाव किसी के भीतर नहीं देखा। साधारण लोग इन सब अवस्थाओं को देखकर चकित हो जाते हैं; कोई-कोई इसे भूत-प्रेत का काण्ड समझकर भ्रमित हो जाते हैं। संकीर्तन में आनन्द, स्फूर्ति, मतवालापन अथवा भावावेश इन लोगों का बिल्कुल अलग प्रकार का होता है, इसके सिवा स्वाभाविक अवस्था भी अन्य प्रकार की है। सदैव ये लोग साधना में लगे रहते हैं; बड़े सत्यनिष्ठ, प्रसन्नचित्त एवं विनयी हैं। गोसाँईजी के शिष्य तो एक-दूसरे के प्रति अपने माता-पिता, स्त्री-पुत्र की अपेक्षा अधिक स्नेह रखते हैं, ऐसा सुनता हूँ। दिन में किसी भी समय, एक बार सभी की परस्पर भेंट होनी ही चाहिए। मान-मर्यादा भूलकर समवयस्कों की भाँति लड़के और बूढ़ों के बीच इतना हिलना-मिलाना, ऐसा स्नेह गोसाँईजी के इन शिष्यों के भीतर जैसा देख रहा हूँ, वैसा कभी कहीं देखा नहीं। भविष्य में यह सद्भाव इनका कब तक स्थायी रहेगा, ईश्वर ही जाने; लेकिन अभी इन लोगों की यह दुर्लभ अवस्था देखकर लगता है– कभी इनके भाव में कोई अन्तर नहीं आएगा। क्रमशः अब मेरा भी ऐसा हो गया है कि नाना प्रकार के उद्वेग-अशान्ति के समय एक भी साधन-प्राप्त व्यक्ति से भेंट हो जाने पर मन शीतल हो जाता है, भीतर के सभी दुःख दूर हो जाते हैं। इन

लोग के दर्शन से ही अन्तःकरण एक सरस सन्तोष भाव से परिपूर्ण हो जाता है। ऐसा क्यों होता है, वह समझ नहीं आता।

अलौकिक शक्ति और अद्भुत योगैश्वर्य किसी-किसी साधन-निष्ठ व्यक्ति के भीतर इसी बीच प्रकट हो गए हैं। फिर किसी-किसी को उसे धारण करने अथवा विश्वास करने का भी अधिकार नहीं हुआ। अन्नमय, प्राणमय कोष का अतिक्रमण करते हुए मनोमय कोष में प्रवेश करके सूक्ष्म शरीर से यहाँ-वहाँ विचरण करने की शक्ति भी किसी-किसी के भीतर आ गई है। केवल पृथ्वी पर नहीं, लोक-लोकान्तर में भी ये लोग समय-समय पर आवागमन किया करते हैं। दूरस्थ किसी अज्ञात अथवा गोपनीय घटना की जानकारी प्राप्त करने के अभिप्राय से किसी व्यक्ति के ध्यानस्थ होते ही उसके समक्ष वह घटना चित्रपट की भाँति प्रकट हो जाती है। किसी आवश्यक दुर्लभ वस्तु पाने के अभिप्राय से कोई भगवान् से प्रार्थना करके आसन पर बैठता है, ध्यानस्थ रहते-रहते वह वस्तु उनके सामने आ जाती है। किसी मनुष्य या जीव-जन्तु की सहायता से नहीं, सम्पूर्ण ध्यान के प्रभाव से, अप्राकृतिक रूप से यह सब होता है।

इसी बीच गोस्वामीजी के बहुत ही घनिष्ठ आत्मीय एक शिष्य को इष्ट मन्त्र की शक्ति की परीक्षा करने का अत्यन्त कौतूहल होने से, वे सूर्यमण्डल के अधिष्ठात्री देवता को आकर्षित करने लगे। इससे कुछ प्राकृतिक दुर्घटनाओं का संकेत दिखलाई पड़ा। गोस्वामीजी ने उसका आभास पाते ही उस व्यक्ति को उस प्रयास से तुरन्त रोक दिया एवं उस पर कठोर शासन करते हुए कहा— **"भगवत्-शक्ति का भगवान् की इच्छा के बिना प्रयोग होने से उसके द्वारा पूरा ब्रह्माण्ड ध्वंस हो सकता है। इस विषय में अत्यन्त संयत और सावधान रहना चाहिए।"**

किसी की चंचलता और असतर्कतावश अलौकिक शक्ति के प्रयोग के फलस्वरूप आकस्मिक कुछ-कुछ अपशकुन होने लगा था। किसी प्रकार का प्राकृतिक उलट-फेर अथवा साधारण नियम से अलग किसी प्रकार की असम्भव घटना व्यक्ति-विशेष की इच्छा-शक्ति से या साधना के प्रभाव से सम्भव होती है, यह कहने पर आजकल के लोग उसे नशाखोर की गप समझकर अत्यन्त उपहास की बात मानेंगे; इसलिए मैंने इन सब घटनाओं को अपनी डायरी में विस्तार से उद्धृत नहीं किया। सुना है, गोस्वामीजी ने शिष्यों की इन सब हठकारिता और भयंकर संकल्प का परिचय पाकर सम्भवतः उन लोगों के ऐश्वर्य प्राप्ति का और शक्ति प्रकट करने का मार्ग बन्द कर दिया है। सत्य है या मिथ्या, भगवान् जाने!

विलुप्त मन्त्र-शक्ति के उद्धार के उपाय का निर्देश

ढाका नार्मल स्कूल के हेड मास्टर संध्या के समय जगन्नाथ स्कूल के एक 16-17 वर्षीय छात्र को साथ लेकर गोस्वामीजी के पास आए हैं। लड़के का दिमाग बड़ा गरम हो गया है– अर्ध-पागल की भाँति। गोस्वामीजी की कृपा से पहले के जैसी अवस्था प्राप्त हो जाएगी, इस विश्वास से ही मास्टरजी उसे ले आए हैं। लड़के ने अपनी अवस्था के बारे में जो कुछ बतलाया, वह इस प्रकार है– "कुछ दिन पहले एक तान्त्रिक संन्यासी ढाका आकर रमना के जंगल के समीप एक पेड़ के नीचे आसन लगाए थे। एक दिन घूमते-घूमते वहाँ गया, उन्हें देखकर मुझे उन पर बड़ी श्रद्धा हो गई। संन्यासी थोड़े दिन ही रुकेंगे जानकर, स्कूल जाना बन्द करके मैंने कुछ दिन उनकी बहुत सेवा की। संन्यासी ने जाते समय मुझसे बहुत सन्तुष्ट होकर कहा, 'अरे, तुमने मेरी बहुत सेवा की है, मुझे बड़ी खुशी हुई; तुमको मैं एक विद्या सिखला देता हूँ। तुम बिना प्रयोजन के जहाँ-तहाँ लोगों के सामने इस शक्ति का प्रयोग मत करना।' यह कहकर उन्होंने मेरे कान में एक मन्त्र बतलाकर कहा– 'इस मन्त्र का स्मरण करके एक चुल्लू पानी लेकर किसी वृक्ष-लता पर छिड़कने से वह तुरन्त मर जाएगा। फिर इस मन्त्र से पानी देने पर वह पुनः जीवित हो जाएगा।' संन्यासी के कहे अनुसार मैंने तुरन्त मन्त्र-शक्ति को परखकर देखा, वह सत्य है। उन्होंने इस मन्त्र का जहाँ-तहाँ लोगों के सामने प्रयोग करने के लिए मना किया। इसके बाद एक दिन बांग्लाबाजार के रुद्र बाबू की 'डिस्पेंसरी' में कुछ ब्राह्म मित्रों के साथ मन्त्र-शक्ति को लेकर मेरा तर्क हुआ। उन्होंने उसका विश्वास नहीं किया, अतः मुझे कुसंस्कारी कहकर हँसी उड़ाने लगे। तब मैंने जिद में आकर, मन्त्र-शक्ति दिखलाने के लिए एक गमले में लगे फूल के पेड़ में मन्त्र पढ़कर पानी का छींटा दिया। पेड़ देखते-देखते सूख गया; फिर पुनः मन्त्र पढ़कर पानी का छींटा देते ही वह हरा हो गया। सभी मित्र चकित हो गए। तब वे लोग उस मन्त्र को सुनने के लिए जिद करने लगे। मेरे मना करने पर भी वे मुझे छोड़े नहीं; समझाने लगे कि वह मन्त्र-शक्ति जब मेरे वशीभूत हो गई है, तो फिर कभी नष्ट नहीं होगी। मैं उन लोगों की बातों में आकर मन्त्र का उच्चारण करके सुना दिया। यह घटना होने के बाद से देख रहा हूँ कि अब मन्त्र का कोई प्रभाव नहीं हो रहा है। इस प्रकार एक अद्‌भुत शक्ति प्राप्त करके मैंने उसे खो दी, इसी चिन्ता और क्लेश से मैं पागल के जैसा हो गया हूँ। मेरे उस मन्त्र में जिससे पुनः उसी प्रकार शक्ति आ जाए, आप कृपा करके वह कर दीजिए।"

गोस्वामीजी ने लड़के की अत्यधिक व्याकुलता देखकर पूछा– **"मन्त्र का तुम्हें स्मरण है?"**

लड़के ने कहा– पहले था, अभी थोड़ा गड़बड़ हो गया है।

गोसाँईजी– **एक भी अक्षर का स्मरण है? छोड़ो, तुम्हारे गुरु का रूप तो स्मरण है?**

लड़का– हाँ, वह है; लेकिन बहुत स्पष्ट नहीं।

यह बात सुनकर गोसाँईजी ने एक प्रणाली बतलाकर कहा– **"अच्छा, तुम निर्जन में जाकर, एक रात्रि बैठकर यह करो। मन्त्र भी स्मरण में आएगा, मन्त्र-शक्ति भी प्राप्त होगी।"**

सुना है, लड़का तत्पश्चात् गोसाँईजी के कहे अनुसार चलकर सफल हुआ। अब उसके मस्तिष्क की वह पीड़ा भी दूर हो गई है।

शक्ति-हरण

आज एक शक्तिशाली बाउल साधिका की कथा सुनकर चकित हो गया। गोसाँईजी के पास प्रतिदिन अगण्य लोगों के आवागमन के कारण बाउलनी के ऊपर मेरा वैसा विशेष ध्यान नहीं गया। बातों-बातों में गोसाँईजी ने उसके विषय में कहा– **"मैं कुछ अन्यमनस्क था। एक बाउलनी ने मुझे प्रणाम किया। मैंने उस समय देखा नहीं। अचानक वह मेरे पैर का अँगूठा चूसने लगी। तब मुझे चैतन्य हुआ। एक भयानक शक्ति ने अचानक मेरे शरीर में प्रवेश करके मुझे विचलित कर दी। मैं उस शक्ति को एक ऊपरी शक्ति समझकर तुरन्त गुरुदेव का स्मरण करके उनके चरणों में अर्पण करके निश्चिन्त हो गया। तब बाउलनी नीचे गिरकर छटपटाने लगी और चिल्लाकर रोते-रोते कहने लगी– 'प्रभु, मेरी वस्तु मुझे लौटा दीजिए। अब मैं कभी वैसा नहीं करूँगी।' मैंने कहा– अब कुछ नहीं हो सकता। मेरे भीतर उसका प्रवेश होते ही मैंने उसे गुरुदेव को प्रदान कर दिया। जो दे दिया, उसे तो अब माँग नहीं सकता। बाउलनी ने समाज-मन्दिर में दो दिन तक खूब रोना-गाना किया, फिर जब समझ गई कि अब वह वस्तु मिलेगी नहीं, तब अधमरी-सी निस्तेज होकर चली गई।"**

प्रश्न– किस प्रणाली से ये लोग शक्ति चोरी करते हैं? अँगूठा चूसे बिना भी क्या वैसा कर सकते हैं?

गोसाँईजी– **अँगूठा चूसकर सहज में वैसा कर सकते हैं; इसके सिवा पैर छूकर प्रणाम करके कर सकते है, आलिंगन करके भी कर सकते है। कोई तो दृष्टि से भी कर सकते हैं। स्वयं की शक्ति और भाव को दूसरे के भीतर प्रवेश कर देते हैं, फिर उस शक्ति को खींचने के साथ-साथ दूसरे की शक्ति और सद्भाव को भी खींच लेते हैं।**

प्रश्न– इन सब उत्पातों से रक्षा पाने का उपाय क्या है?

गोसाँईजी– **अभिमान त्याग करके स्वयं को छोटा समझना चाहिए। ऐसा होने पर उन्हें लेने योग्य कुछ मिलता नहीं। फिर अपने इष्ट देवता के चरणों को ध्यान में रखने से सम्पूर्ण रूप से निरापद् हो सकते हैं।**

प्रश्न– समझ पाने से तो इन सब उपायों का अवलम्बन कर सकते हैं; परन्तु स्वयं के अज्ञात रहने पर यदि कोई ऐसा करे, तब कैसे रक्षा हो पाएगी?

गोसाँईजी– **योगैश्वर्य प्राप्त होने पर योगी लोग गुरु द्वारा प्रदत्त त्रिशूल धारण करते हैं। उससे स्वयं के तेज की रक्षा होती है और दूसरों का कोई असद्भाव भी साधक के भीतर संचारित नहीं हो पाता।**

प्रश्न– बड़ा-बड़ा त्रिशूल लेकर गृहत्यागी संन्यासी लोग ही चल सकते हैं। फिर साधारण लोग तो वैसा नहीं कर सकते!

गोसाँईजी– **तीन-चार इंच का छोटा एक इस्पात का त्रिशूल रखने से भी हो जाता है।**

हमारे गाँव में खूब छोटे-छोटे बच्चों को भूत-प्रेत और चुड़ैल की दृष्टि से बचाने के लिए कमर में लोहा बाँध देते हैं। माता-पिता के देहान्त के समय अशौच का समय पूर्ण न होने तक ऊपरी उपद्रव से बचाव के लिए लोग लोहा धारण करते हैं– यह सब तो भयंकर कुसंस्कार ही लगता है। पता नहीं, योगी लोगों के त्रिशूल धारण करने की भाँति इन सब नियमों का भी कोई उद्देश्य है या नहीं?

——————

दिसम्बर, सन् 1887 ई॰

वार्षिक उत्सव में महासंकीर्तन: भावावेश का विवरण

7 दिसम्बर, बुधवार। आज वार्षिक उत्सव है। देख रहा हूँ, ढाका ब्राह्म-समाज का उत्सव क्रमशः सब सम्प्रदाय का ही उत्सव बन गया है। छोटे लोग, बड़े लोग, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, साधु, संन्यासी, फकीर आदि के आगमन से आज ब्राह्म-समाज 'कम्पाउंड' परिपूर्ण हो गया है। विभिन्न दलों में 15-15, 20-20 लोग मिलकर जगह-जगह पर कीर्तन करने लगे। सैकड़ों लोग कहीं खड़े-खड़े तो कहीं बैठे-बैठे कीर्तन सुनने लगे। समाज के विशाल आँगन के सामने गोस्वामीजी ध्यानस्थ थे। जगन्नाथ कॉलेज के प्रिंसिपल श्री कुंजलाल नाग जी ने अध्यापक प्रसन्न बाबू और डॉक्टर प्रसन्न मजूमदार जी के साथ मृदंग बजाकर गाना आरम्भ कर दिया। इन लोगों का कीर्तन आरम्भ होते ही भावावेश की बाढ़ आ गई।

स्कूल-कॉलेज के छात्र कुंज बाबू के साथ बड़े उत्साह से गोसाँईजी को घेरकर, घूमते-घूमते उच्च स्वर में संकीर्तन करने लगे। कुछ क्षणों में गोसाँईजी की चेतना लौटी। वे साष्टांग प्रणाम करके खड़े हो गए। वे ऊँघते-ऊँघते चारों ओर देख-देखकर क्षण-क्षण में सिहर उठते; फिर भाव के स्फुरण से बेसुध होकर उत्तर, दक्षिण, पूरब, पश्चिम दिशा में दौड़ने लगे। ठीक इसी समय पता नहीं कहाँ से एक अपरिचित बड़े तेजस्वी संन्यासी द्रुत गति से चलते हुए कीर्तन-स्थल पर आ पहुँचे एवं कीर्तन के प्रत्येक दल में प्रवेश करके, दोनों हाथ उठाकर नृत्य करते-करते दो-एक चक्कर लगाकर, पूरे कम्पाउंड में दौड़ने लगे। देखते-देखते एक अपूर्व महाशक्ति संचरित होकर बच्चे, बूढ़े, समस्त दर्शक मण्डली को कम्पित कर दी। गोस्वामीजी 'हरि बोल, हरि बोल,' कहते-कहते मूर्च्छित हो गए। संकीर्तन के भिन्न-भिन्न दल अचानक कहीं से सम्मिलित हो गए। अनेक मृदंग-मंजीरों की ध्वनि संकीर्तन के शब्द से मिलकर झमझम करके समाज-प्रांगण को कम्पित करने लगी। दर्शकों के बीच बहुत-से लोग पेड़ के नीचे, रास्ते पर, सीढ़ी के समीप और घास के ऊपर गिरकर, हाथ-पैर पटककर, नाना प्रकार से अचेत हो गए। यह घटना कब तक चली, पता नहीं। संध्या होने के कुछ क्षण बाद ब्राह्म-समाज के कुछ सदस्य आकर उच्च स्वर में कहने लगे, 'आप लोग थोड़ा उठिए; उपासना का समय हो गया है।' गोस्वामीजी ने इसी समय आँखें खोलीं एवं चारों ओर की अवस्था देखकर कुछ क्षण स्थिर रहे। फिर प्रत्येक अचेत लोगों के समीप जाकर, किसी को स्पर्श करके तो किसी के कान के पास 'हरि बोल, हरि बोल' कहकर चेतना का संचार करने लगे। समाज के बरामदे में, सीढ़ी के पास 13-14 वर्षीय एक लड़के को अचेत अवस्था में पड़ा देखकर गोस्वामीजी ने उसके शरीर पर हाथ फेरकर बारम्बार नाम जपने लगे; पर किसी प्रकार भी उसकी चेतना नहीं लौटी। अन्त में गोसाँईजी उसको अपनी गोद में उठाकर, उच्च स्वर में हरिनाम का उच्चारण करने लगे। बहुत समय बाद लड़का थोड़ा अस्फुट क्लेशसूचक करुण स्वर में कराहने लगा। लगभग 20 मिनट बाद धीरे-धीरे उसे बाह्यज्ञान हुआ। गोसाँईजी ने कहा– **"लड़का सहस्रार में जा बैठा था।"** इसका क्या अर्थ है, पता नहीं। लड़का कुंज बाबू का कुटुम्बी और मेरा अच्छा मित्र है– नाम वसुधा है।

सब लोगों को ठीक करके गोस्वामीजी वेदी पर बैठ गए। वे आज वेदी पर बैठकर प्रणाली के अनुसार उपासना कर नहीं सके। नारद, वाल्मिकी, श्री चैतन्य, राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस आदि का दर्शन पाकर उन्होंने उनकी ही स्तुति करनी आरम्भ कर दी। जो लोग उपस्थित थे, सभी की आँखों में आँसू आ गए। व्याख्यान अधिक नहीं होने पर भी गोसाँईजी के भाव से ही सब व्याकुल हो गए। अन्त में भावावेश में कुछ बातें कहते-कहते ही गोसाँईजी का कण्ठ रुद्ध हो गया।

उन्होंने कहा– **वह देखो माँ आ रही हैं। आज माँ थालीभर प्रसाद लेकर आ रही हैं। देखो, माँ मुझे यह बात कहने से रोक रही हैं। क्यों माँ, बोलूँ क्यों नहीं? रोज छिपा-छिपाकर मुझे प्रसाद खिलाती हो। आज तुम्हारे सब लड़कों को भी देना होगा। केवल मुझे देने से मैं खाऊँगा नहीं! तुम तो सभी की माँ हो। इन्हें क्यों नहीं देती हो? ये लोग भूखे ही रहते हैं। माँ तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? माँ आज तुम्हारी सब चालाकी सबसे कह दूँगा। विक्रमपुर की वही 'पातक्षीर' (रबड़ी) वाली बात कह दूँगा, राम बाबू की बात कह दूँगा, साँकल खोल दिए थे वह बात भी कह दूँगा, तुम्हारे घर की सब बातें कह दूँगा। जिस प्रकार चलने से तुम्हारा प्रसाद मिलता है, वह सब आज कह दूँगा। देखिए, आप लोगों से कह देता हूँ– इन तीन नियमों को मानकर चलने से आप लोग माँ का प्रसाद पाओगे। जब भी कुछ ग्रहण करोगे, भोजन करोगे, माँ को निवेदन करके लेना; अनिवेदित वस्तु कभी मत खाना। दूसरों की कभी निन्दा नहीं करना। देखो माँ मेरा मुँह दबा रही हैं– और बोलने नहीं दे रहीं! माँ हाथ से मेरा मुँह दबा रही हैं। जय माँ! जय माँ! जय माँ!**

अस्फुट स्वर में यह सब कहते-कहते गोस्वामीजी का कण्ठ रुद्ध हो गया; बहुत प्रयास करने के बाद भी वे और बातें कह नहीं पाए। चारों ओर हिन्दू, ब्राह्म सभी के क्रन्दन और भाव का कोलाहल मच गई। कुछ क्षण बाद चन्द्रनाथ बाबू गाने लगे। आज फिर वेदी का कार्य गोस्वामीजी नहीं कर पाए। क्रमशः शान्त हो जाने पर सभी अपने-अपने घर चले गए, मैं भी उनके साथ चला आया। गोस्वामीजी कितने समय तक वेदी पर बैठे रहे, पता नहीं।

कुछ अद्‌भुत घटनाओं का सारांश

गोस्वामीजी के ढाका आने के बाद, इन दो-तीन वर्षों में कितनी ही अद्‌भुत घटनाएँ हुई हैं। उसे लेकर हिन्दुओं में, ब्राह्म-समाज में, जहाँ-तहाँ आलोचना प्रायः हो रही है। वे घटनाएँ यदि वास्तव में सत्य हैं, तब तो बड़े आश्चर्य की बात है। गोसाँईजी के ही मुख से वह सब बातें सुने बिना उसे 'डायरी' में लिखने की मेरी इच्छा नहीं है। उन सब घटनाओं के विषय में गोसाँईजी से बातचीत के माध्यम से या प्रश्न करके स्पष्ट जान लूँगा, तब वह सब विवरण यथावत् लिखकर रखूँगा। स्मरण के लिए अभी यहाँ केवल संकेत के रूप में कुछ उल्लेख करके रख रहा हूँ।

1. गोस्वामीजी की दोनों कन्याओं ने बड़ी उत्सुकता के साथ आग्रहपूर्वक गोसाँईजी से जब पद्मा नदी के दर्शन की इच्छा व्यक्त की, उस समय उनके

आदेशानुसार चावल, केला, नैवेद्य इत्यादि लेकर दोनों कन्याओं द्वारा पद्मा के गर्भ में पद्मा-पूजा एवं उसी समय अचानक पद्मा देवी का आविर्भाव।

2. विक्रमपुर के चाँचरतला स्थित काली मन्दिर में अद्भुत हरि-संकीर्तन और उस समय आकाश से अत्यधिक परिमाण में फूलों की वर्षा।

3. कामाख्या तीर्थ में श्रीश्री भुवनेश्वरी का अद्भुत दर्शन और कामाख्या देवी के रजोनिःसरण का दर्शन करना। उसके साथ-साथ वहाँ अचलानन्द स्वामी के विश्वास के प्रभाव से चाँवल बोकर धान के पौधे का उत्पादन।

4. गेण्डारिया के आनन्द बाबू के निर्जन बगीचे में कठोर साधन, दुर्जय परीक्षा और भयंकर विभीषिका आदि का दर्शन।

5. धर्मार्जन में हताश होकर बूढ़ी गंगा में डूबकर मरने के लिए उद्यत एक व्यक्ति को गहन रात्रि में अचानक नदी के किनारे पहुँचकर दीक्षा प्रदान करके उसके प्राण की रक्षा करना।

6. प्रचार-कार्य के समय विक्रमपुर के पण्डित-समाज में आश्चर्यजनक प्रभाव-विस्तार और हरि-संकीर्तन में महाभाव की स्फूर्ति से जनसाधारण को विमुग्ध करना।

7. ब्राह्म-समाज में कलह के विरुद्ध आन्दोलन के समय प्रश्न के माध्यम से मन्मथ बाबू द्वारा 'योग-साधन' पुस्तिका की रचना और प्रचार।

मेरा असाध्य रोग

दिसम्बर, द्वितीय सप्ताह। कफाश्रित वायु से और पित्तशूल की वेदना से मरणासन्न होकर स्कूल जाना छोड़ दिया और कविराजी चिकित्सा (बंगदेशीय वैद्य चिकित्सा) के लिए घर आ गया। ये दोनों रोग मुझे माता-पिता (वंश) से मिले हैं, सब आत्मीयजनों का ऐसा अनुमान है; लेकिन मेरा विश्वास है कि शरीर के ऊपर अत्यधिक अत्याचार करके मैंने स्वयं ही इनकी सृष्टि की है। बचपन से ही 'धर्म-धर्म' करके मैं बड़ा व्याकुल रहा हूँ। गत तीन-चार वर्षों से यह व्याकुलता और भी बढ़ गई है। कहाँ जाने से भगवान् मिलेंगे, किस प्रकार चलने से, किस भाव से साधना करने से उनको पाऊँगा– सदैव यही चिन्ता रहती है। जितेन्द्रिय होकर किसी दुर्गम निर्जन पहाड़ में रहकर व्याकुल हृदय से भगवान् को पुकारने पर निश्चय ही वे दया करके मुझे दर्शन देंगे, इस दृढ़ संस्कार के वशीभूत होकर स्वेच्छानुसार जीवन-गठन करने के कारण ही मैं इस प्रकार पीड़ित हो गया हूँ।

हमारे कुलगुरु एक विख्यात अध्यापक हैं एवं प्रसिद्ध तान्त्रिक हैं। उनके

धीर-गम्भीर स्वभाव एवं मधुर व्यवहार के कारण मैं उन्हें बहुत चाहता हूँ। उनकी व्यवस्थानुसार चलने से मैं अपनी आशा के अनुरूप अवस्था सहज में प्राप्त कर लूँगा, यह सोचकर मैंने एक दिन उनके दोनों चरण पकड़ लिए। बहुत व्याकुल होकर उन्हें भीतर की सब दशा बतलाकर कहा, जिससे कामजित् और आहार-त्यागी हो सकूँ, आप दया करके मुझे वह बतला दीजिए; मैं पहाड़ पर साधना करूँगा। उन्होंने मुझे दैहिक उत्तेजना नष्ट करने के लिए पंचनिम्बवटिका और आहार-त्याग के लिए बिल्बवटिका रीति के अनुसार बनाकर उसका सेवन करने के लिए कहा। ये सब लेकिन गोस्वामीजी को सूचित किए बिना ही हुआ था।

जो भी हो, मैं स्त्रियों के मुख की ओर नहीं देखूँगा और जिह्वा की लालसा से कोई भी वस्तु नहीं खाऊँगा, यह प्रतिज्ञा करके गत दो वर्षों से प्रतिदिन उक्त दोनों औषधियों का सेवन करता आ रहा हूँ। निम्बवटिका के अद्‌भुत गुण से मेरा भयंकर कामभाव बहुत-कुछ निस्तेज हो गया एवं विल्बवटिका सेवन से आश्चर्यजनक रूप से भूख नष्ट हो गई है। धीरे-धीरे प्रयास द्वारा केवल एक मुट्ठी चावल आहार के लिए निर्दिष्ट कर लिया हूँ। इन सब प्रयास के साथ-साथ एक प्रकार का कुम्भक भी बहुत दिनों तक किया था। अब मुझे लगता है, इतने दिनों तक इस निम्बवटिका और बिल्बवटिका के सेवन से और आहार के अत्यधिक कष्टदायक नियम के कारण ही मेरे इस दुःसह-दुरारोग्य पित्तशूल रोग की उत्पत्ति हुई है एवं श्वास रोकने की अस्वाभाविक चेष्टा से यह भयंकर कफाश्रित वायु उत्पन्न हुई है। वह जो भी हो, इस बार पीड़ित अवस्था में घर आकर दोनों औषधियाँ छोड़ दी। वायु रोग की सूचना मिलते ही श्वास रोकने का प्रयास (कुम्भक) छोड़ दिया; उसके साथ-साथ अन्य सारे नियम व अनुष्ठान भी छूट गए; केवल आहार का परिमाण पूर्ववत् अब भी एक मुट्ठी चावल निर्दिष्ट है।

घर आकर इस प्रान्त के प्रमुख-प्रमुख आयुर्वेद वैद्य के द्वारा रोग की जाँच कराकर औषधि का पर्चा लिया। ढाका के सुप्रसिद्ध श्री काली कविराज जी के आदेशानुसार उन्हीं के पर्चे के निर्देशानुसार घर में औषधि बनाकर यथारीति अब सेवन कर रहा हूँ; परन्तु कोई लाभ नहीं हो रहा है; वरन् लगता है, वायु और वेदना का प्रकोप क्रमशः बढ़ता ही जा रहा है। अनेक डॉक्टरों ने एक ही बात कही है कि रोग जिस अवस्था में पहुँच गया है, अब किसी भी प्रकार से ठीक नहीं होगा; फिर भी सोना, लोहा, मुक्ता, आदि 'जारित' करके अच्छे वैद्य द्वारा बड़े यत्नपूर्वक घर में बहुमूल्य औषधि बनवाकर यथारीति सेवन करने से रोग का केवल सामयिक कुछ निवारण ही हो सकता है। मैंने भी मन-ही-मन एक प्रकार से समझ लिया कि अब अधिक दिन यह यातना भोगने के लिए भगवान् मुझे इस संसार में रखेंगे नहीं। अतएव मृत्यु को समीप देखकर मेरा मन साधन-भजन की ओर और भी झुकता जा

रहा है। रोग की चिकित्सा कराना एक अत्यन्त अनावश्यक कार्य जैसे लगने लगा। सूर्योदय से लेकर प्रातः साढ़े 9 बजे तक एक व्यक्ति प्रतिदिन मेरे सारे शरीर में और मस्तक में तेल की मालिश करता है। प्रातः दो बार औषधि खानी पड़ती है। यह समय मैं नाम-जप करके बिताता हूँ। मध्याह्न में भोजन के बाद घर के पश्चिम दिशा की ओर शिशुओं के कब्रिस्तान 'छकिरबाड़ी' के जंगल में जाकर बैठता हूँ; सायं 5 बजे तक निर्जन में भगवान् के नाम का जप करके बहुत अच्छा लगता है। किसी दिन किसी कारण से मेरी यह निर्जन साधना नहीं होती, तो मन में बड़ा कष्ट होता है।

अयोध्या जाने का संकल्प और गोसाँईजी का आदेश

घर में आए बहुत दिन हो गए हैं। गोस्वामीजी को देखने के लिए मन बड़ा व्याकुल हो रहा है। सुना है, ढाका में गोस्वामीजी को लेकर बड़ी गड़बड़ी हुई है। उन्होंने सम्भवतः ब्राह्मधर्म के आचार्य और प्रचारक-पद का परित्याग कर दिया है एवं ब्राह्म-समाज का प्रचारक निवास छोड़कर, (लक्ष्मी बाजार, शिकवाला घर के आगे) इकरामपुर के कदमतला में एक अलग मकान किराये पर लेकर सपरिवार वहाँ वास कर रहे हैं। यह संवाद पाकर मेरा सिर चकरा गया। ब्राह्म-समाज का त्याग! क्या बात है, स्पष्ट रूप से कुछ समझ में नहीं आया। गोस्वामीजी को देखने के लिए मन बड़ा बेचैन हो गया।

इधर कविराज की औषधि खाने से रोग का कुछ भी निवारण नहीं हुआ। वरन् रोग दिनो-दिन और भी बढ़ने लगा एवं आत्मीयजन शीघ्र ही मुझे बड़े भैय्या के पास अयोध्या भेजने के लिए व्यग्र हो गए। अयोध्या जाने के पहले एक बार बारदी के ब्रह्मचारीजी के दर्शन करने की इच्छा हुई। गोस्वामीजी की सम्मति के लिए सारी अवस्था श्रद्धेय श्यामाकान्त पण्डित जी को लिख दी। पाँच-छः दिनों के भीतर ही पत्र का उत्तर आ गया। गोस्वामीजी ने जैसा कहा, पण्डित जी ने ठीक वैसा ही लिखकर भेज दिया–

1. अयोध्या जाने के पहले एक बार ढाका आकर भेंट करना।
2. आँखों में कष्ट है, अतएव दृष्टि-साधना का प्रयोजन नहीं है।
3. ब्रह्मचारी का दर्शन कर सकते हो; इसमें आपत्ति क्या है?

निवेदक– श्यामाकान्त चट्टोपाध्याय। इकरामपुर, ढाका।

सोमवार, 19 दिसम्बर, सन् 1887 ई॰

पत्र पाकर मैंने दृष्टि-साधना छोड़ दी। प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न एवं संध्या,

तीनों समय बहुत व्याकुल मन से प्रार्थना करने लगा। नाम-जप करता हूँ ठीक है, लेकिन नाम-जप की अपेक्षा प्रार्थना करने में ही मुझे अधिक आनन्द मिलता है। लगता है, प्रार्थना से उपकार भी अधिक हो रहा है। सुना है– साधन-पथ पर चलने में सबसे पहले सम्भवतः गुरुभक्ति ही आवश्यक है, गुरु में भक्ति न होने से नाम-जप में रुचि नहीं होती; किन्तु देखता हूँ, मुझमें गुरुभक्ति का बड़ा अभाव है। गोस्वामीजी की साधारण लोगों की अपेक्षा अधिक श्रद्धा तो करता हूँ, लेकिन तब भी उन्हें सम्पूर्ण रूप से अभ्रान्त अथवा एक असाधारण व्यक्ति नहीं मान पाता। उनके सम्बन्ध में जो मैं जानता नहीं या समझता नहीं, ऐसे किसी अलौकिक या अस्वाभाविक गुण और ऐश्वर्य की उनमें व्यर्थ कल्पना करने को मैं दोष मानता हूँ। उनको निष्कपट भले मानुष और धार्मिक समझकर उन पर विश्वास करता हूँ, उन्होंने कहा है यह साधना करने से उपकार होगा, इसलिए अनिच्छा रहने पर भी नाम-जप और प्राणायाम केवल करता जा रहा हूँ।

स्वप्न– अद्वैत भाव: गोसाँईजी की कृपा

गोसाँईजी द्वारा प्रदत्त साधन से लगता है मुझे कोई लाभ नहीं हो रहा है। उनके प्रति निष्ठा या भक्ति उत्पन्न नहीं होने से उनके वाक्यों पर मुझे वैसी श्रद्धा कैसे होगी? निरन्तर साथ रहकर उनकी वह सब 'असाधारण' अवस्था आदि को प्रत्यक्ष देखे बिना उनके प्रति भक्ति भी कैसे होगी? वह तो मेरे लिए असम्भव है, अतएव यह साधन लेना मेरे लिए उपहास का विषय हो गया है। इसलिए अब मुझे प्रतिदिन कष्ट का अनुभव होता है। एक दिन भी उद्वेगरहित नहीं हो पा रहा हूँ।

23 दिसम्बर, शुक्रवार। आज मनःपीड़ा से व्याकुल होकर प्रार्थना करने लगा– 'हे अन्तर्यामी परमेश्वर, मेरे भीतर की दशा तुम देख रहे हो। प्रभु, इस जीवन का जिससे कल्याण होता है, जिस प्रकार चलने से यथार्थ धर्म की प्राप्ति होती है, मैं वह कुछ नहीं जानता, तुम दया करके बतला दो। क्या करने से नाम में रुचि होगी, तुम्हारे प्रति भक्ति होगी, बता दो। गोसाँईजी से साधन लिया है। वे यहाँ नहीं हैं। मेरा जिससे यथार्थ कल्याण हो, दया करके तुम्हीं उसकी व्यवस्था कर दो।' प्रार्थना के अन्त में रात्रि प्रायः 11 बजे बिछौने से उतरकर, मन की भयंकर पीड़ा से हताश होकर, गोसाँईजी के चरणों का स्मरण करके भूमि पर साष्टांग प्रणाम किया और व्याकुल भाव से कहा– 'गोसाँईजी यह जीवन मैंने तुम्हारे हाथों में अर्पित कर दिया है; परन्तु अभी तक तो तुम्हारे दिए हुए साधन में मेरी रुचि हुई नहीं, तुम पर भक्ति हुई नहीं! दया करके मेरा उद्धार करो। गुरुदेव, तुम दया नहीं करोगे तो मेरी व्यवस्था और कौन करेगा?' बहुत ही कातर भाव से कुछ क्षण इसी प्रकार प्रार्थना करके सो गया।

24 दिसम्बर, शनिवार। रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न देखा– बहुत दिनों तक ब्राह्ममत से उपासना आदि करते-करते 'एकमेवाद्वितीयं' इस वाक्य का भाव एवं रहस्य हृदय में जागृत हो गया। तब प्रकृति को ईश्वर से अभिन्न देखने लगा। मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, स्थावर-जंगम सहित इस सारे ब्रह्मण्ड को एकमात्र परब्रह्म का ही विकास समझकर सर्वत्र नमन करने लगा। इसी समय गोस्वामीजी एकाएक मेरे सामने आकर विविध प्रश्न करने लगे। मेरे भीतर अद्वैत भाव का संचार होते देखकर उन्होंने कहा– **"वाह, ये तो अच्छी साधना कर रहे हो! यदि सभी ईश्वर हैं, तो फिर स्वयं को क्यों छोड़ रहे हो? तुम भी तो ईश्वर हो। तुम अपने को भी ईश्वर समझकर सन्तुष्ट क्यों नहीं रहते?"** मैंने कहा– मैं गुरु में भक्ति और नाम में रुचि चाहता हूँ। आप मुझ पर दया करें। गोसाँईजी ने कहा– **"अच्छा! तब तो प्रतिदिन साधना के पहले '• • •' इस नाम का सहस्र बार जप कर लेना!"** यह कहकर वे अदृश्य हो गए। मेरी भी उसी समय निद्रा भंग हो गई। मैं तुरन्त भूमि में गिरकर गोसाँईजी को प्रणाम करके, उस नाम का हजार बार जप किया। इस घटना से मैं बहुत ही अचम्भित हो गया। बहुत दूर से भी प्रार्थना करने पर गोसाँईजी उसे समझ जाते हैं, इस प्रकार का एक संस्कार मेरे भीतर आ गया। स्वयं गोसाँईजी ही स्वप्न के माध्यम से मुझे इस प्रकार कह गए हैं, इस विषय में फिर मुझे किसी प्रकार का सन्देह नहीं हुआ।

प्रार्थना की व्यर्थता का बोध

स्वप्न देखने के बाद से तदनुसार कार्य करने के साथ-साथ मेरी अवस्था का दिनो-दिन परिवर्तन हो रहा है। ब्राह्मधर्म की प्रणाली के अनुरूप ही उपासना आदि बहुत दिनों से करता आ रहा हूँ। प्रार्थना करके बहुत आनन्द मिलता है। प्रार्थना करके जिस दिन आँखों से पानी नहीं बहता, ऐसा लगता है, उस दिन प्रार्थना हुई ही नहीं, दिनभर एक प्रकार के क्लेश से छटपटाता हूँ। प्रतिदिन तीनों समय प्रार्थना करने का मेरा नियम है; पर पता नहीं क्यों, स्वप्न दर्शन के बाद से मेरा अब प्रार्थना के प्रति पहले जैसा भाव नहीं रहा। गति बिल्कुल बदल गई है। प्रार्थना के भीतर से ही 'प्रार्थना असार है', यह बात भगवान् मुझे स्पष्ट रूप से समझाने लगे हैं। देखता हूँ, जब जिस भाव से प्रार्थना करता हूँ, उस समय उसी भाव में डूब जाता हूँ और आनन्द के स्फुरण से विभोर हो जाता हूँ। सोचता हूँ, यही तो है ईश्वर का अनुभव; परन्तु प्रार्थना करके उठने के कुछ क्षण बाद फिर वैसा भाव, वैसा आनन्द, वैसा उत्साह रहता नहीं, मानो सब ठण्डा पड़ जाता है। बार-बार यही अनुभव करके सोचा, 'ऐसा क्यों होता है?' प्रार्थना के समय यदि सत्यस्वरूप उस नित्य आनन्दमय परमेश्वर की उपलब्धि होती है, तो फिर वह

स्थायी क्यों नहीं होती? उन्हें उस भाव से एक बार वास्तव में अनुभव करने पर फिर क्या अन्य भाव हृदय में आता है, भाव का परिवर्तन होता है या निरानन्द की अवस्था अन्तःकरण में आ सकती है? कई दिनों तक इस विषय पर विचार किया। अन्त में एक दिन प्रार्थना करते-करते ही समझ गया– स्पष्ट बोध हुआ कि अपने अन्तर्निहित भाव को प्रार्थना से जागृत करके जिस आनन्द का अनुभव करता हूँ, उसे ही ईश्वर के प्रकाश का आनन्द समझ रहा हूँ, वास्तविक ईश्वर की उपासना नहीं करता– केवल अन्तःकरण के भाव की ही उपासना करता हूँ।

परमेश्वर में एक-एक दिन एक-एक सद्‌गुण का आरोपण करके, उन्हें उस गुण का एकमात्र आधार समझकर मैं उपासना करता हूँ। भगवान् सत्यस्वरूप, पवित्रस्वरूप, मंगलमय, आनन्दमय, परम दयालु हैं, इत्यादि कहकर अपनी धारणा एवं अभिज्ञता के अनुसार चन्द्र, सूर्य, अग्नि, जल, वायु आदि सब सृष्ट वस्तुओं में उनका ही प्रकाश या गुण देखकर स्तुति करता हूँ। क्रमशः वैसा ध्यान करते-करते एकाग्र होते ही उन सब भावों में पूर्णतः अभिभूत हो जाता हूँ, तब 'यही परमेश्वर हैं, यही परमेश्वर हैं' यह प्रतीत होने से आनन्द और आवेश से मुग्ध हो जाता हूँ। अब प्रार्थना के ही द्वारा स्पष्ट समझ गया हूँ– वह ईश्वर नहीं है। वह वाक्य द्वारा, ध्यान द्वारा, एकाग्रता द्वारा मेरे ही भीतर स्थित विशेष भाव का केवल स्फुरण है; ध्यान-धारणा से उत्पन्न अथवा एकाग्रता से प्राप्त ऐसे किसी भाव को ही अब मैं ईश्वर समझकर परितृप्त नहीं रहना चाहता। मैं वाक्य-कल्पना के बन्धन से मुक्त, भाव-संस्कार से रहित, सत्यस्वरूप परमेश्वर के सत्य प्रकाश का ही अभिलाषी हूँ। मैं प्रार्थना करके स्वयं का वाक्य स्वयं सुनकर अथवा अपने संस्कार या भाव के अनुरूप ध्यान करके जब अनिर्वचनीय आराम प्राप्त किया करता हूँ, तब आनन्द के कारण मोहवशतः उसको सत्यस्वरूप आनन्दमय परमेश्वर के प्रकाश के अतिरिक्त अन्य कुछ सोच नहीं पाता, यह सत्य है, लेकिन कुछ क्षण बाद वह भाव छूट जाने पर स्पष्ट समझ में आता है कि वह मेरे ही भीतर के भाव का स्फुरण अथवा काल्पनिक सुख की केवल एक अनुभूति है। ईश्वर की अनुभूति होने पर अवश्य ही वह स्थायी होती एवं उस सम्बन्ध में इस प्रकार का कोई संशय या सन्देह भी मेरे मन में कभी किसी प्रकार से नहीं उठता। परमेश्वर सत्य वस्तु है; उनका थोड़ा भी अनुभव होने से उस विषय में क्या विस्मरण या संशय कभी हो सकता है? अग्नि यदि किसी व्यक्ति के शरीर में लगे, वह जागृत अवस्था में रहे या निद्रित, उछल पड़ेगा; अग्नि बुझ जाने के बाद भी शरीर में ज्वाला रहेगी। ज्वाला भी यदि मिट जाए, तो घाव कुछ दिनों तक बना रहता है; घाव मिट जाने के बाद भी उसका एक चिह्न रह जाता है, अन्ततः एक स्मृति भी रहती है; लेकिन मेरी एक समय की ईश्वरानुभूति का लेशमात्र भी तो अन्य समय में अपने भीतर खोजने से

मिलता नहीं। अतएव मैं ईश्वरोपासना कभी नहीं करता; केवल कल्पना की, वाक्य की और भाव की ही उपासना करता हूँ। प्रार्थना करके बहुत आनन्द मिलता है; लेकिन वह आनन्द दीर्घकाल तक रहता नहीं। उसके हटते ही मानो सौ गुनी यन्त्रणा होने लगती है। प्रार्थना से इस प्रकार अस्थायी असार आनन्द का अनुभव होने से मेरा हृदय छिन्न-भिन्न हो गया है। प्रार्थना के प्रति विरक्ति और असन्तोष का भाव उत्पन्न हो गया है। अब प्रार्थना नहीं करूँगा– अस्थायी असार आनन्द को अब कभी ईश्वरानुभूति का आनन्द नहीं मानूँगा, यह निश्चय किया। ईश्वर को प्रत्यक्ष किए बिना उनकी उपासना नहीं होती, यह दृढ़ संस्कार उत्पन्न हो गया।

बहुत दिनों की अभ्यस्त प्रार्थना का विसर्जन कर दिया। सोचा– 'अब और क्या लेकर रहूँ? अतएव परमेश्वर के नाम का जप ही करूँ। अब जो करना है, भगवान् ही करेंगे।'

कुछ दिनों से प्रार्थना का पूर्णतः परित्याग कर दिया। गोसाँईजी ने जो साधन दिया है, उसे ही करता हूँ। दोनों समय प्राणायाम करता हूँ और सदैव मन-ही-मन नाम का स्मरण करने का प्रयास करता हूँ; परन्तु नाम जपने से कोई उपकार समझ में नहीं आ रहा है, आनन्द भी नहीं मिल रहा है। दिनो-दिन भयंकर शुष्कता के कारण मेरा मन विचलित हो उठा है।

भगवान् का नाम जप रहा हूँ, कभी-कभी यह भाव दृढ़ होने से थोड़ा आनन्द पाता हूँ; वह भी स्थायी नहीं होने से उसमें फिर मेरा विशेष प्रयत्न नहीं रहता।

इष्ट-नाम की उत्पत्ति की अनुभूति

कुछ दिन से नाम-जप करते-करते लग रहा है– 'यह नाम कौन करता है? यह कहाँ से निकल रहा है? मैं स्वयं ही कहाँ हूँ?' नाम जपने के साथ-साथ इस सम्बन्ध में प्रतिदिन अनुसन्धान किया करता हूँ। प्रत्येक नाम के जप के साथ-साथ, यह नाम ठीक कहाँ से आ रहा है, उसे तलाश करता हूँ। ऐसा लगता है, मानो असीम सागर में गिरकर बुलबुले की जड़ को खोज रहा हूँ। नाम भी सागर के बुलबुले के समान लग रहा है, बुलबुले को पकड़कर बारम्बार डुबकी लगा रहा हूँ; परन्तु बहुत ही गहरे सागर में डुबकी लगाते-लगाते, गहराई में कुछ दूर जाकर फिर बुलबुलों के साथ-साथ ही ऊपर उठ जाता हूँ। पेट के भीतर नाना स्थानों में घूम रहा हूँ; लेकिन कहीं भी जड़ को पकड़कर बैठ पाने का स्थान नहीं मिला। इस अनुसन्धान में मेरे चित्त में एक प्रकार की व्यस्तता रहने पर भी अधिकतर बाहर का कोई ज्ञान ही नहीं रहता। सारी इन्द्रिय-शक्ति मानो अन्तर्मुखी हो जाती है। इन कुछ दिनों में क्रमशः नाभि के नीचे से, नाभि के मूल से, हृदय, कण्ठ एवं अन्त

में भ्रूमध्य से नाम की उत्पत्ति की अनुभूति हुई; परन्तु बहुत स्पष्ट रूप से नहीं।

इस समय गोस्वामीजी को एक बार देखने की बड़ी इच्छा हो रही है। माघोत्सव का समय भी निकट है। गोसाँईजी को देखने एवं इन सब विषय में उनसे पूछने के लिए शीघ्र ढाका जाने का निश्चय किया।

भावुकता में गोस्वामीजी का शासन

कल संध्या के समय ढाका में आ गया। आज प्रातः कुछ ब्राह्म मित्रों के साथ भेंट करके भोजन के बाद एकरामपुर कदमतला में गोसाँईजी के निवास पर पहुँचा। वहाँ देखा, गोस्वामीजी रास्ते के समीप वाले कमरे में उत्तर की ओर मुख करके अपने आसन पर चुपचाप बैठे हुए हैं। कमरे में बहुत-से लोग हैं, सभी शान्त हैं। मैं जाकर कमरे के एक कोने में बैठ गया।

विक्रमपुर निवासी, जगन्नाथ स्कूल का एक लड़का राधाकृष्ण का एक चित्र हाथ में लेकर, कमरे में बैठे सभी को अतिक्रम करके सीधे गोस्वामीजी के दाहिनी ओर बैठ गया। फिर बारम्बार उनके चरणों में लोटने लगा और राधाकृष्ण का चित्र उनके मुख के पास रखकर कहने लगा– 'गोसाँईजी, कह दीजिए, कह दीजिए, किस प्रकार मिलेंगे, कहिए। आहा, कितनी सुन्दर मूर्ति है! मैं और कुछ नहीं चाहता, और कुछ नहीं चाहता। किस प्रकार मिलेंगे, कह दीजिए।' गोसाँईजी बार-बार उसे **'शान्त हो जाओ, शान्त हो जाओ'** कहकर भी किसी प्रकार से उसकी अधीरता को रोक न सके। लड़का तो मानो और भी सनक उठा। तब गोसाँईजी ने धमकाकर कहा– **"अच्छा? यहाँ पर चालाकी! और कुछ नहीं चाहते? नवाब के निर्जन बगीचे में एक सुन्दर युवती मिलने पर उसे देखोगे या नहीं, सोचकर कहो तो। चालाकी करते हो?"** गोसाँईजी की बात सुनते ही लड़के का सारा भाव मानो उतर गया। वह कुछ क्षण चुप रहा, फिर उदास होकर चला गया।

जनवरी, सन् 1888 ई॰

भक्त का प्रतिकूल आचरण

पिछले वर्ष एक दिन समाधि की अवस्था में गोस्वामीजी के मुख से यह एक कथन निकला था– **'साधन-प्राप्त एक विद्वान् सुशिक्षित युवक ब्राह्म-समाज के उपाचार्य का आसन ग्रहण करेंगे। ब्राह्म लोगों के साथ मिलकर मुझे नाना प्रकार से अपदस्थ करने का प्रयास करेंगे। अन्त में बड़े संकट में पड़कर ढाका छोड़कर भाग जाएँगे।'**

गोस्वामीजी के ब्राह्म-समाज छोड़ देने के बाद अनेक लोग समझ गए, वह व्यक्ति और कोई नहीं– गोस्वामीजी के प्रिय शिष्य श्री मन्मथनाथ मुखोपाध्याय हैं। प्रचारक निवास में गोस्वामीजी के रहते समय ही उनके मधुर सत्संग प्राप्त करने के उद्देश्य से मन्मथ बाबू ढाका आए एवं ब्राह्म-समाज में पण्डित श्री श्यामाकान्त चट्टोपाध्याय जी के साथ मिलकर रहने लगे। उस समय गोस्वामीजी के आदेश के अनुसार वे कभी छात्र-समाज में, तो कभी ब्राह्म-समाज में प्रवचन देने लगे। चार-पाँच प्रवचन से ही शहर में एक धूम-सी मच गई। 'केशव बाबू के बाद ऐसा वक्ता ढाका में अभी तक और कोई आया नहीं' कई लोग इस प्रकार भी कहने लगे। अद्‌भुत वक्तृत्व-शक्ति के प्रभाव से बहुत कम समय में ही शिक्षित-समाज में मन्मथ बाबू की असाधारण प्रतिष्ठा बन गई। गोस्वामीजी के ब्राह्म-समाज त्याग देने के बाद भी ब्रह्मसमाजियों के साथ मिलकर मन्मथ बाबू गोसाँईजी के अभ्रान्त शास्त्र-वाद, अभ्रान्त गुरु-वाद आदि मत के विरुद्ध प्रकट रूप से प्रवचन देकर अपनी अद्‌भुत शक्ति और तेजस्विता का अत्यन्त उग्रभाव से प्रयोग करने लगे। गोस्वामीजी के ब्राह्म-समाज छोड़कर चले आने पर मन्मथ बाबू के उत्साह, उद्यम और प्रयास से ब्राह्म-समाज के प्रति लोगों का आकर्षण बढ़ रहा है। शहर में सर्वत्र मन्मथ बाबू की जय-जयकार हो रही है। ब्रह्मसमाजियों के घर-घर में वे सम्मानित हो रहे हैं; अधिक आयु के भी कुछ ब्राह्मगण उनकी चरण-धूलि लेकर भक्ति प्रकट किया करते हैं।

माघोत्सव में उपासना

24 जनवरी, मंगलवार,। आज माघोत्सव है। प्रतिवर्ष इस महोत्सव में भगवान् का 'नाम' लेकर बहुत आनन्द प्राप्त करता हूँ! प्रातःकाल गोस्वामीजी के पास न जाकर ब्राह्म-समाज में गया। मन्मथ बाबू उपासना कर रहे थे। लोगों से परिपूर्ण विस्तृत समाज-गृह के एक कोने में चुपचाप बैठा रहा। उपासना बहुत अच्छी लगी। मन्मथ बाबू के तेजःपूर्ण भाषा से भीतर का निद्रित भाव भी मानो जाग उठने लगा। मैं बहुत दृढ़ होकर बैठ गया। सोचने लगा, 'यह तो केवल भाव की उपासना है, केवल वाक्य का आडम्बर और कल्पना की अधिकता ही है। परमेश्वर कहाँ हैं?' इस प्रकार विचार के द्वारा मन को अच्छा दृढ़ करने लगा। ठीक उसी समय मन्मथ बाबू अचानक उच्च स्वर में कहने लगे– 'माँ आनन्दमयी, आज माघोत्सव में सभी के हृदय को तुमने उज्ज्वल कर दिया है, लेकिन माँ, एक लड़का अपनी निर्जन अन्धकारमय कुटिया में बैठकर देखो क्या सोच रहा है। माँ आनन्दमयी, आज उसके अन्धकार कमरे को क्या तुम अपने प्रकाश से उज्ज्वल नहीं करोगी?' इत्यादि। सुनकर मेरा हृदय काँप उठा; सोचा– 'ऐसा लगता है, मन्मथ बाबू में

भीतर के भाव को अनुभव करने की क्षमता है; अब वे मेरी शुष्कता का अनुमान लगाकर अपनी भावुकता से मुझे अभिभूत करने का प्रयास करेंगे।' मैं उसी क्षण आसन से उठकर अपने निवास-स्थान में चला आया।

दोपहर में भोजन के बाद एकरामपुर के कदमतला में गोस्वामीजी के निवास-स्थान पर गया। दुमँजिले में जाकर देखा, गोस्वामीजी 20-25 शिष्यों को लेकर एक बड़े कमरे में शान्त भाव से बैठे हैं; श्री रजनी बाबू, आनन्द बाबू आदि कई प्रतिष्ठित ब्राह्मगण भी उपस्थित हैं।

लगभग महीनेभर से अधिक समय हो गया, भाव से सम्बन्ध नहीं रखता। भाव होने से वह स्थायी होगा नहीं, कुछ क्षण बाद ही छूट जाएगा, इस डर से भाव की बातें नहीं सुनता। भाव के गीत पसन्द नहीं करता, भावुक लोगों के पास बैठने का भी मन नहीं करता। अन्तःकरण शुष्क लकड़ी जैसा हो गया है। गोसाँईजी भगवान् का साक्षात् दर्शन करके उपासना करते हैं, ये मेरा विश्वास है; इसलिए अपनी शुष्कता की दृढ़ता के साथ रक्षा करके उनकी उपासना में सम्मिलित हुआ। ठीक ब्राह्म-समाज की प्रणाली की भाँति यहाँ भी उन्होंने उद्‌बोधन करके प्रार्थना आरम्भ की।

माँ अन्नपूर्णा, आज छोटे-बड़े, कंगाल-फकीर सबको तुम पेटभर अन्न प्रदान कर रही हो। देश-विदेश में आज कितने ही लोग तुम्हारा प्रसाद पाकर तृप्त हो रहे हैं। मुझे भी पेटभर अन्न दे रही हो। माँ, बचपन से ही आज के दिन तुम मुझे विशेष रूप से अपना प्रसाद देती आ रही हो। इस वर्ष भी माँ आज तुम मुझ पर विशेष रूप से दया करो।

इस प्रकार कुछ बातें कहने के बाद गोस्वामीजी की अद्‌भुत अवस्था देखा। वे रोते-रोते कहने लगे– **'हो गया, हो गया! हो गया माँ! ऊह! ऊह! ऊह! और नहीं, और नहीं माँ! कानी-कौड़ी– एक कानी-कौड़ी माँ, मैं तुम्हारा कंगाल लड़का तुम्हारे हाथ से एक कानी-कौड़ी चाहता हूँ माँ। वही मेरे लिए पर्याप्त है। माँ, मेरा क्या सामर्थ्य है कि इतना हजम करूँ? रोज-रोज देना, माँ। एक-एक कानी-कौड़ी देना। और नहीं, और नहीं।'** यह कहते-कहते कण्ठ रुद्ध होने से वे चुप हो गए। शरीर थरथर काँपने लगा। लगातार अश्रु की धारा बहने लगी। बीच-बीच में रुआँसे स्वर में **'जय माँ, जय माँ'** कहने लगते। इस समय पता नहीं क्यों, दयामयी के गुण से हो या गोस्वामीजी के संग के गुण से, मेरा शुष्क कठोर हृदय भी अचानक न जाने कैसा हो गया। शरीर बारम्बार काँपने लगा। मैं एकदम चीखकर रोते-रोते धरती पर लोटने लगा। कुछ लोग कांगाल का गीत गाने लगे– 'माँ, आमि तोमार पोषा पाखी' (माँ, मैं तुम्हारी पालतू चिड़िया हूँ)। कमरे के भीतर-बाहर रोने का कोलाहल होने लगा।

गुरुभाई लोग लगभग एक घण्टे से भी अधिक समय तक भावावेश में मग्न रहने के बाद प्रकृतिस्थ हुए।

बिना विचार किए ब्राह्म-दीक्षा देने का प्रतिवाद

दोपहर के बाद दो-तीन गुरुभाइयों के साथ गोस्वामीजी के पास बैठा हूँ। श्यामाकान्त पण्डितजी ने आकर कहा– चित्र लेकर उस दिन जो लड़का आया था, वह सम्भवतः आज ब्राह्मधर्म की दीक्षा लेगा! गोसाँईजी ने सुनकर चकित होते हुए कहा– **"क्या? उस लड़के को ब्राह्मधर्म की दीक्षा देंगे? यह सब क्या है? कल हमारे सामने राधाकृष्ण का चित्र लेकर इतना काण्ड करने के कारण जिसे बहुत धमकाया– आज उसे ही ब्राह्मधर्म की दीक्षा मिलेगी? इस प्रकार सब लोगों को दीक्षा देने से ही तो ब्राह्म-समाज की इतनी हानि हुई है। कल एक मत था, आज दूसरा मत हो गया; फिर कल वह अपना मत नहीं बदलेगा, यह कौन कह सकता है? क्या केवल दल बढ़ाना ही उद्देश्य है? लोक-वृद्धि से ही सब हो जाएगा! ऐसा होने से पागल लोगों को भी तो दीक्षा दे सकते हैं। ओह, कितना भयानक है! ये सब खबर लगता है, वे लोग जानते नहीं। एक बार बतलाना आवश्यक है। तुम लोग कोई जा सकते हो?"**

मैं तुरन्त ही जाने के लिए राजी होकर कहा– मैं जाऊँगा। किसे क्या कहना होगा बतलाइए। गोसाँईजी ने कहा– **"तुम जाकर एकान्त में मन्मथ को कहना कि कल जो मूर्ति लेकर घूम रहा था, आज उसे ही ब्राह्म-समाज दीक्षित नहीं कर सकता। उस लड़के का कम-से-कम 15 दिन तक निरीक्षण करना आवश्यक है।"** मैं दौड़कर ब्राह्म-समाज में गया। मन्मथ बाबू को एकान्त में बुलाकर बताया कि मुझे गोस्वामीजी ने भेजा है, फिर सारी बातें यथावत् उनसे कही। मन्मथ बाबू ने कहा– 'ये सब मैं कुछ भी जानता नहीं। अच्छा, तुम जाओ। मेरे अनजाने में कोई भी दीक्षा नहीं ले सकेगा, जाकर यह बात गोसाँईजी से कहो।' मैं तुरन्त इकरामपुर आकर गोस्वामीजी से सब कह दिया।

लौटते समय ब्राह्म-समाज से बाहर निकलकर अपने एक मित्र श्री रेवतीमोहन सेन से अपने साथ गोस्वामीजी के पास चलने के लिए जिद करने लगा। पटुआटोली के रास्ते के किनारे रेवती बाबू ने गोस्वामीजी के साधन सम्बन्धित अनेक विषयों पर मुझसे प्रश्न किया। रेवती बाबू गोस्वामीजी से दीक्षा ले लें, तो बड़ी प्रसन्नता होगी। रेवती बाबू बहुत अच्छे गायक हैं– गोस्वामीजी रेवती बाबू के कीर्तन में आत्मविस्मृत हो जाते हैं। दीक्षा लेने हेतु रेवती बाबू से बारम्बार कहा।

रेवती बाबू ने कहा– 'दीक्षा लेने की मेरी बहुत इच्छा है। फिर भी और कुछ दिन देख-सुन लेना चाहता हूँ। फिर मेरे दीक्षा माँगने से ही क्या वे देंगे?' इत्यादि।

साधनानुभूति में प्रोत्साहन: भक्त माली की इच्छा-पूर्ति

26 जनवरी, गुरुवार। प्रातः उठकर गोस्वामीजी के पास गया। उनको ध्यानस्थ देखकर चुपचाप बैठा रहा। एक व्यक्ति अपने घर के संकीर्तन में गोस्वामीजी को ले जाने के लिए व्याकुल हो गए। वे हम लोगों के मना करने पर भी गोस्वामीजी को पुकारकर आसन से उठाने के लिए जैसे ही अग्रसर हुए, अचानक गिर पड़े। उनका पहना हुआ नया वस्त्र जगह-जगह से फट गया; पैर में भी बहुत चोट लगी। गोसाँईजी को ध्यान से उठाए बिना ही वे दुःखी मन से चले गए। कुछ क्षण बाद गोसाँईजी चैतन्य हुए। सब लोगों के चले जाने के बाद मैंने गोस्वामीजी से कहा– कल मैं घर जाऊँगा।

गोसाँईजी– **कल तो हम भी तुम्हारे प्रान्त के इछापुरा गाँव जाएँगे। दोपहर में भोजन करने आना, एक साथ जा सकते हैं। अभी कैसे हो? तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक है तो? तुम तो बड़े भाई के पास जाने वाले थे? पश्चिम में जाने का अच्छा सुयोग था। कब जाओगे?**

मैं– भैय्या शीघ्र ही घर आने वाले हैं, इसलिए जाना हुआ नहीं।

गोसाँईजी– **पढ़ाई-लिखाई लगता है बन्द है? ठीक है, पहले स्वस्थ हो जाओ। पढ़ाई-लिखाई के लिए घबराने की आवश्यकता नहीं है। साधना कैसी चल रही है? नाम-जप तो करते हो?**

मैं– गाँव में अच्छा संग नहीं मिलता। कुचिन्ता, कुकल्पना बीच-बीच में चित्त को बहुत बेचैन कर देती है, रोग भी जा नहीं रहा है। अब कुछ अच्छा नहीं लगता। नाम-जप तो करता हूँ, परन्तु शुष्कता के कारण दिनो-दिन सूखता जा रहा हूँ। बड़ा कष्ट होता है। मन में निराशा आ जाती है।

गोसाँईजी– **हाँ, सब जानता हूँ। साधना करते रहो, सब ठीक हो जाएगा। थोड़ा-थोड़ा दृष्टि-साधन भी करो। प्राणायाम करने में यदि कष्ट हो तो मत करना; पर धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा प्राणायाम कर सको, तो देखना यह कष्ट रहेगा नहीं। इस प्राणायाम का एक बार बहुत अच्छे-से अभ्यास हो जाने पर कोई रोग नहीं रहता। फिर प्राणायाम के समय थोड़ा-थोड़ा निःश्वास रोककर नाम-जप करना। शुष्कता से कोई हानि नहीं है। नाम-जप करते-करते ये शुष्कता भी दूर हो जाएगी। इसमें निराश होने की कोई बात नहीं है।**

मैंने कहा— मैं जिन्हें बहुत अच्छा समझता हूँ, उनकी श्रद्धा-भक्ति करता हूँ, साधना के पहले इस प्रकार के कुछ लोगों का मैं प्रतिदिन स्मरण किया करता हूँ। इस प्रकार की कल्पना से कोई हानि होती है?

गोसाँईजी— **ये तो बहुत अच्छा है। इससे हानि कुछ नहीं होती, उपकार ही अधिक होता है। अच्छा है! वैसा ही करना। मैं भी वैसा किया करता हूँ।**

मैं— साधना के समय नाम कहाँ से निकलता है, अनुसन्धान करने की इच्छा होती है। नाभि के नीचे, नाभि में, कण्ठ आदि अन्य स्थानों पर अनुभव करता हूँ। अब मस्तक के पीछे की ओर एक स्थान पर बोध होता है। इस प्रकार अनुसन्धान करने से जिस-जिस स्थान में अनुभव होता है, वहाँ धारणा करूँ?

गोसाँईजी— **हाँ, हाँ, खूब करो। यह धारणा कई स्थानों पर होगी!** कपाल और ब्रह्मतालु में अंगुलि से इंगित करके उन्होंने कहा— **क्रमशः इन जगहों पर होगी। साधना करते-करते यह सब धारणा अपने-आप ही होती है। ये सब होना बहुत अच्छा है।**

यह सब वार्त्तालाप होने के बाद गोस्वामीजी ने फिर आँखें बन्द कर लीं। हम लोग चुपचाप बैठे रहे। कुछ समय बाद हरि-संकीर्तन का एक दल कदमतला में आया। गोसाँईजी दूर से मृदंग की आवाज सुनकर धीरे-धीरे सिर हिला रहे थे। संकीर्तन दल के कदमतला में आते ही वे आसन से उछलकर उठ गए और संकीर्तन के बीच में जाकर नृत्य करने लगे। संकीर्तन दल चलने लगा, वे भी उसके साथ नृत्य करते-करते चलने लगे। धीरे-धीरे हम लोग बेनियाटोला के श्री बिहारी मालाकार (माली) के घर में जा पहुँचे। वहाँ जाते ही गोसाँईजी मूर्च्छित होकर गिर पड़े। कीर्तन भी कुछ क्षण बाद रुक गया। कुछ समय बीत जाने पर गोसाँईजी को चैतन्य हुआ तो उन्होंने इधर-उधर देखते हुए कहा— **"यह क्या? मैं यहाँ किस प्रकार आया? मैं तो सोच रहा था कदमतला में ही हूँ।"**

उस समय राधाकृष्ण का विग्रह सामने देखकर गोसाँईजी ने भूमि पर लेटकर साष्टांग प्रणाम किया। माली ने हाथ जोड़कर गोस्वामीजी से कहा— 'प्रभु, आज मेरे ठाकुरजी की प्रतिष्ठा हुई है। बड़ी इच्छा थी, एक बार आपका आगमन यहाँ हो, चरण-धूलि पड़े। आपसे कहने गया था, पर कहने का साहस नहीं हुआ। आप दयालु हैं, तभी मेरी आकांक्षा को जानकर आपने उसे पूर्ण किया।' यह कहकर माली गोसाँईजी के चरणों में गिरकर लोटने लगे। इसके पहले और कभी मैंने गोसाँईजी को प्रतिमा के सामने प्रणाम करते देखा नहीं। मन में बड़ा कष्ट हुआ। सोचा, 'हे भगवान्! यह दृश्य मुझे क्यों दिखलाए?'

इछापुरा ग्राम में गोसाँईजी और लाल महोत्सव में मल्लवेश में नृत्य

27 जनवरी, शुक्रवार। प्रातः हाथ-मुँह धोकर बैठा हूँ, छोटे भैय्या ने आकर कहा– 'अभी तक बैठा क्यों है? नौका का समय हो गया है। आज घर जाएगा न?' मैंने कहा– आज गोस्वामीजी इछापुरा में हरिचरण चक्रवर्ती जी के घर पर जाएँगे; मैं भी उनके साथ जाऊँगा कहकर आया हूँ। गोसाँईजी के साथ जाऊँगा सुनकर छोटे भैय्या ने खूब विरक्ति के साथ कहा– 'गोसाँईजी का साथ न होने पर क्या घर जाना नहीं होगा? गोसाँई! गोसाँई! केवल गोसाँई। यह नहीं होगा। इसी समय तू नौका से चला जा।' मैं अब क्या करूँ? छोटे भैय्या के कहे अनुसार चल पड़ा। नौका में चढ़कर मुझे रोना आ गया। मन-ही-मन गोसाँईजी को प्रणाम करके बतलाया, 'भैय्या के कहे अनुसार इच्छा न होने पर भी इस नौका से जा रहा हूँ। मेरे लिए आप और प्रतीक्षा न करें; मेरे अनिच्छाकृत अपराध के लिए क्षमा करें।' सारा पथ मेरा बड़े उद्वेग के साथ बीता।

28 जनवरी, शनिवार, पूर्णिमा। प्रातः उठकर गोस्वामीजी को देखने के लिए व्याकुल हो गया। घर से आधे घण्टे की दूरी पर इछापुरा ग्राम है। यथासमय वकील हरिचरण चक्रवर्ती जी के घर जा पहुँचा। देखा, घर लोगों से परिपूर्ण है। चक्रवर्ती जी के घर में आज महोत्सव होगा। 'छोटे' लोग, वैष्णव, बाउल को छोड़कर इस क्षेत्र में सभ्य लोग महाप्रभु का उत्सव प्रायः नहीं करते; हम लोग उसे छोटे लोगों का ही हल्ला-गुल्ला का कार्य समझते हैं। आज बारदी के ब्रह्मचारीजी भी इस उत्सव में आएँगे; गोसाँईजी कल आ गए हैं– यह खबर पाकर प्रतिष्ठित समाजपति लोग भी इस उत्सव में सम्मिलित हुए हैं।

मैं सीधे गोस्वामीजी के पास जाकर उनको प्रणाम करके एक ओर बैठ गया। उस कमरे में तब लोगों की कोई भीड़-भाड़ नहीं थी, केवल गोस्वामीजी के कुछ शिष्यों को ही वहाँ देखा। मैं उनके साथ क्यों न आ सका, यह उनसे कहने वाला था कि उन्होंने ही मुझसे कहा– **"तुम कल प्रातःकाल जब नौका से चले आए, वह मैं तभी जान गया था।"**

मैं– आपको क्या किसी ने खबर दी थी?

गोसाँईजी– **नहीं, वैसा नहीं है।**

संक्षेप में यह उत्तर देने के साथ ही मुझे फिर कोई प्रश्न करने का अवसर न देकर, बार-बार हरिचरण बाबू को पुकारने लगे। हरिचरण बाबू के उपस्थित होते ही उन्होंने व्यग्र होकर कहा–

"घर पर मुरमुरा है? दो मुट्ठी मुरमुरा लाकर दीजिए तो। छाती में वेदना का अनुभव हो रहा है। पित्त की वेदना में मुरमुरा उपकारी है; समय-समय पर खाने से रोग दब जाता है।" मेरा शरीर बड़ा अस्वस्थ है। छाती में प्रायः 24 घण्टे वेदना रहती है। आधे घण्टे का रास्ता बड़े कष्ट से डेढ़ घण्टे में चलकर आया हूँ। गोसाँईजी के पास पहुँचकर रोग की यन्त्रणा से छाती दबाकर बैठा था। हरिचरण बाबू ने मुरमुरा लाकर दिया। दो-एक बार ही गोसाँईजी ने उसे मुख में डालकर शेष मुझे खाने के लिए कहा। मुरमुरा खाने से मेरी वेदना बहुत कम हो गई।

गोस्वामीजी के पास मेरे से कम आयु के एक लड़के को चुपचाप बैठे हुए देखा। लड़के को देखकर बड़ा अच्छा लगा। उसका परिचय जानने के लिए श्रीधर बाबू को साथ लेकर कमरे से बाहर आ गया। पूछने पर श्रीधर बाबू ने कहा– 'इनका नाम लालबिहारी बसु है। शान्तिपुर में घर है। आयु में तो छोटे हैं, परन्तु वे एक जाति-स्मर महापुरुष हैं। आठ वर्ष की अवस्था में ही धर्म-धर्म करके ये घर से निकल गए। संन्यासी, फकीर, दरवेशादि नाना सम्प्रदाय के छः सिद्ध पुरुषों से क्रमशः दीक्षा लेकर उन्होंने कठोर साधन-भजन द्वारा कई यौगैश्वर्य अर्जित किया; लेकिन कहीं भी यथार्थ तृप्ति न पाकर अब आश्चर्यजनक रूप से संयोगवश गोस्वामीजी के पास आ गए हैं। इनका और क्या परिचय दूँगा। इनका सत्संग करने से ही क्रमशः सब जान जाओगे।' मैं श्रीधर की बात सुनकर चुप रह गया।

उधर महोत्सव के बाजे बजने लगे। चक्रवर्ती जी के घर के बाहर बड़े आँगन में उत्तर की ओर महाप्रभु प्रतिष्ठित हैं। हम सभी गोसाँईजी को लेकर वहाँ पहुँचे। गोसाँईजी महाप्रभु को साष्टांग प्रणाम करके खड़े हो गए। हाथ जोड़कर सतृष्ण नयनों से महाप्रभु की ओर देखकर सिर से पैर तक थरथर काँपने लगे। चारों ओर बाउल, वैष्णव लोगों ने गोसाँईजी का भाव देखकर बड़े उत्साहपूर्वक अपने-अपने दल के साथ उच्च स्वर में संकीर्तन करने लगे। बहुत-से मृदंग-मंजीरे की 'झमाझम' ध्वनि से शरीर रोमांचित होने लगा। गोस्वामीजी संकीर्तन के ताल में ताल मिलाकर कई बार चुटकी बजाते हुए हाथ हिलाते-हिलाते अचानक एकदम से उछल पड़े और तुरन्त ही बायें हाथ से लाल को पकड़कर नृत्य करने लगे। तब लाल भावावेश में ऊँचे उछल-उछलकर, हाथ छुड़ाकर एक ओर हट गए। गोसाँईजी लाल की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए मल्लवेश में बाहु पर ताल देने लगे। लाल ने भी उनकी ओर स्थिर दृष्टि रखकर उद्दाम नृत्य आरम्भ कर दिया। इस समय गोस्वामीजी भयंकर हुंकार करते-करते मुट्ठी बन्द करके बायाँ हाथ सामने की ओर फैलाकर, बाण-योद्धा की भाँति दाहिने हाथ की तर्जनी लाल की ओर सन्धान करके बार-बार कान तक खींचते हुए अग्रसर होने लगे। कुछ कदम

चलने के बाद ही बार-बार उछलते हुए तिरछे होकर बायाँ पैर आगे फेंकते-फेंकते गगनभेदी हरि-ध्वनि करके द्रुत गति से लाल की ओर दौड़ने लगे। लाल तुरन्त ही बायें हाथ को सामने की ओर ढाल के आकार से फैलाकर अत्यन्त भयभीत की भाँति पीछे की ओर हटने लगे। 40-45 फीट पीछे हटकर अचानक लाल भयंकर आवाज में 'जय निताई, जय निताई' चिल्लाने लगे एवं सामने की ओर बहुत अधिक उछलते हुए दाहिने हाथ को बार-बार कान तक खींचकर गोसाँईजी की भाँति उन्हें लक्ष्य करके दौड़ पड़े। तब गोसाँईजी लाल के वेग को मानो सहन नहीं कर पाने से, सामने हाथ का आवरण करके भयभीत की भाँति द्रुत गति से पीछे होने लगे। 40-45 फीट पीछे हटकर गोस्वामीजी अधिक उद्यम से प्रचण्ड हुंकार करके 'हरि बोल, हरि बोल' कहते-कहते लाल की ओर दौड़े। तब लाल फिर से पहले की भाँति हट जाने लगे। इसी प्रकार एक-दूसरे के प्रति उत्तरोत्तर भयंकर ललकारते हुए प्रबल योद्धा के वेश में दौड़-धूप करने लगे। अगण्य बाउल-वैष्णवों से घिरे हुए विशाल प्रांगण में श्रीधर उच्च स्वर में हरि-ध्वनि करके मण्डलाकार घूमते हुए नृत्य कर रहे थे। अचानक प्रतिष्ठित विग्रह की ओर उछलते-उछलते अग्रसर होकर जलते हुए विशाल 'धूपदान' को उठा लिए और 'बोलो, बोलो' ध्वनि के साथ चारों दिशाओं को कम्पित करते हुए बारम्बार उछलने लगे। श्रीधर सिर झुकाकर गोसाँईजी के चरणों में दृष्टि रखते हुए धूनी से आरती करते हुए उनके पीछे दौड़ने लगे। इस समय बड़ा कोलाहल मच गया। अगण्य दर्शक-मण्डलियाँ बारम्बार उच्च स्वर में हरि-ध्वनि करने लगीं। चारों ओर लोग अचेत होकर गिरने लगे। मृदंग-मंजीरों की ध्वनि कीर्तन के कोलाहल में मिलकर सभी को कम्पित कर दी। उन्मत्तवत् चिल्ला-चिल्लाकर सब लोग उच्च स्वर में गाने लगे (बंगला गान)–

'कि शुनि, कि शुनि, सिंह, रबरे नदियाय।
नित्यानन्द बाजाय भेरी, भों-भों, भों रब करि';
(हुँकारिया) श्री अद्वैत बगल बजाय रे (नदियाय);
जगा बोले, माधा भाई, पालाबार आर स्थान नाई,
संसार घेरिलो हरि नाम रे (नदियाय)!
श्रीचैतन्य महारथी, नित्यानन्द सारथी;
श्री अद्वैत युद्धे आगुआय रे (नदियाय)।

हिन्दी भावार्थ– क्या सुन रहे हैं, क्या सुन रहे हैं सिंह नाद नदिया में (नदिया नगरी में)। नित्यानन्द भेरी बजाकर भों-भों ध्वनि कर रहे हैं (हुंकार करके); श्री अद्वैत आनन्द-ध्वनि कर रहे हैं; जगाई बोले भाई मधाई भागने के लिए जगह नहीं है, संसार को घेर लिया है हरिनाम ने (नदिया में)! श्री चैतन्य महारथी, नित्यानन्द सारथी हैं; श्री अद्वैत युद्ध में आगे बढ़ रहे हैं (नदिया में)!

बहुत समय तक इस प्रकार नृत्य के बाद लाल अचानक गोसाँईजी के चरणों में गिरकर लोटने लगे। गोसाँईजी ऊँचे उछल-उछलकर कई बार हरि-ध्वनि करके अचेत होकर गिर पड़े। हरिचरण बाबू और मैंने उनके पैरों को अन्य लोगों के स्पर्श से बचाने के लिए कपड़े से ढाँक दिया; फिर हम उन्हें हवा करने लगे। श्रीधर भी मूर्च्छित हैं। क्रमशः कीर्तन बन्द हो गया।

यथासमय गोस्वामीजी के आदेशानुसार महाप्रभु को भोग लगाया गया। दोपहर का भोजन करके हम सब विश्राम करने लगे।

चन्द्र-ग्रहण

लाल के साथ आज ही पहली बार बातचीत हुई; उसके जीवन की अनेक आश्चर्यजनक घटनाएँ सुनकर चकित हो गया। बारदी के ब्रह्मचारीजी की इस उत्सव में आने की बात थी, वे नहीं आए। गोसाँईजी सम्भवतः कल बारदी जाएँगे। रात्रि में श्रीधर और लाल अन्य कमरे में जाकर शयन किए। चक्रवर्ती जी एवं मैं गोसाँईजी के पास रहे। आज चन्द्र-ग्रहण है।

थोड़ी अधिक रात्रि में गोस्वामीजी ने कहा– **"आज चन्द्र-ग्रहण है। सम्पूर्ण रात्रि जागरण करके आज अनेक लोग जप-तप करेंगे।"**

मैंने कहा– क्यों? आज जप करने से क्या कोई विशेष लाभ होता है?

गोसाँईजी– **वह तो नहीं कह सकता; किन्तु तिथि का कुछ गुण है, यह जानता हूँ।** कुछ क्षण बाद गोसाँईजी ने बातों-बातों में कहा– **"सेराजदीघा नदी के किनारे एक आश्रम होने से बड़ा अच्छा होता। समय-समय पर शहर के कोलाहल से दूर वहाँ निर्जन में जाकर रह सकेंगे।**

सब लोग सो गए, गोसाँईजी ने मुझे भी सोने के लिए कहा। मैं रात्रि ढाई बजे के बाद सो गया। गोसाँईजी सामने ज्वलन्त धूनी रखकर सारी रात एक ही भाव में बैठे रहे। बीच में एक बार उन्होंने कहा– **"एक पहाड़ पर एक समय हम सब लोगों को सम्मिलित होना होगा। गुरुजी हम लोगों का एक-एक दल बनाकर, भिन्न-भिन्न कार्य पूरा करने के लिए संसार में भेजेंगे।"**

निद्रा की प्रगाढ़ता में यह बात सुनकर मैंने फिर कोई प्रश्न किया नहीं।

\-\-\-\-\-

फरवरी–मार्च, सन् 1888 ई॰

साधना का संकल्प

फरवरी। गोसाँईजी द्वारा प्रदत्त साधन में मेरी आन्तरिक आस्था अभी भी वैसी आशाप्रद नहीं हो पाई है; परन्तु उनके शिष्यों के साथ जितना मिलता हूँ, उन लोगों की अवस्था देखकर उतना ही चकित हो जाता हूँ। कुसंस्कारापन्न हिन्दू-समाज के जिन लोगों ने यह साधन ग्रहण किया है, उन लोगों की किसी प्रकार की अवस्था का होना अथवा उस प्रकार का कुछ कहना मुझे थोड़ा भी असम्भव नहीं लगता। उनकी बात तो मैं गिनती में नहीं लेता; किन्तु देख रहा हूँ, गोसाँईजी के ब्राह्म-भावापन्न प्रत्यक्षवादी, बहुत कट्टर शिष्यगण भी जब इस साधन को लेकर सन्तुष्ट हैं एवं उनकी नाना अद्‌भुत अवस्था के सम्बन्ध में सुनता हूँ,– विशेषकर आजन्म सत्यवादी, निरपेक्ष गोस्वामीजी स्वयं इस साधन की सफलता के विषय में जब अपने जीवन में स्पष्ट साक्ष्य दे रहे हैं, तो इसमें कैसे संशय रखूँ? अपने प्रयत्न की कमी के कारण ही साधना से उपकार नहीं पा रहा हूँ सोचकर, स्वयं के ऊपर धिक्कार आने लगा। प्राणपण से साधना करके देह-मन को जलाकर तप्त कर दूँगा, प्रतिज्ञा किया। स्नान, आहार और निद्रा के समय को छोड़कर, प्रातःकाल से रात्रि 11 बजे तक बिना विश्राम किए प्रतिदिन नाम-जप करने लगा। प्राणायाम, कुम्भक एवं दृष्टि-साधन भी यथावत् चल रहा है। प्रायः महीनेभर से अधिक समय हो गया, इसी भाव से साधना करता आ रहा हूँ।

ज्योति दर्शन से चेतना का विलोप

मार्च का तृतीय सप्ताह। अन्य दिनों की भाँति आज भी भोर में उठकर अपने आसन पर स्थिर बैठकर नाम-जप कर रहा हूँ, अचानक देखा– एक अद्‌भुत ज्योति झिलमिल करके प्रकाशित हुई। देखते-देखते वह ज्योति क्रमशः उज्ज्वल हो उठी एवं सहस्र वैद्युतिक आलोक की भाँति अद्‌भुत छटा फैलाकर उसने चारों दिशाओं को शोभित कर दिया। मनोहर तरंगों से सुशोभित स्वच्छ जलाशय में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब की भाँति, अत्यन्त उज्ज्वल, चंचल ज्योति का अपने ललाट के मध्य दर्शन करते-करते मैं आनन्द से मूर्च्छित-सा हो गया। पाँच-सात मिनट तक यह ज्योति उत्तरोत्तर उज्ज्वल होकर स्थिर हो गई। उसके निर्मल मनोहर सौन्दर्य से मेरा चित्त उसमें बिल्कुल विमुग्ध हो गया; फिर मुझे अन्य कुछ भी ज्ञान नहीं रहा। उस समय नाम-जप कर रहा था या नहीं, वह भी स्मरण नहीं है। इस दर्शन के बाद विह्वल अवस्था में कितने समय तक था, वह भी कुछ जानता नहीं।

जागृत होने पर उस ज्योति के स्मरण से अब मैं मानो पागल-सा हो गया।

कहाँ जाने से, क्या करने से पुनः मैं उसे देख पाऊँगा, सर्वदा केवल वही विचार करता हूँ।

कल मैं गोस्वामीजी के पास जाऊँगा, निश्चय किया। आज सब कुछ मानो विषादमय, नीरस, उदासीन-सा लग रहा है। ज्योति की स्मृति चित्त में निरन्तर बनी हुई है।

ढाका पहुँचकर गोस्वामीजी के शिष्य श्री श्यामाकान्त पण्डित, श्रीधर घोष और श्रीमान् लाल बिहारी के साथ भेंट की। उन्हें अलग-अलग प्रकार से एकान्त में ले जाकर अपने इस दर्शन के विषय में स्पष्ट रूप से बतलाया। इन सभी ने इस दर्शन की यथार्थता के विषय में प्रमाण दिया। पण्डित जी ने कहा– 'वह भ्रूमध्य की दिव्य-दृष्टि है। इसके प्रकट रहने पर दिव्य आलोक में विश्व-ब्रह्माण्ड का मधुमय दर्शन होता है। जो आच्छादित परलोक है, इसी आलोक से वह उज्ज्वल हो जाता है। तब देखा जाता है, जीवन-मरण, इहलोक-परलोक सब एक ही है। गुरुकृपा से यह अवस्था प्राप्त होती है। उनकी इच्छा से ही यह स्थायी होती है।' लाल ने कहा– 'यह ज्योति क्रमशः हृदय में पहुँच जाती है, यह सब समय आनन्द रूप में विराज करती है। इसके अदृश्य होने पर निराशा और शुष्कता से जीवन मानो श्मशानतुल्य हो जाता है; तब नाना प्रकार के प्रलोभन आते हैं और परीक्षा हुआ करती है। ज्वाला-यन्त्रणा से हृदय विदीर्ण हो जाता है। नाम में ही इसका प्रकाश है और नाम बन्द हो जाने पर यह अदृश्य हो जाती है।' श्रीधर ने कहा– '..... अरे भाई, यही तो यथार्थ वस्तु है! इसी को ब्रह्म-ज्योति कहते हैं। यह अवस्था स्थायी होने पर फिर रहता ही क्या है? वासना-कामना सब विलीन हो जाती है, लोग स्वयं को भूलकर उस ज्योति में डूब जाते हैं! साधना में निष्ठा और आकर्षण बढ़ाने के लिए समय-समय पर गुरुदेव चरम अवस्था का केवल आभास साधक के समीप प्रकाश करते हैं; फिर उसे हटा लेते हैं। केवल तुम्हारी ही नहीं, पहले-पहले इस प्रकार की कुछ-कुछ अद्भुत अवस्था प्रत्येक व्यक्ति की होती है। यह प्रयास करने से नहीं होती, साधना करने से नहीं होती, केवल गुरुकृपा से ही यह अवस्था होती है। उनकी कृपा हुए बिना कुछ होना सम्भव नहीं है।'

इन लोगों की बातें सुनकर मुझे थोड़ा आनन्द तो हुआ, परन्तु अधिक समय तक तृप्ति प्राप्त न कर सका। सोचा, 'सत्य वस्तु का विशेष रूप से ज्ञान रहने पर हजारों लोग भी एक जैसा ही कहेंगे। इन लोगों में तो देखता हूँ, प्रत्येक ने भिन्न-भिन्न प्रकार की बातें कही। इन लोगों की बातों में परस्पर विपरीत भाव विशेष कुछ न रहने पर भी, मुझे सन्देह होता है– लगता है, इन लोगों ने सब अन्दाजी बातें कही है!' मैं दूसरी ओर से जाँच करने के लिए बड़ी व्यग्रता के साथ ब्राह्म डॉक्टर कैलाश बाबू के पास गया। उन्हें अपनी सब बातें स्पष्ट बतलाकर पूछा–

वह दर्शन मेरी आँखों के दोष या मस्तिष्क के किसी रोग का परिणाम तो नहीं है? डॉक्टर बाबू ने कहा– 'उसके सिवा और क्या कहूँ, तुम्हें तो 'सार्ट-साइट' (निकट-दृष्टि दोष) है ही। नेत्र-रोग में मनुष्य दिन में भी जुगुनू देखता है। हम लोग का यह 'परफेक्ट साइन्स' है, डॉक्टरी पुस्तकों में उस प्रकार के ढेरों प्रमाण हैं। 'योग-वोग' करने से आँखें व दिमाग खराब होने पर और भी कितना कुछ देखोगे।'

डॉक्टर बाबू की बात से मेरे मन में दर्शन के विषय में एक बड़ी आशंका उत्पन्न हो गई। अतएव गोस्वामीजी से फिर कोई बात पूछने की इच्छा नहीं हुई; किन्तु भीतर-भीतर उसके लिए एक आकांक्षा और अधीरता अपने-आप होने लगी।

जो हो, मैं पहले की अपेक्षा और भी अधिक उत्साह से साधना करने लगा। सदैव उस ज्योति की एक स्मृति मेरे भीतर में रहती है। उसे फिर हटा नहीं पाया।

अप्रेल, सन् 1888 ई॰

ढाका का टर्नेडो

7 अप्रेल, शनिवार। दिन ढलते समय ढाका के पश्चिम की ओर नदी के ऊपर आकाश में काले मेघ का एक समूह दिखलाई दिया। नवाब गनी मियाँ साहेब के मकान के दक्षिण ओर अचानक बवंडर उठने से बूढ़ी-गंगा का पानी उमड़ उठा। देखते-देखते नदी के बीच से हाथी की सूँड़ की आकृति का जल-स्तम्भ ऊपर की ओर उठकर काले मेघ में मिल गया। तब असंख्य अग्नि के गोले वहाँ से चारों ओर गिरने लगे। 20-25 इंजन के एक साथ चलने पर जिस प्रकार की ध्वनि होती है, उसी प्रकार की भयंकर ध्वनि से सारा शहर एकदम काँप उठा। अचानक वह ध्वनि सुनकर गोस्वामीजी आसन से उठकर शीघ्र घर के द्वार पर आकर खड़े हो गए एवं रुआँसे स्वर में काली एवं महावीरजी की स्तुति करने लगे। उन्होंने पश्चिम की ओर आकाश में देखा कि महावीर और महाकाली विशाल आकार में प्रकट होकर भयंकर गर्जन के साथ सब दिशाओं को कम्पित करके अग्नि-गोला बरसाते हुए, नृत्य करते-करते अग्रसर हो रहे हैं! काली की सेविकाएँ सामने जो मिल रहा है, उसे नष्ट-भ्रष्ट करते हुए द्रुत गति से काली के पीछे-पीछे दौड़ रही हैं। गोस्वामीजी अश्रुपूरित होकर काँपते हुए, हाथ जोड़कर प्रणाम करते-करते उच्च स्वर में कहने लगे– **'जय माँ काली! जय माँ काली! दया करो, दयामयि, दया करो माँ! प्रसन्न हो जाओ, माँ प्रसन्न हो जाओ!'** कुछ क्षण बाद फिर व्याकुल होकर उन्होंने कहा– **'जय महावीर! जय महावीर! इन सब अग्नि-गोलों को मेरी छाती पर फेंको! सबके ऊपर दया करो, सबकी रक्षा करो।'** इधर दो-तीन मिनट के भीतर ही जो होना था, हो गया। उपद्रव भी रुक गया;

परन्तु शहर के सभी लोगों में कोलाहल मच गया। इन कुछ मिनिटों के भीतर ढाका और विक्रमपुर के सैकड़ों ग्रामों में जो सब अस्वाभाविक घटनाएँ घटीं, वह सब बुद्धि के अगोचर एवं विस्मयजनक हैं। एक अद्भुत अलौकिक शक्ति के प्रभाव से जो सब आश्चर्यजनक घटनाएँ हुईं, उन्हें अस्वीकार नहीं किया जा सकता। कुछ घटनाओं का उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ–

1. बूढ़ी गंगा के दक्षिण किनारे से एक वृद्ध महिला नदी के उत्तरी किनारे पर शहर के बीच में, अनेक ऊँचे-ऊँचे मकानों के ऊपर से होकर नार्मल स्कूल की दूसरी मँजिल पर एक कमरे के भीतर आ पहुँची; लेकिन 65 वर्ष की महिला के किसी भी अंग में थोड़ी भी चोट नहीं लगी।

2. 'ढाका प्रकाश' प्रेस की एक बड़ी टेबिल, पाँच-छः मिनट की दूरी पर स्थित एक सज्जन के घर पहुँच गई। टेबिल जिस कमरे में थी, वहाँ के केवल एक दरवाजे से ही बड़ी सावधानी से टेढ़ा करके बाहर निकालने के सिवा अन्य किसी उपाय से उसे बाहर नहीं लाया जा सकता था। टेबिल लगभग ढ़ाई मन भारी थी। उसका कोई भी हिस्सा टूटा नहीं।

3. मुरमुरा से परिपूर्ण कलसी एक घर के मचान से निकलकर तीन-चार मिनट की दूरी पर स्थित दूसरे घर में रखी हुई है। मिट्टी के ढक्कन सहित मुरमुरा से परिपूर्ण कलसी जिस प्रकार थी, ठीक उसी प्रकार ही है।

4. एक 20-25 फीट लम्बे एवं पाँच-छः फीट अन्दर गड़ा हुआ दस्ती खम्बा (लगता है कि चटक पूजा का है) उखड़कर उसी स्थान पर उल्टा (ऊपरी हिस्सा नीचे की ओर) पूर्ववत् गड़ा हुआ रखा है।

5. बहुत पक्के बड़े मकान का कितना ही अंश टूट गया, ईंट-गारे का चिह्न तक नहीं है! लेकिन उसके ठीक पास में, केवल 12-14 फीट के अन्तर में आधा सूखे हुए गुलाब फूल की एक पँखड़ी भी नहीं गिरी!

6. एक युवती के सारे शरीर में कुछ नहीं हुआ, केवल दोनों स्तन ऐसे उखड़े हुए हैं, मानो छूरी से एक समान काटा गया हो।

7. अंगुलि के समान मोटी, लगभग डेढ़ फीट लम्बी बाँस की एक नुकीली खपची, सुपारी के एक पेड़ में आर-पार भिदी हुई है। अच्छा बलवान व्यक्ति भी उसे खींचकर निकाल नहीं सकता।

जिन सब स्थानों से होकर यह बवंडर निकला, वे सभी स्थान दग्ध हो गए। पक्के घरों की दीवालों का, यहाँ तक कि भूमि का रंग भी जली हुई माटी के समान हो गया है। मैदानों की दूब-घास आदि मानो दग्ध हो गए हैं। अच्छे बलवान् जवान लोग नाना स्थानों पर इस आँधी की चपेट से मर गए; फिर बहुत-से छोटे बालक,

गर्भवती महिला एवं वृद्ध लोग इस आँधी की चपेट में पड़कर सम्पूर्ण सुरक्षित हैं! क्षणभर की एक आँधी से किस प्रकार इतना यह सब काण्ड घटित हो गया, समझ नहीं आता! जड़-शक्ति में भगवत्-इच्छा से चैतन्य के प्रविष्ट होने पर, उसके द्वारा जो अत्यन्त असम्भव भी सम्भव हो जाता है, इसे अस्वीकार नहीं कर पा रहा हूँ। फिर देवी-देवता अथवा भूत-प्रेतादि के अस्तित्व पर मुझे विश्वास ही नहीं है, अतएव इन सब घटनाओं को उनका कार्य नहीं मानता।

मई–जून, सन् 1888 ई०

ब्रह्मचारी का संग: विचित्र जीवन-कथा

अज्ञात भूगोल का वृत्तान्त

ढाका जिले के अन्तर्गत बारदी ग्राम में बहुत समय से जो महापुरुष गुप्त रूप से वास कर रहे हैं, उन्हें अब सभी लोग बारदी के ब्रह्मचारी कहते हैं। गोस्वामीजी के मुख से कई बार इन महापुरुष के अद्‌भुत योगैश्वर्य और असाधारण माहात्म्य की बातें सुनी है। गोसाँईजी ने कहा है– **'कई स्थानों का भ्रमण करके, अनेक पहाडों-जंगलों में घूम-फिरकर इस प्रकार की उच्च अवस्था वाले एक भी महापुरुष का दर्शन नहीं पाया। फिर सारे भारतवर्ष में ऐसी अवस्था के लोग इस समय नहीं हैं।'** गोस्वामीजी के अनेक शिष्य कई बार बारदी गए हैं। ढाका और विक्रमपुर के अनेक प्रतिष्ठित शिक्षित लोग ब्रह्मचारीजी की अलौकिक शक्ति का परिचय पाकर आश्चर्यचकित हो गए हैं। सम्पूर्ण ढाका और पूर्वी बंगाल में आजकल ब्रह्मचारीजी की चर्चा है। एक दिन बातों-बातों में गोस्वामीजी ने मुझसे कहा– **'ब्रह्मचारी की पलकें झपकती नहीं। पाँच मिनट उनकी आँखों की ओर देखते रहने से मूर्च्छित हो जाओगे। हिमालय और तिब्बत आदि स्थानों से प्राचीन योगीगण योग शिक्षा ग्रहण करने के लिए रात्रि के समय इन ब्रह्मचारी के पास आते हैं; इसलिए रात्रि में कोई उस कमरे में जा नहीं पाते। वे संध्या के समय ही कमरे का दरवाजा बन्द कर देते हैं।'**

मैंने पूछा था– क्या मैं एक बार ब्रह्मचारीजी का दर्शन करने जाऊँ?

गोस्वामीजी– **हाँ, हाँ, अवश्य जाना। जाने से उपकार होगा। वहाँ जाकर अपनी ओर से उनसे कुछ मत पूछना, चुपचाप थोड़ी दूरी पर बैठे रहना। तुम्हारे लिए जो प्रयोजन होगा, वे स्वयं तुमको बुलाकर कहेंगे।**

गोस्वामीजी की बातों से ब्रह्मचारीजी को देखने की एक प्रबल इच्छा जागी। बहुत समय बाद बड़े भैय्या (श्री शारदाकान्त बन्द्योपाध्याय जी) घर पर आए हैं। मँझले भैय्या और छोटे भैय्या भी छुट्टी होने से घर पर ही हैं। बड़े भैय्या प्रायः मेरे साथ धर्म के सम्बन्ध में चर्चा करते हैं। वार्त्तालाप में सुयोग पाते ही मैं उनसे गोस्वामीजी के असाधारण धर्म-जीवन की बातें कहता हूँ। गोसाँईजी की सत्यनिष्ठा, दया और सरलता के दृष्टान्त से भैय्या बड़े आनन्दित होते हैं। तब मैं भैय्या से गोसाँईजी के पास से दीक्षा लेने हेतु अनुरोध करता हूँ; 'यथार्थ धर्म-जीवन प्राप्त करने के लिए दीक्षा ग्रहण करना अत्यन्त आवश्यक है'– गोसाँईजी की इस बात को परन्तु भैय्या स्वीकार नहीं करते। बचपन से उनका केशव बाबू (केशव सेन) के प्रति बड़ा अनुराग हैं। उनको गोसाँईजी की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ समझते हैं। केशव बाबू ने कभी दीक्षा ग्रहण नहीं की, भैय्या यही जानते हैं; अतएव गुरु का आश्रय ग्रहण किए बिना भी पुरुषकार द्वारा धर्म-जीवन प्राप्त किया जाता है, केशव बाबू के दृष्टान्त से भैय्या इसे ही ठीक समझ बैठे हैं। मैंने सोचा, 'किसी प्रकार भैय्या को एक बार बारदी ले जाने से काम बन जाएगा। ब्रह्मचारीजी यदि एक बार दीक्षा की प्रयोजनीयता के विषय में कहें, तो उससे भैय्या का विश्वास जागेगा।' हमारे ही गाँव के श्री ताराकान्त गंगोपाध्याय जी भैय्या के समवयस्क और अच्छे मित्र हैं। उनके द्वारा अनुरोध करवाकर भैय्या को बारदी जाने के लिए राजी किया। शीघ्र ही हम लोग बारदी जाएँगे, यह निश्चय हुआ।

13 मई, रविवार। रात्रि के अन्तिम प्रहर में अर्धनिद्रित अवस्था में एक अद्‌भुत स्वप्न देखा। आज जागृत अवस्था में भी प्रत्यक्ष सत्य घटना की भाँति यह स्वप्न लगातार मेरे चित्त में उदित हो रहा है। इस स्वप्न में स्पष्ट रूप से ब्रह्मचारीजी का दर्शन प्राप्त हुआ। जिन अद्‌भुत घटनाओं को स्वप्न में देखा, लगता है, उसके साथ मेरे जीवन का निश्चित रूप से विशेष सम्बन्ध है। फिर भी गोस्वामीजी से उसका तात्पर्य पूछे बिना डायरी में उसे लिखने की इच्छा नहीं है।

प्रातः भोजन ग्रहण करके बड़े भैय्या, मँझले भैय्या, ताराकान्त जी एवं मैं बारदी के लिए निकल पड़े। भैय्या का शरीर बहुत स्थूल है, चार-पाँच मिनट चलने से ही वे हाँफ जाते हैं। तालतला तक डेढ़ घण्टे चलने के कारण उनकी दोनों स्थूल जाँघों की रगड़ से छिलकर वहाँ घाव हो गया। साधु-दर्शन के लिए पैदल ही जाएँगे, इस जिद के कारण भैय्या की यह दशा हुई। तालतला से नौका करके, संध्या होने के कुछ समय बाद हम लोग बारदी बाजार में पहुँचे। संध्या के बाद ही ब्रह्मचारीजी का दरवाजा बन्द हो जाता है, सभी जानते हैं; लेकिन चित्त के आवेग से भैय्या रात्रि में ही दर्शन हेतु जाने के लिए व्यग्र हो गए। सभी चले गए; मेरी इच्छा नहीं हुई, मैं नौका में ही रुक गया। कुछ समय बाद उन लोगों ने आकर

कहा कि दर्शन हो गया; हमारे पहुँचते ही ब्रह्मचारीजी ने कहा– 'तुम लोगों के लिए ही मैंने इतनी रात तक दरवाजा बन्द नहीं किया; अभी जाओ, जाकर विश्राम करो, कल आना।' यह कहकर वे सबको नौका पर भेजकर दरवाजा बन्द कर लिए।

14 मई, सोमवार। प्रातः स्नानादि करके हम ब्रह्मचारीजी के आश्रम पहुँचे। बरामदे के सामने पहुँचते ही ब्रह्मचारीजी उठकर आए एवं उन्होंने भैय्या का हाथ पकड़कर उन्हें अपने आसन के दाहिनी ओर बैठा लिया। उन्होंने भैय्या से कहा– 'तुम महापुरुष हो। छद्म-वेश में बाबू बनकर मेरे पास आए हो।' भैय्या ने कहा– 'मैं तो सर्वदा इसी वेश में रहता हूँ!' फिर बहुत समय तक भैय्या के साथ नाना प्रकार की बातचीत चली। भैय्या की अवस्था के सम्बन्ध में सुनकर, खूब सन्तोष व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा– 'मैं देख रहा हूँ तुम्हारा कर्म प्रायः समाप्त होने को आ गया है और तुम मेरे दर्शन करने आए हो? 10 वर्ष बाद सैकड़ों लोग तुम्हारा दर्शन करके धन्य होंगे।' भैय्या ने कहा– 'मेरा यथार्थ कल्याण कैसे होगा, आप बतला दीजिए।' ब्रह्मचारीजी ने कहा– 'तो फिर गोसाँई के पास जाकर दीक्षा लो! सत्य वस्तु उन्हीं के पास है। वे आश्रय दें तो बहुत शीघ्र ही कल्याण होगा।' और भी अनेक बातें ब्रह्मचारीजी ने कही; लेकिन ये कुछ बातें ही मुझे अच्छी लगी, इसलिए यहाँ लिखकर रख लिया। मँझले भैय्या को भी कई बातें कही, उनमें से– 'अर्थ उपार्जन करो, निर्लिप्त भाव से लोगों की सेवा में उसे व्यय करो,' इस बात को ही विशेष रूप से कहा। सबके साथ बातचीत हो जाने पर मुझे बुलाकर कहा– 'अरे तू क्यों आया है? देवता को देखने आया है?' मैं कोई भी बात नहीं कहूँगा, यह निश्चय करके बरामदे में चुपचाप बैठा था। ब्रह्मचारीजी का प्रश्न सुनकर केवल सिर हिलाकर नकारात्मक उत्तर दिया। ब्रह्मचारीजी ने मुझे घूँसा दिखलाकर धमकाते हुए कहा– 'सिर हिलाता है! सिर फोड़ दूँगा। मुँह से बोल!' फिर उन्होंने अपने आसन के पास बैठने के लिए मुझसे कहा। मैं जाकर कमरे में बैठ गया। ब्रह्मचारीजी ने मुझे कितना कुछ उपदेश देते हुए अन्त में कहा– "अरे तू तो प्रतिदिन का 'नोट' लिखता है? (ब्रह्मचारीजी यह किस प्रकार जान गए, सोचकर आश्चर्य हुआ।) उसमें अपने सम्बन्ध में मेरी दो बातें लिख रखना– 'विलासिता छोड़। विद्या नहीं आएगी।' अच्छा, मेरी इस बात का क्या अर्थ समझा, बोल तो?"

मैंने कहा– सब प्रकार के सुख-भोग छोड़ देने के लिए कहा, तभी धर्म में मन लगेगा एवं इस प्रकार होने से पढ़ाई-लिखाई भी छूट जाएगी। ब्रह्मचारीजी ने फिर धमकाकर कहा– 'मूर्ख! मेरे कहने का क्या यही अर्थ समझा? अविद्या किसे कहते हैं, विद्या किसे कहते हैं– तू जानता नहीं? पढ़ाई-लिखाई क्यों नहीं करेगा? जाकर अच्छे-से पढ़ाई-लिखाई कर। पढ़ाई-लिखाई करने से ही पास होगा। विलासिता नहीं करना। वस्त्र नहीं पहनना! एक धोती, एक चादर व्यवहार करना।

जूते की आवश्यकता नहीं है– साधारण-सी एक जोड़ी चप्पल रख सकता है। कुर्ता नहीं पहनना। मन खराब होने से यहाँ आकर उपदेश ले जाना। मुझे पत्र लिखना। धर्म-कर्म सब होगा। विचलित मत होना। कोई डर नहीं है। एक व्याधि से तू बहुत कष्ट पा रहा है न? पास आ– मैं तेरी छाती में हाथ फेर दूँ, अभी दूर हो जाएगी।' मैंने कहा– वेदना दूर करवाने के लिए मैं नहीं आया; केवल आपका दर्शन करने के लिए आया हूँ। मैंने स्वप्न में आपको ठीक इसी प्रकार देखा था।

ब्रह्मचारी– 'क्या स्वप्न देखा?' मैंने स्वप्न बतला दिया। सुनकर उन्होंने कहा– 'स्वप्न को लिखकर रखना। तेरा पथ तो स्वप्न में ही तुझे दिखा दिया हूँ। तू मेरे साथ बात क्यों नहीं कर रहा था, बोल तो?' मैंने कहा– मेरे लिए भविष्य में जो प्रयोजनीय है, आप स्वयं ही मुझे बुलाकर वह सब कहेंगे, गोस्वामीजी ने इस प्रकार कह दिया था। मुझे अपनी ओर से कोई बात पूछने के लिए उन्होंने ही मना किया था; इसलिए कहा नहीं। ब्रह्मचारीजी ने अन्त में कहा– 'अच्छा, तेरी सब बातें हो गई तो?' मैं– हाँ। ब्रह्मचारी– "तो फिर जा। स्वप्न को 'नोट' में लिख लेना। वेदना तेरे प्रारब्ध की है। हाथ फेर देने से दूर तो हो जाती, परन्तु फिर कभी उसे भोगना ही पड़ता। औषधि आदि कुछ मत खाना, उससे रोग और भी बढ़ जाएगा। भोग-फल पूरा होने पर अपने-आप दूर हो जाएगा। (भैय्या को दिखाकर) इन लोगों की औषधि से कोई उपकार नहीं होगा। असह्य लगने पर ताजी मिट्टी लगा लेना, कम हो जाएगा।" मैं ब्रह्मचारीजी को प्रणाम करके बरामदे में जाकर बैठ गया। दोपहर में भोजन के बाद सब लोग फिर ब्रह्मचारीजी के पास पहुँच गए। उन्होंने अपने जीवन की अनेक बातें बतलाईं। जितना स्मरण है, लिखकर रख लिया हूँ।

ब्रह्मचारीजी ने कहा, शान्तिपुर के विशुद्ध 'अद्वैत-वंश' में उनका जन्म हुआ। गोसाँईजी के प्रपितामह के वे सगे भाई थे। अपने जीवन के सम्बन्ध में कहने लगे– हम लोग चार भाई थे, इस कारण मेरे माता-पिता ने मेरे उपनयन के बाद ही मुझे एक षट्चक्रभेदी संन्यासी के हाथ अर्पण कर दिया। वे मुझे दीक्षा प्रदान करके साधना की शिक्षा देने लगे एवं बहुत यत्नपूर्वक मुझे सर्वदा साथ-साथ रखकर तीर्थ-भ्रमण करने लगे। इस प्रकार कई वर्ष बीत गए। यौवनावस्था में क्रमशः मैं दुर्वार रिपु की उत्तेजना से छटपटाने लगा; तब गुरुजी मुझे किसी पहाड़ के निकट एक गाँव में ले जाकर एक कुटिया में वास करने लगे। भाग्य के फेर से कुटिया के पास में ही एक विधवा सुन्दर युवती रहती थी। गुरुजी भिक्षा करके समस्त उत्कृष्ट सामग्री लाकर, निर्दिष्ट समय में प्रतिदिन भोजन बनाकर मुझे खिलाते; फिर दिनभर कुटिया छोड़कर इधर-उधर घूमते-फिरते रहते। मैं निश्चिन्त होकर नाना प्रकार से उस युवती के साथ मनोरंजन करके समय काटने लगा। इसी प्रकार से लगभग मेरे तीन वर्ष बीत गए। उधर मेरी कामना भी क्रमशः घटने लगी।

इस समय एक दिन अचानक मुझे लगा, 'ये क्या कर रहा हूँ? चिरकाल यही करने के लिए क्या मैं माँ-बाप को छोड़कर महापुरुष के साथ आया हूँ?' उस समय मेरे भीतर भयंकर ज्वाला होने लगी; तब मैं गुरुजी से किसी अन्य स्थान पर जाने के लिए बार-बार अनुरोध करने लगा। कुछ दिन तो उन्होंने मेरी इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया। फिर 'आज जाएँगे, कल जाएँगे' कहकर समय बिताने लगे। क्रमशः मेरी बेचैनी और भी बढ़ने लगी। जब गुरुजी को पकड़कर बहुत जिद करने लगा, तब उन्होंने अस्वस्थता का नाटक करना आरम्भ कर दिया। भीतर की असह्य ज्वाला से उन्मत्त-सा होकर एक दिन गुरुजी ने कहा– अब मैं यहाँ एक दिन भी नहीं रहूँगा। गुरुजी ने कहा– 'शरीर बड़ा अस्वस्थ है। और दो दिन यहाँ रुक जा।' तब मैं हाथ में मुद्गर लेकर गुरु की ओर दौड़ा और कहा– 'सारा दिन कुटिया छोड़कर घूम सकते हो, रोज-रोज भिक्षा करके ला सकते हो, स्वयं बनाकर मुझे खिला सकते हो, तब तुम स्वस्थ रहते हो और यहाँ से जाने के लिए कहते ही अस्वस्थ हो जाते हो! आज तुमको मारूँगा, स्वयं भी मरूँगा।' गुरुजी दौड़कर भागे। फिर आकर उन्होंने कहा– 'चल, इस बार ठीक हो गया है।'

रास्ते में चलते-चलते गुरुजी से कहा– इतने दिन मेरी बात सुनी नहीं, आज कैसे सुन ली? गुरुजी ने कहा– 'इतने दिन तो बेटा इस प्रकार से कहा नहीं। तुम भोग को छोड़ दिए थे, लेकिन भोग ने तुमको छोड़ा नहीं था, आज छोड़ा है।'

उसके बाद एक निर्जन पहाड़ पर ले जाकर 35 वर्ष तक गुरुजी ने मुझसे हठयोग का अभ्यास कराया। राजयोग की शिक्षा के लिए व्याकुल होने पर उन्होंने मेरे हठयोग की परीक्षा ली; कहा– 'अपने दोनों घुटनों के बीच हँडी चढ़ाकर, मिठाई बना करके मुझे खिलानी होगी।' मैंने वैसा ही किया। फिर उन्होंने राजयोग का उपदेश देना आरम्भ किया। इस राजयोग में सफल होने में बहुत समय लगा। उसके बाद गुरुजी अन्तर्धान हो गए।

मैंने प्रश्न किया– आप तो एक बार उदयाचल गए थे न? ब्रह्मचारीजी ने कहा– 'प्रयास किया था, लेकिन जा नहीं सका। मेरे साथ और भी तीन लोग थे– हितलाल मिश्र (तैलंग स्वामी), वेणीमाधव बन्द्योपाध्याय नाम के एक महात्मा और अब्दुल गफूर नामक एक मुसलमान फकीर। हम चारों ही सूर्यलोक जाने का संकल्प करके पैदल-पैदल चलने लगे। हिमालय के ऊपर से होकर क्रमशः उत्तर की ओर चलने लगे। केवल फल-मूल ही हम लोगों का आहार था। बर्फ के ऊपर इस प्रकार बहुत दिनों तक चलने से शरीर की त्वचा एक प्रकार से सूख गई। फिर साँप की जिस प्रकार केंचुली निकलती है, हम लोगों की भी उसी प्रकार एक पपड़ी निकल गई। तब शरीर ठीक दूध की भाँति सफेद हो गया। बर्फ की ठण्ड शरीर में नहीं लगती थी। जहाँ पर छः महीने दिन और छः महीने रात होती है,

हम लोग उस स्थान को भी पार करके बहुत दूर गए। वहाँ पर यहाँ के समान दिन-रात अथवा चन्द्र-सूर्य कुछ भी नहीं था।'

प्रश्न– कितने समय तक आप लोग वैसे स्थान पर चले थे?

ब्रह्मचारी– जहाँ चन्द्र नहीं, सूर्य नहीं, दिन-रात कुछ भी नहीं है, वहाँ समय या वर्ष की गणना कैसे सम्भव है? फिर भी बहुत समय तक चले थे, इतना ही कह सकता हूँ।

प्रश्न– चन्द-सूर्य नहीं हैं, तो फिर पथ किस प्रकार देखते थे?

ब्रह्मचारी– उन सब स्थानों में क्रमशः अग्रसर होते-होते नेत्र के उपादान ही अन्य प्रकार के हो गए। चन्द-सूर्य का प्रकाश न होने पर भी नेत्र से देख पाते थे।

प्रश्न– आप लोग क्या उदयाचल पर चढ़े थे?

ब्रह्मचारी– हम सभी चढ़े थे। वेणीमाधव अधिक दूर तक चढ़ नहीं पाए। अब्दुल गफूर बहुत दूर तक चढ़कर फिर लौट आए; मैंने भी वैसा ही किया। हितलाल मिश्र कितनी दूर तक चढ़े थे, पता नहीं। उनको भी उतरकर आना पड़ा।

प्रश्न– चढ़ क्यों नहीं पाए?

ब्रह्मचारी– ऊपर की ओर वायु क्रमशः हल्की हो जाती है। मैं जिस स्थान पर चढ़ा था वहाँ की वायु बहुत हल्की थी, स्थिर थी; वायु का वेग वहाँ नहीं था। इस कारण श्वास-प्रश्वास नहीं चलता था। सुना कि हितलाल मिश्र और थोड़ा ऊपर चढ़े थे, हवा न मिलने से उतर गए।

प्रश्न– ये सब महात्मा अभी कहाँ हैं?

ब्रह्मचारी– उस समय अब्दुल गफूर मक्का गए; अभी भी वे जीवित हैं। वेणीमाधव चन्द्रनाथ के पहाड़ में गए थे। मैं नीचे आकर दो बार मक्का एवं एशिया व यूरोप के अनेक स्थानों में घूमकर चन्द्रनाथ जा रहा था, रास्ते में मुझे पुलिस पकड़ ली। उसके बाद से यहाँ हूँ।

प्रश्न– आपको पुलिस क्यों पकड़ी थी?

ब्रह्मचारी– कामाख्या (गोवाहाटी) शहर के 'मजिस्ट्रेट' साहेब ने कुछ साधुओं की जटा के भीतर कुछ मुद्रा-मुहरें पाकर, चोर होने के सन्देह से उन्हें जेल में बन्द कर दिया। जटाधारियों को देखते ही पकड़ने का पुलिस को आदेश हुआ। मेरी जटा थी, इसलिए मुझे भी पकड़ लिया। साहेब ने मुझसे कितनी ही बातें पूछी, मैं उत्तर दे न सका। बहुत समय तक शाक-सब्जी खाने एवं बहुत समय तक बिना खाए रहने के कारण जिह्वा अन्य प्रकार की हो गई थी, वाक्‌शक्ति नहीं थी, बात नहीं कर पाता था। 'मजिस्ट्रेट' साहेब की ओर थोड़ा ताकने से उन्हें भक्ति हो गई–

मुझे छोड़ देने को कहा। अन्य सभी साधुओं को नहीं छोड़ने से मैं भी जेल में रहूँगा, इंगित करके उन्हें बतलाया; साहेब को दया आ गई। उन्होंने मेरी सन्तुष्टि के लिए अन्य साधुओं को भी छोड़ दिया। फिर हम सभी चन्द्रनाथ के लिए निकल पड़े। यहाँ के एक भले व्यक्ति ने पथ में मेरी बड़ी सेवा की। वे ही मुझे रास्ते से लौटाकर बारदी ले आए। मैं यहाँ पर साधारण लोगों के समान, पागल के जैसा रहता था। 10-12 वर्ष की एक बालिका प्रतिदिन मेरे लिए कुछ-कुछ खाना ला देती, मैं तो कुछ भी नहीं खा पाता था। फिर वह लड़की मुझे थोड़ा दूध, फिर मोहनभोग, उसके बाद धीरे-धीरे और भी ठोस-ठोस वस्तुएँ खिलाने लगी। इसके बाद से ही देखा कि मेरे रक्त का रंग लाल हो रहा है– इतने दिन तक घास के रंग के समान था। धीरे-धीरे शब्द भी स्पष्ट निकलने लगे। फिर प्रारब्ध-कर्म को समाप्त करने के लिए क्या-क्या नहीं किया! 'नास्ता' करके मुसलमान किसानों के साथ खेत में जाकर खेत की घास निकाला, कन्धे में बाँस लेकर सारी रात जागकर सूअरों को भगाया। मैंने इसी प्रकार से बहुत समय बिताया; किसी को भी मेरा परिचय नहीं मिला। अन्त में जीवनकृष्ण (गोस्वामीजी) ही मुझे महापुरुष कहकर, प्रचार करके सर्वनाश करने की व्यवस्था कर रहा है! अब रात-दिन यहाँ पर लोगों की भीड़ होती है। थोड़ा भी स्थिर नहीं हो पाता।

मँझले भैय्या (श्री वरदाकान्त बन्द्योपाध्याय जी) ने पूछा– 'तो मैं क्या करूँ?' ब्रह्मचारीजी ने कहा–'पूजा'। प्रश्न– किसकी पूजा? उत्तर में ब्रह्मचारीजी ने अंगुलि से एक वृत्त अंकित करके कहा– 'इसकी; नहीं समझे?' मँझले भैय्या– 'नहीं समझा; शालग्राम की?' ब्रह्मचारीजी– नहीं; रुपया, रुपया की। अर्थ उपार्जन कर और भोग करके कर्म समाप्त कर। भैय्या ने इस बात के उत्तर में कहा– 'हमने तो पढ़ा है, न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविशा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।' यह बात सुनकर ब्रह्मचारीजी ने थोड़ा हँसकर कहा– 'अच्छा, इसका अर्थ बोल तो।' मँझले भैय्या– काम का कभी भी काम्य वस्तु के उपभोग से उपशम नहीं होता। अग्नि में घी देने से जिस प्रकार वह बढ़ जाती है, इसी प्रकार यह भी बढ़ता है। ब्रह्मचारीजी– मैंने तो भोग करके कर्म समाप्त करने के लिए कहा है, उपभोग की बात तो नहीं कही। भोग और उपभोग में अन्तर है, जैसे पति और उपपति! शास्त्र-विधि का उल्लंघन करके स्वेच्छानुसार जो किया जाता है, वही उपभोग है, उससे शान्ति नहीं मिलती; विधिपूर्वक भोग से मिलती है।

मैंने पूछा– पृथ्वी के सिवा अन्य दूसरे लोक-लोकान्तर में मनुष्य के आवागमन का क्या कोई मार्ग है?

ब्रह्मचारीजी– मार्ग नहीं रहता तो उन सब स्थानों पर लोग यातायात कैसे करते हैं? यातायात करके, उन सब लोगों के सम्बन्ध में देख-सुन करके आए बिना

इतना स्पष्ट रूप से कैसे कहते हैं? ऋषि-मुनिगण भिन्न-भिन्न समय में एक जैसा ही तो कह गए हैं! कौन-सा लोक कैसा है, कितना लम्बा है, कितना चौड़ा है। किस लोक में कितने पहाड़ हैं, कितनी नदियाँ हैं, यहाँ तक कि– बड़े-बड़े राजमहलों तक का वर्णन दिया है। इन सब स्थानों के निवासियों की आकृति-प्रकृति, उनके कार्य-कलाप सभी तो विस्तारपूर्वक लिख गए हैं। विश्व-ब्रह्मण्ड में सर्वत्र ही यातायात का स्पष्ट मार्ग है। बहुत-सी मणियाँ जिस प्रकार एक सूत्र में माला के आकार में गुँथी रहती है, वैसे ही भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य इत्यादि ब्रह्मण्ड के अन्तर्गत सारे लोक एक के बाद एक साँकल में गुँथे हुए की भाँति संयुक्त हैं। फिर भी प्रत्येक देहधारी के द्वारा तो सब स्थानों में यातायात सम्भव नहीं है! देह को स्थान और पथ के अनुकूल कर लेना पड़ता है। अन्यथा सम्भव नहीं होता।

प्रश्न किया– देह को किस प्रकार अनुकूल किया जाता है?

ब्रह्मचारी– योगाभ्यास द्वारा। योग-क्रिया से मनुष्य इच्छा के अनुरूप देह धारण कर सकता है। उन सब स्थानों में जाने के लिए कहीं जल में प्रवेश करने योग्य देह आवश्यक होती है, कहीं वायु से सम्बद्ध देह, तो कहीं तेजस् देह आवश्यक होती है।

प्रश्न– इन सब देह में क्या रक्त, माँस, हड्डी मज्जा नहीं रहता?

ब्रह्मचारी– रहेगा क्यों नहीं? उस देह के प्रधान तत्त्वों के अनुरूप सब रहता है।

प्रश्न– हम तो इस पृथ्वी में ही सब स्थानों पर जा नहीं सकते।

ब्रह्मचारी– पृथ्वी की तो दूर की बात है, भारतवर्ष के ही सब स्थानों में जा नहीं सकते। पाश्चात्य भूगोल पढ़कर, उसी संस्कार के अनुसार पृथ्वी को तो तुम लोग बहुत ही छोटा कर रखे हो। पृथ्वी सप्तद्वीपा है! उसके एक द्वीप की खबर भी तो कोई जानता नहीं। एक-एक द्वीप में सात-सात वर्ष हैं, उस पर अभी भी कोई बिन्दुमात्र विश्वास नहीं करता। जम्बूद्वीप के जो सात वर्ष हैं, उसका एक इस भारतवर्ष को तुम लोग पृथ्वी कहते हो। लोहितसागर, कृष्णसागर, यवद्वीप, सुवर्णद्वीप, चीन, फारस, अरब आदि सभी तो प्राचीन भूगोल के अनुसार एक भारतवर्ष के अन्तर्गत हैं। भारतवर्ष के बाद किंपुरुषवर्ष का ही तो आज तक किसी को कुछ पता नहीं। उस देश के लोगों का मुख घोड़े के समान है। वहाँ का विवरण कितने लोग आकर बतला पाए हैं?

मैं– गोल पृथ्वी की तो मनुष्य लोग सैकड़ों बार जहाज में चढ़कर परिक्रमा कर चुके हैं। उन लोगों को तो यह सब दिखा नहीं?

ब्रह्मचारी– ओफ! अरे, पृथ्वी गोल है, कौन कहता है? उन सब स्थानों में

जहाज लेकर जाएँगे कैसे? पूर्व-पश्चिम गोल है, उसका चक्कर लगाकर आते हैं। फिर उत्तर-दक्षिण का किनारा क्या किसी को मिला है? उन दोनों ओर का वृत्तान्त कोई बता सकता है?

प्रश्न– तो क्या यह पृथ्वी गोल नहीं है?'

ब्रह्मचारी– गोल कैसे नहीं है? पूर्व-पश्चिम ही गोल है; परन्तु उत्तर-दक्षिण में माला की भाँति एक के बाद एक शंख आकृति के सात द्वीप हैं! पहले से दूसरा दो गुना है, इस प्रकार से क्रमानुसार बड़े हैं; इसी प्रकार सातों को एक सूत्र में गुँथने से जिस प्रकार होता, पृथ्वी बहुत-कुछ वैसी ही है। सप्तद्वीप में जो द्वीप लवण से घिरा हुआ है, वह जम्बूद्वीप है। उसके बाद प्लक्ष्मद्वीप है। इसी प्रकार एक के बाद एक क्रमशः सातों संलग्न हैं। अब मनुष्य इन सब पर विश्वास कैसे करेगा? देखा तो है नहीं! किन्तु जिन्होंने देखा था, वे द्वीप के अन्तर्गत पहाड़-पर्वत, नद-नदी आदि के परिमाण और विस्तृत विवरण स्पष्ट रूप से लिख गए हैं।

ब्रह्मचारीजी से विदाई लेकर आते समय भैय्या को उन्होंने गोसाँईजी से दीक्षा-ग्रहण की बात पुनः कही। भैय्या भी उसके बाद दीक्षा लेने हेतु व्याकुल होकर शीघ्र ही ढाका में गोसाँईजी के पास जाने के लिए तत्पर हो गए। हम लोग तुरन्त ढाका के लिए निकल पड़े; किन्तु भगवान् का अभिप्राय समझ में नहीं आया। ढाका पहुँचकर सुना गया, गोसाँईजी दो-तीन दिन पहले ही कोलकाता चले गए। भैय्या की छुट्टी भी प्रायः समाप्त होने को आ गई है।

हम लोग घर पहुँच गए। भैय्या का अवकाश-काल पूर्ण हो गया। वे अपने कर्मक्षेत्र अयोध्या चले गए। दीक्षा फिर हुई नहीं!

मेरी दैहिक दुरावस्था और मानसिक दुर्गति

मैं कफाश्रित-वायु और पित्त-शूल वेदना की चिकित्सा के लिए बहुत समय तक घर पर रहा। घर में अच्छे वैद्य को रखकर, बहुत रुपये व्यय करके सोना, रूपा, मुक्ता इत्यादि को यथारीति शोधित करके औषधियाँ बनवाई। 'वृहत विद्याधराभ्र', 'वृहत वातचिन्तामणि', 'धात्रीलौह', 'नारदीय महालक्ष्मीविलास', 'त्रैलोक्य-चिन्तामणि' आदि वटिका एवं 'महाचैतसादि धृत' का बहुत समय तक सेवन और प्रयोग किया। 'कुब्जप्रसारिणी', 'शूलगजेन्द्र', 'त्रिसूतिप्रसारिणी', 'पुष्पराजप्रसारिणी'– इन सब तेलों का भी यथेष्ट प्रयोग हुआ; लेकिन रोग से थोड़ा भी छुटकारा नहीं मिला; वरन् क्रमशः बढ़ने ही लगा। रोग की इस असह्य यन्त्रणा में वृद्धि के साथ-साथ चित्त की स्थिरता और प्रफुल्लता भी क्रमशः कम होने लगी एवं तेजस्कर औषधि के सेवन से और नियमित तेल आदि मलने के कारण ही

सम्भवतः अपने शारीरिक निस्तेज रिपुओं का पुनः आविर्भाव भी बीच-बीच में अनुभव करने लगा; लेकिन साधन-भजन में कभी-कभी विशेषत्व की उपलब्धि होने के कारण उन सब दुरावस्थाओं की ओर मैं ध्यान ही नहीं देता। सोचा– 'रिपु दमन तो जिस किसी अवस्था में मेरी इच्छा के अधीन है!' अपने ऊपर इस प्रकार अत्यधिक विश्वास होने से साधारण विधि-निषेध में भी मेरी शिथिलता आने लगी। फिर दो घटनाओं ने क्रमशः मुझे सीधे रसातल में ही डुबाने का प्रबन्ध कर लिया। दोनों घटनाएँ इस प्रकार हैं–

घर के कुछ दूरी पर एक हीन जाति की वैष्णवी भिखारिन ने पैसे कमाने के उद्देश्य से एक 16 वर्षीय युवती को ला रखा है। किसी सम्पन्न युवक ने उसको 'रखैल' के रूप में रखा है। मोहल्ले में इस प्रकार से वेश्या रहती है, जानकर मेरा अन्तःकरण जल उठा। शीघ्र ही एक बलिष्ठ लठैत को लेकर उन लोगों को यथोचित दण्ड देने के लिए अग्रसर हुआ। मेरे संकेत मात्र से ही लठैत लाठी मारकर उनका पैर तोड़कर लँगड़ा कर देगा– यह आदेश देकर, संध्या होने के बाद मैंने उस घर में प्रवेश किया। लठैत थोड़े अन्तराल में था। मेरे प्रवेश करते ही वह वैष्णवी लड़की को मानो कुछ इंगित करके वहाँ से हठ गई। मैं बाबू की प्रतीक्षा में बाहर बैठा रहा। तब लड़की ने धीरे-धीरे वहाँ आकर मेरे साथ परिहास करना आरम्भ कर दिया। स्थिति कहाँ तक बढ़ती है, यह देखने के लिए मैं उनकी बातों में 'हूँ, हूँ' करने लगा; मन-ही-मन निश्चय किया, किसी प्रकार का कुभाव प्रकट करते ही लठैत को बुलाकर उसकी अच्छी पिटाई करवाऊँगा। लड़की नाना प्रकार के हाव-भाव से अपना अंग-सौष्ठव दिखलाने लगी। फिर धीरे-धीरे दो-एक कदम अग्रसर होकर उसने मुझे एकदम से पकड़ लिया एवं सरलता से खींचकर वह अपने कमरे की ओर ले जाने लगी। उसके स्पर्श से ही मेरी सारी तेजस्विता, यहाँ तक कि विचार-बुद्धि भी विलुप्त हो गई। मन एकाएक विचलित हो उठा। मेरा पूरा शरीर थरथर काँपने लगा; मानो मैं 'भेड़' की भाँति मूढ़ हो गया। फिर उसके कमरे के दरवाजे तक जाकर, 'छोड़ दो, छोड़ दो, कल आऊँगा' कहते हुए कातर भाव से अनुनय-विनय किया तो उसने मुझे छोड़ दिया। मैं वैसे ही सीधे दौड़कर भागा, कुछ दूर जाते ही मैदान के बीच में ठोकर खाकर गिर पड़ा। पैर में चोट लगी। लठैत ने मुझे कन्धे पर उठाकर घर पहुँचा दिया। दूसरे दिन प्रातः गाँव के सब समवयस्कों को लेकर परामर्श किया– रात्रि में ही उसके घर में आग लगा देंगे। लोगों से हमारा अभिप्राय जानकर वह वैष्णवी उसी दिन आकर मेरे पैरों पर गिर पड़ी और रोते हुए बोली, 'मुझे केवल तीन दिन का समय दीजिए, फिर मैं यह गाँव छोड़कर चली जाऊँगी।' उसने वैसा ही किया।

इस घटना से मेरी मानसिक अवस्था एक अन्य प्रकार की हो गई। यद्यपि

उन लोगों को कटु भाषा के प्रयोग द्वारा गाँव से खदेड दिया, तथापि उस कुलटा के स्पर्शजनित सुख की स्मृति को एक दिन के लिए भी मन से दूर कर नहीं पाया। उस प्रकार से युवती का अंगस्पर्श मेरे इस जीवन में और कभी हुआ नहीं। अब यह स्पर्श-सुख मेरे साधन-भजन की अपेक्षा और भी मधुर लगने लगा। सर्वदा ही उसका बाहुवेष्टित आलिंगन अन्तःकरण में उदित होकर प्रत्यक्ष आलिंगन की भाँति मुझे उत्तेजित करने लगा। मैं साधन-भजन में अन्यमनस्क होकर सर्वदा उसकी ही कल्पना करने लगा। इसके ऊपर फिर एक और विषम प्रलोभन उपस्थित हो गया।

घर में एक अनाथ युवती कुलीन-कन्या हम लोगों के परिवार में रहती हैं; भविष्य में उनको सुपात्र के हाथ अर्पण करने के विचार से उनके अभिभावकों ने वर्तमान रुचि के अनुसार पढ़ना-लिखना सिखाने की अभिलाषा की; घर में मेरे आ जाने से उन लोगों ने वह भार मेरे ऊपर ही डाल दिया। लड़की बड़ी निपुणता के साथ दिनभर घर के कार्य में लीन रहकर भी बड़ी श्रद्धा और यत्नपूर्वक मेरे रोग की देख-भाल करने लगी। दिनभर में समय नहीं मिलने के कारण उसने रात्रि में प्रायः 9-10 बजे मेरे पास आकर पढ़ना आरम्भ किया। घर के सब लोगों के सो जाने पर भी निर्भय होकर लड़की मेरे निर्जन कमरे में बिछौने के एक छोर पर बैठकर रात्रि लगभग 12 बजे तक पढ़ाई-लिखाई करती। उसकी सेवा में श्रद्धा, गृहकार्य में दक्षता, पढ़ने-लिखने का उत्साह एवं चरित्र की दृढ़ता देखकर दिनो-दिन मैं उसको बहुत चाहने लगा। पूर्वोक्त घटना के बाद से शिकार खोए हुए कुत्ते के जैसी मेरी अवस्था हो गई है। मैं अदम्य कामोत्तेजना से बेचैन हो उठा। अब उस कुमारी के चढ़ते यौवन के सौन्दर्य पर मेरा शिथिल चित्त दिनो-दिन आकृष्ट होने लगा। मैं भयंकर दुरावस्था की आशंका करने लगा; परन्तु मोहवश उसको पढ़ाई-लिखाई कराने से विमुख नहीं हुआ। नीरव रात्रि में सभी निद्रा में अचेतन हैं और इधर मैं निर्जन कमरे में काम की उत्तेजना से छटपटा रहा हूँ। विचार-बुद्धि, चेष्टा सभी मेरी प्रवृत्ति के अनुकूल सहायता करने के लिए प्रस्तुत हैं। निकट में नवयौवना सुन्दर कन्या कभी बैठी हुई तो कभी अर्धशायित अवस्था में मेरे ही बिछौने के ऊपर विद्यमान है। बीच-बीच में उसको स्पर्श भी करता हूँ! यह दशा भी एक-दो दिन के लिए नहीं है; फिर मैं स्थिर कैसे रहूँगा? अनुकूल अवस्था मेरे चंचल चित्त को धीरे-धीरे और भी मोहित करने लगी; मैं हाव-भाव से, नाना प्रकार से बहुत सावधानी के साथ अपना कुविचार उसके समक्ष प्रकट करने लगा। लड़की मेरी मर्यादा की रक्षा करते हुए, मेरे भाव में अनादर दिखलाकर मुझे सतर्क करने लगी। अन्त में मुझे 'हठधर्मी' समझकर एक दिन मेरे पैरों पर गिरकर रोते हुए उसने कहा- 'आप मेरी परीक्षा क्यों ले रहे हैं? मुझे इससे बहुत डर लगता है। आप योग-साधना करते हैं, आपका मन कभी बुरा नहीं हो सकता; केवल मेरी

परीक्षा लेना ही आपका उद्देश्य है। आप मेरी रक्षा नहीं करेंगे तो ऐसी अवस्था में फिर मेरी क्या गति होगी, कहिए?' उसकी स्पष्ट बात सुनकर मैं बड़ी मुस्किल में पड़ गया। एक ओर मेरे भीतर अदम्य कामोत्तेजना, सामने मेरे वश में सुन्दर युवती; दूसरी ओर बाहर में मेरी धार्मिकता का ढोंग, 'सभी मुझे योग-साधक मानें' यह वासना, विशेषकर जो चरित्रवान् महान् साधु समझकर मेरी श्रद्धा करे, उसके ही समक्ष किस प्रकार मैं मर्यादा भँग करूँ, यह चिन्ता है। इस कठिनाई में पड़कर मैं संकल्पित प्रयास से विमुख होने के लिए प्राणपण से चेष्टा करने लगा; लेकिन कामाग्नि ठण्डी नहीं हुई, वरन् सजन में, निर्जन में सर्वदा उसके साथ सम्बन्ध रहने से उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। अन्त में जब समझ गया, मेरे भीतर की अग्नि धीरे-धीरे उसको सताने लग गई है, अब की बार कोई बचाव नहीं है; तब मैं कोई उपाय न देखकर अपने सम्मान की रक्षा करने के लिए घर छोड़कर ढाका चला गया; सब लोग सोचे, रोग से कुछ छुटकारा मिल गया है। मैं स्कूल में भर्ती हो गया।

भीतर की दुरावस्था को गुप्त रखकर मैं गोस्वामीजी का संग करने लगा। एक दिन उन्होंने ध्यानस्थ अवस्था में कहा– **"इस बार योगावलम्बियों के भीतर में जिसका जो छिद्र है, प्रकट हो जाएगा; समय बड़ा भयानक है।"** यह बात सुनकर मैं अत्यन्त भयभीत हो गया, बहुत सावधानी के साथ चलने लगा।

गोस्वामीजी इस समय कुछ दिनों के लिए कोलकाता चले गए। इसी समय से ढाका में उनके शिष्यों की नाना प्रकार की दुर्दशा होने लगी। आपस में शत्रुता, लड़ाई-झगड़ा, हाथा-पाई यहाँ तक कि चरित्रहीनता एवं गुरुद्रोहिता भी होने लगी। मैं यह सब देख-सुनकर, बहुत सतर्क होकर नये उत्साह के साथ प्राणपण से साधना करने लगा।

जुलाई–अगस्त, सन् 1888 ई॰

स्थिर उज्ज्वल ज्योतिर्मण्डल का दर्शन

कुछ दिनों से समय निर्धारित करके नियमित रूप से साधन-भजन करता आ रहा हूँ। रात्रि के अन्तिम प्रहर में निर्दिष्ट समय पर छत में जाकर, पूर्व की ओर मुख करके आसन पर बैठता हूँ। सर्वप्रथम श्रीश्री गुरुदेव को प्रणाम और हृदय में स्मरण करके स्वप्न में प्राप्त मन्त्र का सहस्रबार जप करता हूँ; उसके बाद प्राणायाम और 'इष्ट नाम' का जप यथारीति घण्टेभर से अधिक समय तक किया करता हूँ। आठ-दस दिन हो गए, एक दिन धीरे-धीरे मेरे ललाट में कम्पन के साथ एक अपूर्व ज्योति प्रकट हुई। इस अपूर्व ज्योति के मनोहर सौन्दर्य के एक अंश को भी भाषा

के द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता! इसे चन्द्र कहते हैं या सूर्य, पता नहीं। ललाट के भीतर अथवा बाहर– नीले आकाश में बहुत दूर स्थित चन्द्र-सूर्य आकार की अत्यन्त उज्ज्वल श्वेत शीतल ज्योति का दर्शन कर रहा हूँ। स्थिर ज्योतिर्मण्डल के मध्य स्थल में, सूक्ष्म तरंग के आकार की झिलमिलाती हुई उज्ज्वल छटा से एक-एक बार मैं दिग्भ्रान्त हो जाता हूँ! रात-दिन लगातार यह ज्योति मानो मेरी आँख में ही बसी रहती है। बड़ा अद्भुत देख रहा हूँ! जहाँ-तहाँ, सभी अवस्था में, सर्वदा, सर्वत्र यह ज्योति एक ही प्रकार से प्रकाशमान है! आँखें बन्द रहे या खुली, ज्योति को एक समान ही देखता हूँ। चन्द्र-किरण की भाँति ज्योति की रश्मि शीतल, शुभ्र, वैद्युतिक आलोक के समान उज्ज्वल एवं उसकी अपेक्षा अधिक मनोहर और निर्मल है।

उसके प्रथम दर्शन के समय मैं एकदम मुग्ध हो गया था। अब निरन्तर देखने से उसका अभ्यास हो गया है। प्रथम अवस्था में यह ज्योति तरंग की भाँति कुछ चंचल थी; अब चन्द्रमा की भाँति स्थिर दिखती है। इस ज्योति का कहाँ पर दर्शन कर रहा हूँ, उसका बहुत अनुसन्धान करके भी निश्चित नहीं कर पाता हूँ। आँखें खुली रहने पर देखता हूँ कि बाहर आकाश में, ललाट के ऊपर की ओर है; जब आँखें बन्द रखता हूँ, तब लगता है, कपाल के ही भीतर नीलवर्ण के विस्तृत आकाश के बीच में है। यह ज्योति एक ही प्रकार से प्रकाशित रहती है, इस कारण इसका घटना-बढ़ना कुछ समझ नहीं पाता। फिर बाहरी कार्य छोड़कर नाम में एवं गुरु में चित्त को निविष्ट करने पर इसके माधुर्य में और भी अभिभूत हो जाता हूँ। गुरु की स्मृति से ज्योति की अपूर्व छटा अनेक स्तरों में विकीर्ण होकर बीच-बीच में मुझे आनन्दसागर में डुबाकर रखती है। गोसाँईजी के रूप के ध्यान से ही इस ज्योति के सौन्दर्य एवं मनोहरता में क्यों उत्तरोत्तर वृद्धि होती है, वह समझ नहीं आ रहा है। अब यह अवस्था मेरे अधीन एवं स्वाभाविक जैसी लगती है।

ज्योति विलुप्त

12 अगस्त, रविवार। हाय! हाय!! आज दो दिन हो गए मेरा सर्वनाश हो गया। दुर्भाग्यवश अचानक एक अज्ञात अपराध में पड़कर अपनी असीमानन्द की अवस्था गंवा बैठा! अब मैं बिल्कुल उदास हो गया हूँ! शुष्क मरुभूमि जैसे उत्तप्त हृदय में वह ज्योति रह-रहकर प्रत्यक्ष अग्नि की भाँति मेरे प्राण को दग्ध कर दे रही है। जिस अपराध से मेरी यह दुर्दशा हुई, उसे स्पष्ट रूप से लिखकर रख रहा हूँ।

शूद्र वंश की एक सुन्दरी विधवा आपद्-विपद् में सर्वदा सहायक रहकर हम लोगों की बड़ी अन्तरंग हो गई थी। इस समय रक्षक के अभाव से वह बिल्कुल

असहाय एवं भविष्य में जीवन-निर्वाह की चिन्ता से अधीर हो गई है। नाना प्रकार की दुश्चिन्ता से विचलित होकर उसने मुझे बुलवाया। उसकी दुरावस्था की बात सुनकर मुझे बड़ी दया आई! शीघ्र ही उसके पास पहुँचकर मैंने उसके भविष्य के लिए निरापद् व्यवस्था बतला दी। संध्या के समय निर्जन घर में मुझे अकेला पाकर उसने हाथ पकड़कर अपने बिछौने पर बैठा दिया। कुछ क्षण बाद मेरे बाईं ओर बैठकर दाहिने हाथ से जकड़ते हुए अस्वाभाविक रूप से मेरा आदर करने लगी। उनके दोनों ओंठ कम्पित होने लगे, मुखमण्डल आरक्तिम हो गया, दृष्टि लोलुप और चंचल हो गई– सर्वांग बारम्बार दाएँ-बायें झूम रहा है; यह देखकर मेरी उत्तेजना बढ़ गई। मैं भयभीत और शंकित हो गया। इस समय निरन्तर जो ज्योति मेरे सामने स्थिर रूप से प्रकाशनमान थी, अचानक देखा, वह थरथर काँप रही है। मैं तुरन्त उसका बिछौना त्यागकर उछल पड़ा। युवती भी साथ-साथ उठकर मुझे पकड़ ली एवं बारम्बार खींचने लगी। मैं 'छोड़ो, छोड़ो' कहकर बलपूर्वक हट गया। तब वस्त्र में उसकी 'अशुचि' का लक्षण देखकर पूछा– ये क्या है? युवती ने बतला दिया; मैं एक क्षण भी रुके बिना द्रुत गति से चला आया। क्षणभर में ही समझ गया, मेरा सर्वनाश हो गया है; नाममात्र बिन्दुपात से ही पूर्ण-चन्द्रमा विलुप्त हो गया! दो-तीन मिनट के भीतर ही तरंगित जलाशय में चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब की भाँति चंचल होकर मेरा स्थिर उज्ज्वल ज्योतिर्मण्डल धीरे-धीरे पूर्णतः अदृश्य हो गया। जैसा कर्म, वैसा फल! हाय, हाय, अब मैं क्या करूँ?

पतित पर अयाचित दया

19 अगस्त, रविवार। गोस्वामीजी आज ढाका पहुँच जाएँगे, यह संवाद मिला। उनके स्वागत के लिए कुछ गुरुभाइयों को लेकर 'दलाईगंज' स्टेशन पहुँच गया। पहले के अपराध का स्मरण करके, मन में संकोच होने से सबके पीछे खड़ा रहा। पता नहीं गोस्वामीजी मुझसे क्या कहेंगे, प्रतिक्षण मन में यही विचार आने लगा। इधर और एक गुरुभाई भी किसी एक स्त्री के संसर्ग से पतित होकर गुरुभाइयों के समक्ष विशेषरूप से अपमानित हुए हैं। सभी ने उनका तिरस्कार करके एक प्रकार से उनको बहिष्कृत ही कर रखा हैं। लज्जा और अनुताप से उदास होकर वे सबका साथ छोड़कर अपने घर में ही छिपकर अकेले दिन-रात बिता रहे हैं। गोस्वामीजी को देख नहीं पाएँगे, इस क्लेश से वे आज घर में बैठकर रो रहे हैं।

संध्या के समय गोस्वामीजी 'दलाईगंज' स्टेशन पहुँचे। गाड़ी के भीतर से ही उन्होंने गुरुभाइयों के साथ मुझे भी देख लिया। प्रतिष्ठित और पदस्थ अधिक आयु के गुरुभाई लोग गोस्वामीजी के गाड़ी के पास पहुँच गए; लेकिन उन्होंने

सबसे पहले मुझे ही बुलाकर कहा– **"क्यों कुलदा, आ गए? अच्छा, अच्छा! तुम सब लोग घर जाओ– मैं 'फूलबेड़े' स्टेशन पर उतरूँगा।"** यह कहकर उन्होंने मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए ऐसी स्नेहपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा कि मेरा मन शीतल हो गया। अन्यान्य गुरुभाइयों से बातें करते-करते ही गाड़ी चल पड़ी। गोसाँईजी 'फूलबेड़े' (ढाका) स्टेशन पर उतरे। दलाईगंज में न उतरकर वे यहाँ से प्रायः एक घण्टे की दूरी पर ढाका स्टेशन में क्यों उतरे, कोई कुछ नहीं जानता।

गोसाँईजी ढाका स्टेशन में उतरकर गुरुभाइयों द्वारा तिरस्कृत उस अनुतप्त गुरुभाई के घर पहुँच गए। घर का द्वार बन्द था। बार-बार धक्का देने पर उस भले व्यक्ति ने जैसे ही दरवाजा खोला, गोस्वामीजी ने तुरन्त उनको छाती से लगाकर सिर पर हाथ फेरते-फेरते कहा– **"तुम मेरे पास आओगे नहीं, इसीलिए मैं स्टेशन से सीधे तुमको देखने आया हूँ।"** गुरुभाई रोते-रोते उनके पैरों पर गिर पड़े। गोस्वामीजी उन्हें सांत्वना वाक्य से आश्वस्त करके गेण्डारिया आ गए। सब लोगों ने बहुत अवज्ञा करके जिन्हें दूर रखा था, गोस्वामीजी ढाका पहुँचकर सबसे पहले उन्हीं का आलिंगन कर आए! इस कार्य से मुझे बड़ी सांत्वना मिली और मन शान्त हुआ।

विचित्र स्वप्न: पथ-प्रदर्शन

आज दोपहर में गोस्वामीजी के पास गया। देखा, आम के पेड़ के नीचे वे ध्यानस्थ हैं। दूर से प्रणाम करते ही उन्होंने आँखें खोलकर देखा एवं मुझसे बैठने के लिए कहा। मैं 'ब्रह्मचारीजी के पास गया था' धीरे से यह बतलाते हुए कहा– ब्रह्मचारीजी के उपदेश के अनुसार भैय्या आपसे मिलने के लिए ढाका आए थे। तब आप यहाँ नहीं थे। वे जाते समय कह गए– यदि आप पश्चिम की ओर जाएँ, तो दया करके एक बार उनके साथ भेंट कीजिएगा। उन्हें बहुत-कुछ कहना है।

गोसाँईजी– **शरीर अभी बड़ा पीड़ित है। स्वस्थ होने पर एक बार जाने की इच्छा है। तब तुम्हारे भैय्या के साथ भेंट करूँगा।**

ब्रह्मचारीजी के साथ मिलने पर क्या-क्या बातचीत हुई थी, गोस्वामीजी ने विस्तारपूर्वक जानना चाहा। बड़े भैय्या और मँझले भैय्या की सब बातें बतलाकर, फिर अपनी सभी बातें आरम्भ से लेकर अन्त तक स्पष्ट रूप से उन्हें बतलाई। सुनकर गोस्वामीजी ने कहा– **"विद्या नहीं आएगी– इत्यादि जिन सब बातों को उन्होंने लिखकर रखने के लिए कहा है, उसे लिख रखो। उन लोगों की बातें समझना बड़ा कठिन है। जो तुमसे कहा है, वही करते जाओ। मैं तो हूँ; फिर जो करना होगा, मैं ही बतला दूँगा। घबराओ नहीं।**

अच्छा, स्वप्न में क्या देखा, बतलाओ तो?"

मैं अपने स्वप्न का वृत्तान्त बतलाने लगा– देखा, प्रायः संध्या होने को है, अचानक आकर आपने मुझे बुलाकर कहा, **'और समय नहीं है, अब चलो।'** बारदी के ब्रह्मचारीजी भी आपके साथ में थे। श्री ताराकान्त गंगोपाध्याय (ब्रह्मानन्द भारती) भी आकर उपस्थित हो गए। सबसे आगे ब्रह्मचारीजी, उसके बाद आप, फिर ताराकान्त भैय्या एवं आप सब लोगों के पीछे मैं चलने लगा। ब्रह्मचारीजी आगे-आगे जा रहे हैं, यह अनुभव होने लगा; परन्तु देखा नहीं। अन्धकार में किसी के साथ चलने पर उसकी उपस्थिति का जिस प्रकार एक अनुभव होता है, ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में मुझे वैसा ही लग रहा था। मार्ग पर चलते-चलते कुछ दूर जाने के बाद बहुत दूर से ही एक भयंकर जंगल दिखलाई पड़ा। उसे देखकर ही डर लगने लगा; पर जितना ही उसके निकट पहुँचने लगे, हरे व नीले रंग के घने-घने वृक्षों की शोभा से उतना आनन्द आने लगा। वन के पास पहुँचकर देखे, वह केवल वन नहीं– बहुत बड़ा एक पहाड़ है। हम लोग उसके भीतर प्रवेश किए। ब्रह्मचारीजी पथ पकड़कर अपने मन से चलकर जाने लगे; आप दण्ड द्वारा काँटे हटाकर रास्ता स्वच्छ करते-करते चलने लगे। ताराकान्त भैय्या सशंकित मन से आसपास देखते-देखते जाने लगे। मैं आपकी ओर ही दृष्टि रखकर चलने लगा। क्रमशः हम लोग बहुत ऊँचे-नीचे स्थानों से होकर पर्वत के सर्वोच्च शिखर में एक समतल स्थान पर जा पहुँचे! वहाँ आपने मुझको एक स्थान पर ले जाकर तीन आसन दिखलाया। आसन के चारों ओर बहुत पुराने बड़े-बड़े फैले हुए पेड़ हैं। स्थान कुछ-कुछ अन्धकार के समान वृक्षों की छाया से आवृत्त है। देखा, गेरुवे रंग के चौकोर तीनों आसन लाल प्रस्तर में बिछे हुए हैं– अग्र भाग पूर्व की ओर है! तीनों आसन 1, 2, 3 अंक द्वारा चिह्नित हैं। '3' अंक वाला आसन दिखलाकर आपने मुझसे कहा– **'यह तुम्हारा आसन है। यहाँ बैठकर कुछ समय साधना करनी होगी। आसन पर बैठो।'** '2' अंक वाले आसन पर आप बैठ गए। '1' अंक वाला आसन खाली रहा। कुछ समय वहाँ बैठकर मैंने साधना की। फिर आपने उठकर कहा– **'मेरे पीछे-पीछे चलो!'** तब हम चारों पुनः पूर्ववत् यथाक्रम चलने लगे। झाड़ियों से घिरे और काँटों से आवृत्त ऊँचे-नीचे स्थानों पर चलने से पैर के तलवे क्षत-विक्षत हो गए। जगह-जगह पर ठोकर लगने से दो-तीन बार गिर पड़ा। तब आप संकेत द्वारा दुर्गम संकीर्ण रास्ते का संकट मुझे बतलाकर, धीरे-धीरे अग्रसर होने लगे। बीच-बीच में आप मुझसे कहने लगते, **'बहुत सावधानी के साथ धीरे-धीरे पैर रखते हुए मेरे पीछे-पीछे आओ।'** बड़े कष्ट से बहुत दूर चलने के बाद लगा, एक बहुत बड़े राज्य के पास आ गए। देखा कि घने-घने हरे वृक्षों के सब पत्तों के भीतर से होकर सूर्य-रश्मि की भाँति

उस ज्योतिर्मय राज्य का प्रकाश आकर पड़ रहा है। हम लोग उसी प्रकाश की किरण को लक्ष्य करके अग्रसर होने लगे! आप बीच-बीच में पीछे मेरी ओर देखकर बहुत भरोसा देने लगे। उससे मुझे लगा, सामने संकट है। हम जिस जंगल में थे, वहाँ से उस ज्योतिर्मय राज्य में जाने का केवल एक द्वार है; बहुत ही संकीर्ण है। पूरा राज्य घने काँटों के बेढ़े से घिरा हुआ है। हम लोग बड़े उत्साह के साथ उस द्वार की ओर गए; द्वार के पास पहुँचकर हमने देखा, एक गहरे काले रंग का पतला भयंकर लम्बा साँप फुँफकार रहा है। वह हम लोगों की ओर देखकर बड़े तेजस् के साथ फन फैलाकर डसने को आया। ब्रह्मचारीजी के निकट आकर फन उठाकर रुक गया; फिर तुरन्त फन नीचे करके सों-सों शब्द करता हुआ आपकी ओर आया; परन्तु आपने उसकी ओर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया। पीछे मेरी ओर देखकर **'कोई डर नहीं, कोई डर नहीं है'** कहकर बार-बार मुझे आश्वासन देने लगे। साँप आपके निकट भी फन संकुचित करके ताराकान्त भैय्या को लक्ष्य करके बढ़ा। उनके हाथ में मोटी लाठी थी। वे भय से अधीर होकर साँप पर प्रहार करने लगे। साँप भी उनके दोनों पैरों को जकड़ लिया। वे उस पर जितना प्रहार करने लगे, साँप भी उनको उतना ही जकड़ने लगा। तब आप चिल्लाने लगे– **'मारो नहीं, मारो नहीं, रुक जाओ, रुक जाओ। मारकर उसको छुड़ा नहीं पाओगे। उसको नहीं मारने से वह कभी काटेगा नहीं।'** आपकी बात से भी ताराकान्त भैय्या स्थिर नहीं रह पाए; भय और व्यग्रता से वे बारम्बार साँप के ऊपर लाठी से प्रहार करने लगे। साँप भी उनको बलपूर्वक जकड़ने लगा। उसी समय देखा– उलंग दीर्घाकृति, गौरवर्ण के एक जटा वाले ब्रह्मचारीजी ने अत्यन्त संकीर्ण पथ से होकर श्वेत-उज्ज्वल ज्योतिर्मय राज्य में प्रवेश किया; आप उस द्वार के मध्य स्थल में खड़े रहकर मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपका आधा अंग द्वार के उस ओर, ज्योतिर्मय राज्य में है और आधा इस ओर है। मुझको हाथ हिलाकर अंगुलि से संकेत करके कहा, **'उस किनारे से होकर मेरी ओर कूदो, साँप कुछ नहीं कर पाएगा।'** मैं संकेत पाते ही कूदकर साँप को लाँघते हुए जैसे ही आपके पास आकर गिरा, वैसे ही उस धक्के से निद्रा भंग हो गई। रात्रि के अन्तिम प्रहर में यह स्वप्न देखकर फिर नींद नहीं आई। स्वप्न देखने के पहले ब्रह्मचारीजी को मैं कभी देखा नहीं था। स्वप्न में जैसा देखा था, बारदी जाकर भी ब्रह्मचारीजी की आकृति और रूप ठीक उसी प्रकार देखा।

स्वप्न का वृत्तान्त सुनकर गोसाँईजी ने कहा, **"स्वप्न को लिखकर रखो। कई बार स्वप्न काम में आते हैं। इस समय जाकर पढ़ाई-लिखाई करो; फिर मैं तो हूँ, जो करना होगा, कह दूँगा।"**

मेरे अपने कुछ दर्शन के विषय में गोस्वामीजी से पूछने पर उन्होंने कहा,

"यह सब विषय बाहरी लोगों के सामने प्रकाशित नहीं करना चाहिए; श्रद्धावान् देखकर केवल साधन-प्राप्त लोगों से कह सकते हो।"

महापुरुषों को पहचानने का उपाय

22 अगस्त, बुधवार। संध्या होने के कुछ पहले गोसाँईजी के पास जाकर देखा, कमरा लोगों से परिपूर्ण है। विविध विषयों पर धर्म-चर्चा हो रही है। अचानक एक गौरवर्ण दीर्घकाय मुसलमान फकीर गोस्वामीजी के उस आसन-गृह में निःसंकोच प्रवेश करके प्रफुल्ल मन से उनके सामने बैठ गए। नाना प्रकार से सांकेतिक फकीरी भाषा में गोस्वामीजी के साथ बातचीत करने लगे। कुछ समय बाद गौरांग, नित्यानन्द और राधाकृष्ण से सम्बन्धित कुछ गीत गाकर गुरु-माहात्म्य के विषय में कुछ क्षण कहे; फिर गोस्वामीजी को प्रणाम करके चले गए।

कमरे से फकीर साहेब के बाहर जाते ही गोसाँईजी ने हम लोगों से कहा, **"देखो तो फकीर साहेब किस ओर जाते हैं?"** हम लोगों ने तुरन्त बाहर जाकर रास्ते के दोनों ओर खोज की, परन्तु फकीर साहेब को देख नहीं पाए।

गोस्वामीजी ने कहा, **"तुम लोग मनुष्य की ओर लक्ष्य नहीं करते, मनुष्य को पहचानते नहीं। ये एक महापुरुष थे। कितने मुसलमान तो रास्ते से निकल जाते हैं, फिर यहाँ इस प्रकार से कौन आता है? राधा-कृष्ण, गौर-निताई, देवी-देवताओं के विषय में मुसलमानों से कहने पर वे लोग कान अंगुलि से बन्द कर लेंगे। फिर इन्होंने किस प्रकार असाम्प्रदायिक भाव से सबके उपास्य देवताओं की भक्ति की! गुरु के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने के लिए 'गुरु ही सत्य हैं', इस प्रकार का भी उपदेश कौन देता है? कितने महात्मा इस प्रकार छद्मवेश में इन सब स्थानों पर आते हैं, कह नहीं सकते। अवसर देखकर, मनुष्य देखकर ये लोग उपदेश देकर अदृश्य हो जाते हैं। मनुष्य को पहचानना पड़ता है। मनुष्य को पहचानने के लिए सबको अपनी अपेक्षा बड़ा मानना पड़ता है, स्वयं को अधम और सब लोगों को अधम-तारण समझना पड़ता है। रास्ते के कुली-मजदूर को भी महात्मा समझकर प्रणाम करना चाहिए। इस प्रकार करने से फिर वास्तविक महापुरुष का दर्शन मिल जाता है। यह अनुमान की बात नहीं है, कल्पना की बात नहीं है, सत्य बात है। कल्पना करने से नहीं होगा, स्वयं को ठीक इसी प्रकार समझना होगा। तभी महापुरुषों की कृपा होती है, जन्म सार्थक होता है।"**

धर्म का महास्रोत: फिर वही सत्युग

26 अगस्त, रविवार। संध्या के समय एकरामपुर के कदमतला में गोसाँईजी के निवास पर गया। रात्रि 'बैठक' में सम्मिलित होऊँगा सोचकर प्रतीक्षा करता रहा। यथासमय सब लोगों के एकत्र हो जाने पर साधना आरम्भ हुई। गोस्वामीजी कितने ही देवी-देवताओं की स्तुति करने लगे। **'बम् महादेव! बम् बम् भोला!'** कहते-कहते उनका कण्ठ रुद्ध हो गया। क्रमशः अचेत होकर समाधिस्थ हो गए। बहुत समय तक इसी प्रकार रहे। फिर सिर से पैर तक सारा शरीर थरथर काँपने लगा, श्वास-प्रश्वास कुछ क्षण बहुत तेज चलने के बाद फिर बिल्कुल रुक गया। गद्गद कण्ठ से वे कहने लगे–

'एक बड़ी लीला होगी, एक अद्भुत घटना घटेगी। अधिक दिन बचा नहीं है। महात्मा लोग सब निकल पड़े हैं। गया, काशी, वृन्दावन, अयोध्या आदि स्थानों पर एक बड़ी घटना होगी। फिर से वही सत्यकाल, प्रायः सत्यकाल ही होगा। प्रत्येक स्थानों पर एक-एक महात्मा हैं! सभी के हाथों में पंखा है। अभी से वे लोग हवा करना आरम्भ कर दिए हैं; क्रमशः जोर से हवा करेंगे। काशी की हवा अयोध्या में, ढाका की हवा कोलकाता में, इस प्रकार एक स्थान की वायु जाकर अन्य स्थान की वायु से मिलेगी। वायु से वायु मिलने पर वायु का वेग और भी बढ़ेगा। क्रमशः आँधी आएगी, भयंकर आँधी। आँधी जाकर समुद्र से मिलेगी। समुद्र-जल वायु से मिलकर गंगा-यमुना सहित समूचे देश को बहा देगा, प्रायः सब भारतवासी को ही बहा देगा। केवल भारतवासी ही नहीं, अनेक अँग्रेज भी बह जाएँगे। यह स्रोत, महास्रोत सभी को बहा देगा। कोलकाता, ढाका और भी दो-तीन स्थानों पर अभी से धीरे-धीरे हवा उठ गई है। महास्रोत! इस स्रोत में बाधा देने का सामर्थ्य किसका है? देश के लोगों का अविश्वास, सन्देह बढ़ता हुआ देखा जाएगा। उससे कोई हानि नहीं होगी, उपकार ही होगा। जो लोग इस साधना में हैं, सम्पूर्ण निरापद् हो गए हैं। विश्वास करो या न करो, कल्पना नहीं है, अवश्य देखोगे। इहलोक में रहो या परलोक में ही रहो, कोई भी वंचित नहीं होगा। रामकृष्ण परमहंस व और भी कोई-कोई महात्मा परलोक में रहते हुए ही सहायता करेंगे। कुछ डर नहीं है, सम्पूर्ण निर्भय हैं, वास्तव में कोई भय नहीं है। इस साधना में जो लोग हैं, सब धन्य हो जाएँगे। नाम में रुचि, गुरु के प्रति भक्ति होने से ही हो गया। यह साधन जिन लोगों को मिला है, नाम में रुचि, गुरु के प्रति भक्ति उनकी अवश्य होगी। विश्वास करो या न करो, होगी ही। ब्रह्मचारीजी इधर लीला कर रहे हैं।

महाप्रलय का वह दिन आ गया। डर नहीं, डर नहीं, कोई डर नहीं।'

रात्रि में सोते समय गोसाँईजी को लक्ष्य करके प्रार्थना करते हुए सोया, जिससे रात 3 बजे साधना करने के लिए मुझे उठा दें। स्वप्न देखकर ठीक समय में जाग उठा। स्वप्न यह है– एक भंयकर डकैत हाथ में 'रूल' लेकर मुझ पर प्रहार करने के लिए दौड़कर आ रहा है। मैं कोई उपाय न देखकर बहुत घबरा गया। उसी समय अचानक गोसाँईजी उपस्थित होकर डकैत को भगा दिए। भय और कष्ट से मेरी निद्रा भंग हो गई। इस छोटी-सी घटना से भी गोसाँईजी के ऊपर मेरा कुछ विश्वास बढ़ा।

गेण्डारिया आश्रम में प्रवेश
गोसाँईजी के हाथ से प्रथम हरि-लूट

28 अगस्त, मंगलवार। आज गोस्वामीजी गेण्डारिया के नये घर पर आ गए। आश्रम में आकर देखा बड़ा उत्सव चल रहा है। मृदंग, मंजीरे और संकीर्तन की ध्वनि से स्थान बड़ा ही आनन्दमय हो गया है। दिन के लगभग 11 बजे तक हरिकीर्तन, गौर-कीर्तन और नाम-गान हुआ। बहुत-से ब्रह्मसमाजी भी आए थे। गौर-कीर्तन सुनकर किसी-किसी को असह्य लगने से वे चले गए, कुछ प्रमुख ब्राह्म अन्त तक उत्सव में रहे। एक तसले में कुछ बताशे लेकर गोसाँईजी ने अपने सिर पर रख लिया, फिर 'हरि बोल, हरि बोल' कहते हुए उसे चारों ओर बिखेर दिया। सब लोगों के सामने आज गोस्वामीजी को 'हरि-लूट' देते हुए पहली बार देखा।

फिर गोसाँईजी पूर्व दिशा के कमरे में दक्षिणमुख होकर आसन में बैठ गए। बहुत समय तक इस कमरे में भी कीर्तनादि हुए। सुना है, कल गृह-संचार होगा, बड़ा उत्सव होगा। संध्या के समय अपने निवास-स्थान पर आ गया।

गेण्डारिया आश्रम-प्रतिष्ठा उत्सव

29 अगस्त, बुधवार, जन्माष्टमी। प्रातः स्नानादि के बाद गेण्डारिया आश्रम गया। देखा– हिन्दू, ब्राह्म, वैष्णव आदि विभिन्न सम्प्रदाय के अनेक लोगों की उपस्थिति से आश्रम परिपूर्ण हो गया है। संकीर्तन महोत्सव में आज अनेक लोग उन्मत्त हुए। बहुत समय तक उत्सव चला। भीतर-बाहर मिलाकर तीन-चार दलों ने कीर्तन किया। मुसलमान फकीर और भावुक वैष्णवों के योगदान से उत्सव का आनन्द और भी बढ़ गया। दिन के 12 बजे तक भाव की बड़ी उमंग रही। फिर गोस्वामीजी अपने हाथ से 'हरि-लूट' वितरण करके पूर्व के कमरे में जाकर आसन पर बैठ गए।

इस समय कई लोग अपने-अपने घर चले गए। जो रह गए, उन्होंने भोजन किया। मैं गोस्वामीजी के पास बैठा रहा। गोसाँईजी मुझसे पूछा, **"तुम खाओगे नहीं?"** मैंने कहा, प्रसाद लूँगा। लगभग 2 बजे गोस्वामीजी मुझे लेकर भण्डारघर में गए। वहाँ हम प्रायः 10-12 गुरुभाई गोसाँईजी के दोनों ओर बैठ गए। गोसाँईजी ने हम लोगों को अपना प्रसाद दिया। आज पहली बार मैंने गोसाँईजी का 'प्रसाद' पाया। एक गुरुभाई यथासमय हम लोगों के साथ नहीं आ सके थे; वे अभी आकर गोस्वामीजी के भोजन-पात्र से बिना संकोच के स्वयं ही प्रसाद लेकर खाने लगे। गुरु के प्रति इस प्रकार निःसंकोच भाव कहीं देखा या सुना नहीं।

सितम्बर, सन् 1888 ई०

दर्शनादि के सम्बन्ध में उपदेश
अलौकिक रूप से चरणामृत प्राप्त

5 सितम्बर, बुधवार। संध्या के समय कुछ गुरुभाइयों के साथ गेण्डारिया आश्रम गया। गोसाँईजी के पास जाकर बैठ गया; इसी समय हरिचरण बाबू, प्रसन्न बाबू, श्यामाचरण बक्शी जी आदि गुरुभाई आ गए। गोसाँईजी बहुत समय से समाधिस्थ थे। इस समय अर्ध चेतनावस्था में अस्फुट स्वर में धीरे-धीरे कहने लगे– **'साधना के समय आप लोग जो कुछ देखते हैं, उसे कल्पना मत समझना। यह साधना ऐसी वस्तु है कि ये सब दिखेंगे ही। प्रथम अवस्था में ये दर्शन चंचल और क्षणिक होते हैं; चित्त की निर्मलता और स्थिरता के साथ-साथ ये क्रमशः स्पष्ट और दीर्घकाल तक स्थायी होते देखे जाते हैं। आरम्भ में एक छाया की भाँति, चित्र की भाँति क्षण-क्षण में दिखाई पड़ता है; फिर धीरे-धीरे उसे स्पष्ट मूर्ति के रूप में जीवन्त देखा जाता है; बातचीत भी सुनी जाती है; उसके साथ बात करने पर उत्तर भी मिलता है। केवल जीवन्त दर्शन होता है ऐसा नहीं है, उसका हाथ-पैर हिलाना, इंगित करना आदि भी दिखाई पड़ता है। इस साधना में केवल अपने देश के देवी-देवताओं के ही दर्शन होते हैं, ऐसा नहीं है; अब तक किसी भी देश में भगवान् की जिस-जिस रूप में लोगों ने पूजा की है, आपको ज्ञात रहे या न रहे– साधना के प्रभाव से धीरे-धीरे वह सब जीवन्त रूप में प्रत्यक्ष होगा। प्राचीन ग्रीस, रोम और अन्य दूसरे देशों में, यहाँ तक कि पहाड़-जंगल के असभ्य लोगों में भी अब तक भगवान् की जो जिस-जिस रूप में पूजा किए हैं और कर रहे हैं, सब**

प्रकट हो जाएगा। यह कल्पना की बात नहीं कह रहा हूँ, ये सब विषय सत्य हैं, प्रत्यक्ष किए हुए हैं। पहले से यदि इन सबको कल्पना समझकर तुच्छ माना जाए, बिल्कुल उड़ा दिया जाए, तब तो सहज पथ गँवाना पड़ता है। कल्पना ही मानो या जो भी मानो, यह सब प्रत्यक्ष होगा ही। ये सब सदा दिखाई नहीं पड़ते। उसका कारण है, हमारा चित्त सर्वदा एक दशा में नहीं रहता; चित्त स्थिर होने से ही दर्शन स्पष्ट होता है। चित्त स्थिर रखने के लिए श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना पड़ता है, पवित्र आचरण के साथ रहना पड़ता है। नाम में रुचि होने से और चित्त निर्मल होने से एक-एक करके कामना-वासना दूर होने लगती है। कामना-वासना जिस परिमाण में दूर होगी, उसी परिमाण में वह सब प्रत्यक्ष होगा। ये सब दर्शन की अवस्था ही योग का आरम्भ है। योग के एक बार आरम्भ होने पर फिर अधिक दिन नहीं लगते। धीरे-धीरे सब आश्चर्यजनक विषय प्रत्यक्ष हुआ करते हैं, जिसकी कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती, वह सब प्रत्यक्ष करके मनुष्य धन्य हो जाता है।'

अधिक रात्रि में अपने निवास-स्थान पर लौटते समय आनुष्ठानिक ब्राह्म गुरुभाई श्री श्यामाचरण जी साथ में थे। वे रास्ते में गोसाँईजी की अलौकिक क्षमता और असाधारण दया की बात उठाकर, अचानक कह पड़े– 'देखो, मैं ब्राह्म-समाज का व्यक्ति हूँ। ठाकुर (गोसाँईजी) का चरणामृत लेने का साहस नहीं होता। प्रतिदिन रात्रि में सोते समय सिर के पास एक खाली कटोरी रखकर मन-ही-मन प्रार्थना करता हूँ, जिससे वे चरणामृत रख जाएँ। उनकी अद्भुत कृपा है। भोर में उठकर प्रतिदिन उस कटोरी में चरणामृत पाता हूँ। यह घटना नित्य घट रही है। मेरे सिवा कोई भी इस विषय में जानता नहीं। आपकी इच्छा हो तो सोते समय खाली कटोरी रखकर सोना, अवश्य ही पाओगे।' बक्शी जी दीर्घकाल से निष्कपट, सत्यवादी, आनुष्ठानिक ब्राह्म हैं। सोचा– ये अब क्या है? इनकी यह अवस्था है! जो कभी नहीं हो सकता, उसकी क्या परख करूँगा! बक्शी जी को बहुत समय से जानता हूँ– उनके ऊपर मेरी श्रद्धा कम नहीं हुई, सोचा, 'मुनिनांच मतिभ्रमः' (मुनियों की भी मति भ्रमित हो जाती है), अथवा अन्य कोई रहस्य भी इसके भीतर हो सकता है।

प्रारब्ध क्षय के उपाय का निर्देश

8 सितम्बर, शनिवार। संध्या के समय गोसाँईजी के पास गया। एकान्त पाकर उनसे पूछा– आपने मुझे एक 'नाम' का जप करने को कहा, स्वप्न में देखा था।

गोसाँईजी– **हाँ, हाँ, उस नाम का भी जप करो, उपकार होगा।**

आज शनिवार होने से अनेक लोग आए हुए हैं। प्रारब्ध और पुरुषकार के सम्बन्ध में कई बातें हुई। गोसाँईजी ने कहा– **"संसार में सभी प्रारब्ध के अधीन हैं। जो जितना ही प्रयास क्यों न कर ले, प्रारब्ध कार्य की गति को कोई रोक नहीं सकता। पुरुषकार द्वारा प्रारब्ध के ऊपर आधिपत्य असम्भव है। लोग पुरुषकार से सामयिक उपकार पा सकते हैं, ठीक है; परन्तु दीर्घकाल तक नहीं पा सकते। ब्रह्मचारीजी पुरुषकार के प्रभाव से प्रारब्ध कर्म को अतिक्रम करके साधना की चतुर्थ अवस्था भी पार कर चुके थे; अन्त में निर्विकल्प समाधि के स्थान पर पहुँचे, फिर बाध्य होकर लौट आए। बाद में उन्होंने 'नास्ता' करके खेत की घास निकालने, सुअर भगाने में कितना समय बिताया! अवस्था में पड़े बिना ये सब बातें समझ में नहीं आतीं। प्रारब्ध के हाथ से छुटकारा पाने के लिए शास्त्र में दो उपाय कहे गए हैं– विचार और अजपा-साधन। जब जो कुछ भी करोगे, विष्णु को प्रसन्न करने के लिए ही करोगे। उठना, बैठना, स्नान-आहारादि समस्त कार्य निष्काम भाव से अर्थात् विष्णु की प्रसन्नता के लिए अनुष्ठित होते हैं, तो शीघ्र ही प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाते हैं। फिर श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने से और भी सहज में होता है।"**

गोस्वामीजी की बातों का अर्थ मैं समझा नहीं। प्रयोजन होने पर या बाध्य होकर प्रतिदिन जो सब कार्य करता हूँ, उसमें निष्काम भाव किस प्रकार लाऊँ? फिर शौच, प्रस्राव, स्नान, आहार, इत्यादि बाह्यकर्म को ठीक साधन-भजन के समान भगवान् की प्रसन्नता के लिए कर रहा हूँ, यह विचार भी कैसे करूँगा? श्वास-प्रश्वास में 10 मिनट भी नाम-जप कर नहीं पाता, हैरान हो जाता हूँ। निरन्तर श्वास-प्रश्वास के साथ नाम-जप करूँगा भी कैसे? अब समझ आ रहा है, यह साधन लेना ही मेरी भूल है।

नगेन्द्र बाबू का असाम्प्रदायिक उपदेश

गोस्वामीजी शिष्यों को लेकर ब्राह्म-समाज में गए। गोसाँईजी को देखकर ब्राह्मगण अत्यन्त आनन्दित हुए। बड़े उत्साह के साथ संकीर्तन आरम्भ हुआ। भाव की उमंग से बड़ी धूम मच गई। गोस्वामीजी के कुछ शिष्य बहुत ही उन्मत्त हो गए। उनकी अवस्था देखकर सभी चकित होकर ताकते रह गए। श्रीधर भाव में उन्मत्त होकर 'वह देखो, वह देखो' कहते हुए, हाथ उठाकर उछलना आरम्भ कर दिए। सभी बड़ी उत्सुकता के साथ श्रीधर को देखने लगे। इसी समय ब्रह्मसमाजी श्री चण्डीचरण कुशारी जी दो-चार छलाँग मारते हुए श्रीधर के सम्मुख आकर 'वह देखो; वह देखो, क्या है रे? ब्रह्म जगत्मय, ब्रह्म जगत्मय!' कहकर चीत्कारने लगे।

प्रचारक श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने वेदी का कार्य करके उपदेश दिया। उन्होंने तेजस्पूर्ण वाक्य में, हृदय-स्पर्शी भाषा में बड़े उत्साह के साथ कहा– 'साकार उपासना करो या निराकार उपासना ही करो, केवल देखना है कि अपने इष्ट देवता को वास्तव में व्याकुलता के साथ पुकार रहे हो या नहीं'– इत्यादि। ब्राह्मगण आज इस प्रकार का उपदेश सुनकर बहुत विरक्त हुए। बहुतों ने कहा– गोस्वामीजी आज समाज में उपस्थित थे, इसीलिए नगेन्द्र बाबू के मुख से इस प्रकार का उपदेश निकल गया।

सत्यनिष्ठा का उपदेश

पिछले तीन दिनों से सब समय ऐसा लग रहा था कि बड़े भैय्या की छोटी कन्या प्रियबाला पानी में डूबकर मर गई है। कभी-कभी उसकी मृत देह की कल्पना मन में अपने-आप आ रही थी। आज सूचना मिली, वास्तव में वैसा ही हुआ है। मन में बड़ा कष्ट हुआ। मेरी दूसरी भतीजी सरयू बहुत छोटी है, वह भी घटना के दो दिन पहले वैसा ही स्वप्न देखकर चीत्कार उठी थी। इस प्रकार क्यों होता है? इससे लगता है कि प्रारब्ध भी कुछ रह सकता है।

भयंकर विपत्ति में पड़ गया। भीतर अदम्य काम की उत्तेजना, बाहर एक के बाद एक भयंकर प्रलोभन! ऐसी दशा में क्या करूँ? व्यभिचार करके काम के वेग को शान्त करूँगा, निश्चय किया। फिर व्यवस्था पाने के लिए गोस्वामीजी के पास जा पहुँचा। कुछ क्षण बैठे रहने के बाद वे स्वयं ही कहने लगे–

'उपदेश सुनने से क्या होगा? केवल सुनते जाने से कुछ नहीं होगा। जीवन में उसे परिणत करना होगा। इच्छा होने से ही सब उपदेश के अनुसार चला नहीं जा सकता, सत्य है। बहुतों की अच्छा बनने की आकांक्षा है, प्रयास भी है; पर समर्थ नहीं हो पाते। सब रिपुओं के ऊपर सब लोगों का समान आधिपत्य नहीं है, यह बड़ी सच बात है; किन्तु सच बात तो लोग अपनी इच्छा से कह ही सकते हैं; वैसा करते कहाँ हैं? सत्य वचन, सत्य व्यवहार, सत्य चिन्ता– सबके लिए आवश्यक है। इन तीनों का अभ्यास होने से फिर अधिक उत्पात नहीं रहता। धर्मार्थियों को पहले इन तीनों का अभ्यास कर लेना चाहिए। फिर समस्त ही सहज होने लगता है। इनका अभ्यास सहज में हो जाता है। इन तीनों का पहले अभ्यास करो, सब उत्पात शान्त हो जाएँगे।'

यह सब सुनकर मैं दुःखी मन से अपने निवास-स्थान पर चला आया। सोचा था, गोस्वामीजी योगाचार्य हैं, इन सब उत्पातों की शान्ति की कितनी ही

प्रणाली जानते हैं, कुछ मुष्टियोग बतला देंगे; परन्तु देखा उन्होंने तो ब्राह्म-समाज की उसी पुरातन नीति के सुर को ही दोहरा दिया।

मन्त्रशक्ति का प्रमाण

25 सितम्बर, मंगलवार। हमारे मास्टर श्री शारदाचरण पाल जी का एकमात्र पुत्र आज मृत्यु-शय्या पर पड़ा है। हम आठ-दस समवयस्क उसको देखने गए। वहाँ बैठने के कुछ क्षण बाद ही साधु के वेश में एक ब्राह्मण ने अचानक उस घर में आकर कहा– 'ऊपरी उपद्रव से आपका लड़का मर रहा है। आपकी इच्छा होने से मैं एक कवच दूँगा, लड़का ठीक हो जाएगा। दैवबल से मैं वह कवच ला दूँगा। आपका अर्थव्यय कुछ अधिक होगा नहीं; केवल एक यज्ञ करने के लिए थोड़ा-सा खर्च होगा।' मास्टरजी भयंकर कट्टर ब्राह्म हैं, वे एकदम से 'हो, हो' करके हँसने लगे एवं बोले– 'कवच-टवच का काम नहीं है। ये सब दैव-टैव मैं नहीं मानता। यज्ञ क्या है, भाई? कोई औषधि जानते हो तो दो। इन सब पर मैं थोड़ा भी विश्वास नहीं करता।' हम सभी का ब्राह्म-भाव है; सोचा– 'अच्छा एक खेल दिखाने वाला आ गया है।' मैंने पूछा– ठाकुर, दैवबल से हमें कुछ दिखा सकते हो? वेशधारी साधु ने कहा– 'हाँ, अवश्य दिखा सकता हूँ। लड़के पर बड़ा संकट देखकर कवच की बात कही थी। उसे लेना या न लेना आप लोगों की इच्छा। इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है।'

दैवबल से कुछ दिखलाने के लिए साधु से बहुत जिद करने लगा। कोई-कोई हास-परिहास भी करने लगे। अन्त में ब्राह्मण ने कहा– 'अच्छा, आप लोग क्या चाहते हैं, बोलो!' तब हमने कहा– 'दैवबल से कुछ मिठाई ला दो।' ब्राह्मण ने कहा– "एक लोटे में शुद्ध जल ला दो और कमरे को स्वच्छ करवा दो। मैं मन्त्र पढ़कर जब 'आओ, आओ' कहूँगा, तब उस पानी को कमरे में छिड़क देना।" हम लोग तुरन्त ही झाड़ू देकर कमरे को स्वच्छ कर दिए; ब्राह्मण को अपना ही एक कपड़ा पहना दिए एवं एक लोटा पानी कमरे के बीच में रखकर हम प्रायः 10-12 लोग उस ब्राह्मण के चारों ओर खड़े होकर बड़ी सतर्कता के साथ उसके हाथ-मुँह हिलाने के ऊपर तीक्ष्ण दृष्टि रखने लगे। दिन के 3-साढ़े 3 बजे होंगे। ब्राह्मण पहले जनेऊ पकड़कर शान्त मन से जप करने लगे; कुछ समय बाद ही सीधे खड़े होकर थरथर काँपने लगे। उस समय उन्होंने दोनों हाथ ऊपर की ओर उठाकर कई बार 'आओ, आओ' कहकर मानो किसी का आह्वान किया। हम लोग तुरन्त उस लोटे का पानी कमरे में छिड़क दिए। तब ब्राह्मण ने बहुत बड़ा मिश्री का एक ढेला– लगभग दो सेर का– ऊपर हवा से झेलकर हमारे पास फेंक दिया।

इतना बड़ा मिश्री का ढेला कहाँ से किस प्रकार आया, निरन्तर कड़ी नजर रखकर भी हम इतने लोग उसे बिल्कुल भी पकड़ न सके; परन्तु इस पर भी मास्टर जी को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने स्पष्ट कह दिया– 'यज्ञ-वज्ञ ये सब कुछ नहीं है, कुसंस्कार है! मुझे कवच नहीं चाहिए।' साधु वहाँ से चले गए। उसके लगभग एक घण्टे बाद ही लड़के का देहान्त हो गया। मास्टर जी का विवेक-बल अद्भुत है! ऐसी आपत्ति के समय भी अपनी धारणा या मत के विरुद्ध उन्होंने कुसंस्कार का आश्रय नहीं लिया। यह हम लोगों के लिए एक दृष्टान्त है! कुछ मिश्री अपने निवास-स्थान पर लाकर एक शीशी में भरकर रख लिया; कुछ परिवर्तन होता है या नहीं, देखूँगा।

आहार के सम्बन्ध में उपदेश: आनुषंगिक बातें

28 सितम्बर, शुक्रवार। अपराह्न में गोस्वामीजी के पास गया। एकान्त में अवसर पाकर कहा– साधना के समय जो सब दर्शन होते थे, अब वैसा कुछ नहीं होता।

गोसाँईजी– **क्यों नहीं होता? किसी प्रकार का अनियम हुआ है?**

गोसाँईजी की यह बात सुनते ही सोचने लगा, 'जिस अनियम, अत्याचार से दर्शन बन्द हुआ, वह तो मैं जानता हूँ, उत्तेजना ही जड़ है।' यह उत्तेजना फिर क्यों होती है, उसका मूल कारण जानने के लिए डरते-डरते कहा– अनियम तो कितने ही होते हैं! दर्शन बन्द होने का मूल कारण क्या है, वह तो जानता नहीं।

गोसाँईजी– **अनेक प्रकार के अनियम से वैसा हुआ करता है। आहारादि के अनियम से भी दर्शन बन्द हो जाते हैं।**

मैं– माँस-मछली कभी खाता नहीं। जूठा खाने की भी सम्भावना नहीं है।

गोसाँईजी– **वह क्या कहने से होता है? किसी की इच्छित वस्तु, लोभ की वस्तु, उसे दिए बिना खाने से हानि होती है। किसी तमोगुणी व्यक्ति के साथ एक आसन पर बैठकर भोजन करने से हानि होती है; यहाँ तक कि एक स्थान पर बैठकर खाने से भी हानि होती है। आहार की वस्तु में तमोगुणी की दृष्टि पड़ने से भी अनिष्ट होता है। इन सब विषयों में जब दृष्टि खुल जाएगी तो स्पष्ट देख सकोगे कि वैसे लोगों की दृष्टि पड़ने से ही आहार की वस्तु में कीटाणु संक्रमित हो जाते हैं। यह सब पहले तो कुछ भी समझ नहीं पाता था, मानता भी नहीं था; लेकिन प्रत्यक्ष होने पर फिर अविश्वास कैसे करूँ? आहार की वस्तु में लोगों के संस्पर्श से और दृष्टि से बड़ी हानि होती है। दरवाजा बन्द करके आहार करना अब भी बहुत-से ब्राह्मणों का नियम है। इसीलिए**

देवताओं को भोग भी दरवाजा बन्द करके देना चाहिए। आहार की वस्तु में तमोगुणी व्यक्ति की दृष्टि पड़ने से उसका भोग नहीं लगता, वह नष्ट हो जाती है; इसलिए दरवाजा बन्द करके भोग बनाने का नियम है। भाव-दूषित, स्पर्श-दूषित, दृष्टि-दूषित वस्तु खाने से वह हानि करती है; देवताओं को भी देने से अपराध होता है। आहार के दोष से कई प्रकार के उपद्रव की सृष्टि होती है, उससे सारे रिपुओं की उत्तेजना बढ़ती है, इसलिए इन सब विषयों में बहुत सावधान रहना चाहिए।

मैं– शुद्ध-अशुद्ध वस्तु की स्पष्ट जानकारी के बिना देवता को निवेदन करने से हमारा अपराध तो नहीं होता? फिर इससे इष्ट देवता की कोई हानि नहीं होगी?

गोसाँईजी– **नहीं, कोई अपराध नहीं होता। वह तो नियम ही है। वैसा न करने से तो रक्षा पाना सम्भव नहीं है। इष्ट देवता की कोई हानि नहीं होती। रीति के अनुसार भोग निवेदन करने से इष्ट देवता समझ जाते हैं, सतर्क हो जाते है। उससे किसी का अनिष्ट नहीं होता।**

मैं– इष्ट देवता की कृपा से आहार की वस्तु शुद्ध हो जाने पर भी तो पुनः दूषित हो सकती है; इसलिए प्रत्येक ग्रास को निवेदन किया करता हूँ। उच्छिष्ट वस्तु को बार-बार निवेदन करने से इष्ट देवता का अनिष्ट तो नहीं होता?

गोसाँईजी– **नहीं, कुछ नहीं होता। उसी प्रकार करना चाहिए! इसलिए आहार के समय अनेक ब्राह्मण बात नहीं करते, मौन रहते हैं। गाँव में अभी भी ब्राह्मणों के बीच यह नियम प्रचलित है। पहले ऋषियों ने इन सब बातों को बहुत आवश्यक समझा था; फिर हमारे हित के लिए वे शास्त्रादि में लिख गए हैं। बहुत तपस्या करके उन लोगों ने जिन सब भ्रमरहित सत्य विषयों का अविष्कार किया था, उसके तत्त्व से अवगत हुए बिना सीधे कुसंस्कार कहकर उड़ा देना ठीक नहीं है। ऋषियों ने सत्य समझकर जो कुछ प्रत्यक्ष किया था, वही हम लोगों के कल्याण के लिए रख गए हैं; कुछ मिथ्या कथन लिखकर रखने में उनका तो कोई स्वार्थ था नहीं। हम लोग वास्तविक धर्म प्राप्त करें, इस उद्देश्य से ही वे लोग शास्त्रादि लिख गए हैं। जो सत्य लगे, वही अभी करते जाओ। अभी सब नियमों का प्रतिपालन नहीं कर सकोगे; सामर्थ्य के अनुसार जितना कर सकते हो, करते जाओ; उससे ही बहुत सहायता मिलेगी। सब नियम पालन करके चलना यदि सहज होता, तब तो सहज में ही सभी सिद्धि प्राप्त कर सकते थे। आहार तो सर्वश्रेष्ठ भजन है। प्रणाली के अनुसार आहार कर सको तो उससे ही सब हो जाता है, फिर कुछ**

भी करना नहीं पड़ता। वह तो कोई कुछ करता नहीं, जानता भी नहीं। आहार के विषय में नाना प्रकार के अनियम चल रहे हैं, उससे बड़ी हानि हो रही है। अभी जो कर सकते हो, करते जाओ। धीरे-धीरे सब पता चल जाएगा, कर भी सकोगे।

———————

अक्टूम्बर–नवम्बर, सन् 1888 ई॰

चरणामृत प्राप्ति और उसके विषय में उपदेश

9 अक्टूबर, मंगलवार। मेरा रोग बहुत बढ़ गया है; स्कूल में भी छुट्टी लग गई है। घर जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। घर के नाम से मेरा हृदय काँप उठता है। गोस्वामीजी से दूर रहकर विपत्ति में पड़ने से किस प्रकार रक्षा पाऊँगा, सोचकर चिन्तित हो गया। श्यामाचरण बक्शी जी ने कहा था– 'गुरु का चरणामृत ग्रहण करने से शारीरिक और मानसिक विकार की निवृत्ति होती है।' मैं ये सब कुछ नहीं जानता, फिर भी बक्शी जी बड़े सच्चे व्यक्ति है, उन पर बहुत विश्वास करता हूँ। इसलिए भविष्य में उत्पात के भय से उसे संग्रह करके रखने की मेरी इच्छा हुई। मैं गोस्वामीजी के पास पहुँचकर देखा, कमरे में बहुत लोग हैं; एकान्त में चरणामृत पाने की आकांक्षा से मन-ही-मन गोसाँईजी से प्रार्थना की। वे कुछ समय बाद प्रस्राव करने के लिए बाहर गए। मैं भी उसी समय जाकर बरामदे में खड़ा हो गया। गोस्वामीजी जैसे ही मेरे निकट आए, प्रणाम करके उनका पादोदक ग्रहण किया। मैंने प्रार्थना की, 'मेरी जिससे गुरु में– सत्य वस्तु में निष्ठा हो।' अन्य प्रार्थना मन में आई नहीं। चरणामृत देकर गोसाँईजी ने कहा– **"इसे जितना गुप्त रूप से व्यवहार करोगे, उतना ही उपकार होगा। लोगों के समाने ग्रहण मत करना और किसी को विदित भी नहीं होने देना।"**

बारदी के ब्रह्मचारी का संग

महापुरुष का विचित्र उपदेश और असाधारण आचरण

नवम्बर का अन्तिम सप्ताह। घर आकर कुछ दिन अच्छे-से व्यतीत किया। फिर विभिन्न ओर से अनेक प्रकार के उत्पात होने लगे। एक के बाद एक प्रबल प्रलोभन ने चित्त को बड़ा विक्षिप्त और मोहित कर डाला। सोचा, 'अब कोई बचाव नहीं है, निश्चय ही स्वेच्छचारी बनकर व्यभिचार में प्रवृत्त होना पड़ेगा।' प्रतिदिन ही मैं चरित्र-भ्रष्ट होने की आशंका करने लगा। दिन का कुचित्र रात को कल्पना में मूर्तिमान होकर मुझे बेचैन करने लगा। शरीर पहले की अपेक्षा और दुर्बल हो गया।

पढ़ना-लिखना एक प्रकार से छोड़ दिया। परीक्षा में सफलता की कोई आशा नहीं। साधन-भजन में भी चित्त उदासीन हो गया है। रात-दिन मेरे ललाट के ऊपर घने नीले आकाश में निरन्तर जो सप्तर्षिमण्डल का दर्शन होता था, धीरे-धीरे वह मेघ से आच्छादित होकर अदृश्य हो गया। मैं दिन-रात 'हाय-हाय' करके बिताने लगा। कुचिन्ता का फल हाथो-हाथ मिलने पर भी उसे छोड़ नहीं पाया हूँ। तब निरुपाय होकर सारी अवस्था ब्रह्मचारीजी को लिखकर बतलाई। उन्होंने पत्र का उत्तर अपने हाथ से लिखकर दिया–

"निर्विघ्नो भव!"

मन खराब होने पर यहाँ आकर उपदेश ले जाना। वेदना असह्य होने से ताजी मिट्टी लेकर छाती पर मलना– कम हो जाएगी। परीक्षा में पास हो जाओगे। कुर्ता, जूता मत पहनना; ठण्ड से बचने के लिए साधारण वस्त्र का उपयोग करना। सब विपत्ति दूर होगी, कोई डर नहीं है।

आशीर्वाद– ब्रह्मचारी

पत्र मिलने के बाद ब्रह्मचारीजी को देखने की प्रबल आकांक्षा उत्पन्न हुई। बस्ती के घनिष्ट आत्मीय एक ब्राह्मण का साथ पाकर बारदी के लिए निकल पड़ा। प्रातः से दोपहर 3 बजे तक चलकर ब्रह्मचारीजी के पास पहुँचा; ब्रह्मचारीजी ने सर्वप्रथम पूछा– 'मेरा पत्र मिला?' मैंने कहा– हाँ। ब्रह्मचारीजी– आज क्या खाया? मैं– कुछ नहीं। ब्रह्मचारीजी सुनकर तब 'भजलेराम' को बुलाकर कहा– 'अरे, आज तुमने जो लड्डू बनाए हैं, सब ले आओ।'

स्नेमयी सेविका ने तुरन्त थालीभर लड्डू ब्रह्मचारीजी के सम्मुख रख दिया। ब्रह्मचारीजी ने मुझसे कहा– 'ये सब लेकर खा ले।' मेरे साथी ब्राह्मण से भी उन्होंने अनुरोध किया। उसने कहा– 'आपका प्रसाद होने से खा सकता हूँ।'

ब्रह्मचारीजी ने कहा– 'प्रसाद क्या है? इच्छा होने से खा सकते हो।' मैंने ब्राह्मण से कहा– जब वे दे रहे हैं, तो प्रसाद ही हो गया है। लीजिए न! ब्राह्मण को कुछ आनाकानी करते देखकर ब्रह्मचारीजी ने मुझे ही सब खा लेने को कहा। सेविका लड्डू का थाल रसोईघर में ले गई; वहाँ पर मुझे बैठने के लिए आसन दीं एवं ब्रह्मचारीजी के कहे अनुसार सारे लड्डू खाने के लिए मुझसे जिद करने लगीं। मैं बड़ी मुस्किल में पड़ गया। एक मुट्ठी भात मेरा पूरा आहार है; आधा सेर से अधिक लड्डू मैं किस प्रकार खाऊँगा? विशेषकर पित्तशूल की वेदना में लड्डू विषतुल्य है। जो भी हो, ब्रह्मचारीजी का आदेश समझकर सभी लड्डू खा लिया। भजले राम बोलीं– 'बाबा ने आज दोपहर को मुझे बुलाकर कहा, एक लड़का बिना खाए बहुत थका हुआ आ रहा है। उत्कृष्ट लड्डू अधिक मात्रा में बनाकर रख दे, वह आए तो खाने को देना।'

खाने के बाद जाकर ब्रह्मचारीजी के पास बैठ गया। हिल-मिलकर बहुत समय तक बातचीत की। सायं साढ़े 5 बजे ब्रह्मचारीजी का भोजन प्रस्तुत हुआ। भोजन के बाद उन्होंने मुझे प्रसाद लेने को कहा। मैंने कहा, अभी-अभी तो इतना सारा लड्डू खाया। कभी इतना खाया नहीं। अब और कैसे खाऊँ? ब्रह्मचारीजी ने कहा– 'जाकर खाने बैठ न, अभी भूख लग जाएगी!' मैं फिर प्रतिवाद न करके भोजन करने बैठ गया। महात्मा की अद्भुत कृपा है! प्रसाद की अद्भुत सुगन्ध से मुझे लोभ हुआ, भूख लगने लगी। रुचिपूर्वक नियमित आहार से भी लगभग चार गुना अधिक खा लिया। रात्रि में ब्रह्मचारीजी के कमरे के पास ही रसोईघर में मेरे शयन की व्यवस्था हुई। गहन रात्रि में अचानक निद्रा भंग होने पर सुना, ब्रह्मचारीजी भजन गा रहे हैं– 'प्राण गौरांग, नित्यानन्द– जीवनकृष्ण, जीवनकृष्ण* ।'

गाते-गाते वे रोने लगे। प्रातः उठते ही प्रातःक्रिया सम्पन्न करके ब्रह्मचारीजी के पास जाकर बैठ गया। उन्होंने कहा– 'अरे तुझे कुछ कहना है तो अभी कह।'

मैं– काम की असह्य यन्त्रणा से मैं बड़ा बेचैन हो जाता हूँ। क्या करूँ?

ब्रह्मचारीजी– क्यों, रमण कर। तुझे क्या मिलती नहीं?

मैं– बहुत मिलती हैं; परन्तु उससे जो पाप होता है!

ब्रह्मचारी– अच्छा, जा; तुझे कोई पाप स्पर्श नहीं करेगा। सब पाप मेरा है।

मैं– लोग निन्दा ही करेंगे।

ब्रह्मचारी– कौन निन्दा करेगा? ज्ञानी लोग निन्दा नहीं करेंगे– मूर्ख करेंगे। मूर्ख की निन्दा से क्या होता है?

मैं– ज्ञानी निन्दा क्यों नहीं करेंगे? सभी तो उस कार्य की निन्दा करते हैं।

ब्रह्मचारी– डेढ़-दो वर्ष का लड़का जब दौड़ना सीखता है, उसे देखा है? 12-15 फीट दौड़ने के बाद झटका खाकर धड़ाम से गिर जाता है, फिर उठता है। 25 वर्ष का एक युवक यदि उस शिशु का गिरना-पड़ना देखकर हँसे, परिहास करे, तो उसको क्या कहोगे? वह साला मूर्ख है न? वह नहीं जानता, कितना गिरने-पड़ने से ही अब उसके पैरों में जोर आया है, वह दो कोस दौड़ सकता है। शिशु के गिरने-पड़ने पर क्या ज्ञानी लोग निन्दा करते हैं? कितनी चोट खाता है, गिरता-पड़ता है, तब फिर बलवान् होता है– ज्ञानी लोग यह जानते हैं।

मैं– अच्छा, निवृत्ति की बात तो आप कहते नहीं, तो फिर मैं जाकर आपके उपदेशानुसार ही चलूँ?

ब्रह्मचारी– मैं तुझे निवृत्ति की बात क्यों कहूँ? तेरा कर्म तुझे निवृत्त करेगा।

---

*ब्रह्मचारीजी गोसाँईजी को 'जीवनकृष्ण' कहते थे।

मेरे उत्साह देने पर भी तेरा सामर्थ्य कितना है, जो तू कर सकेगा? यह जानकर ही तुझसे कह रहा हूँ। तू जाकर देख न! अब धर्म-धर्म करके विचलित मत होना। कर्म समाप्त किए बिना कुछ नहीं होगा। अभी जाकर पढ़ाई-लिखाई कर, प्रारब्ध समाप्त कर। धर्म की प्राप्ति बाद में होगी। मैं अभी और सौ वर्ष तक हूँ; केवल तुम लोगों के लिए ही, मेरा अब कुछ भी प्रयोजन नहीं है। यह कहकर ब्रह्मचारीजी ने मुझे चले जाने के लिए कहा। मैंने कहा– अभी मेरी जाने की इच्छा नहीं है; कुछ दिन आपके पास रहने की इच्छा है। ब्रह्मचारी– अच्छा है, रह सकता है तो रह। कर्म ही तुझे खींच लेगा। यह कहकर उन्होंने गोसाँईजी का प्रसंग उठाया, कहा– 'गोसाँई ने देश-विदेश में महापुरुष कहकर मेरा प्रचार करके सर्वनाश कर दिया! 25 वर्ष मैं यहाँ अच्छे-से था; अब रोगी की चीख-पुकार और मामले-मुकदमे की बात प्रातः से संध्या तक मैं सुनता हूँ; इसीलिए क्या मैं यहाँ हूँ? साला अन्धा, मूर्ख! छोटे-छोटे बच्चे लोग को योगशिक्षा देता है और कहता है, परमहंसजी, परमहंसजी!' इस प्रकार की कई बातें गोसाँईजी के सम्बन्ध में कहकर वे हम लोगों के साधन की निन्दा करने लगे। मैं ये सब बातें सुनकर रो पड़ा; उसी समय चले जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। ब्रह्मचारीजी की बात से विरक्त हो गया। दोपहर का भोजन करके 12 बजे के बाद ढाका के लिए निकल पड़ा।

ब्रह्मचारी के संग का निषेध

गेण्डारिया में आम के पेड़ के नीचे गोसाँईजी को एकान्त में पाकर ब्रह्मचारीजी के विषय में सारी बातें कही। गोस्वामीजी ने सुनकर कहा–

"अब तुम लोगों में से जो कोई ब्रह्मचारी के पास जाएगा, उन्हीं को वे एक बार ठोक-बजाकर देखेंगे। उन्होंने मुझे फटकारते हुए कहा था– 'ऋषि-मुनियों का कलेजा तू सियार-कुत्तों को बाँट रहा है!' मैंने कहा, जैसा परमहंसजी आदेश दिए हैं, वैसा ही मैं कर रहा हूँ। उन्होंने कहा– 'अच्छा, मैं एक बार अच्छे-से देखूँगा!' अब वे वही आरम्भ कर दिए हैं। इसमें तुम लोगों की क्या? मेरी ही परीक्षा ले रहे हैं। उन्होंने कहा था– 'तेरी अँतड़ियाँ मैं खींच-खींकर बाहर करूँगा।' अब वे वही कर रहे हैं। जितना कर सकते हैं, करें! अब तुम लोग कोई वहाँ गए, तो हानि होगी। यह बात सभी को बतला देना अच्छा है।"

गोस्वामीजी की यह बात हम सब लोगों के बीच प्रचारित हो गई। उसके बाद प्रायः सभी ने ब्रह्मचारीजी के पास आना-जाना छोड़ दिया; लेकिन जिन लोगों ने ब्रह्मचारीजी के पास आना-जाना बन्द नहीं किया, वे सब कुछ दिनों के भीतर

ही प्रारब्धवादी होकर साधन-भजन परित्याग करके, भयंकर संकट में पड़ गए हैं।

दिसम्बर, सन् 1888 ई॰

बड़े भैय्या की अयाचित दीक्षा-प्राप्ति में मेरी खिन्नता ठाकुर की सान्त्वना

7 से 10 दिसम्बर। बड़े भैय्या का एक पत्र मिला। उसमें उन्होंने लिखा है– दीक्षा प्राप्ति के लिए अत्यन्त व्याकुल होकर, गोस्वामीजी की कृपा के ऊपर दृष्टि रखते हुए प्रतीक्षा कर रहा था। इसी बीच एक दिन श्री रामानन्द स्वामी (ब्राह्मधर्म प्रचारक रामकुमार विद्यारत्न जी) बिना सूचना दिए ही अचानक फैजाबाद आकर मुझे गुप्तारघाट घुमाने ले गए। वहाँ पर उन्होंने मेरी इच्छा नहीं रहने पर भी कान में एक 'मन्त्र' देकर कहा– "मैंने तुमको दीक्षा दे दी। इस 'नाम' का जप करो।" मैं इसे ईश्वरीय संयोग समझकर दीक्षा मान लिया एवं नियमित जप कर रहा हूँ, उपकार भी पा रहा हूँ।

भैय्या का पत्र पाकर मेरा सिर चकरा गया। मन में बहुत कष्ट होने लगा। मैं शीघ्र गोसाँईजी के पास जाकर पत्र उनके हाथ में दे दिया। उन्होंने उसे पढ़कर थोड़ा मुस्कुराते हुए मुझसे कहा– **"ये तो अच्छा हुआ! ठीक है, हो तो गया! भगवान् कितने प्रकार से लोगों का मंगल करते हैं!"**

मैं– आप पहले भरोसा देकर भैय्या को थोड़ा सूचित कर देते तो लगता है, ऐसा नहीं होता।

गोसाँईजी– **क्यों? इसमें क्या बुरा हुआ है? ईश्वर की इच्छा से जो होता है, वह क्या कभी बुरा हो सकता है? ये तो अच्छा ही हुआ है।**

मैं– उन पर यदि आप कृपा नहीं करेंगे, तो नहीं होगी। मैं अकेले ही आपकी कृपा भोग करना नहीं चाहता।

गोसाँईजी– **क्यों? उनका काम वे करें, तुम्हारा काम तुम करो। जिसका जो काम है, वह उसके पास है।**

मैं इसके बाद और कुछ न कहकर रोने लगा। बारम्बार मन-ही-मन गोसाँईजी को प्रणाम करके प्रार्थना करने लगा– 'भैय्या को यदि दया करके अपने श्रीचरणों में खींचकर नहीं लाएँगे तो फिर मुझे भी छोड़ दीजिए, मुझे कुछ भी नहीं चाहिए है। भैय्या को छोड़कर मुक्ति प्राप्त करने की मेरी आकांक्षा नहीं है।' गोसाँईजी मेरी ओर कुछ क्षण तक देखते रहे, फिर उन्होंने आँखें बन्द कर लीं। कुछ क्षण बाद आवेशित अवस्था में धीरे-धीरे कहने लगे– **"एक वैद्य पेड़ की जड़**

के साथ कोई वस्तु मिलाकर रोगी को औषधि दिया करते; रोगी ठीक हो जाता। लोग औषधि में केवल जड़ देखते हैं; अन्य वस्तु देखते नहीं। एक व्यक्ति ने सोचा, 'यह तो जड़ का ही गुण है।' उन्होंने एक रोगी को उस वस्तु को मिलाए बिना केवल वही जड़ सेवन करने के लिए दिया। इससे रोग दूर नहीं हुआ।"

कुछ क्षण बाद फिर कहने लगे– "एक व्यक्ति ने धान बोने का निश्चय किया। एक अच्छी उपजाऊ भूमि पाकर सोचा, 'किसान लोग अनुपजाऊ अस्वच्छ भूमि पर ही धान छिड़ककर रख देते हैं, उससे ही कितनी अच्छी फसल हो जाती है। मैं इस अच्छी भूमि में धान नहीं बोने दूँगा; जैसी उत्तम मिट्टी है, वैसा ही उत्तम धान का चावल बोऊँगा।' उसने तुष निकालकर चावल बो दिया। धान बोने से बहुत अच्छी फसल होती। चावल से तो कुछ नहीं होगा।"

अस्पष्ट भाव से इस प्रकार और भी अनेक बातें उन्होंने कही। ठीक से समझ न पाने के कारण लिखा नहीं। इस समय गोसाँईजी के आँखों से आँसू गिरने लगे। कुछ क्षण बाद आँखें पोंछकर, सिर उठाकर मेरी ओर देखते हुए कहने लगे– 'तुम्हारे दुःखी होने का कोई अर्थ नहीं है। उन्हें मेरे ही पास आना होगा। उस साधना से फल नहीं मिलेगा; तृप्ति भी नहीं मिलेगी। अभी सामयिक थोड़ी शान्ति मिल सकती है। अभी वे उसी साधना को करें; उससे अच्छी शिक्षा होगी। फिर थोड़े समय में ही अच्छा फल पाएँगे। तुम कभी उन्हें निरुत्साहित नहीं करना; उत्साह देते हुए पत्र लिखना।'

मैं– भैय्या को आना होगा, तब भी बहुत समय तो नष्ट हो गया।

गोसाँईजी– नहीं, नष्ट नहीं हुआ। इससे उनका उपकार ही होगा। फिर इस घटना से तुम्हारा भी बहुत उपकार होगा। वह तुम शीघ्र ही जान जाओगे। निर्दिष्ट समय व्यतीत होने से ही समझ जाओगे कि इस घटना से तुम्हारे भैय्या का कितना उपकार हुआ है।

विद्यारत्न जी ने भैय्या को दीक्षा देते समय बड़ी दृढ़ता के साथ कहा था– 'छः महीने में तुम सिद्ध हो जाओगे।'

एक महीने में सिद्धि प्राप्ति का उपाय

11 दिसम्बर, मंगलवार। बहुत कम समय में सिद्धावस्था प्राप्त करने की एक प्रणाली आज गुरुदेव ने हम लोगों को बतलाई। एक महीना कोई व्यवस्था के अनुरूप नियम से रहकर निर्दिष्ट प्रणाली के अनुसार साधना कर ले, तो अवश्य

वे सिद्धि प्राप्त करेंगे। शीघ्र देहत्याग होने की यदि किसी के मन में आशंका है अथवा सिद्धि प्राप्त करने के पहले ही देहत्याग होने की आशंका से यदि किसी के मन में खेद होता है, तो इच्छा होने से सहज में ही वे एक महीना नियम से रहकर इस प्रणाली के अनुसार साधना कर सकते हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त हो जाएगी। नियम बहुत कठोर होने के कारण गुरुदेव ने किसी से इसके लिए जिद नहीं की; **'जिसकी इच्छा हो, इस प्रकार से साधना कर सकते हैं'** इतना ही कहा। नियम इस प्रकार हैं–

1. लोकसंग का त्याग। विशेषकर स्त्रियों का दर्शन, स्पर्शन, उनके सम्बन्ध में श्रवण और चिन्तादि पूर्ण रूप से वर्जनीय है।

2. एकान्त में पवित्रता के साथ दिन में केवल एक बार अरवा चावल का स्वपाक आहार करना।

3. शयन त्याग करना। अत्यन्त शिथिलता लगने से बहुत आवश्यक होने पर बाहु को ही तकिया बनाकर भूमि पर शयन करना।

इन सब बाहरी नियमों के पालन के साथ-साथ निर्दिष्ट रीति से मुद्रा-बन्ध एवं सर्वदा सिद्धासन में बैठकर प्राणायाम, कुम्भक के साथ प्रणाली के अनुसार 'नाम-साधना' करनी पड़ेगी।

इस प्रकार नियम अवलम्बन करके कोई एक महीना साधन कर ले, अवश्य ही उन्हें सिद्धावस्था प्राप्त हो जाएगी। कम-से-कम तीन दिन भी यदि कोई करे, तो उन्हें सर्वसाधारण के लिए दुर्लभ कोई भी एक अवस्था प्राप्त हो जाएगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

मुद्रा दिखलाकर उन्होंने कहा– **"इस प्रकार मुद्रा-बन्ध करके आसन पर बैठने का अभ्यास हो जाने से काम-क्रोधादि रिपु निस्तेज होते हैं; शरीर रसरहित, साधनोपयोगी सबल और स्वस्थ बना रहता है।"**

गेण्डारिया आश्रम में ठाकुर की कुटिया

गेण्डारिया के आश्रम प्रतिष्ठा के कुछ दिन बाद गोसाँईजी की आसन-कुटीर निर्मित हुई। उस कुटिया को गोस्वामीजी के शिष्य श्री कुंज घोष जी ने बनवाया। आम के पेड़ से 12 फीट की दूरी पर उत्तर-पूर्व कोने में वह कमरा अवस्थित है।

छोटी कुटिया दक्षिण-द्वारी है एवं पूर्व-पश्चिम भाग लम्बा है। केवल 15 फीट लम्बी एवं 12 फीट चौड़ी है। दीवारें मिट्टी की बनी हैं; फूस की वर्गाकार छप्पर से आवृत्त है। कुटिया के दक्षिण ओर बीच में केवल एक दरवाजा है एवं उसके पश्चिम भाग में उत्तर-दक्षिण आड़ी दीवार पर आमने-सामने छोटी-छोटी दो

खिड़कियाँ (एक फुट चौड़ी एवं डेढ़ फुट लम्बी) हैं। कुटिया में दो कोठरी हैं। दरवाजे के पूर्व किनारे से सटी हुई उत्तर-दक्षिण एक लम्बी ऊँची दीवार सम्पूर्ण कमरे को पूर्व व पश्चिम दो भागों में विभक्त करती है। पूर्व की ओर संयुक्त कोठी में जाने हेतु चार फीट लम्बा, दो फीट चौड़ा बिना चौखट का एक सकरा पथ है; उसे भीतर की दीवार के उत्तर की ओर रखा गया है। इस कोठरी में दोपहर के समय भी प्रकाश नहीं पड़ता; अन्धकार रहता है। इसी में दक्षिण दीवार से संलग्न उत्तरमुख किया हुआ गोसाँईजी का आसन स्थित है। उसके सामने केवल धूनी है; कमरे में और कुछ नहीं है।

साधारणतः गोस्वामीजी पश्चिम ओर के कमरे में ही बैठा करते हैं। पूर्व दिशा के अन्धकारमय कोठरी में उन्होंने पंचमुण्डी-आसन रखने का संकल्प किया था— आसन के निर्माण का आयोजन भी हुआ था; किन्तु अचानक संकल्प त्याग दिए। सुना है, उन्होंने कहा कि **'पंचमुण्डी-आसन प्रस्तुत करके एक बार उसमें बैठने से फिर यह स्थान त्याग करके कभी अन्यत्र जाने का उपाय नहीं रहेगा, अतः उसका अब प्रयोजन नहीं है।'** पंचमुण्डी-आसन नहीं बनने पर भी गोसाँईजी किन्तु दिन के किसी-किसी निर्दिष्ट समय में उसी आसन पर बैठते हैं। गोस्वामीजी ने आसन-कुटीर के उत्तरी दीवार के बाहरी ओर अपने हाथ से झण्डा अंकित करके उसके ऊपर श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभु का नाम एवं आसन-गृह के भीतर उसी दीवाल पर कुछ उपदेश चॉक से लिख रखा है।

(क) कुटीर के उत्तरी दीवाल के बाहरी भाग पर लिखा है—

ॐ श्री कृष्ण चैतन्याय नमः।

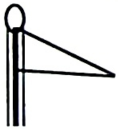

(ख) कुटीर के भीतर दीवार पर लिखा है—

ऐसा दिन नहीं रहेगा।

आत्मप्रशंसा मत करना।

परनिन्दा मत करना।

अहिंसा परमो धर्मः।

सब जीवों पर दया करो।

शास्त्र और महात्माओं पर विश्वास करो।

शास्त्र और महात्माओं के आचरण से जो मेल न खाए

उसे विषवत् त्याग दो।

नाहंकारात् परो रिपुः। (अहंकार से बड़ा शत्रु नहीं है।)

साधक के लिए दैनिक प्रतिपालन योग्य नियम

16 दिसम्बर, रविवार। आज मेरे साधन-जीवन का तृतीय वर्ष आरम्भ हुआ। संध्या के समय गेण्डारिया आश्रम में पहुँच गया। देखा, गोस्वामीजी समाधिस्थ हैं, कुछ गुरुभाई उनके सम्मुख शान्त भाव से बैठे हुए हैं। कुछ क्षण बाद गोस्वामीजी को बाह्यज्ञान हुआ। धीरे-धीरे हम लोगों से कहने लगे— **'प्राणायाम का काम तुम लोगों का प्रायः समाप्त होने को आ गया है। अब साथ-साथ कुछ नियम पालन करके चलने का प्रयास करना!'**

1. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश— इन पंचभूतों में प्रणाली के अनुसार दृष्टि-साधना का अभ्यास करना।

2. शम— भीतरी इन्द्रियों की स्थिरता। चित्त की निश्चलता की सर्वदा रक्षा करके चलना।

3. दम— इन्द्रियों के विषय से जो सब कुअभ्यास उत्पन्न होते हैं, उससे मन को निवृत्त रखना।

4. तितिक्षा— सब प्रकार के दुःख की अवस्था में भी क्षमा, सहिष्णुता (सहनशीलता) का अवलम्बन करना।

5. उपरति— मृत्यु और परलोक की चिन्ता करना। देह, विषय, संसारादि सभी अनित्य-असार हैं— प्रतिदिन विचार करना।

6. द्वन्द्वसहिष्णुता— सुख-दुःख, मान-अपमान, निन्दा-प्रशंसा, समस्त विरुद्ध अवस्थाओं में भी चित्त की अवस्था को अविचिलित, एक ही प्रकार स्थिर रखने का प्रयास करना।

7. स्वाध्याय— ऋषि-प्रणीत ग्रन्थ का पाठ करना। महाभारत का मोक्षपर्व, श्रीमद्भगवद्गीता— इन सबसे कम-से-कम दो-एक श्लोक का भी प्रतिदिन पाठ करना।

8. साधु-संग— प्रतिदिन साधु-दर्शन अथवा धर्म के विषय में कुछ चर्चा करना।

9. दान— जिसका जैसा सामर्थ्य है, कम-से-कम एक सत्य वचन का ही दान करना।

10. तपस्या— साधना, जो करते हो।

प्रतिदिन ही इन सब नियमों का पालन करने का प्रयास करना।

प्रतिदिन इन सब नियमों का प्रतिपालन करके चलना तो हम लोगों लिए बिल्कुल असम्भव लगता है। इन सब नियमों का जिससे प्रतिदिन कम-से-कम एक बार स्मरण कर सकूँ, इस आशीर्वाद की प्रार्थना करके गुरुदेव को प्रणाम किया। कीर्तन होने के बाद आज रात्रि में लगभग 9 बजे अपने निवास-स्थान पर पहुँचा।

स्कूल की पढ़ाई-त्याग और पश्चिम में जाने का आदेश
ध्यान और आसन का उपदेश

कुछ दिनों से मेरी वेदना बहुत बढ़ गई। रात-दिन अविराम भयंकर यन्त्रणा को अब मैं सहन नहीं कर पा रहा हूँ। शरीर की बड़ी दुर्दशा देखकर श्री रामकुमार विद्यारत्न जी मुझे पढ़ाई-लिखाई छोड़कर पश्चिम में जाने के लिए कह रहे हैं। पढ़ने-लिखने में मेरा भी बिल्कुल उत्साह नहीं है; परन्तु बहुत समय तक घर में रहने के बाद, कुछ दिनों से पुनः पढ़ाई-लिखाई आरम्भ की है। पढ़ाई-लिखाई बन्द करने से भैय्या लोग क्या कहेंगे– सदा यही चिन्ता हो रही है। आज अचानक बड़े भैय्या का एक पत्र आया। विद्यारत्न जी भैय्या के गुरु हैं; पता नहीं उन्होंने मेरे सम्बन्ध में भैय्या से क्या कहा। उनकी बात का उल्लेख करके भैय्या ने मुझे पढ़ाई-लिखाई बन्द करके शीघ्र पश्चिम में जाने के लिए लिखा है। अपनी वर्तमान दुरावस्था में भगवान् की अद्भुत करुणा देखकर मैं एकदम चकित हो गया। विद्यारत्न जी से भैय्या के दीक्षा ग्रहण का संवाद सुनकर मन में दुःख हुआ था; गोस्वामीजी ने तभी मुझसे कहा था– **'इससे तुम्हारा भी बहुत कल्याण होगा। वह तुम शीघ्र ही समझ पाओगे।'** गुरुदेव की यह बात अब बार-बार स्मृति में आकर मेरे संशयपूर्ण अविश्वासी चित्त को उनके शान्तिप्रद चरणों में लगा रही है। गुरुदेव के श्रीचरणों के उद्देश्य से बारम्बार प्रणाम करते हुए मैंने प्रार्थना की– 'दयालु ठाकुर, जिससे चिरकाल के लिए ही पढ़ाई-लिखाई को जलांजलि देकर स्कूलरूपी कारागार से छुटकारा पा सकूँ एवं तुम्हारा निरन्तर संग प्राप्त कर सकूँ, ऐसा कर दीजिए।'

भैय्या का पत्र पाकर, आधे घण्टे के भीतर ही पढ़ने-लिखने की पुस्तक आदि समेटकर गठरी बाँधकर रख दी। निवास-स्थान के सभी लोग स्कूल-कॉलेज जाने के लिए प्रस्तुत हो गए, मैं गोस्वामीजी से पश्चिम जाने की अनुमति लेने हेतु गेण्डारिया के लिए निकल पड़ा। रास्ते में श्यामाचरण बक्शी जी ने मुझे देखकर कहा– 'इस समय गोसाँईजी का दर्शन पाना सहज नहीं होगा।' कारण पूछने पर उन्होंने कहा– 'आजकल वे रात-दिन आसन के कमरे में ही बन्द रहते हैं। पंचमुण्डी आसन पर एक महीना बैठकर खूब कठोर साधना करेंगे। इस बीच बाहर

के लोग उनका दर्शन साधारणतः नहीं कर पाएँगे। इस साधन में जो लोग हैं, केवल वे निर्दिष्ट समय में देख पाएँगे।' मैंने पूछा– गोसाँईजी को अब पंचमुण्डी आसन पर साधना करने का प्रयोजन क्या है? बक्शी जी ने कहा– 'वे कहते हैं, परमहंसजी का आदेश है।' गोसाँईजी अब प्रायः सर्वदा समाधिस्थ रहते हैं। पंचमुण्डी आसन में सिद्ध होने पर पाँच परलोकगत महात्मा उनके शरीर की रक्षा एवं निरीक्षण के लिए सब समय नियुक्त रहेंगे, वे सब आत्माएँ सभी प्रकार के आपद्-विपद् से और प्राकृतिक दुर्घटना-दुर्देव से उनकी देह की रक्षा करेंगी। बक्शी भैय्या की बात सुनकर चकित हो गया। गोस्वामीजी के इस अद्‌भुत साधना के आयोजन को सम्भवतः सभी गुरुभाई नहीं जानते; गुरुदेव के गेण्डारिया निवासी केवल तीन-चार घनिष्ठ शिष्य ही जानते हैं। इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से जानने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हुआ।

मैं गोसाँईजी के दर्शन की प्रत्याशा से मन-ही-मन प्रार्थना करके गेण्डारिया आश्रम पहुँचा। भजन-कुटीर के पास पाँच-सात मिनट ही बैठने के बाद गोसाँईजी कमरे से बाहर आए। मुझे देखकर स्वयं ही बुलाकर कहा– **"तुम्हारे शरीर को तो बहुत अस्वस्थ देख रहा हूँ। अब क्या करने का विचार किए हो?"**

मैं– भैय्या पश्चिम में जाने के लिए लिखे हैं। क्या वही करूँ?

गोसाँईजी– **हाँ! इस समय तुम्हारे लिए तो वही करना उचित है। इस बार लगता है, परीक्षा है? तो क्या करोगे? शरीर अस्वस्थ करके पढ़ाई-लिखाई भी तो ठीक नहीं है।**

मैं– इस बार भी यदि परीक्षा नहीं दिया, तो और कभी नहीं दूँगा। अब आप जैसा कहें!

गोसाँईजी– **स्कूल में पढ़ने से क्या होगा? तुम्हारी जैसी अवस्था है! शरीर का नाश होने से पास होकर क्या करोगे? विद्या अर्जन उद्देश्य है; वही होने से तो हो गया। मिल (जॉन स्टुवर्ड मिल, दार्शनिक) इत्यादि अनेक बड़े-बड़े लोगों के विषय में सुना जाता है– स्कूल में पढ़े नहीं हैं। स्कूल में पढ़े बिना भी विद्या अर्जन किया जाता है। तुम भी वही करो। स्कूल की पढ़ाई तुम्हारे लिए सुविधाजनक नहीं है। जिसका शरीर स्वस्थ नहीं है, स्कूल की पढ़ाई उसके लिए मैं तो ठीक नहीं समझता। हमारे प्रान्त में जिन सब लड़कों-बच्चों में रोग देखा जाता है, अधिकांश बच्चे ही स्कूल में पढ़ते हैं। भोजन करके तुरन्त, मुख में भात का कौर रखे हुए ही, स्कूल भागते हैं, दिनभर अनियमित परिश्रम करते हैं; उसके ऊपर परीक्षा की चिन्ता से मस्तिष्क का नाश करते हैं। इन सब कारणों से ही इतने रोग होते हैं, कितने ही लोग असमय में ही वृद्ध हो जाते हैं।**

तुम अपने भैय्या के पास चले जाओ। वहाँ तुम्हारा शरीर, मन सब अच्छा रहेगा। वहाँ समय-समय में अच्छे-अच्छे लोगों के दर्शन भी पाओगे। तुम्हारे लिए वही अच्छा है।" थोड़ा रुकने के बाद फिर कहने लगे– **'तुम्हारे भैय्या से इस साधना के भीतर की कोई बातें मत कहना। वह सब कहना निषिद्ध है। फिर उनको हमारे साधना के भीतर लाने का कोई प्रयास मत करना। उनके लिए तुम कोई प्रयास मत करना। उनका समय हो जाने पर वे आएँगे। तुम्हारे किसी प्रयास की आवश्यकता ही नहीं है। अपना ये साधन प्रचार की वस्तु नहीं है। जिनके लिए प्रयोजन है, भगवान् ही समय के अनुसार उनके पास प्रचार करेंगे।'** यह कहकर गोसाँईजी ने कुछ लोगों के अलौकिक रूप से दीक्षा-ग्रहण की बातें संक्षेप में कही। उन लोगों के ही मुख से सब बातें बाद में सुयोग के अनुसार विस्तृत रूप से सुनकर यथावत् लिखने की इच्छा है। मैंने पूछा– रामकुमार बाबू कैसे व्यक्ति हैं? वे क्या ब्राह्म-समाज की साधना छोड़कर अन्य किसी प्रकार की साधना करते हैं?

गोसाँईजी– **हाँ, वे अन्य साधना करते हैं; पर शक्ति प्राप्त नहीं हुई। शक्ति मिलने पर गुप्त नहीं रख पाते। वह प्रकट हो जाती है।**

मैं– रामकुमार बाबू ने उस दिन कहा, 'तुम लोगों के साधन में कोई दोष नहीं है, फिर भी बहुत अधिक प्रकाशित हो गया है, यही बात है। साधना को गुप्त ही रखना चाहिए।'

गोसाँईजी– **वह तो ठीक बात है; परन्तु शक्ति छिपी नहीं रहती। फिर सत्य नष्ट नहीं होता। सत्य वस्तु प्रकाशित करने में किसका डर? सत्य जो है, वह अवश्य ही प्रकट होगा। उन्हें जब शक्ति मिल जाएगी, तब देखना वह छिपी नहीं रहेगी। रामकुमार बाबू की श्रद्धा-भक्ति करना; वे अच्छे व्यक्ति हैं। अपने इस साधन में सब लोगों की भक्ति करने को कहा गया है। रास्ते के कुली-मजदूर की भी भक्ति करना। सभी भक्ति के पात्र हैं। बिना विचार किए सभी की जो जितनी भक्ति कर सकते हैं, उनका उतना ही उपकार होगा।**

मैंने पूछा– साधना के नये नियम जो आपने बतलाया है, मैं उसे करूँ?

गोसाँईजी– **हाँ, तुम भी करना, आसन इस प्रकार से करना और दृष्टि यहाँ पर स्थिर रखकर ध्यान करना!** यह कहकर उन्होंने आसन करके दिखलाया एवं ध्यान का स्थान भी बतला दिया।

मैं– ध्यान क्या है? ध्यान किसको कहते हैं? मैं तो कुछ भी जानता नहीं। क्या ध्यान करूँगा?

गोसाँईजी– **अच्छा, आसन पर बैठे-बैठे नाम-जप करना और आँखें बन्द कर दृष्टि यहाँ स्थिर रखना। फिर सब अपने-आप जान जाओगे।**

मैंने पूछा– आँखें बन्द करके फिर वहाँ दृष्टि किस प्रकार स्थिर रखूँगा?

गोसाँईजी– **आँखें बन्द रहेंगी, मन को उस जगह पर स्थिर रखना।**

मैं– बिना कुछ देखे केवल एक रिक्त स्थान पर मन स्थिर रहेगा?

गोसाँईजी– **अभ्यास करने से कुछ समय बाद नाना प्रकार की ज्योति व रूपादि देख सकोगे। मन को एक जगह पर अभी स्थिर रखने की चेष्टा करो। फिर तुम्हारे लिए जो-जो प्रयोजन है, पता चल जाएगा।**

उस प्रकार से आसन पर बैठने का अभ्यास होने से क्या उपकार होता है, जानना चाहा। गोसाँईजी ने कहा– **"अम्ल, उदरी, सूजन, वात, पित्त सम्बन्धी रोगादि इस आसन में बैठने से दूर होते हैं; और भी कई लाभ होते हैं। अभ्यास करने से क्रमशः पता चलेगा।"**

गुरु-शिष्य सम्बन्ध
एक गुरुशक्ति ही पूरे विश्व में व्याप्त है

18 दिसम्बर, मगलवार। बड़े भैय्या का आज एक पत्र मिला, उसे लेकर गोसाँईजी के पास गया। आश्रम में प्रवेश करते ही श्रीधर, लाल आदि सबने कहा– 'गोसाँईजी बहुत अस्वस्थ हैं। ज्वर से सिर में पीड़ा के कारण प्रायः मूर्च्छित अवस्था में बिछौने पर लेटे हैं। आज भेंट नहीं होगी।' मैं बिना कुछ कहे बाहर आम के पेड़ के नीचे चुपचाप बैठ गया। मन-ही-मन गोसाँईजी को स्मरण करके दर्शन के लिए प्रार्थना करने लगा। गोसाँईजी घर के भीतर कमरे में थे। घर का द्वार बन्द था, केवल माता ठाकुरानी श्रीश्री योगमाया देवी ही पास में थीं। गोसाँईजी को मेरे आने की सूचना किसी ने दी नहीं; तो भी माता ठाकुरानी ने अचानक दरवाजा खोलकर श्रीधर से कहा– 'श्रीधर, गोसाँईजी ने कहा है, कुलदा बाहर प्रतीक्षा कर रहा है। उसको बुला दो।' मैं खबर पाते ही कमरे में गया। वे बिछौने से उठकर बैठ गए। बायें हाथ से अपने माथे को दबाए रखकर मुझसे पूछा– **"किसलिए आए हो?"**

मैंने भैय्या का पत्र पढ़कर सुनाया। मूल बात उन्होंने यही लिखी है– "महात्मा नागा बाबा मुझे बहुत चाहते हैं। एक दिन उन्होंने मुझे बुलवाया। मैंने दूर से उनको प्रणाम करके कहा– बाबा, मुझमें विश्वास की बड़ी कमी है। दया करके मुझे विश्वास दीजिए। नागा-बाबा अपने माथे की जटा सामने की ओर कपाल के ऊपर फैलाकर उसकी आड़ से (भीतर से) बड़े स्नेहपूर्वक देखकर मुझसे कहा–

'अच्छा, बच्चा अब हो गया। तुम्हारा विश्वास बन गया। चले जाओ।' मैं बाबाजी को प्रणाम करके तुरन्त चला आया। उस दिन से भगवान् का नाम पाने के लिए मेरा मन सर्वदा छटपटाने लगा। मैं तो सैकड़ों नाम जानता हूँ; लेकिन लगता है, उससे कुछ होगा नहीं। कोई आकर यदि मुझे पेड़-पेड़ कहकर उसी का जप करने को कहे, भगवान् के उद्देश्य से उसका ही जप करके मैं कृतार्थ हो जाऊँगा, ऐसा लगने लगा। इसी समय विद्यारत्न जी ने आकर अयाचित रूप से 'नाम' दिया। भगवान् की इच्छा समझकर मैंने उसे ग्रहण किया। अब नाम जपते-जपते घर-द्वार, पत्नी-पुत्र, यहाँ तक की मैं अपनी देह को भी भूल जाता हूँ। इस राज्य को छोड़कर एक अन्य राज्य में प्रवेश करता हूँ और आनन्द में डूबकर अचेत-सा हो जाता हूँ। यह नाम का ही गुण है या नागा बाबा की कृपा का फल, पता नहीं।" इत्यादि। यह सुनकर गोसाँईजी ने कहा– **"अच्छी अवस्था है! सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। पिछली बार तुमने उनको अच्छे-से चिट्ठी लिखी नहीं। वह चिट्ठी मैंने तुमको जिस प्रकार से लिखने के लिए कहा था, वैसा हुआ नहीं। उस समय तुम्हारे मन की जैसी दशा थी, उसमें वैसा लिख नहीं पाए, वह ठीक है। जो हो, अब जाकर उन्हें खूब प्रोत्साहित करके पत्र लिखो। वे जो साधना कर रहे हैं, उसी को करें, उसमें ही उनका मंगल होगा। नागा बाबा एक उच्च स्तर के सिद्ध-पुरुष हैं; उनकी दृष्टि का फल अवश्य ही मिलेगा। विश्वास प्राप्त होने से ही बहुत-कुछ हो गया। विश्वास से बहुत दूर तक पहुँच जाते हैं। अन्तिम अवस्था में शक्ति का प्रयोजन होता है। शक्ति की आवश्यकता अनुभव होने पर फिर अन्य के पास जाना ही होगा; लेकिन वह अवस्था भी तो सहज नहीं है।"**

गोसाँईजी के सिर की पीड़ा का कष्ट देखकर मैं उठने के लिए तत्पर हुआ। मुझे रोना आ गया। मैंने कहा– मेरे मन की बड़ी दुरावस्था है! इतने समय तक आपके पास था; अब कहाँ किस अवस्था में जाकर पड़ूँगा! कब क्या कर डालूँगा!

गोसाँईजी मेरी बात पूरी होने के पहले ही कहने लगे– **'तुम तो अभी गर्भस्थ सन्तान हो, तुम्हें फिर चिन्ता ही क्या है? माँ जिस प्रकार गर्भस्थ सन्तान की अवस्था को अनुभव करती हैं, उसके हिलने-डुलने पर तुरन्त ही समझ जाती हैं, गुरु भी ठीक उसी प्रकार शिष्य की सारी अवस्था, सारे प्रयास को सदा जान जाते हैं। सन्तान जब तक भूमिष्ठ नहीं होती, तब तक तो उसकी कोई क्षमता नहीं रहती। माँ जो खाया करती हैं, उसी का कुछ-कुछ रस नाड़ी के भीतर से होकर सन्तान की देह में संचारित होता है; केवल उसी से गर्भस्थ शिशु की पुष्टि हुआ करती है। उसी प्रकार गुरु जो कुछ प्राप्त करते हैं, शिष्य को केवल उसी का अंश**

प्रयोजन के अनुसार मिला करता है। गुरु की उन्नति के साथ-साथ शिष्य की भी उन्नति होती है। उसके बाद बच्चे के भूमिष्ठ होने पर भी माँ उसको आहार देती हैं; प्रयोजनीय समस्त जुगाड़ करके माँ ही उसका लालन-पालन करती हैं। जब तक उसमें चलने-फिरने खाने-पाने की क्षमता नहीं आती, तब तक माँ उसको आँखों से ओझल नहीं होने देतीं। सदा आखों के सामने रखती हैं; किन्तु शिष्य के सिद्धावस्था प्राप्त कर लेने पर भी सद्गुरु उसको छोड़ते नहीं, तब भी शिशु की भाँति गोद में लिए रहते हैं। सदैव सब विषय में गुरु शिष्य की सुविधा देखते हैं।'

थोड़ा रुककर फिर कहने लगे– **'संसार में जिन सब महिलाओं की सन्तान होती हैं, उनकी गर्भस्थ सभी सन्तानें अपनी-अपनी माँ के गर्भ में रहकर प्रयोजनानुसार माँ के द्वारा खायी हुई वस्तु का अंश पाती हैं। बच्चे के भूमिष्ठ होने पर भी सभी माँ यत्नपूर्वक सन्तान का प्रतिपालन करती हैं। अब तुम्हारी माँ के गर्भ से जन्म न लेने से फिर कोई लड़का बचेगा नहीं, असुविधा होगी, उसका कल्याण नहीं होगा– इस प्रकार यदि चिन्ता करते हो, तो ठीक नहीं होगा। यदि माँ उस प्रकार की हों जो तुम्हारी माँ की अपेक्षा अधिक स्नेह और यत्नपूर्वक सन्तान का लालन-पालन कर सकती हैं; तब तो तुम्हारी अपेक्षा उसका ही अधिक भला होने की बात है। माँ की शुश्रूषा से ही सन्तान की वृद्धि होती है। माँ के गर्भ से जन्म लेकर बहुत अच्छी शुश्रूषा पाने से सन्तान बहुत अच्छी क्यों नहीं होगी? सभी की एक ही माँ होंगी, ऐसा कुछ नहीं है। भिन्न-भिन्न माँ के गर्भ से सन्तान जन्म लेकर सुख से निर्भय होकर रहे– भगवान् की यही इच्छा है। तुम फैजाबाद जाओ, अच्छा उपकार होगा। बीच-बीच में बहुत अच्छे-अच्छे लोगों के दर्शन भी मिलेंगे। सभी की खूब श्रद्धा-भक्ति करना। साम्प्रदायिक भाव मत रखना।'**

मैंने पूछा– गुरु में वैसी निष्ठा उत्पन्न न होने तक अन्य साधु का संग करना अच्छा है?

गोसाँईजी– **अन्य क्या है? अन्य का संग अन्य समझकर मत करना। एक गुरु-शक्ति ही सारे विश्व में व्याप्त है– यह सोचकर संग करने से सभी के संग से उपकार पाओगे। रक्ताधार में रक्त रहता है; ऐसा होने से क्या शरीर के अन्य स्थानों में रक्त नहीं है? रक्त का आधार– मूल स्थान ही– रक्ताधार है। उसी स्थान से रक्त संचारित होकर सारे शरीर में फैला हुआ है। सारे शरीर में जो रक्त है, वह रक्ताधार का ही रक्त है। फिर यह भी ठीक है कि रक्ताधार में रक्त न रहने से शरीर में कहीं भी**

रक्त नहीं रहेगा। सारे विश्व में एक गुरुशक्ति व्याप्त है। संकीर्ण भाव थोड़ा भी नहीं है। संकीर्ण भाव से बड़ी हानि होती है।

मैंने पूछा– गुरु के प्रति एकनिष्ठता क्या संकीर्ण भाव नहीं है?

गोसाँईजी– **नहीं, उसको संकीर्ण भाव नहीं कहते। जो रक्ताधार को अच्छे-से जानता है, वह यह भी जानता है कि एक रक्ताधार का ही रक्त नाना पथ से होकर सर्वशरीर में व्याप्त है। वह सर्वत्र एक ही वस्तु देखता है।**

गोसाँईजी थोड़ा रुककर फिर कहने लगे–

'वहाँ जाकर साधना गुप्त रूप से करना। फिर भैय्या को खूब उत्साह देना। अपने-अपने साधन-भजन में निरुत्साहित किसी को भी नहीं करते। वैसा करना बड़ा दोष है। जो जिस पथ पर ही क्यों न चले, उन्हें उत्साह ही देना चाहिए; किसी से इस साधन को ग्रहण करने का अनुरोध मत करना। तुम्हारे भैय्या को भी प्रयोजनानुसार भगवान् ही इसके भीतर लाएँगे।'

मैं– समस्त साधन को क्या गुप्त रूप से करना होगा?

गोसाँईजी– **जहाँ तक हो सके। ये सब गुप्त रखने की ही वस्तु है। बहुत सावधानी से रहना।**

गोसाँईजी ने एक हाथ से माथा को दबाए रखकर, आधे घण्टे से भी अधिक समय तक मेरे साथ बातचीत की। भंयकर ज्वर में, असह्य सिर की पीड़ा में भी उनका अद्‌भुत स्थिर भाव देखकर मैं विस्मित हो गया। अपने निवास-स्थान पर आकर निश्चय किया, शीघ्र ही घर जाऊँगा।

स्वप्न: साधन प्राप्ति हेतु मँझले भैय्या की व्याकुलता

22 दिसम्बर, शनिवार। घर आकर तीन दिन तक रहा। एक स्वप्न देखा– मानो मँझले भैय्या के पास गया हूँ; उन्हें देखकर लगा कि भीतर की किसी असह्य यन्त्रणा से रात-दिन जल रहे हैं। मुझे देखकर कहने लगे–'शान्ति कैसे मिलती है, बतला सकता है?' मैंने कहा– गोसाँईजी का आश्रय लेने से शान्ति मिल जाती है। उनके दीक्षा देने पर समस्त यन्त्रणाओं की जड़ कट जाती है। मँझले भैय्या ने गोसाँईजी का आश्रय लेने के लिए व्याकुलता के साथ कहा– 'वे क्या मेरे जैसे लोग को साधन देंगे?' मैंने कहा– वे बड़े दयालु हैं; प्रार्थी होने पर अवश्य ही देंगे। इतना कहने के बाद ही निद्रा भंग हो गई।

मुँगेर जाने का आदेश

26 दिसम्बर, बुधवार। कल पश्चिम की ओर जाऊँगा। गोस्वामीजी से अनुमति लेने के लिए गेण्डारिया आश्रम गया। गोसाँईजी अस्वस्थ हैं। सुना, इस समय कमरे में ध्यानस्थ हैं।

दरवाजे के बाहर से मेरे प्रणाम करते ही गोसाँईजी ने आँखें खोलकर देखा। अपने आसन के ही एक ओर इंगित करते हुए कहा– **"यहाँ बैठो।"** मुझे संकोच लगने से भूमि पर ही बैठ गया, किन्तु उन्हें बारम्बार जिद करते देखकर आसन के एक किनारे में अन्य एक आसन लेकर बैठ गया। वे फिर से ध्यानस्थ हो गए, बात करने का अवसर नहीं मिला। फिर इस समय बात करना भी ठीक नहीं है सोचकर मैं बाहर जाने के लिए उठा। उनको प्रणाम करते ही ध्यान भंग हो गया। उन्होंने मुझसे कहा– **"क्यों? कब जाने का निश्चय किया है?"**

मैं– आज रात्रि में।

गोसाँईजी– **तो फिर यहीं आकर रह नहीं जाते? दलाईगंज स्टेशन बहुत पास में है। यहाँ से जाने में सुविधा होगी।**

मैं– सीधा टिकट करके जाऊँगा। यहाँ वैसी व्यवस्था नहीं है।

गोसाँईजी– **नहीं है तो फिर नारायणगंज जाकर टिकट ले लेना, पर्याप्त समय मिलेगा। उसमें फिर असुविधा क्या है?**

मैं– और कभी उस मार्ग से गया नहीं, इसलिए बिल्कुल सीधा टिकट करके जाना ही सुविधाजनक लगता है।

गोसाँईजी– **तुम्हें जब आशंका हो रही है, तब फिर वैसा ही करो। थोड़ा पहले फूलबेड़े पहुँचने का प्रयास करना। ट्रेन 'मिस' हो सकती है। कोलकाता में अधिक दिन नहीं रुकना, एक दिन विश्राम करना; नहीं तो मार्ग में असुविधा हो सकती है। तुम्हारे मँझले भैय्या क्या मुँगेर में हैं? मुँगेर बड़ा अच्छा स्थान है। अभी जाकर कुछ समय उनके पास ही रहो। वहीं रहना अभी तुम्हारे लिए आवश्यक है। अच्छे-से रहना, लाभ होगा। बाद में फैजाबाद जाना। बहुत उत्साह के साथ साधन-भजन करना; फिर सब समझ पाओगे। कोई चिन्ता मत करना। डर किस बात का है?**

मैं इस समय एक शीशी जल को गोसाँईजी के पैर की अंगुलियों का स्पर्श कराकर चरणामृत कर लिया। चरणामृत देते-देते ही गोसाँईजी का बाह्यज्ञान विलुप्त हो गया। उनको समाधिस्थ देखकर मैं प्रणाम करके चला आया।

प्रातःकाल शीघ्र उठकर फूलबेड़े (ढाका) स्टेशन के लिए निकल पड़ा।

नवाबपुर पहुँचते तक गाड़ी छूट गई; ट्रेन 'मिस' हो गई। गोसाँईजी की बात के अनुसार काम करने से फिर यह दुर्भोग नहीं घटता।

एक मेम की महानता

28 दिसम्बर, शुक्रवार। रात्रि के अन्तिम प्रहर में दलाईगंज स्टेशन पहुँचकर गाड़ी में बैठा। नारायणगंज के स्टीमर में एक मेम की अद्भुत दया देखकर चकित हो गया। स्टीमर दिनभर पद्मा नदी में चलकर संध्या के समय गोयालन्द पहुँचेगा। मार्ग में नीच जाति की एक निर्धन असहाय वृद्धा को अचानक हैजा हो गया। जहाज के कर्मचारियों ने परामर्श करके उसको तट पर उतारने का निश्चय किया। बंगाली बाबू भाई लोग शीघ्र संक्रामक रोगी को हटाने के लिए उत्साह देने लगे। तब एक मेम किसी से कुछ कहे बिना, रोगी को गोद में उठाकर नीचे चली गई। उल्टी-दस्त से सने मैले कपड़े-लत्ते को फेंककर अपना मूल्यवान वस्त्रादि उस वृद्धा को पहनने के लिए देकर, अपने हाथ से उसकी सेवा-शुश्रूषा करने लगीं। जहाज के कर्मचारियों को कई प्रकार से समझाकर उनके संकल्प से विरत किया। मेम की सेवा-शुश्रूषा और औषधि आदि से रोगी क्रमशः बहुत-कुछ स्वस्थ हो गई। स्थानीय लोगों की जिस अवस्था में सहानभूति नहीं हुई, उच्चवंश की सम्पन्न, विशेषकर विलायती मेम की वहाँ ऐसी असाधारण दया देखकर चकित हो गया। मेम के साथ बात करने की बड़ी इच्छा हुई। मैं उसके पास जाकर खड़ा हो गया। रोगी की सेवा करते-करते मेम ने मुझसे कहा— 'भाई, यीशु-ख्रीष्ट को मुक्तिदाता मानकर तुम श्रद्धा करते हो?' मैंने कहा— हाँ, वे महापुरुष हैं, मुक्ति दे सकते हैं। उनके प्रति मेरी बहुत उच्च भावना है। मेम ने कहा— 'तुम जिसको उच्च भावना कह रहे हो, उसकी अपेक्षा निम्न भावना यीशु-ख्रीष्ट के प्रति मनुष्य की क्या कभी हो सकती है? तुम उन्हें महापुरुष कहते हो!' यीशु-ख्रीस्ट के प्रति मेम की यह प्रगाढ़ निष्ठा देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई; किन्तु तब भी मैंने उनके साथ तर्क किया। मेम विशेष कोई तर्क न करके कहने लगीं— 'भाई, सत्य को समझने के लिए बहुत दिनों तक मैंने तर्क करके व्यर्थ समय नष्ट किया है; कुछ भी समझ नहीं पाई; शान्ति भी नहीं मिली। सत्य वस्तु केवल तर्क के द्वारा कभी निर्धारित नहीं होती। तर्क के द्वारा असत्य को भी सत्य कहकर समझा दिया जाता है। एकमात्र विश्वास के द्वारा ही सत्य को जाना जाता है। यीशु पर विश्वास करो। उनकी कृपा से उनको जान जाओगे।' मेम की यह कुछ बातें मुझे बड़ी अच्छी लगीं।

सतीश के प्रति गोसाँईजी की कृपा

29 दिसम्बर, शनिवार। प्रातः कोलकाता पहुँच गया। श्री विधुभूषण मजूमदार, ज्ञानेन्द्र मोहन दत्त एवं सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय के साथ भेंट हुई। ये लोग साधारण ब्राह्म-समाज के कट्टर ब्राह्म थे, कुछ दिन पहले ही गोस्वामीजी से साधन लिए हैं। थोड़े दिनों के भीतर ही गोस्वामीजी के प्रति इन लोगों की असाधारण निर्भरता और भक्ति उत्पन्न हो गई है, इनसे बातचीत करके पता चला। सतीश के व्यक्तिगत जीवन की एक घटना उनके ही मुख से सुनकर विस्मित हो गया। सतीश ने कहा– "भाई, युवावस्था के आरम्भ होते ही रिपु की उत्तेजना में पड़कर कितना काण्ड नहीं किया! साधन ग्रहण करके सोचा, इस बार सब उत्पातों से निष्कृति मिल गई; पर वैसा कुछ हुआ नहीं वरन् वे सब और भी कई गुना बढ़ गए। गोस्वामीजी पर मुझे भंयकर क्रोध आने लगा। ऐसे समय में एक दिन साधना करने बैठा था, अचानक अदम्य उत्तेजना से बेचैन हो उठा। 'अब साधना नहीं करूँगा, गोसाँईजी के पास भी कभी नहीं जाऊँगा' इस प्रकार सोच रहा हूँ, इसी समय अन्य कमरे से गोसाँईजी बार-बार मुझे पुकारने लगे। उनके पास जाते ही उन्होंने मुझसे बड़े स्नेह के साथ कहा– **'सतीश, मेरे सिर पर थोड़ा तेल लगा दो तो!'** मैं अपनी दुर्दशा की बात सोचकर, क्रुद्ध होकर थोड़ा तेज स्वर में कहा– नहीं, वह मैं नहीं कर सकूँगा। फिर उन्होंने थोड़ा हँसकर कहा– **'क्रोध क्यों करते हो? मेरा सिर जला जा रहा है, थोड़ा तेल लगा दो न, आओ।'** मैं एक चुल्लू तेल लेकर गोसाँईजी के सिर पर लगाने लगा। सिर में तेल लगाने का गोसाँईजी को कभी भी अभ्यास नहीं था; फिर भी मुझसे कहने लगे– **'लगाओ, लगाओ। मेरे सिर में ठण्डक पहुँच रही है!'** पता नहीं, उस समय मुझे क्या हो गया– शरीर बार-बार रोमांचित होने लगा, मैं काँपने लगा। सामने देखने लगा, आज तक जितनी भी स्त्रियों के प्रति मेरा कुभाव हुआ, वे सब कामोन्मत्त होकर एक-एक करके मेरी ओर आ रही हैं एवं पास से होकर निकल जा रही हैं। भय और लज्जा से मैं सिहरने लगा। तब गोसाँईजी कहने लगे– **'लगाओ, अच्छे-से लगाओ; जितना तेल है, पूरा अच्छे-से धीरे-धीरे मल दो।'** स्त्रियाँ किस प्रकार कहाँ से आकर कहाँ गई, वह देखने का भी अवसर नहीं मिला। एक प्रकार मानो नशे में अभिभूत था। सबके चले जाने के बाद गोसाँईजी ने कहा– **'पूरा तेल सोख लिया? तो फिर चले जाओ।'** जागृत अवस्था में इस प्रकार अद्भुत स्वप्नवत् घटना देखकर मैं स्तब्ध हो गया। तेल की ओर अथवा गोसाँईजी के सिर की ओर उस समय बिल्कुल ध्यान नहीं था। गोसाँईजी की बात सुनकर मेरी चेतना जागी। तब सिर की ओर देखा– एक बूँद भी तेल नहीं है; लेकिन उसी दिन से मेरा कामभाव पूर्णतः नष्ट हो गया, कभी था, उसकी भी अब कल्पना नहीं कर पाता।

इस घटना का स्मरण होने से ही मुझे रोना आ जाता है। केवल यही लगता है, मेरी यन्त्रणा देखकर दया करके उन्होंने मेरा सब कुभाव अपने सिर पर ले लिया।"

जनवरी, सन् 1889 ई०

आदेश उल्लंघन से दुर्भोग

1 जनवरी, मंगलवार। दो दिन कोलकाता में रुकने के बाद हावड़ा स्टेशन जाकर मुँगेर का टिकट लिया। उसी समय गाड़ी की सीटी बजी, सीधे दौड़कर गाड़ी के पास गया। गाडी का दरवाजा पहले से बन्द था। ट्रेन 'मिस' हो गई सोचकर स्तब्ध खड़ा रहा। एक सज्जन मेरी दुर्दशा देखकर उच्च स्वर में कहा– 'चढ़िए, शीघ्र चढ़ जाईए; दरवाजा खोल देता हूँ।' मैं तुरन्त चलती गाड़ी में दौड़कर चढ़ गया। रात्रि 12 बजे मुँगेर पहुँचा।

एक टाँगा भाड़े पर लेकर मँझले भैय्या के घर गया। पहुँचने पर पता चला– मँझले भैय्या अन्य मकान पर रहने लगे हैं। शहर में एक घण्टा घूमने पर भी मँझले भैय्या के नये मकान का कुछ पता-ठिकाना नहीं मिला। टाँगेवाले ने विरक्त होकर मुझे हठपूर्वक बीच रास्ते में ही एक स्थान पर उतार दिया। उसको मैंने एक पैसा भी नहीं दिया। उस अन्धकार रात्रि में थैला, गठरी और बिछौना इत्यादि लेकर मुख्य मार्ग के ऊपर एक स्थान पर आधे घण्टे तक बैठा रहा। गुरुदेव के कथनानुसार एक ही दिन कोलकाता में रहकर चले आने से यह दुर्भोग नहीं होता, मँझले भैय्या पुराने मकान में ही मिल जाते, यह बाद में समझ में आया। जो हो, रात्रि 2 बजे दुःखी होकर गुरुदेव का स्मरण करने लगा। उनकी असीम कृपा का गुण हो अथवा आकस्मिक घटनावशतः ही हो, इसी समय एक व्यक्ति ने आकर मुझसे कहा– 'क्या बाबू! यहाँ काहे बैठे हो? मजूरा (कुली) चाहि?' मैंने मँझले भैय्या का नाम और परिचय देकर उसको कहा– मुझे उनके मकान पर पहुँचा सकते हो? कुली ने कहा– 'बाबू को हम पहचानते हैं। चलिए।' उसके बाद मैं उसके पीछे-पीछे चलकर मँझले भैय्या के निवास पर पहुँचा। कुली को पैसे देते समय पॉकेट में देखा, रुपये की थैली नहीं है! कोट के ऊपरी पॉकेट में आठ रुपये थे; उसके ऊपर दो कुर्ता पहने रहने के बाद भी थैली कैसे खो गई, समझ नहीं आया। लगता है, टाँगेवाले के ऊपर बहुत अत्याचार करने से ही गुरुदेव ने कृपा करके मुझे यही दण्ड दिया है। सारे रास्ते में अन्य एक शक्ति का खेल होता देखकर गोसाँईजी के ऊपर मेरा चित्त और अधिक आकृष्ट हो गया। छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से नाना प्रकार की अवस्था में गिराकर, जिस प्रकार से वे अपने चरणों में इस चित्त को खींचकर ला रहे हैं, सोचकर चकित हो जाता हूँ।

प्रथम स्वप्न: कष्टहारिणी के घाट से संलग्न गुप्त पथ का रहस्य

3 जनवरी, गुरुवार। कल सायंकाल मँझले भैय्या मुझे कष्टहारिणी के घाट पर ले गए थे। गंगा के ऊपर इतना सुन्दर स्थान आँखों से देखे बिना मैं कल्पना नहीं कर सकता। घाट तो मानो गंगा के बीच में ही है। घाट के दाएँ, बायें और सामने से कलकल ध्वनि के साथ निर्मल जल की धारा वेग से प्रवाहित हो रही है। विशाल गंगा के दूसरी ओर काले मेघ की भाँति पहाड़ों की श्रेणी दिखाई देती है। घाट में बैठकर इतना अच्छा लगा कि रात्रि वहीं पर काटने की इच्छा हुई। स्नेहवश मँझले भैय्या ने मेरे उस संकल्प में सहमति नहीं दी। रात्रि लगभग साढ़े 9 बजे हम लोग घर लौटे।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न देखा— दिन ढलने पर कष्टहारिणी के घाट पर पहुँच गया। ऊपर से देखा, घाट के किनारे से बहुत पुराना एक पक्का मार्ग गंगा के भीतर से होकर मानो कहीं चला गया है। नदी के नीचे से होकर पथ है; उसके भीतर जाने का मुझे कौतूहल हुआ। मैं धीरे-धीरे उस पथ पर चलने लगा। कुछ दूर जाने के बाद अन्धकार में फिर कुछ देख नहीं पाया। चन्द्र-सूर्य का प्रकाश वहाँ नहीं पहुँचता। हाथ में एक मशाल लेकर चलने लगा। मार्ग बड़ा ही दुर्गम है; कीचड़ में मेरे पैर घुटने तक धँसने लगे। कई प्रकार के शब्द और भयंकर कोलाहल सुनाई पड़ने लगा। सामने ऐसा लगा मानो कोई भंयकर घटना घट रही है। विस्तृत गंगा का एक चौथाई पथ चल लिया हूँ, ऐसा अनुभव हुआ। रास्ते के क्लेश और भयानकता के आतंक से मेरा देह-मन अवसन्न प्रतीत हुआ; मैं फिर आगे नहीं बढ़ पाया। दुःखी होकर कष्टहारिणी के घाट में आकर बैठ गया। इसी समय बारदी के ब्रह्मचारीजी को देखा। वे भी उस पथ पर प्रवेश करने का प्रयास कर रहे थे। उन्होंने मुझे देखकर कहा— 'तू यहाँ क्यों आया?' मैंने कहा— यह रास्ता कहाँ समाप्त होता है, आपके साथ जाकर देखूँगा। ब्रह्मचारीजी ने कहा— 'तू वह कैसे कर सकेगा? इस पथ से अधिक दूर तक नहीं जाया जा सकता— बन्द है; फिर डर भी है।' मैंने कहा— यह पथ बन्द क्यों हो गया? किसने बन्द किया? ब्रह्मचारीजी— 'यह पथ सीधा गंगा के मध्य तक है, उसके बाद उस ओर गया है।' रास्ता कहाँ गया है, यह सब जानने के लिए इच्छा व्यक्त करने पर वे कृपापूर्वक मुझे एक छोटी नौका में बैठाकर घाट के सम्मुख गंगा के मध्य स्थल में ले गए। फिर पश्चिम-उत्तर कोने में कुछ दूर अग्रसर होकर, नौका रोककर उन्होंने कहा— 'कुछ महर्षि एवं प्रमुख-प्रमुख योगी पहाड़ के पास गंगा के नीचे इस स्थान पर एक आश्रम बनाकर रहते हैं। आश्रम बहुत सूनसान एवं दूर तक फैला हुआ है। महापुरुषों के केवल कुछ शिष्यगण ही साथ में हैं। इस आश्रम के साथ गंगा के किनारे वाले उस पथ का योग है। यहाँ से भीतर-ही-भीतर एक गुप्त रास्ता वहाँ

जाकर उसी रास्ते से मिल गया है। ऐसा न हो कि कोई उस गुप्त पथ से होकर आश्रम में प्रवेश कर ले, इस आशंका से अधिकारी लोग मुख्य मार्ग में जगह-जगह कीचड़ करके रास्ते को अत्यन्त दुर्गम कर रखे हैं; बीच-बीच में भयंकर विषधर सर्प का आवास भी हो गया है। इसी कारण उस मुख्य रास्ते से अधिक दूर तक अग्रसर होना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है।

मैं– आश्रम में प्रवेश का क्या अन्य पथ नहीं है?

ब्रह्मचारीजी– और भी दो रास्ते हैं, वह जानकर तुझको क्या लाभ होगा? इस पथ में प्रवेश करने के लिए तेरे को अभी बहुत समय लगेगा।

मैं– आप दया करके एक पथ मुझे दिखला दीजिए। मैं अभी प्रवेश करने का प्रयास नहीं करूँगा; केवल पथ की जानकारी रहे।

मेरी बात सुनकर ब्रह्मचारीजी नौका से उतरकर, गंगा के उत्तर किनारे वाले घाट के विपरीत ओर पहाड़ पर लेकर चलते गए; उन्होंने कहा– 'यह जो सुन्दर पत्थर देख रहा है, उसके नीचे से होकर उन लोगों के आश्रम का एक रास्ता है। चल, उस पथ में प्रवेश करने का द्वार तुझे दिखला दूँ।' यह कहकर कुछ दूर अग्रसर होते ही आठ-नौ फीट लम्बी, नौ इंच से भी कम चौड़ी एक दरार दिखलाते हुए उन्होंने कहा– 'इस चट्टान की दरार के भीतर से होकर जो दूरी देख रहा है, यह एक रास्ता है।' मैंने उसके भीतर झाँककर देखा, कहीं खूब गहन अन्धकार है, कहीं-कहीं अंगार के समान अग्नि जल रही है; फिर किसी-किसी स्थान से लगातार धुँआ निकल रहा है। ब्रह्मचारीजी ने कहा– 'इस मार्ग पर सहज में किसी की दृष्टि नहीं पड़ती। दिन के समय केवल थोड़ा-थोड़ा धुआँ निकलते हुए ही देखा जाता है। रात जितनी ही अधिक होती है, यह पूरी दरार अग्निमय हो जाती है। बहुत दूर से भी यह अग्नि लोगों को दिखाई पड़ती है। तेरी यदि इच्छा होती है, तो इस आग के भीतर से जाकर आश्रम में प्रवेश कर!'

उस अग्नि को देखकर, भयभीत होकर मैंने कहा– इसके भीतर से मैं नहीं जा सकूँगा। अन्य पथ बतला दीजिए। ब्रह्मचारीजी ने मेरी इस बात से बहुत विरक्त होकर कहा– 'हाँ? पथ की बड़ी खोज करने आया था न? जा, यहाँ से चला जा।' यह कहकर उन्होंने क्षणभर भी विलम्ब किए बिना गंगा के किनारे जाकर नौका पर चढ़कर नौका चला दी। नौका जिस ओर जाने लगी, किनारे-किनारे मैं भी उसी ओर दौड़ने लगा। ब्रह्मचारीजी ने उच्च स्वर में कहा, 'अब चला जा, चला जा।'

यह शब्द सुनते ही मेरी निद्रा भंग हो गई। स्वप्न की घटना मानो आँखों के सामने स्पष्ट झलकने लगी। प्रातः उठकर मँझले भैय्या से पूछा– कष्टहारिणी के घाट के पास क्या कोई प्राचीन गुप्त रास्ता है? मँझले भैय्या ने कहा– 'हाँ,

नवाबी शासन के समय का एक मार्ग है। वह बहुत समय से बिल्कुल बन्द है।' मुझे बड़ा कौतूहल हुआ। मार्ग देखने के लिए संध्या के समय मँझले भैय्या के साथ कष्टहारिणी के घाट पर गया। देखकर कुछ क्षण बिल्कुल चकित होकर बैठा रहा। कष्टहारिणी के घाट से प्रायः 80-90 फीट दक्षिण में एक पथ है। वह पथ क्रमशः नीचे जाकर सीधे गंगा के भीतर प्रविष्ट हो गया है। जल इस समय कम होने से पथ के ऊपर का विशाल तोरण क्रमशः जो लम्बवत् गंगा के भीतर प्रवेश किया है, घाट से बहुत ही स्पष्ट दिखाई पड़ता है; किन्तु यह तोरण वाला पथ कहाँ जाकर समाप्त हुआ है, कोई बतला नहीं पाया। सुना है, कुछ समय पहले जिला मजिस्ट्रेट 'डियर' साहेब बहुत खर्च करके उस पथ को खोलने के प्रयास में विफल हो गए। नाना प्रकार के आतंक और डरावने दृश्य देखकर एवं नाना वाद्यों की ध्वनि सुनकर मजदूर सम्भवतः काम छोड़कर भाग गए। बड़े-बड़े विषधर सर्प उसके भीतर हैं, सोचकर साहेब भी दृढ़ संकल्प से विमुख हो गए। बहुतों का कहना हैं कि नवाबों का विपत्ति के समय भागने के लिए यह गुप्त मार्ग था; फिर कोई-कोई इस प्रकार भी अनुमान करते हैं कि तोरण के अन्तराल में आवरण के भीतर रहकर निरापद् और स्वाधीन रूप से बेगम लोगों के स्नान के लिए किसी नवाब ने एक गुप्त घाट बनवाया था। जो हो, इस सम्बन्ध में निश्चित जानकारी कोई भी दे नहीं सका।

पीरपहाड़ और सीताकुण्ड

6 जनवरी, रविवार। इस स्वप्न दर्शन के बाद से मँझले भैय्या के साथ में प्रायः कष्टहारिणी के घाट पर जाता हूँ। संध्या होने के बाद घाट के विपरीत दिशा में, गंगा के दूसरे तट पर पहाड़ के ऊपर एक दहकती अग्नि प्रतिदिन ही देखता हूँ। अग्नि स्थिर नहीं है; ऐसा लगता है, जैसे 12-15 फीट तक फैलकर लहरा रही है। शहर के बाबू लोगों से इस विषय में पूछने पर उन्होंने कहा– 'यह अग्नि अधिक रात्रि में, अन्धकार पक्ष (अमावस्या) के समय बहुत स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। हम लोग बहुत समय से इस अग्नि को देखते आ रहे हैं। कैसी आग है, कहाँ की आग है, वह हम लोग नहीं जानते।' आश्चर्य का विषय यह है कि स्वप्न में ब्रह्मचारीजी ने उस पहाड़ के ठीक जिस स्थान पर चट्टान की दरार दिखलाई थी, इस अग्नि को ठीक उसी स्थान पर देख रहा हूँ।

मँझले भैय्या के साथ एक दिन पीरपहाड़ घूमने गया। मुँगेर से पीरपहाड़ अधिक दूर नहीं है। पीरपहाड़ पर चढ़कर एक कब्र देखा। एक मुसलमान फकीर वहाँ नमाज पढ़ने आए थे; उनसे उस कब्र के विषय में पूछने पर उन्होंने कहा– 'बहुत समय पहले यहाँ कोई एक फकीर थे। धर्म के लिए व्याकुल होकर वे घर,

परिवार और विपुल सम्पत्ति का परित्याग करके यहाँ आए। यहाँ दीर्घकाल रहकर वे कठोर साधन-भजन करके पीर हुए। देहान्त होने पर उन्हें यहीं कब्र (समाधि) दी गई; उसी समय से उनके ही नाम से इस पहाड़ को पीरपहाड़ कहा करते हैं। पीर साहेब बड़े शक्तिशाली सिद्ध पुरुष थे।' यह स्थान देखकर बड़ा अच्छा लगा। लगभग एक घण्टे तक पीर साहेब की कब्र के समीप बैठकर नाम-जप किया। गुरुदेव ने एक बार कथावार्ता में इन पीर साहेब के प्रभाव के सम्बन्ध में कहा था– **'एक दिन पीरपहाड़ में घूमने गया था। अचानक चारों ओर अन्धकार होकर भंयकर आँधी के साथ वर्षा होने लगी। बड़े संकट में पड़ गया! आसपास देखा कहीं पर सिर छिपाने के लिए थोड़ी भी जगह नहीं है। अब क्या करता? पीर साहेब की कब्र के समीप चुपचाप बैठा रहा। फकीर साहेब का बड़ा अद्भुत प्रभाव है! वर्षा से मेरे चारों ओर का स्थान डूब गया, परन्तु मेरे शरीर पर एक बूँद भी पानी नहीं पड़ा।'** पीरपहाड़ की कथा गुरुदेव के मुख से पहले ही सुन चुका था, अब मैं प्रत्यक्ष देखकर कृतार्थ हो गया। फकीर साहेब की कब्र की परिक्रमा करके प्रणाम किया। बहुत अच्छा लगा। यहाँ भगवान् के नाम का जप करने से कुछ विशेषता की अनुभूति हुई। गुरुदेव को अन्तःकरण से स्मरण करके प्रार्थना की– जिससे इसी प्रकार के निर्जन पहाड़ में रहकर साधन-भजन करने का वे सुयोग प्रदान करें।

पीरपहाड़ से सीताकुण्ड अधिक दूर नहीं है। हम सीताकुण्ड गए। सुना है, सीतादेवी द्वारा इस कुण्ड में श्राद्ध-तर्पणादि करने के कारण कुण्ड का नाम सीताकुण्ड हुआ। इस कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई अन्दाजन 10-12 फीट होगी। गहराई समझ में नहीं आई। पानी के नीचे जगह-जगह पर पत्थर दिखाई देते हैं। अत्यन्त उष्ण जल लगातार डब-डब करके उबल रहा है, हाथ से स्पर्श करने की क्षमता नहीं है। कुण्ड से अतिरिक्त जल निकलने के लिए एक पक्का नाला है। कुण्ड में अचानक किसी के गिर जाने से उसी क्षण उसकी मृत्यु निश्चित है, इसलिए उस चौकोन कुण्ड के चारों ओर लोहे की रैलिंग लगी है। रामकुण्ड और भरतकुण्ड सीताकुण्ड से कुछ फीट की दूरी पर है। इन कुण्डों का जल ठण्डा है। सीताकुण्ड में पहुँचने के बाद मुझे पितृ-पुरुष लोगों का अचानक स्मरण हो पड़ा। वे लोग मानो मेरे हाथ से इस कुण्ड का जल पाने की आशा से यहाँ आए हुए हैं, इस प्रकार के एक भाव ने मुझे अधीर कर डाला। यह स्थान का प्रभाव है या अन्य कुछ, पता नहीं। श्राद्ध-तर्पणादि को मैं चिरकाल से ही कुसंस्कार समझता हूँ; लेकिन मैं स्थिर न रह सका। रामकुण्ड और भरतकुण्ड में उतरकर स्नान करके, कुछ दूर जाकर सीताकुण्ड के नाले में स्नान किया। स्नान से बड़ा आराम लगा। पितृ-पुरुषों का स्मरण करके दो-चार अँजलि जल देते ही मुझे सिसकियों के साथ

रोना आ गया। भीतर एक अपूर्व शक्ति का अनुभव करने लगा। युग-युगान्तर से सरल विश्वासी निष्ठावान् असंख्य लोगों के जिस भाव के प्रभाव से ऊपर, नीचे और चारों ओर का स्थान परिपूर्ण हैं, उसी से लगता है, आज मेरा चित्त इस प्रकार अभिभूत और मुग्ध हो गया। यहाँ पर गुरुदेव की कृपा का विशेष प्रमाण भी मिला।

स्वप्न की सफलता: मुँगेर आगमन की सार्थकता
मँझले भैय्या की दीक्षा हेतु प्रार्थना: गोसाँईजी की सहमति

मुँगेर आकर बड़े आराम से दिन बीत रहे हैं। आज मँझले भैय्या ने बातों-बातों में कहा– 'मन में किसी प्रकार से थोड़ी भी शान्ति नहीं मिल रही है। क्या करने से मन में शान्ति मिलेगी!' मैंने तुरन्त कहा– गोसाँईजी का आश्रय लेने से शान्ति मिलेगी। वे जो साधन देते हैं, उसे ग्रहण करके उसके अनुसार चल सकने पर भीतर कभी भी अशान्ति नहीं आती। मँझले भैय्या ने कहा– 'वे क्या मेरे जैसे व्यक्ति को दीक्षा देंगे?' मैंने कहा– आप अच्छे-से एक पत्र उन्हें लिख दीजिए। अवश्य वे साधन देंगे। मेरे कथनानुसार मँझले भैय्या ने गोसाँईजी को पत्र लिखा। शीघ्र ही उत्तर मिला। गोसाँईजी ने लिखा–

श्रद्धास्पदेषु!

आपका पत्र मिला। आप लोगों की मंगल-कामना किया करता हूँ। आपकी इच्छा पूर्ण होगी। जब तक भेंट न हो, बीच-बीच में कुशल-संवाद दीजिएगा। कुलदा को मेरा आशीर्वाद कहिएगा।

शुभाकांक्षी
श्री विजयकृष्ण गोस्वामी

गोस्वामीजी के साथ भेंट होते ही मँझले भैय्या की आशा पूर्ण होगी, गोस्वामीजी की इस प्रकार आश्वासवाणी मिलने से मेरे आनन्द की सीमा न रही। मेरे पूर्व दृष्ट स्वप्न को इस प्रकार अक्षरतः सत्य में परिणत होते देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। फैजाबाद जाने की तत्परता से उस समय विमुख करके गोसाँईजी ने मुझे मुँगेर क्यों भेजा, उसका तात्पर्य अब समझ में आया। अब तो देख रहा हूँ, दीक्षा लेने के बाद से जीवन की विशेष-विशेष घटना के पीछे रहकर गुरुदेव मानो इच्छा-शक्ति से सब विषय में मेरी सुव्यवस्था करते हैं। घटनाओं के यथार्थ कारण जान पाने में अक्षम होने से विस्मयवशतः मेरा इस प्रकार का संस्कार उठ रहा है, या वास्तव में इन सब कार्यों में गुरुदेव का कोई हाथ है– स्पष्ट रूप से समझ नहीं पा रहा हूँ। तथापि चित्त गुरुदेव की ओर अपने-आप ही आकर्षित हो रहा है।

मुँगेर में आकर जलवायु के प्रभाव से मेरा शरीर थोड़ा स्वस्थ है। प्रतिदिन

गंगा-स्नान करता हूँ; साधन-भजन में भी उत्साह मानो दिनो-दिन बढ़ रहा है। रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठकर प्राणायाम और कुम्भक करता हूँ। भोर में हाथ-मुँह धोकर आसन पर बैठता हूँ; प्रातः साढ़े 7 बजे तक त्राटक साधना करके मँझले भैय्या के साथ चाय पीता हूँ। साढ़े 9 बजे तक पुनः नाम साधना किया करता हूँ। साढ़े 10 बजे तक हम लोगों का स्नान-आहार सब हो जाता है। तत्पश्चात् स्थिर भाव से आसन पर अपराह्न साढ़े 4 बजे तक बैठा करता हूँ। स्कूल के काम से निवृत्त होकर मँझले भैय्या के आने पर उनके साथ बातचीत में दिन ढल जाता है। संध्या के बाद रात्रि साढ़े 9 बजे तक फिर कोई विशेष काम नहीं रहता। आहार के बाद नींद न आने तक साधना करता हूँ। इसी प्रकार मेरा समय बीत रहा है।

द्वितीय स्वप्न: फूल के पेड़ की अस्वाभाविक मृत्यु

12 जनवरी, शनिवार (पौष संक्रान्ति)। इन दो वर्षों के भीतर मैंने किसी भी वृक्ष की डाल, पत्ते, फूल या फल तोड़ा है, ऐसा स्मरण में नहीं आता। जीवन्त वृक्ष में हम लोगों की भाँति अनुभव-शक्ति रहती है– गोस्वामीजी के मुख से यह सुनने के बाद से मेरा भी उस विषय में दृढ़ संस्कार उत्पन्न हो गया है। किसी को भी पेड़ के डाल-पत्ते तोड़ते हुए देखता हूँ तो अच्छा नहीं लगता, बहुत ही कष्ट होता है। यहाँ तक कि महिलाएँ जहाँ रसोई के लिए तरकारी काटती हैं, उस स्थान पर भी नहीं रह पाता। देखने से मन में कष्ट होता है। मँझले भैय्या बरामदे की छत पर, मेरे कमरे के सामने गमलों में फूलों के कुछ पौधे सजाकर रखे हैं। प्रतिदिन प्रातः एवं संध्या के समय इन पौधों को मैं अपने हाथों से पानी देता हूँ। नौकरानी पानी देना चाहती है; लेकिन उससे मुझे तृप्ति नहीं होती। हमारे निकटवर्ती घर के बरामदे की छत हमारी छत से बिल्कुल संलग्न है; दोनों घर की एक ही छत है, कह सकते हैं; बीच में दो फीट ऊँची सामान्य दीवार से विभाजित किया हुआ है। पुलिस इन्सपेक्टर श्री अधर बाबू पास के घर में रहते हैं। वे भी सुन्दर-सुन्दर फूल के कुछ पौधे लाकर हमारी छत की लाइन में सजाकर रखे हैं। दोनों छत के फूल के पौधों की शोभा देखकर बड़ा आनन्द आता है। रात्रि 3 बजे एक दिन नाम-जप करते-करते सो गया। स्वप्न में देखा– अपने फूल के पौधे को मैं पानी दे रहा हूँ; अधर बाबू की छत के तीन पौधे अचानक हिलने लगे एवं मुझे पुकारते हुए बहुत दुःखी होकर बोले– 'अरे! हमारी ओर भी एक बार देखो। हमारी दशा देखकर तुम्हें कष्ट नहीं होता? प्यास से हमारा तो प्राण निकल रहा है। तुम्हारे हाथ से थोड़ा पानी चाहते हैं। नहीं तो फिर हम लोग बचेंगे नहीं।' स्वप्न देखते ही जाग गया। मन बहुत विचलित हो गया। नाम-जप करके किसी प्रकार से भोर होने तक समय व्यतीत किया। प्रातःकाल देखा, वही कुछ पौधे अच्छे हरे-भरे हैं। सोचा 'उल्टे-सीधे

स्वप्न तो कई बार दिखते हैं, यह भी लगता है, वैसा ही है।' जो भी हो, मन में एक आशंका होने से अधर बाबू की नौकरानी को सभी पौधों में अधिक परिमाण में अच्छे-से पानी देने को कहा। नौकरानी वही करने लगी। अन्य घर की छत पर जाकर अपने हाथ से पानी देने में मुझे एक प्रकार का संकोच हुआ। स्वप्न देखने के बाद से प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर मैं उन कुछ पौधों को देखता आ रहा हूँ। आज चौथे दिन प्रातः उठकर देखा, अद्‌भुत घटना हुई– एक रात्रि में वही तीनों हरे-भरे पौधे बिल्कुल सूख गए! ये कैसी विचित्र घटना है, समझ में नहीं आता। कोई पारलौकिक आत्माएँ मेरे हाथ से जल पाने की प्रत्याशा से इन कुछ फूल के पौधों का आश्रय तो नहीं ली हुई थीं, पता नहीं। इन पौधों की दशा देखकर अनुताप से मेरा अन्तःकरण मानो दग्ध हुआ जा रहा है। मैं तीनों पौधों की जीवनी-शक्ति को उद्देश्य करके तीन अँजलि जल ऊपर की ओर छिड़क दिया। इससे मेरे हृदय की ज्वाला कुछ शान्त हुई।

तृतीय स्वप्न: गंगासागर-संगम की यात्रा
गुरुनिष्ठा का उपदेश

20 जनवरी, रविवार। आज अधिक रात्रि में स्वप्न देखा– ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे भीड़-भरे एक बाजार में पहुँचा। नदी के किनारे बाजार के पास विभिन्न रंगों की असंख्य छोटी-बड़ी नौकाएँ दिखाई पड़ीं। गोसाँईजी एक बहुत बड़ी नौका पर चढ़कर सारे शिष्यों को उसमें चढ़ा लिए। गंगासागर जाना ही हमारा उद्देश्य है। गोस्वामीजी के कोई पुराने अच्छे मित्र एक महात्मा ने मुझको इंगित करके कहा– 'तुम मेरी नौका में आओ। बड़े आराम से जाओगे। मैं भी तो गंगासागर जा रहा हूँ।' मैंने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। शीघ्र पहुँचने के लिए उन्होंने छोटी नदी के सीधे पथ पर नौका चला दी। गोस्वामीजी ने विशाल ब्रह्मपुत्र के अनुकूल स्रोत में बड़ी नौका को छोड़ दी। देखते-देखते वायु भी हमारी सहायक हो गई। गोसाँईजी 'पाल' खोलकर शान्त भाव से बैठे हुए हैं। विशाल नौका सनसनाते हुए चलने लगी। गोसाँईजी के कथनानुसार हम सभी एक-एक डाँड़ हाथ में लेकर नौका खेने लगे; किन्तु अत्यन्त द्रुतगामी नौका में डाँड़ से जल में दवाब देने का अवसर ही नहीं मिलता– डाँड जल से स्पर्श करते-करते तक तो नौका कहाँ से कहाँ चली जाती। गोस्वामीजी उस समय खूब उत्साह देकर खेल देखने लगे। डाँड़ केवल उठाना-गिराना ही सार हो रहा है, यह देखकर हम लोगों ने अन्त में हाथ हटा लिया। नदी के किनारे का सौन्दर्य देखते-देखते थोड़े समय के भीतर ही गंगासागर के निकटवर्ती एक टीले पर पहुँचे। नौका वहीं पर लगा दी गई।

टीले में उतरकर सभी ने आनन्द के साथ स्नान-आहार किया।

इसी समय देखा, वे महात्मा भी पहुँच गए। सीधे-सीधे जाकर शीघ्र पहुँचने के उद्देश्य से वे नदी के जिस पथ से आए, दुर्भाग्यवश उसमें विघ्न आ गया था। प्रतिकूल प्रवाह और विपरीत वायु के झोंके से उनकी नौका संकट में पड़ गई थी। उपाय न देखकर प्राणपण से डाँड़ चलाकर, पसीने से लथपथ, हाँपते-हाँपते आकर उन्होंने हमारी नौका पकड़ ली एवं अपनी उस छोटी 'डोंगी' को उससे बाँध दिया। 'अब निश्चिन्त हुआ' कहकर उन्होंने फिर मेरे साथ धर्म-आलोचना आरम्भ कर दी। उधर गोस्वामीजी के आदेश से हमारी नौका को छोड़ दिया गया।

मैंने महात्माजी से पूछा– भगवान् को प्राप्त करने का सहज उपाय क्या है?

साधु ने कहा– 'भगवान् के वास्तविक नाम से उनको नियमित रूप से पुकारने पर सहज में ही उनकी प्राप्ति हो जाती है।'

मैं– भगवान् का फिर क्या वास्तविक नाम नकली नाम भी है?

साधु– जिस नाम से पुकारकर जिन लोगों ने उनका दर्शन प्राप्त किया है, उनके लिए वही नाम भगवान् का वास्तविक नाम है।

मैं– वस्तु जितने दिन तक अज्ञात थी, तो उसका कोई नाम कैसे होगा? पहले वस्तु होगी, फिर तो नाम होगा?

साधु– किसी एक समय में भगवान् की ही विशेष कृपा से एक श्रेणी के लोगों का जन्म हुआ था; इन लोगों ने उनकी ही कृपा से उनको प्राप्त किया था। वे लोग भगवान् को प्राप्त करने हेतु जिन समस्त उपायों का उल्लेख सर्वसाधारण के लिए कर गए हैं, केवल वही हम लोगों का अवलम्बन है। सहज में भगवान् को प्राप्त करने के लिए उन सब प्रणाली का अनुसरण के सिवा और उपाय नहीं है।

मैं– अभी मेरा क्या कर्त्तव्य है, बतला दीजिए। गुरुकरण तो मेरा हो गया है; प्रणाली भी मिल गई है।

साधु– तुम्हें फिर चिन्ता ही क्या है? सद्गुरु का आश्रय मिल गया है। उनके उपदेश के अनुसार चलने से ही सहज में भगवान् को प्राप्त कर लोगे। तुम्हारे गुरुदेव के लिए कुछ भी अज्ञात नहीं है।

स्वप्न देखकर जाग उठा। कैसा अद्भुत स्वप्न है! महात्मा लोग भी इस प्रकार से स्वप्न में दया करके गुरुनिष्ठा का उपदेश देते हैं। पता नहीं, कब मुझमें बिना विचार किए गुरु के आदेश पालन करने की आकांक्षा उत्पन्न होगी।

कष्टहारिणी और मुँगेर नाम की सार्थकता

23 जनवरी, बुधवार। प्रायः प्रतिदिन मध्याह्न में भोजन के बाद कष्टहारिणी के घाट में जाता हूँ। सायं तक वहाँ रहकर नाम-जप करता हूँ। घाट बड़ा मनोरम है। कुछ क्षण बैठने पर गंगा की हवा और स्थान के प्रभाव से देह-मन की सारी ज्वाला मानो बिल्कुल मिट जाती है, चित्त बिना प्रयत्न के अपने-आप एकाग्र हो जाता है। गंगा के ऊपर भजन के लिए इतना अच्छा स्थान और कहीं है या नहीं, पता नहीं। घाट तो मानो ठीक गंगा के बीच में है। दाएँ, बायें और सामने में गंगा का दृश्य बहुत सुन्दर है। साधु-संन्यासियों के रहने के लिए घाट के ऊपर ही छोटी-छोटी भजन कुटीर हैं। इन सब कुटियों में सर्वदा ही साधु-संन्यासियों को ध्यानमग्न अवस्था में बैठे हुए देखा जाता है। घाट के ऊपर कष्टहारिणीजी प्रतिष्ठित हैं। उनके नाम से ही घाट का नाम कष्टहारिणी हुआ है। नाना सम्प्रदाय के साधु और वैरागी लोग इस स्थान में निर्विवाद अपने-अपने आसन पर साधना में निविष्ट हैं। इस स्थान पर आने से फिर घर लौटने की इच्छा नहीं होती। अब तक जिन सब स्थानों को देखा हूँ, उनमें से यही साधन-भजन के लिए सर्वोत्कृष्ट लगता है। साधु-सज्जनों के भजन के गुण से इस स्थान पर भगवत्-शक्ति का एक ऐसा अद्‌भुत प्रभाव जागृत रहता है कि घाट में पहुँचने से वास्तव में भीतर का सारा सन्ताप दूर हो जाता है। 'कष्टहारिणी घाट' यह नाम सार्थक अनुभूत होता है। सुना है, प्राचीनकाल में यहाँ 'मँगू' ऋषि का आश्रम था, इसी कारण इस शहर का नाम भी मुँगेर हुआ है।

चतुर्थ स्वप्नः गुरु के आदेश पालन में संकोच

29 जनवरी, मंगलवार। रात्रि के अन्तिम प्रहर में फिर एक अच्छा स्वप्न देखा। हजारों गुरुभाइयों के साथ गंगा-स्नान करने एक पक्के घाट में आया हुआ हूँ। सभी अपने मन के अनुसार स्नान कर रहे हैं। मैं घाट की सीढ़ी पर खड़ा रहा। इसी समय देखा, गुरुदेव एक ओर से द्रुतगति से धड़धड़ाते हुए चले आ रहे हैं। दोनों ओर एवं सामने चंचल दृष्टि से देखते हुए हम लोगों में से किसी-किसी को उछल-उछलकर पकड़ रहे हैं; उन्हें पकड़कर क्या कह रहे हैं या क्या कर रहे हैं, कुछ समझ नहीं आया। गुरुदेव क्रमशः जितने ही मेरे निकट आने लगे, मुझे उतना ही भय होने लगा कि अब मुझे पकड़ेंगे। अचानक दाएँ, बायें और सामने के लोगों को पार करते हुए उन्होंने मुझे पकड़ लिया और कहा– **'शीघ्र उलंग हो, तुम्हारे सर्वांग में मैं एक बार हाथ फेर दूँ। एक दुर्लभ अवस्था प्राप्त करोगे।'** गुरुदेव के इस कथन मात्र से ही मेरा सर्वांग सिहर उठा, उपस्थ चंचल हो गया!

अचानक काम की प्रचण्ड उत्तेजना से मैं बेचैन हो उठा। तब गुरुदेव के चरणों में प्रणाम करते हुए कहा, मुझे दो मिनट का थोड़ा अवसर दीजिए, मैं स्थिर हो लूँ। वे देखे कि बार-बार उलंग होने के लिए कहने पर भी जब कथनानुसार मैं काम नहीं कर पाया, संकोच कर रहा हूँ, तब उन्होंने कहा– **'इस बार तो हुआ नहीं। तीन दिन बाद मैं फिर आऊँगा।'** यह कहकर वे उसी समय अदृश्य हो गए। मैं भी जाग पड़ा। स्वप्न देखकर मन बहुत विचलित हो गया।

मुँगेर की विशेषता

लगभग दो महीने मुँगेर में वास किया। बहुत दिन पहले प्रचारक अवस्था में गोस्वामीजी यहाँ कुछ समय वास किए थे। उनकी प्रिय कन्या सन्तोषिनी की मृत्यु मुँगेर में ही हुई। सुना था, उस समय वे शोक से उन्मत्त-से हो गए थे। 'शोकोपहार' नामक एक पुस्तक में उन्होंने उस समय की अपनी समस्त मानसिक अवस्था को विस्तृत रूप से लिखा था। इस मुँगेर में ही एक महापुरुष के साक्षात्कार से गोस्वामीजी के धर्म-जीवन में आमूल परिवर्तन का शुभारम्भ हुआ। 'आशावती के उपाख्यान' पुस्तक में भी उसका कुछ-कुछ परिचय उन्होंने दिया है। इस स्थान का महातीर्थ कष्टहारिणी घाट वास्तव में मानो सब मानसिक कष्ट को गंगाजल में धोकर शान्ति प्रदान करता है। घाट के सौन्दर्य की तुलना नहीं है। पीछे की ओर स्थित किला भी एक सुन्दर छवि जैसा लगता है।

दो महीने यहाँ रहकर साधन-भजन में विशेष उपकार अनुभव किया।

फरवरी–मई, सन् 1889 ई०

भागलपुर में वास

फरवरी के मध्य से अप्रेल के मध्य तक। बी. एल. की परीक्षा देने में सुविधा होगी, इसीलिए मँझले भैय्या मुँगेर से कोलकाता हायर स्कूल में स्थानान्तरित हो गए। मैं भागलपुर आ गया। भागलपुर में इस अँचल के स्कूल इन्सपेक्टर अपने बहनोई श्री मथुरानाथ चट्टोपाध्याय के निवास में ठहरा। भागलपुर भी बड़ा अच्छा लगा। मथुर बाबू का घर तो और भी मनोरम है। यह मकान वर्द्धमान के महाराजा का है, बहुत फैले हुए स्थान पर बना है। खंजरपुर में ठीक गंगा के ऊपर अवस्थित है, इसलिए मकान का नाम 'पुलिनपुरी' हुआ है। पुलिनपुरी के सामने चबूतरे के ऊपर से ही गंगा प्रवाहित हो रही है। स्थान जैसा निर्जन है, वैसा ही आनन्ददायक है। गंगा के ऊपर वाले कमरे में ही हम लोगों के रहने की व्यवस्था हुई है। कुछ दिन

यहाँ पर रहकर अच्छे-से साधन-भजन और समय-समय पर सत्संग करने लगा; लेकिन यहाँ भी थोड़े दिन बाद मेरा शरीर अस्वस्थ हो गया; वेदना बहुत बढ़ गई।

अयोध्या गमन: साधु-संग

अप्रेल के मध्य से एक महीना तक। सभी के परामर्श के अनुसार अधिक विलम्ब न करके मैं अप्रेल के तृतीय सप्ताह में बड़े भैय्या के पास फैजाबाद चला आया। अयोध्या से पाँच-छः मील दूर फैजाबाद में बड़े भैय्या श्री हरकान्त बन्द्योपाध्याय जी सरकारी अस्पताल में असिस्टेंट सर्जन हैं। अस्पताल के विशाल कम्पाउण्ड के एक ओर सुन्दर दुमंजिला मकान भैय्या का निवास-भवन है। उनके साथ मैं परमानन्द में दिन बिताने लगा। अस्पताल के काम का समय छोड़कर भैय्या अवशिष्ट समय में धर्म-आलोचना किया करते हैं। उनके सब साथी उच्च पदस्थ एवं अँग्रेजी पद्धति से सुशिक्षित होने पर भी सज्जनाश्रित होने से निष्ठावान् एवं धार्मिक प्रकृति के हैं। ये लोग धर्म-प्रसंग में बहुत ही आनन्द और आन्तरिक उत्सुकता प्रकट करते हैं। यहाँ बड़े भैय्या ने कुछ दिन तक मेरे रोग की अवस्था का परीक्षण करके देखा। औषधि आदि से इस व्याधि का उपशम असम्भव समझकर उन्होंने सदाचार से स्वभाव के ऊपर ही निर्भर रहने का परामर्श दिया। वेदना कुछ कम रहने से प्रातः एवं संध्या के समय मैं रास्ते में थोड़ा घूमा करता हूँ। अयोध्या व फैजाबाद में साधु-संन्यासियों की तो भरमार है। गुरुदेव ने कहा था– **'महापुरुष लोग छद्म वेश में सर्वत्र विचरण करते हैं। काशी, वृन्दावन, अयोध्या आदि तीर्थों में अधिकांश समय ही वे लोग रहते हैं। उनको पहचानना कठिन है। कुली-मजदूर के वेश में भी वे लोग घूमते-फिरते हैं।'** गुरुदेव की इस बात का स्मरण करके प्रतिदिन जब दोनों समय रास्तों पर घूमता हूँ, तब दोनों ओर व सामने जिन्हें भी देखता हूँ, मन-ही-मन उनको प्रणाम करता हूँ। भगवान् की कृपा से क्रमशः इस अवसर में कुछ महात्माओं का दर्शन मिला। अयाचित रूप से उन लोगों की असाधारण कृपा प्राप्त करके, मेरा अयोध्या आगमन सार्थक लग रहा है। यहाँ साधना करने की बहुत इच्छा होती है, मन मानो सर्वदा उदासीन रहता है। यहाँ के साधु-महात्माओं के संग के प्रभाव से गुरु के प्रति चित्त के आकर्षण और निष्ठा में वृद्धि हुई है, देख रहा हूँ।

―――――

जुलाई–अक्टूबर, सन् 1889 ई॰

कोलकाता में गोसाँईजी का दर्शन

साधु-महात्माओं के संग का विवरण

जुलाई–अगस्त,। कुछ एक महीने यहाँ रहने के बाद गुरुदेव को देखने के लिए मन बड़ा बेचैन हो गया। इसी समय भगवत् कृपा से पारिवारिक किसी विशेष कार्य से भैय्या मुझे घर भेजने के लिए तत्पर हो गए। मैं घर के लिए निकल पडा। कोलकाता आकर सुना गोस्वामीजी कोलकाता में ही हैं। गुरुदेव के संग प्राप्ति के लोभ से कुछ दिन कोलकाता में ही रुक जाने की इच्छा हुई। झामापुकुर में मँझले भैय्या के निवास-स्थान पर ठहरा।

आज अपराह्न में गोस्वामीजी के दर्शन करने के अभिप्राय से बाहर निकला। सुकिया स्ट्रीट में एक छोटे दुमंजिले मकान में वे ठहरे हैं। श्रीधर, श्यामाकान्त पण्डित जी इत्यादि शिष्यगण एवं गोस्वामीजी के परिवार के लोग साथ में हैं।

गोस्वामीजी के पास पहुँचकर देखा, कमरा लोगों से बिल्कुल परिपूर्ण है; भक्तिशील ब्राह्मधर्म प्रचारक श्री शिवनाथ शास्त्री, श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय इत्यादि गणमान्य व्यक्ति गोसाँईजी के साथ धर्म-चर्चा कर रहे हैं। शिवनाथ बाबू ने अपनी एक अवस्था के विषय में कहा। सुनकर गोस्वामीजी ने कहा– **"षट्चक्र-भेदी महात्मा जिस अवस्था में रहते हैं, उपासना के समय शिवनाथ बाबू कभी-कभी सहस्रार में अवस्थान कर उसे भोग करते हैं। यह बहुत सहज नहीं है।"**

गोस्वामीजी ने मुझे देखते ही पास बुलाकर सामने बैठा लिया एवं कहा– **"क्यों? तुम अयोध्या से आ गए? वहाँ समय-समय पर अच्छे साधु-महात्माओं का दर्शन मिला तो?"**

मैं– हाँ, कुछ महात्माओं का दर्शन मिला।

गोसाँईजी– **उनके सम्बन्ध में जो-जो तुमने देखा-सुना है, कहो।**

मैं सभी की उपस्थिति में विस्तृत रूप से बतलाने लगा।

नागा बाबा

फैजाबाद में मैं कुछ महीने था। इस बीच तीन-चार महात्मा के दर्शन हुए। मैंने अयोध्या जाने के पहले भैय्या के पत्र से नागा बाबा के सम्बन्ध में जानकर आपको बतलाया था। तब आपने कहा था **'ये एक बहुत शक्तिशाली सिद्ध पुरुष हैं।'** फैजाबाद जाकर मैंने सर्वप्रथम इन्हीं महात्मा का दर्शन किया।

गुप्तारघाट से डेढ़ या दो मील के अन्तर में सरयू नदी के किनारे निर्जन सुविस्तृत मैदान के बीच में ये रहते हैं। मिट्टी के ढेर को पहाड़ जैसा स्तूप बनाकर उन्होंने रास-मंच के समान तीन सीढ़ियाँ बनाई। सबसे ऊपर की सीढ़ी समतल भूमि से लगभग 50 फीट ऊपर होगी। उसी के ऊपर खुले आकाश के नीचे नागा बाबा का आसन है। इस स्थान में दूर-दूर तक पेड़-पौधों का कोई नामोनिशान नहीं है; चारों ओर केवल घास का मैदान दिखता है। गुप्तारघाट अथवा कैन्टोनमेंट (छावनी) के निकट से उस ओर देखने पर मोटे खम्बे के ऊपर बाबाजी एक पक्षी के समान दिखते हैं। उनके प्रायः दोनों ही ओर सरयू नदी है; अन्य दो दिशाओं में बहुत दूर तक विशाल मैदान है। यह मैदान सरयू का ही द्वीप हो सकता है। सरयू की एक पतली धारा एक ओर से आकर, नागा बाबा के आसन-स्थल को घेरते हुए दूसरी ओर जाकर फिर सरयू में मिल गई है। उस नाले में पानी बहुत कम रहता है। सुना है, एक बार नाले में प्रवाह बढ़ने से वह चौड़ा होकर धीरे-धीरे नागा बाबा के आसन के समीप आ गया। तब बाबाजी ने बारम्बार नदी से कहा– 'माई, इधर मत आओ।' फिर भी नाला क्रमशः बढ़ने ही लगा। फिर बाबाजी ने विरक्त होकर कहा– 'अच्छा! ऐसा है? ठीक है, बन्द हो जाओ।' सम्भवतः तभी से वह धारा बिल्कुल बन्द हो गई। शहर के लोग कहते हैं, 'बाबाजी सिद्ध पुरुष हैं। उनके वाक्य से ही नाले की वह दशा हुई है।'

ठण्ड और गर्मी दोनों ही फैजाबाद में बहुत अधिक पड़ती है। जनवरी-फरवरी महीने में शीत के समय कमरे के भीतर भी आग तापनी पड़ती है; फिर ग्रीष्म ऋतु के समय मई-जून महीने में दिन के 9 बजे के बाद घर के बाहर निकला नहीं जाता; पाँच मिनट धूप में रहने से लगता है, मानो शरीर जलने से फफोला पड़ गया है। नागा-बाबा सुनसान मैदान के बीच अनावृत्त स्थान पर प्रचण्ड शीत-ग्रीष्म में भी बिना किसी अवलम्बन के किस प्रकार से रात-दिन उलंग अवस्था में रहते हैं, सोचकर चकित हो गया। लोकालय से इतनी दूर उन्होंने क्यों आसन जमाया है, जानने की इच्छा हुई। एक दिन बाबाजी से यह पूछने पर उन्होंने अपने जीवन की अनेक बातें बतलाई। सुना है, वे बहुत समय तक तीर्थ-पर्यटन करके अन्त में फैजाबाद के गुप्तारघाट में आए। लोकालय से दूर रहने का उनका नियम होने के कारण वे इस मैदान में आसन लगाकर बैठ गए। एक बार गहन रात्रि में सामने धूनी रखकर नाम-जप करते-करते तन्द्रावेश में ज्वलन्त अग्नि के ऊपर गिर पड़े, उससे शरीर के कुछ स्थान गम्भीर रूप से दग्ध हो गए। जलने पर घाव की जलन से छटपटाते हुए बाबाजी ने दुःखी होकर रामजी को पुकारकर उच्च स्वर में कहा– 'वाह रे रामजी, तुम्हारे लिए मैंने इतना किया, और तुमने मेरा यह हाल किया।' यह बात कहते ही बाबाजी ने देखा, आकाश-पथ से मानो सों-सों शब्द करता हुआ

एक वृहत् आकार का कुछ आ रहा है। देखते-देखते वह बाबाजी के सामने आ गया एवं उनको बलपूर्वक पकड़कर ज्वलन्त अग्नि के ऊपर ही गिराकर घिसने लगा; अग्नि बिल्कुल बुझ जाने पर उसने धूनी की विभूति बाबाजी के सर्वांग में लगा दी। उसके बाद शक्तिशाली आकाशचारी ने कहा– 'यहीं रह; आसन कभी मत छोड़ना। कोई भी संकट स्पर्श नहीं करेगा। सिद्ध बन जाओ।' बाबाजी तब से आसन छोड़कर फिर कहीं जाते नहीं। इसके लिए बाबाजी की भयंकर परीक्षा भी हुई है।

गोसाँईजी– **वह किस प्रकार हुई?**

मैं– बाबाजी जिस मैदान में रहते हैं, उसके एक ओर फैजाबाद का कैन्टोनमेंट है। मैदान खूब बड़ा होने से उत्तर-पश्चिम अँचल के गोलन्दाज सैनिकों की गोलाबाजी उसी मैदान में हुआ करती है। गोलाबारी होने के पहले मैदान के समीपवर्ती ग्रामों में 'नोटिस' दी जाती है। तब दो-चार दिन के लिए सब लोगों को अन्यत्र जाना पड़ता है। एक बार इसी प्रकार गोलाबारी के पहले नोटिस दी गई। सभी घर-बार छोड़कर अन्यत्र चले गए; लेकिन नागा बाबा ने आसन छोड़ा नहीं। सरकार की ओर से उन्हें वह स्थान छोड़कर जाने के लिए बार-बार कहा गया। बाबाजी ने कहा– 'बच्चा लोग, खेलो। हमारा आसन सिद्ध है, छोड़ नहीं सकते। कुछ नहीं होगा; तुम लोग खेलो।' सुना है, उसके बाद सरकार द्वारा बहुत डर भी दिखाया गया; पर बाबाजी ने आसन छोड़ा नहीं। फिर आदेश हुआ– निर्दिष्ट समय के भीतर बाबाजी न हटें, तो उनकी मृत्यु के लिए सरकार उत्तरदायी नहीं होगी। यथासमय गोलाबारी आरम्भ हुई– पूरा मैदान अग्निमय हो गया, बाबाजी धूनी जलाकर अपने आसन पर स्थिर भाव से बैठे रहे। कर्नल क्रॉली कुछ क्षण के अन्तर-अन्तर में दूरबीन द्वारा बार-बार देखने लगे कि बाबाजी जीवित है या नहीं। भयंकर गोलियाँ चलाई जाने लगीं। इधर बाबाजी केवल अपने बायें हाथ को ढाल के समान सामने रखे रहे। गोलियाँ लगातार बाबाजी के दाएँ, बायें और सिर के ऊपर से होते हुए जाने लगीं; परन्तु बाबाजी को किसी प्रकार से कुछ नहीं हुआ। यह देखकर कर्नल क्रॉली चकित हो गए। फिर सब समाप्त होने पर वे बाबाजी के पास आकर उत्साह के साथ बार-बार सलाम करके कहने लगे– 'बाबा, तुमने अलौकिक शक्ति का आज जैसा परिचय दिया, इस जीवन में उसे भूलूँगा नहीं। मैंने जितनी बार देखा, उतनी बार तुम्हें एक अवस्था में स्थिर रहते देखकर चकित हो गया।' सुना है, सरकार की जिस पुस्तक में अद्‌भुत घटनाएँ लिखी रहती हैं, उसमें इस घटना को साहेब ने लिख रखा है।

गोसाँईजी– **नागा बाबा बड़े शक्तिशाली पुरुष हैं। तोप के गोले से उन्हें क्या होगा? आजकल वैसे शक्तिशाली लोग बहुत देखे नहीं जाते।**

मैंने पूछा– उस प्रकार से नागा बाबा के पास कौन आए थे? कौन आकर उन्हें सिद्ध कर गए?

गोसाँईजी– **भक्तराज महावीर आए थे। उनके ही 'वरदान' से नागा बाबा सिद्ध हुए।**

प्रश्न– महावीर क्यों आए?

गोसाँईजी– **राम के नाम से दीर्घ निश्वास छोड़ना! राम भक्त महावीर क्या स्थिर रह पाएँगे? बाबाजी ने तुमसे कुछ कहा?**

मैं– बाबाजी का दर्शन करने मैं प्रायः ही जाता था। साधारणतः जिससे विश्वास व भक्ति प्राप्त हो, यही आशीर्वाद माँगता था। आशीर्वाद माँगने पर बाबाजी चमक उठते थे; सिर पर हाथ फेरते हुए बड़े स्नेह के साथ कहते थे– 'अरे तुमने तो भगवान् का आश्रय लिया है। तुम्हारे गुरुजी बड़े दयालु हैं, बड़े दयालु हैं! मालिक तो वे ही हैं। विश्वास और भक्ति देने वाले वे ही हैं। सब हो जाएगा। आनन्द करो, आनन्द करो।'

बाबाजी के शरीर का चर्म हाथी के चमड़े की भाँति दृढ़ और खुरदुरा है। देखने में पहलवान के जैसे वीर पुरुष लगते हैं।

पतितदास बाबाजी

फैजाबाद पहुँचकर भैय्या के मुख से सुना– एक बहुत ही प्राचीन महापुरुष अयोध्या के रास्ते में एक निर्जन कुटीर में हैं; पर उन्हें देख पाना बड़ा कठिन है। पहले कभी-कभी लगातार छः महीने वे एक आसन पर आहार-निद्रा त्याग करके समाधिस्थ रहते थे; अन्य छः महीने के बीच किसी-किसी निर्दिष्ट समय में लोगों को उनका दर्शन मिलता था। आजकल वे तीन-तीन महीने के अन्तर में तीन महीने समाधि में रहते हैं। मुझे लोगों से पता चला कि बाबाजी अभी समाधि में नहीं हैं; अतएव उन्हें देखने के लिए व्याकुल हो गया। भैय्या मुझे बाबाजी के दर्शन के लिए जाने से बार-बार रोकने लगे; क्योंकि बाबाजी के भजन कुटीर का द्वार प्रायः बन्द ही रहता है एवं स्वयं किसी से मिलने के इच्छुक न रहें, तो प्रायः किसी को उनका दर्शन नहीं मिलता। जो हो, उसके बाद मेरा अत्यधिक आग्रह देखकर भैय्या ने मुझे अनुमति दे दी एवं मैं उत्सुकता के साथ बाबाजी के दर्शन के लिए निकल पड़ा। फैजाबाद से अयोध्या जाने पर विशाल मैदान के बाद मार्ग दो भाग में विभक्त है। दाहिना मार्ग देवकाली की ओर गया है और बायाँ मार्ग राणुपाली की ओर। राणुपाली मार्ग के बाई ओर ही बाबाजी का आश्रम है।

मैं धीरे-धीरे आश्रम में प्रवेश करके देखा, बाबाजी के भजन कुटीर का द्वार बन्द है। बाबाजी को लक्ष्य करके बाहर से ही मैंने एक बार साष्टांग प्राणाम किया। सिर उठाकर देखा, बाबाजी ने दरवाजा खोल दिया है। मुझे बड़े स्नेहपूर्वक बुलाकर कहा– 'आओ बच्चा, आओ, यहाँ बैठो। थोड़ा अगाड़ी हमको मालूम पड़ा, तुम यहाँ आओगे। तब से हम तुम्हारे वास्ते बैठे हैं!' बाबाजी एकटक मेरी ओर देखते रहे। वे क्षण-क्षण में एक-एक बार सिहर उठते हैं। वे कहने लगे– 'आहा! धन्य हो गया! धन्य हो गया! दुर्लभ सद्‌गुरु का आश्रय पाया है! धन्य हो गया!' बाबाजी का भावावेश कुछ कम होने पर मैंने कहा– बाबा, मेरा कल्याण कैसे होगा? उन्होंने बड़े उल्लास के साथ मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए कहा– 'और क्या बच्चा? सब तो पूरण हो गया। उसी काले का ध्यान कर।' मैं बाबाजी के पास बहुत समय तक बैठा था। वे निरन्तर रोते ही रहे और रुक-रुककर वही एक बात कहते रहे। बाबाजी का शरीर बहुत प्राचीन है, आयु प्रायः डेढ सौ वर्ष होगी। आकृति अत्यन्त दीर्घ, गौर वर्ण, मुख गुलाब की भाँति लाल, दाढ़ी-मूँछ व बाल सब सफेद हैं; हाथ-पैर के नख लम्बे होकर बंसी के समान मुड़ गए हैं। बात-बात में उनकी आँखों से आँसू टपकने लगते हैं। उन्हें देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

गोसाँईजी ने कहा– **"पतितदास बाबाजी ने तान्त्रिक साधना करके सिद्धि प्राप्त की है। ये बड़े प्रेमिक हैं। तान्त्रिक साधना करके भी देखो लोग कैसे प्रेमिक होते हैं! इन सब लोगों का दर्शन सहज नहीं है। रंगमहल के हनुमान गढ़ी में किसी साधु का दर्शन मिला?"**

गोपालदास बाबा

एक दिन अचानक एक साधु ने आकर भैय्या से कहा– 'बाबू साहेब रंगमहल में एक साधु कान की यन्त्रणा से बहुत कष्ट पा रहे हैं। आपको बतला दिया हूँ; अब देखना या न देखना आपकी इच्छा। साधु के पास में रुपये-पैसे नहीं हैं। आपका 'विजिट' अथवा अयोध्या जाने-आने का गाड़ी-भाड़ा वे दे नहीं सकेंगे।' भैय्या यह बात सुनते ही साधु के पास जाने के लिए बेचैन हो गए; तुरन्त एक गाड़ी मँगवाकर वे मुझे साथ में लेकर अयोध्या के लिए निकल पड़े। कुछ समय के भीतर ही हम लोग उस स्थान पर पहुँच गए एवं रंगमहल के बहुत-से कमरों के बीच से होकर एक अँधेरी कोठरी में प्रविष्ट हुए। उस कमरे के पास भूमि के नीचे स्थित गुफा से एक वृद्ध साधु बाहर आए। उनके कान के भीतर बहुत मैल जम गया था; भैय्या ने उसे बाहर कर दिया तो यन्त्रणा दूर हो गई।

बाबाजी को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। शरीर बहुत दुर्बल है; लगता है,

जैसे अस्थि के ऊपर केवल चर्म रह गया है। चर्म का रंग अस्वाभाविक सादा— ठीक दूध के जैसा है; लेकिन मुख अच्छा पुष्ट, बहुत ही उज्ज्वल और तेजपूर्ण है। सदा मुस्कुराते रहते हैं। सुना है, बाबाजी की आयु डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक है। वे कब से उस अँधेरी गुफा में हैं, रंगमहल के वृद्ध साधु लोग भी यह जानते नहीं। वे केवल एक बार ही, रात्रि के अन्तिम प्रहर में शौच के लिए बाहर निकलते हैं। रंगमहल के साधुओं को वर्ष में एक बार भी उनके दर्शन का संयोग नहीं होता। सर्वदा वे इस गुफा में ही वास करते हैं। आते समय बाबाजी को प्रणाम करके आशीर्वाद माँगा। बाबाजी ने हाथ जोड़ते हुए गद्‌गद होकर कहा– 'रामजी बड़े दयालु हैं, बड़े दयालु हैं! उन्हीं का नाम लेकर उन्हीं के स्थान में पड़ा हुआ हूँ। अब जैसा रामजी करें। बच्चा, बहुत भाग्य से ही तुमने रामजी का आश्रय पाया है। अब नाम-जप करो और आनन्द करो।'

तुलसीदास बाबा

मैं फिर बतलाने लगा– अयोध्या में सरयू नदी के किनारे एक मन्दिर में तुलसीदास बाबा रहते हैं। अयोध्या के वर्तमान साधुओं के मध्य ये बहुत प्रसिद्ध हैं। दर्शन करने गया तो देखा, बाबाजी नाम-जप में मग्न हैं। सामने व दोनों ओर अनेक लोग शान्ति से बैठकर बाबाजी का दर्शन कर रहे हैं; पर बाबाजी अपने भाव में तल्लीन हैं। बीच-बीच में मानो तन्द्रा होने से चौंककर सबको स्नेहपूर्वक देखते हैं, फिर ऊँघने लगते हैं। बाबाजी ने भैय्या को देखकर बड़े आदर से सामने बैठने का संकेत किया एवं मुस्कुराते हुए 'आनन्द है?' पूछकर पुनः जप में मग्न हो गए। बाबाजी माला जपते हैं; पर लगता है, माला के साथ केवल हाथ का सम्बन्ध है; मन मानो कहीं और डूबा हुआ है। बाबाजी कभी किसी को कोई उपदेश देते नहीं। केवल 'नाम-जप करो, नाम-जप करो' यही कहते हैं।

अन्ध बाबाजी

गोसाँईजी ने पूछा– **"और कहीं किसी को देखे?"**

मैं– फैजाबाद के बेगमगंज में गुप्त रूप से एक महात्मा रहते हैं– जेल के दरोगा नन्द बाबू ने मुझे बतलाया। वे आग्रहपूर्वक मुझे साधु बाबा के पास ले गए। ये साधु बहुत वृद्ध हैं; पहले वे एक राजा के मन्त्री थे। राज्य विषयक किसी भयंकर अनर्थ का संकेत पाकर ये पलायन कर गए। पथ में किसी आकस्मिक विपत्ति से इनकी दोनों आँखें नष्ट हो गईं। एक सज्जन की कृपा से फिर ये अयोध्या आ गए एवं उनके ही आश्रय में रहते हुए बहुत समय से साधन-भजन करते आ रहे हैं।

सुना है, ये बहुत बड़े पण्डित हैं। कई शास्त्र-पुराण-दर्शनादि इन्हें कण्ठस्थ है। बाबाजी ने मुझसे कहा– 'कठोर साधना व तीव्र वैराग्य न होने से कुछ नहीं होता। चर्म-चक्षु न रहने से कोई हानि नहीं है। साधना के प्रभाव से देवी-देवता के दर्शन, चित्र-दर्शन, ज्योति-दर्शनादि सब होते हैं। सदाचार में रहते हुए गुरु का आश्रय लेकर शास्त्रीय प्रणाली के अनुसार कोई साधन-भजन कर ले, तो गुरुकृपा से उसका इहलोक-परलोक एक हो जाता है!' दर्शन-विज्ञान द्वारा बाबाजी इन सब बातों का प्रमाण देने लगे।

गोसाँईजी ने कहा– **अयोध्या में हनुमानगढ़ी बहुत जाग्रत स्थान है। वहाँ प्रायः महापुरुष लोग आते हैं; पर वे लोग स्वयं अपना परिचय न दें तो कोई उन्हें पकड़ नहीं सकते। गुप्तारघाट, हनुमानगढ़ी ये दोनों स्थान अभी तक ठीक हैं। प्राचीन अयोध्या का अन्य सब सरयू में डूब गया है।**

गोस्वामीजी के साथ बातचीत के बाद मैं निवास-स्थान पर चला आया। कुछ दिन कोलकाता में रहकर इस प्रकार प्रतिदिन उनका संग प्राप्त करने लगा।

योगजीवन और शान्तिसुधा का परिणय-उत्सव

गत कुछ महीनों से मैं गोस्वामीजी के पास नहीं था। अतएव उस समय के उनके कार्य-कलापों का विवरण मेरी इस 'डायरी' में लिखना रह गया है। कोलकाता और गेण्डारिया में कुछ समय रहकर गुरुभाइयों के मुख से जो सुना, उसे संक्षेप में इस स्थान पर लिख ले रहा हूँ। यदि कभी गोस्वामीजी के मुख से वह सब बातें सुनने को मिली, तो विस्तारपूर्वक लिख लूँगा।

गोस्वामीजी ने अपने पुत्र योगजीवन एवं कन्या शान्तिसुधा का परिणय-कार्य श्रीमती बसन्तकुमारी देवी एवं उनके बड़े भाई श्री जगदबन्धु मैत्र के साथ 8 मार्च, सन् 1889 ई०, शुक्रवार को सम्पन्न किया। आधुनिक भाव के सुशिक्षित और अपेक्षाकृत प्रतिष्ठित किसी समृद्ध परिवार में उन लोगों का विवाह कराना गोस्वामीजी के लिए कुछ कठिन नहीं था; परन्तु अपने गुरु परमहंसजी के आदेश से उन्होंने किसी ओर ताके बिना स्वजन और अपने परिवार वालों के घोर प्रतिवाद एवं आपत्ति के बाद भी यह कार्य आनन्दपूर्वक सुसम्पन्न किया। दामाद ने पहले ही गोस्वामीजी से दीक्षा प्राप्त की थी। साधारण ब्राह्म-समाज की पद्धति के अनुसार यह विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। ढाका के प्रसिद्ध वकील श्री ईश्वरचन्द्र घोष जी गोस्वामीजी के भक्त थे; एक दिन गोस्वामीजी के एक शिष्य के साथ आकर उन्होंने कहा, 'अब और एक अन्य मत के अनुसार विवाह क्यों कराना? हिन्दू-विवाह के अनुष्ठान में ऋषियों का वास है, अतएव हिन्दू मत से विवाह होना नहीं चाहिए?

गोस्वामीजी ने उनसे कहा– **"अच्छी बात है।"** फिर दो दिन बाद ही गोस्वामीजी ने उन लोगों को बुलाकर कहा, **"मैंने विचार करके देखा कि हिन्दू मत से इन लोगों का विवाह नहीं हो सकता। ब्राह्मण का एक भी संस्कार योगजीवन का हुआ नहीं; जगबन्धु ने कई प्रकार से अनाचार किया है। इन लोगों का प्रायश्चित्त होना कठिन है, फिर उसका समय ही कहाँ है? तुम लोग कुछ चिन्ता मत करो। ब्राह्म-पद्धति के अनुसार रजिस्ट्री करके उन लोगों का विवाह कराना होगा।"**

श्रद्धेय श्री नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय और रजनीकान्त घोष ने क्रमशः गोसाँईजी के पुत्र और कन्या के विवाह में पुरोहित का कार्य किया था। विवाह-स्थल में गोस्वामीजी उपस्थित थे; गृहस्थ-धर्म के सम्बन्ध में उन्होंने जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और हृदय-स्पर्शी उपदेश दिया, उसे सुनकर सभी उपकृत और मुग्ध हो गए थे। पुत्र को उन्होंने एक वर्ष के लिए ब्रह्मचर्य पालन का आदेश दिया। इस अवसर पर गेण्डारिया आश्रम में, गया में स्थित आकाशगंगा पहाड़ के रघुवर बाबाजी एवं दूसरे कुछ सिद्ध पुरुषों का भी आगमन हुआ था। विवाह के दूसरे दिन रजिस्ट्री हुई। इस विवाह में साधु-सज्जनों के समागम से कुछ दिनों तक आनन्द-उत्सव चला एवं उसमें गोस्वामीजी के कुछ आश्चर्यजनक योगैश्वर्य अचानक प्रकट हो गए थे। उसे प्रमाण सहित भविष्य में लिखने की इच्छा है।

श्रीधर का पागलपन और ठाकुर का शासन

गेण्डारिया आश्रम में रहते समय श्रीधर का पागलपन कुछ दिन तक बहुत ही बढ़ गया था। उस समय सब गेण्डारियावासी उनके लोकाचार-विरुद्ध विवेकहीन निन्दित कार्य से बहुत कुपित हो गए थे। रात-दिन उद्विग्न रहने वाले कुछ झगड़ालु प्रवृत्ति के लोगों ने श्रीधर के उपद्रव को बिल्कुल शान्त करने के लिए बड़ा षड्यन्त्र किया। गोस्वामीजी ने उन सब प्रतिहिंसा-परायण व्यक्तियों के भयानक षड्यन्त्र को स्वतः ही जानकर, उससे उन लोगों को विमुख करने के लिए भक्त श्रीधर के ऊपर बहुत कठोर शासन किया था; यहाँ तक कि श्रीधर को स्थानान्तरित करने के लिए उन्होंने गेण्डारिया के सब लोगों को उनका संग त्याग करने एवं आहार न देने का आदेश दे दिया था। श्रीधर कभी निराहार रहकर, तो कभी स्नेहमयी श्री योगमाया देवी द्वारा गुप्त रूप से प्रदत्त दो-एक मुट्ठी भात खाकर पेड़ के नीचे पड़े-पड़े किसी प्रकार से दिन पर दिन काटने लगे; लेकिन उन्होंने गोसाँईजी का आश्रय छोड़ा नहीं। दण्ड अत्यन्त कठोर होने से ही श्रीधर बच गए। श्रीधर की दुर्दशा देखकर उनके शत्रुओं को दया आ गई। उन्हीं लोगों ने अन्त में गोसाँईजी के पास जाकर उनसे श्रीधर को इस बार क्षमा करने का अनुरोध किया।

धूलट-उत्सव

(अपने प्रमादवशतः निम्नलिखित घटना को यथास्थान पर लिख नहीं सका)

एकरामपुर में रहते समय एक दिन गोस्वामीजी ने बातों-बातों में कहा था– **'इस बार धूलट उत्सव करना चाहिए।'** गुरुभाइयों के मध्य बहुतों ने तो धूलट उत्सव का नाम तक नहीं सुना। श्रीश्री अद्वैत प्रभु के आविर्भाव तिथि माघ-सप्तमी से लगभग एक महीने तक शान्तिपुर में प्रतिवर्ष ही यह उत्सव हुआ करता है। होली के समय गुलाल का जैसा व्यवहार होता है, उसी प्रकार इस उत्सव में संकीर्तन के समय रास्ते की धूल उड़ाए जाने के कारण इसका नाम 'धूलट' पड़ा।

कुछ दिन बाद श्री कुंजबिहारी घोष के घर में गुरुभाइयों का निमन्त्रण हुआ था। भोजन के बाद श्री दुर्गाचरण राय ने कहा, 'ठाकुर ने जब धूलट-उत्सव की इच्छा प्रकट की है, तो यह उत्सव करना चाहिए। खर्चे के लिए सब लोग कुछ-कुछ सहयोग कर दें।' उसी समय से अर्थ संग्रह का प्रयास होने लगा एवं गोस्वामीजी को बतला दिया गया कि इस बार धूलट का आयोजन किया जाएगा। इसी समय श्रीहट्ट से अन्ध बाबाजी ढाका आए। वे गोस्वामीजी के निवास में ही रहकर सुमधुर गीत-वाद्य के माधुर्य से सभी को मुग्ध करने लगे। बाबाजी भजन गाते-गाते स्वयं ही आश्चर्यजनक रूप से मृदंग बजाते और एक मंजीरे को नीचे रखकर दूसरे मंजीरे को बाहु में लटकाकर फिर मृदंग के ताल के साथ-साथ बाहु हिलाकर कौशल द्वारा मंजीरे को भी ताल में बजाते थे। धूलट-उत्सव के कुछ दिन पहले से ही अन्ध बाबाजी के अपूर्व कीर्तन-गान से आश्रम में सब समय आनन्द की लहर चलने लगी।

इधर माघ-सप्तमी तिथि आ गई। दिन के लगभग 8 बजे श्री कुंज बाबू, विधु बाबू एवं प्रसन्न मजूमदार इत्यादि लोगों ने घर के दूसरी ओर कदमतला* में गोसाँईजी को सामने करके गाना आरम्भ किया–

हरि बोलबो मुखे, जाबो सुखे ब्रजधाम
कलिते तारक ब्रह्म हरिनाम। –इत्यादि

(हरिनाम का उच्चारण करके सुख से ब्रजधाम जाऊँगा, कलियुग में तारक-ब्रह्म ही हरिनाम है। –इत्यादि)

गोस्वामीजी रास्ते में साष्टांग प्रणाम करके धूल में लोटने लगे। फिर उठने

---

* कहा जाता है कि श्रीश्री नित्यानन्द प्रभु के पुत्र श्री वीरभद्र ठाकुर ने इस स्थान में एक कदम वृक्ष के नीचे अपना आसन स्थापन करके कुछ समय साधन-भजन किया था। समय होने पर इस प्राचीन कदम्ब वृक्ष के नष्ट हो जाने पर, उसी स्थान में ही अन्य एक कदम्ब का वृक्ष उत्पन्न हो गया। इस प्रकार आज तक वीरभद्र का आसन-स्थान रक्षित होता आ रहा है।

के साथ-साथ दोनों हाथ में धूल लेकर **'जय सीतानाथ, जय सीतानाथ'** कहते-कहते उसे चारों ओर फेंकने लगे। शक्ति-संयुक्त धूल के संस्पर्श से क्षणभर में सबके भीतर एक अभूतपूर्व भाव का संचार हो गया। देखते-देखते वे लोग भावोन्मत्त अवस्था में हुंकार, गर्जन करते और धूल उछालते हुए उद्दाम नृत्य करते-करते गोस्वामीजी के साथ-साथ अग्रसर होने लगे। इसी समय कुछ कीर्तन-मण्डलियाँ अचानक आकर संकीर्तन में सम्मिलित हो गईं। तब मृदंग-मंजीरे की ध्वनि संकीर्तन के कोलाहल में मिलकर चारों दिशा को कम्पित करने लगी। गोस्वामीजी उछल-उछलकर नृत्य करते हुए चलने लगे, लेकिन भाव की अधिकता के कारण कुछ कदम अग्रसर होने के बाद ही वे लड़खड़ाकर बार-बार गिर पड़ते। इस समय हर्षोल्लास का अत्यन्त कोलाहल होने लगा। प्रबल भाव का घूर्णित तूफान उत्तरोत्तर वर्द्धित होकर अपूर्व धूलराशि के संस्पर्श से दर्शक-मण्डली को अभिभूत कर डाला। स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, कुली-व्यवसायी आदि रास्ते के दोनों ओर जिस-जिस अवस्था में थे, उसी अवस्था में वे भावावेश से मन्त्रमुग्ध की भाँति देखते रहे। कुछ महिलाएँ आत्म-विस्मृत होकर अट्टालिका से संकीर्तन-स्थल में कूदने का प्रयास करने लगीं। बच्चे भी जगह-जगह मूर्च्छित होकर गिरने लगे।

यह महासंकीर्तन इतनी धीमी गति से अग्रसर हुआ कि पाँच-सात मिनट की दूरी पर स्थित श्री बिहारीलालजी के मन्दिर तक पहुँचने में तीन घण्टे लग गए। इस प्रकार से संकीर्तन सुत्रापुर, फरासगंज, बंगलाबाजार, पटुआटोली, शाँखारीबाजार एवं लक्ष्मीबाजार घूमकर अपराह्न 3 बजे इकरामपुर पहुँचा। तब घर के द्वार पर आकर अन्ध बाबाजी गाने लगे– 'नगर भ्रमण करे आमार गौर एलो घरे, आमार निताई एलो घरे' (नगर भ्रमण करके मेरे गौर घर आ गए, मेरे निताई घर आ गए)– इस समय उद्दीप्त भाव के अद्‌भुत आवेश से सभी लोग पुनः उन्मत्तवत् हो गए! इस प्रकार से बहुत समय व्यतीत हो गया। क्रमशः संकीर्तन रुकने पर झूमते जनसमूह ने शान्त भाव धारण कर लिया।

इस विचित्र भावोन्मादकारी धूलट-उत्सव के नगर-संकीर्तन से ढाकावासी अत्यन्त मुग्ध हो गए थे। एक अल्पवयस्क बालक के 10-12 घण्टे तक अचेत अवस्था में रहने से उसके माता-पिता ने उसके जीवन की आशा ही छोड़ दी थी। वे लोग गोसाँईजी के पास आकर व्याकुल होकर रोने लगे। तब गोस्वामीजी उनके घर जाकर केवल स्पर्श से लड़के को स्वस्थ करके चले आए। अन्य एक 14-15 वर्षीय जगन्नाथ स्कूल का छात्र धूलट-उत्सव के संकीर्तन में भावावेश से इतना उन्मत्त हो गया कि छः-सात दिन तक वह रह-रहकर रास्ते-रास्ते में 'मेरा कृष्ण कहाँ है, मेरा कृष्ण कहाँ है' कहकर रोते हुए दौड़-धूप किया था। दिन के अधिकांश समय ही वह अचेत अवस्था में रहता था। लड़के का नाम अश्वनी कुमार मित्र है।

घर विक्रमपुर में है। उसके आत्मीयजन बहुत दिन तक ऐसी दशा देखकर डर गए एवं गोस्वामीजी के पास आकर दीन भाव से उसकी चिकित्सा का उपाय पूछे। गोसाँईजी ने कहा– **"भक्त वैष्णवगण के पास रहने से इस लड़के के भाव का आदर होता। अब छोड़ो; हुगली जिला के अन्तर्गत किसी गाँव में एक सज्जन की कुलवधु का भी हरिकीर्तन में इसी प्रकार भाव हुआ था। उससे घर के सभी लोग बेचैन हो गए थे। उस समय एक ब्राह्मण ने आकर कहा, किसी पुरोहित को निमन्त्रण देकर भोजन कराने के बाद उसका भुक्तावशिष्ट बहू को खिला दीजिए तो भाव छूट जाएगा। गृहस्वामी के उस प्रकार करने से बहू का भावावेश छूट गया।"**

सुना है, अश्वनी के सम्बन्ध में भी सम्भवतः उसी प्रकार करने से उसे स्वाभाविक ज्ञान प्राप्त हुआ था। श्री कुंजलाल नाग जी इस संकीर्तन के मुख्य गायक और वादक थे। किस शक्ति के प्रवाह से उन्होंने लगातार उत्साह के साथ छः घण्टे तक गाना-बजाना किया, यह सोचकर सभी आश्चर्यचकित हो गए थे। कुछ दिन पहले कुंज बाबू को ही गोस्वामीजी ने हृदय से लगाकर कहा था– **'सनातन गोस्वामी का आलिंगन करके महाप्रभु ने जिस सुख का अनुभव किया था, आज इनके स्पर्श से मैंने वही सुख प्राप्त किया।'**

—————

नवम्बर, सन् 1889 ई॰

लाल के योगैश्वर्य से गुरुभाइयों की मुग्धता

शान्तिपुर निवासी बालक साधक लालबिहारी बसु के जातिस्मरत्व और धर्म-जीवन की अद्‌भुत उन्नति होने के साथ-साथ उनकी दक्षता और योगैश्वर्य का चारों ओर प्रचार हो गया। अनेक गुरुभाई उनके प्रभाव से मुग्ध होकर गोस्वामीजी की ओर देखने का भी मानो अवसर नहीं पा रहे हैं। गोस्वामीजी साधनसिद्ध हैं और लाल नित्यसिद्ध– ऐसा संस्कार भी किसी-किसी के मन में उत्पन्न हो गया है। लाल की असाधारण शक्ति और सम्मान गुरुभाइयों के बीच छा जाने से किसी-किसी में गुरुनिष्ठा के ह्रास और सोचनीय परिणाम का सूत्रपात हो गया है।

भागलपुर में पुनरागमन

नवम्बर का तृतीय सप्ताह। कोलकाता में कुछ दिन रहने के बाद मैं घर गया। घर में मेरे रोग की वेदना क्रमशः बढ़ने लगी। अतएव वहाँ फिर अधिक विलम्ब न करके पुनः भागलपुर चला आया।

खंजरपुर पुलिनपुरी में बिल्कुल गंगा के ऊपर ही मेरे रहने का कमरा है। जितने दिन तक रोग ठीक नहीं होगा इस स्थान पर ही रहूँगा, संकल्प किया। गोस्वामीजी का संग छूटने से इतने दिनों तक 'डायरी' लिखने का जो उत्साह था, एकदम ठण्डा पड़ गया! अपने दूषित जीवन का चित्र अंकित करके कोई लाभ नहीं; वरन् जो उसे देखेंगे, उनकी हानि की आशंका है। यदि गुरुदेव का दुर्लभ संग मुझे कभी पुनः प्राप्त होता है, तब मन खोलकर उनकी वही तीर्थस्वरूप पावन लीला को 'डायरी' में लिखकर कृतार्थ होऊँगा। आज से 'डायरी' लिखना बन्द कर दिया।

जनवरी, सन् 1890 ई०

बहुत दिनों बाद डायरी लिखने की प्रवृत्ति

जनवरी का मध्य भाग। आज अनेक दिन हो गए, नियमित रूप से मेरा 'डायरी' लिखने का काम बन्द है। इस एक वर्ष में कितने प्रकार की अवस्था आई और गई, सोचने से स्वप्नवत् लगता है। गुरुदेव और बारदी के ब्रह्मचारीजी ने 'डायरी' लिखने के लिए मुझे उत्साहित किया था। अब वह स्मरण करके कष्ट होता है। अपने दोषपूर्ण जीवन की घटनाओं को लिपिबद्ध करने की आवश्यकता ही क्या है, वह मैं नहीं जानता। फिर भी लगता है, अपने जीवन की विशेष-विशेष घटनाओं की आलोचना से सम्भवतः किसी समय मेरा ही कल्याण होगा। समय-समय पर स्वभाव की अधिक विकृति और चरित्र की चंचलता देखकर भविष्य में उन्नति की आशा का बिल्कुल विसर्जन कर देना पड़ता है। चारों ओर देख भी रहा हूँ, जो लोग परम पवित्र निःस्वार्थ धार्मिक होने के कारण एक समय सम्मान के योग्य थे, बुरी अवस्था में पड़कर वे लोग भी कुछ समय के बाद अन्य प्रकार के हो गए हैं। उन लोगों के बीते जीवन की तुलना में मेरा यह जीवन कितना नगण्य है! अत्यन्त तुच्छ समझकर जिन सब सामान्य प्रलोभनों को साधारण लोग भी त्याग देते हैं, देख रहा हूँ, महातेजस्वी पवित्रात्मा व्यक्ति भी प्रारब्ध के चक्र में पड़कर उसमें उलझ जा रहे हैं। अतएव मेरा फिर क्या भरोसा है? जितना ही अच्छा क्यों न रहूँ, पतित होना बहुत सहज है; फिर एक बार पतित होने पर पुनः अपने स्थान पर आना सहज नहीं है। मैं निश्चत रूप से जानता हूँ, जितने दिन तक मेरे गुरुदेव की ममतापूर्ण पवित्र मूर्ति मेरे भीतर जागृत रहेगी, उनकी स्नेहपूर्ण दृष्टि मेरी स्मृति में बनी रहेगी, उतने दिन तक मेरा पतन नहीं होगा; महात्माओं के वाक्य पर अविश्वास और गुरुदेव की कृपा का विस्मरण ही मेरे अधःपतन का कारण होगा। स्वयं को बड़ा समझकर जब सबको तुच्छ समझूँगा, तब मेरी उन्नति कैसे होगी?

यही सब चिन्ता के कारण कुछ समय से मैं बड़ा ही उद्विग्न हो रहा हूँ; लेकिन इस प्रकार की दुर्गति और अवनति होने पर हो सकता है, कभी यही 'डायरी' मेरी मनोवृत्ति को ठीक करे और सद्गति का कारण बने। अपने स्वयं के जीवन की यथार्थ घटनाओं पर तो मैं कभी अविश्वास नहीं कर सकूँगा। इस मलिन गन्दगी भरे जीवनरूपी कीचड़ में मेरे दयालु गुरुदेव की स्नेहपूर्ण दृष्टि से समय-समय पर जो मनोहर पद्म प्रस्फुटित हो जाता है, यह 'डायरी' उसे एक दिन मेरी आँखों के सामने ला देगी। दुर्दिन में गुरुदेव की स्मृति को यह 'डायरी' ही पुनः जगा देगी, इस निष्कर्ष में पहुँचकर पुनः 'डायरी' लिखने का संकल्प किया। श्रीश्री गुरुदेव के पादपद्म में मस्तक रखकर, बारदी के ब्रह्मचारीजी के पवित्र रूप का स्मरण करके इस बार पुनः जीवन की विशेष-विशेष घटनाओं को लिपिबद्ध करने में लग गया।

सत्संग-प्राप्ति : गंगा की महिमा और तर्पण में आस्था

भागलपुर में आकर भी मेरे रोग की यन्त्रणा कम नहीं हुई। मन में एक धारणा उत्पन्न हुई, अब अधिक दिन नहीं बचूँगा। संसार में मेरा आना व्यर्थ हुआ; इच्छानुसार भगवान् का नाम-जप कर नहीं पाया। इस प्रकार की दुर्भावना-दुश्चिन्ता से मुझे बड़ा असन्तोष होने लगा। तब मैं एक निर्दिष्ट नियम निर्धारित करके सारा दिन बिताने लगा।

गुरुदेव की कृपा से भजनानन्दी सत्संगी भी मुझे सहज में ही मिल गए। सुना था, ढाका कॉलेजिएट स्कूल के मास्टर श्री हरिमोहन चौधरी ने गुरुदेव से संन्यास की कुछ नियम-पद्धति ग्रहण की थी। तीव्र वैराग्य अवलम्बन करके सर्वत्यागी संन्यासी के समान पैदल चलकर अनेक स्थानों का भ्रमण करके कुछ दिन पहले वे इस भागलपुर में आ गए हैं। रास्तेभर उन्होंने हरि-संकीर्तन में भावावेश की तरंग उठाकर जनसाधारण के हृदय में धर्म का स्रोत प्रवाहित किया। भागलपुर की हरिसभा में नाम-संकीर्तन के समय स्वामीजी का असाधारण भावावेश देखकर सभी विमुग्ध हो गए। तब सब लोगों ने स्वामीजी से भागलपुर में कुछ दिन रहने के लिए अनुरोध किया। एक प्रसिद्ध वकील आदरपूर्वक स्वामीजी को अपने घर ले आए। अँग्रेजी शिक्षा-प्राप्त लोगों को भगवान् के नाम से महाभाव होता है, चेतना विलुप्त हो जाती है देखकर भागलपुर के शिक्षित सम्प्रदाय को यह बहुत ही आश्चर्यजनक लगता है। वे स्वामीजी की बहुत श्रद्धा-भक्ति करने लगे। सिद्धपुरुष कहकर स्वामीजी का नाम शहर में सर्वत्र फैल गया। स्वामीजी का एक दिन से अधिक समय तक कहीं भी रहने का नियम नहीं है; उनके लिए गुरुदेव का यही विशेष आदेश है; परन्तु हरि-संकीर्तन के लोभ में मत्त होकर स्वामीजी ने

उस आदेश का उल्लंघन कर डाला। 'मैं संन्यासी हूँ, मेरे लिए क्या विधि-निषेध?' इस प्रकार की धारणा से स्वामीजी गुरुवाक्य की अवेहलना करके वकील बाबू के घर में रहने लगे। एक ओर प्रतिदिन हरि-संकीर्तन में भावावेश के स्फुरण से जिस प्रकार वे सबको स्तम्भित करने लगे, दूसरी ओर उसी प्रकार कुसंसर्ग में पकड़कर मांस, उच्छिष्ट आदि के सम्पर्क से गुरुवाक्य का उल्लंघन करके भीतर-ही-भीतर दिनो-दिन उदास होने लगे। उसके बाद एक दिन अचानक अर्ध-विक्षिप्त अवस्था में स्वामीजी ने मेरे पास आकर कहा– "भाई मेरी रक्षा करो। मेरा सर्वनाश हो गया। संन्यास-भाव के साथ-साथ गुरुदेव ने मुझे जो अवस्था कृपा करके प्रदान की थी, वह अब नहीं रही। हाय, हाय! मैं एक नये राज्य में प्रवेश किया था, प्रतिदिन मेरे समक्ष नये-नये दृश्य प्रगट होते थे। दर्शन की अवस्था मेरी इतनी खुल गई थी कि दिनभर में आधा घण्टा भी कुछ दर्शन नहीं मिलता तो बेचैन हो जाता था। संकीर्तन में यह दर्शन और भी स्पष्ट होता था; अतएव 'कहाँ है संकीर्तन, कहाँ है संकीर्तन' कहकर घूमा करता था। गुरुदेव ने कहा था, **'सदा नाम-जप करना, इस नाम से ही सब होगा।'** फिर भी इष्ट नाम की अपेक्षा संकीर्तन की ओर मेरा झुकाव अधिक हो गया। इस संकीर्तन के लोभ से ही गुरुवाक्य और संन्यास के नियम की अवेलहना करके वकील बाबू के घर में आसन लगाया। कीर्तन में प्रतिदिन नया दर्शन होगा, इस लोभ से गुरुदेव के केवल एक आदेश का उल्लंघन करके ही मैं विपत्ति में पड़ गया हूँ। एक आदेश के उल्लंघन के साथ-साथ सभी नियम में शिथिलता आ गई। फिर अनाचार, स्वेच्छाचार से क्रमशः सब खो बैठा। कुछ दिन बीतने के साथ-साथ मेरा संकीर्तन का वह भक्ति-भाव भी शुष्क हो गया। अब मैंने कीर्तन में जाना बन्द कर दिया है; मेरा वह भाव नहीं रहा; फिर मेरे प्रति अब किसी की श्रद्धा भी नहीं रही, वरन् लोगों में अनादर का भाव ही उत्पन्न हो रहा है। मैं अब वकील बाबू के लड़कों का गृहशिक्षक होकर दिन बिता रहा हूँ। मेरा कुछ उपाय करो।"

स्वामीजी छात्रावस्था में ढाका कॉलेज में मथुर बाबू के बहुत प्रिय छात्र थे। मथुर बाबू को स्वामीजी ने अकपट रूप से अपनी दुरावस्था की बात कही तो उन्होंने दया करके स्वामीजी को हम लोगों के साथ में रखने के लिए अपने बच्चों का मास्टर नियुक्त कर लिया। वेतन 25 रुपये मासिक है; आहारादि की व्यवस्था हम लोगों के ही साथ हुई। प्रातः एवं संध्या में तीन-तीन घण्टे बच्चों को पढ़ाकर अवशिष्ट समय में स्वामीजी नियमित रूप से साधन-भजन करने लगे। हम लोग महीने के अन्त में स्वामीजी के वेतन के कुछ रुपये उनकी पत्नी को भेजने लगे। नियमपूर्वक कठोर साधन-भजन करके कुछ दिनों के भीतर ही स्वामीजी ने अपनी दुरावस्था को सुधार ली। अब स्वामीजी के साथ बड़ा ही आनन्द मिलता है।

मथुर बाबू के लिपिक श्री महाविष्णु यति हमारे ही वास-स्थान में रहते हैं। यतिवंश के होने के कारण ही लगता है, उनकी प्रकृति स्वभावतः ही सात्विक है। ऑफिस का कार्य यथारीति सम्पन्न करके वे अवशिष्ट समय धर्मानुष्ठान में व्यतीत करते हैं। त्रिसंध्यादि ब्राह्मण की नित्य-क्रिया, गंगा-स्नान एवं स्वपाक आहार करने का महाविष्णु बाबू का बहुत पहले से ही अभ्यास है। राधाकृष्ण कहने से उनकी आँखों में पानी आ जाता है। प्रायः प्रतिदिन वे राधाकृष्ण-लीला के विषय में मधुर संगीत की रचना करते हैं। ऑफिस का काम करते-करते अचानक भाव का स्फुरण होने से वे कभी-कभी अवश हो पड़ते हैं; तब ऑफिस का काम रुक जाता है। महाविष्णु बाबू मेरे साथ एक ही कमरे में रहते हैं। अतएव भागलपुर में आकर, भगवान् की कृपा से मुझे सत्संगियों का अभाव नहीं रहा।

हमारे निवास के पूर्व की ओर विशाल गंगा है– आजकल बालू निकल जाने से थोड़ा दूर हो गई है। मैं गंगा के ठीक ऊपर में ही रहता हूँ, विशुद्ध वायु का सतत् सेवन करता हूँ, परन्तु गंगा में स्नान नहीं करता। बाँधा हुआ जल स्थिर है, अतएव अधिक निर्मल है– इस युक्ति को मानकर मैं कुएँ पर ही स्नान करता हूँ। स्वामीजी और महाविष्णु बाबू मुझे पवित्र जाह्नवी का कितना माहात्म्य बतलाते हैं, मैं उसे कुसंस्कार कहकर उड़ा देता। जो हो, उन लोगों के आन्तरिक अनुरोध को टालने में असमर्थ होकर, माघ महीने की ठण्ड में सूर्योदय के पूर्व उनके साथ गंगा में स्नान करने लगा। कुछ दिन गंगा-स्नान करने से ही शरीर अच्छा हल्का, स्फूर्तिवान् लगने लगा। देखा, सूर्योदय के पूर्व गंगा-स्नान से शरीर की सारी अवसन्नता और थकावट दूर हो जाती है एवं मन भी मानो शीतल हो जाता है। प्रफुल्लता और पवित्रता स्नान के साथ-साथ अन्तःकरण में छा जाती है; भगवान् के नाम का जप सहज भाव से अपने-आप हुआ करता है। यह सब स्पष्ट रूप से अनुभव करने लगा। एक दिन स्नान करते-करते अचानक मेरे जातिगत एवं वंशगत संस्कार ने आकर मुझे अभिभूत कर डाला। ऐसा लगा कि गंगाजल को स्पर्श करके पिता, पितामह आदि पूर्वज 'उद्धार हो गया' सोचकर बहुत प्रसन्न हुए! प्राचीनकाल में योगी-ऋषियों ने इस गंगाजल में भगवान् की कितनी आराधना-उपासना की है! पता नहीं, क्या गुण देखकर वे लोग इन्हें पतितपावनी, मोक्षदायिनी कहकर स्तुति कर गए हैं! परलोक में रहकर यह गंगाजल मिलने से अब उन्हें कितना आनन्द होगा! आज मैं उन लोगों के उद्देश्य से अँजलि भरकर गंगाजल देता हूँ। यह सोचकर मुझे रोना आ गया। ऐसा लगा, मानो कितने योगी-ऋषि, देवी-देवता एवं मेरे पूर्वज आकाश में रहकर आज मुझको आशीर्वाद दे रहे हैं। मैं दोनों हाथ से जल उठाकर उन लोगों का स्मरण करके ऊपर की ओर निक्षेप करने लगा। इससे मुझे बड़ा आनन्द मिला। देवी-देवता, ऋषि-मुनि और पितृ-पुरुषगण आज

मेरे कार्य से सन्तुष्ट हुए हैं– इस प्रकार की कल्पना से मेरा सारा दिन उत्साह और आनन्द से बीता। कल्पना होने पर भी इस आनन्द का लोभ मैं छोड़ न सका। प्रतिदिन गंगा-स्नान के समय उन लोगों के उद्देश्य से जल देने लगा। बाद में फिर एक दिन लगा– जल जब दे ही रहा हूँ, तो निर्दिष्ट प्रणाली से क्यों न दूँ? शास्त्रोक्त प्रणाली के अनुसार उन लोगों का नाम लेकर जल देने से तो उन्हें अधिक सन्तोष और आनन्द होगा। यह सोचकर मैंने नित्यकर्म की तर्पण-प्रणाली कण्ठस्थ कर ली। उस दिन से मैं प्रतिदिन प्रणाली के अनुसार नियमित तर्पण करता आ रहा हूँ।

तन्द्रावेश में चक्र-शक्ति की अनुभूति

जनवरी। रात्रि में भोजन के बाद आज स्वामीजी के साथ एक ही बिछौने में लेटकर गुरुदेव के सम्बन्ध चर्चा करते-करते मुझे झपकी लग गई। देखा– स्वामीजी ने पैर के अँगूठे द्वारा मेरे निम्न-प्रदेश को दबाते हुए कहा– 'यह स्थान मूलाधार है; प्राणायाम द्वारा यहाँ से शक्ति को आकर्षित करके ऊपर की ओर सहस्रार में ले जाओ; समाधि लग जाएगी।' उनके कथनानुसार दो-चार बार प्राणायाम करते-करते ही मूलाधार चक्र खिंचकर ऊपर की ओर संकुचित हो उठा। उसी समय उस चक्र से एक शक्ति मेरुदण्ड के भीतर से होकर सर्-सर् करके ऊपर की ओर चलने लगी। उस शक्ति की अबाध गति के साथ-साथ मेरी नस-नाड़ियाँ मानो फटने लगीं। मैं एक भयंकर यन्त्रणा का अनुभव करने लगा। इस समय प्राणायाम को रोकने का प्रयास किया, परन्तु रोक न सका। एक अदम्य शक्ति मुझे अवश करके रह-रहकर प्राणायाम की श्वास चलाने लगी। प्रत्येक श्वास के साथ-साथ शक्ति ऊर्ध्वगामी होकर ऊपर के कुछ चक्रों के आवरण को भेद दी। ऐसा लगा, मानो नस-नाड़ियों के साथ-साथ मेरे भीतर जो कुछ है, सब छिन्न-भिन्न हो गया। 'ऊह, ऊह' के सिवा उस समय मेरी और कुछ कहने की क्षमता नहीं रही। यातना से बेचैन होकर मैं धीरे-धीरे मूर्च्छित-सा हो गया। कुछ क्षण बाद यह शक्ति पथ न मिलने से चक्कर लगाकर अचानक नीचे आ गई। इस समय बड़ा आराम लगा, लेकिन इस अवस्था को क्षणभर के लिए ही अनुभव किया। दूसरे क्षण में ही पुनः वह शक्ति मानो और भी प्रबल वेग से सर्-सर् करके ऊपर की ओर दौड़ी। कुछ समय तक शक्ति के इस प्रकार बारम्बार ऊपर-नीचे आवागमन से मैं बिल्कुल अवसन्न हो गया। अचानक यह शक्ति एक बार बड़े वेग से उठकर अपने स्थान पर जाकर एकाएक ठहर गई। तब परमानन्द-सागर में मानो मैं बिल्कुल डूब गया। फिर कहने के लिए कुछ नहीं रहा। कब तक यह अवस्था स्थायी रही, पता नहीं।

बाद में, पुनः इस शक्ति के मूलाधार में उतरकर आ जाने पर मुझे चैतन्य हुआ। देखा, सारा शरीर पसीने से लथपथ और अवसन्न हो गया है। बहुत संक्षेप में प्रत्यक्ष अनुभूति के क्रम को केवल संकेत में लिख लिया हूँ। इस समय स्वामीजी अचानक जाग उठे एवं कहने लगे– 'भाई, ये कैसा स्वप्न देखा? गुरुजी तुम्हारे भीतर मानो कुछ प्रक्रिया कर रहे हैं। कुछ क्षण चेष्टा करके फिर कलाई हिलाकर खेद व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा– **ओहो! पूरा हुआ नहीं, थोड़ा रह गया।**'

विचित्र सूर्य-मण्डल का दर्शन

अब प्रतिदिन ही मैं रात्रि में 3 बजे उठकर शौचादि का कार्य सम्पन्न करके साढ़े 3 बजे से लेकर प्रातः 6 बजे तक नाम-जप, प्राणायाम और कुम्भक करता हूँ। स्नान के बाद स्वामीजी और विष्णु बाबू के साथ चाय-नास्ता ग्रहण करके 7 बजे से 10 बजे तक निर्जन बगीचे में बैठकर त्राटक साधना करता हूँ। आहार के बाद, निवास-स्थान से कुछ दूरी पर गंगा के किनारे स्थित निर्जन शिव मन्दिर में प्रतिदिन जाकर 12 से 5 बजे तक का समय एकान्त साधना में व्यतीत करता हूँ। अपराह्न में हमारे निवास-स्थान पर अनेक सज्जनों का समागम होता है। संध्या तक महाविष्णु बाबू व स्वामीजी उन लोगों के साथ धर्मालोचना और संकीर्तन करते हैं। रात्रि भोजन के बाद नींद न आने तक हम लोगों के धर्म-प्रसंग में विराम नहीं होता। बीच-बीच में हम लोग रात्रि में बगीचे में जाकर तमाल के पेड़ के नीचे बैठते हैं। गहन रात्रि में जंगल के भीतर सामने धूनी रखकर नाम-जप करते-करते बड़ा आराम मिलता है। रात-दिन ही हम लोगों का मानो कोई धर्मोत्सव चलता है।

पूर्वोक्त स्वप्न की घटना के बाद से साधना में मेरा उत्साह और बढ़ गया। नाम जपने के साथ-साथ अनजाने में ही गुरुदेव का रूप मन में आ जाने लगा। गुरुदेव ने कहा था– **'कल्पना कभी मत करना। नाम-जप करते-करते सत्य वस्तु अपने-आप प्रगट होगी।'** मैं कल्पना कभी नहीं करता। फिर भी थोड़ा स्थिर होकर नाम जपने से बिना प्रयास के ही अनजाने में गुरुदेव का रूप अपने-आप अन्तःकरण में आ जाता है। तब उससे इतना आनन्द मिलता है कि कल्पना होने पर भी उसका त्याग करना फिर सम्भव नहीं हो पाता।

इस बीच एक दिन भोर में गंगा-स्नान करके नाम-जप करते-करते स्वामीजी के साथ निवास-स्थान पर लौट रहा था, मन गुरुदेव के मनोहर रूप में लीन है– अचानक ललाट के मध्य नीले आकाश में विद्युत के समान तेजोमय असंख्य शुभ्र ज्योति से समन्वित अपूर्व सूर्य-मण्डल झक्झक् करके उदित हुआ। केवल कुछ सेकेण्ड उसकी ओर देखने से ही मैं 'जयगुरु, जयगुरु' कहते-कहते अवश होकर

बालू के ऊपर गिर पड़ा। ..... साधना के राज्य में कितना कुछ है, पता नहीं। यह सब देखकर चकित हो जाता हूँ।

साधना में अक्षमता के कारण कौशल करना

गंगा-स्नान की विशेषता से अथवा दर्शन के लोभ से साधना में मेरा उत्साह बढ़ गया है। प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में निरन्तर नाम जपने का आदेश गुरुदेव ने दिया है; परन्तु बहुत प्रयत्न करने के बाद भी देख रहा हूँ, मैं वह नहीं कर पाता। प्रतिदिन प्रातः उठकर, श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करूँगा सोचकर दृढ़ता के साथ लग जाता हूँ; पर लक्ष्य स्थिर होते-होते कुछ ही क्षण में देखता हूँ, अनजाने में मन कहीं और चला गया है। बार-बार इसी प्रकार प्रयास करके हैरान हो जाता हूँ। श्वास-प्रश्वास में नाम जपने का अभ्यास किसी प्रकार भी नहीं कर पा रहा हूँ। बहुत चेष्टा करके भी जब वह नहीं कर सका, तब अन्य एक कौशल का अवलम्बन करके गुरुदेव के आदेश पालन करने का निश्चय किया। दिन-रात में जितनी संख्या में श्वास-प्रश्वास हुआ करते हैं, उतना नाम-जप करने का संकल्प किया। फिर गुरुदेव कृपा करके प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के ऊपर उसे बैठा लेंगे तो मेरा प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना हो जाएगा। इस प्रकार बुद्धि लगाकर 21,600 बार नाम-जप करने लगा। यदि श्वास-प्रश्वास की संख्या कहीं बढ़ जाए, इस आशंका से जप-संख्या बढ़ाकर प्रायः 30-32 हजार बार नाम-जप करने लगा। कर और माला में नाम-जप इतना अभ्यस्त हो गया है कि निद्रित अवस्था में भी अपने-आप मेरा कर बदल जाता है, यह दूसरों से सुनता हूँ। संख्या पूर्ण करने में व्यस्त रहने के कारण अब दिनभर किसी से बात करने का अवसर नहीं मिलता। बाहर से बहुत स्थिर रहने पर भी, संख्या पूर्ण करने की चेष्टा से भीतर-ही-भीतर बहुत बेचैन हो जाता हूँ। इसलिए कई बार माथा गरम हो जाता है। गुरुदेव ने कहा था– **'हम लोगों की साधना में श्वास-प्रश्वास ही नाम-जप की माला है।'** जब किसी प्रकार भी उसका पालन नहीं कर पा रहा हूँ, तब सुविधा देखकर बाहर माला ग्रहण न करूँ तो और क्या करूँ? पता नहीं, गुरुदेव मेरे इस कौशलपूर्वक साधारण प्रणाली के अनुसार साधना करने का समर्थन करेंगे या नहीं।

त्राटक साधना में दर्शन का क्रम

त्राटक साधना बहुत समय से करता आ रहा हूँ। गत वर्ष से इस साधना के समय कई प्रकार के दर्शन होने लगे। अब तक जितने प्रकार के दर्शन हुए हैं, क्रमानुसार उन्हें यहाँ लिख रहा हूँ।

1. साधना के समय लक्ष्य-स्थल पर चार-पाँच इंच परिमाण के घड़ी के स्प्रिंग के समान बहुत-सी सतह वाले गोलाकार अत्यन्त चंचल घने कृष्णवर्ण के चार-पाँच चक्र निरन्तर गति से बाईं ओर एवं फिर क्षणभर के भीतर ही दाहिनी ओर बड़े तीव्र वेग से घूमते रहते हैं, कुछ दिन यह दर्शन किया।

2. दृष्टि स्थिर करते-करते फिर देखा, उन चक्रों का आयतन कम हो गया। फिर वे आपस में मिलकर केवल एक मण्डलाकार चक्र में परिणत हो गए एवं उस मण्डल के बीच में सरसों के समान छोटे-छोटे असंख्य ज्योतिर्बिन्दु प्रगट हो गए। उसके चारों पार्श्व में उज्ज्वल हीरे के समान चार ज्योति-खण्ड झिलमिलाने लगे। मण्डल के मध्य स्थल में अपेक्षाकृत बड़े आकार के अत्यन्त उज्ज्वल ज्योतिर्बिम्ब से लगातार ज्योति के बुलबुले निकलने लगे। प्रायः तीन-चार महीने तक साधना के समय इसी प्रकार दर्शन होता रहा।

3. जनवरी के द्वितीय सप्ताह के बाद वह दर्शन अन्य प्रकार का हो गया। घने कृष्णवर्ण के छः इंच परिमाण के एक मण्डल के मध्य स्थल में श्वेत उज्ज्वल तेजयुक्त वलय दिखलाई पड़ा। उसको आधे इंच परिमाण की 12 शुभ्र ज्योति-समन्वित अंगुठियाँ, मण्डल के भीतर ही समान अन्तर में घेरी हुई हैं। लगभग तीन महीने तक इसी प्रकार दर्शन किया।

4. उसमें दृष्टि स्थिर होते-होते अब वह अन्य आकार धारण कर लेता है। कुछ सेकेण्ड के लिए नेत्र थोड़ा स्थिर करके देखने से ही पाँच-छः इंच परिमाण का ज्योतिर्मय श्वेत उज्ज्वल सम-चतुर्भुज यन्त्र वृत्ताकार मण्डल के बीच दिखलाई पड़ता है। कुछ क्षण उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देखने पर वह एक मटर के आयतन में संकीर्ण होकर अधिक घने और उज्ज्वल रूप में प्रकाशित हुआ करता है। जहाँ-तहाँ, किसी भी अवस्था में, दिन और रात जब कभी भी थोड़ा दृष्टि स्थिर करते ही इस ज्योति का दर्शन हो रहा है।

त्राटक साधना के प्रथम स्तर में क्षिति (पृथ्वीतत्त्व) पर ही अब तक दृष्टि स्थिर करता आ रहा हूँ। गुरुदेव की व्यवस्था के अनुसार उसके साथ अब व्योम (आकाशतत्त्व) में दृष्टि रखना आरम्भ किया हूँ।

तर्पण में छायारूप का दर्शन: कुत्ते की घटना

1 फरवरी, शनिवार। ब्रह्ममुहूर्त में जब गंगा-स्नान करने जाता हूँ, तब रास्ते में प्रतिदिन ही मुझे लगता है, जैसे देवगण, ऋषिगण और पितृ-पुरुषगण मेरे हाथ से गंगाजल पाने के लिए साथ-साथ चल रहे हैं। स्नान करके हाथ जोड़कर ऊपर की ओर देखते हुए उन लोगों का आह्वान करते ही मुझे रोना आ जाता है। पितृ-तर्पण के समय प्रत्येक अँजलि जल देने के साथ-साथ उस जल के ऊपर अँगूठे के माप की मनुष्य आकृति की अस्पष्ट चंचल छाया का दर्शन करता हूँ। देव-तर्पण और ऋषि-तर्पण के समय ऐसी छाया को कल्पना करके भी आँखों के सामने ला नहीं पाता। पितृ-तर्पण हो जाने पर वह छाया क्षणभर भी ठहरती नहीं।

आज देव-तर्पण और ऋषि-तर्पण करने के बाद पितृ-तर्पण करते समय 10-12 फीट की दूरी पर गंगा के किनारे एक बड़े कुत्ते को सतृष्ण दृष्टि से अपनी ओर ताकते हुए देखा। सूर्योदय के पहले भयंकर ठण्ड में वह कुत्ता पानी में उतरकर धीरे-धीरे मेरी ओर आने लगा। स्वामीजी और महाविष्णु बाबू ने उसको भगाने का प्रयास किया तो कुत्ते ने बड़े कोमल कण्ठ से अत्यन्त कातर स्वर में एक ऐसा क्लेशपूर्ण शब्द निकाला कि उसे सुनकर उन्होंने फिर उसको रोका नहीं। माघ महीने की इस ठण्ड में प्रातः के समय गंगा में प्रवेश करने से मनुष्य अवश हो पड़ता है, फिर कुत्ता सहज में गले तक पानी में डूबकर मेरे दाहिनी ओर लगभग डेढ़ फीट की दूरी पर आकर खड़ा हो गया; उसके बाद तर्पण का जल गंगा के प्रवाह में गिरकर जैसे ही बहने लगा, वह कुत्ता मुख फैलाकर बार-बार आग्रहपूर्वक उसमें झपटा मारने लगा। कुछ क्षण इस प्रकार करने के बाद वह बाहर आ गया। मैं भी तर्पण समाप्त करके उसी समय किनारे पर आ गया; किन्तु आश्चर्य का विषय यह है कि हम तीनों ने बालू के विस्तृत मैदान में चारों ओर देखा, पर वह कुत्ता कहीं दिखा नहीं! द्रुतगामी घोड़ा भी इतने कम समय में इस विशाल मैदान को पार करके अदृश्य नहीं हो सकता। दिनभर कुत्ते की बात मन में आती रही।

भागलपुर में साधु पार्वतीबाबू: इष्टदेव को प्रसन्न रखना ही साधना और सदाचार का उद्देश्य

भागलपुर के जन-समाज में श्री पार्वतीचरण मुखोपाध्याय नाम के एक सदाचारी निष्ठावान् ब्राह्मण हैं। शहर के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी श्रेणी के लोग परम धार्मिक महात्मा कहकर उनकी श्रद्धा-भक्ति करते हैं। स्वामीजी और महाविष्णु बाबू के साथ मैं उनका दर्शन करने गया। प्राचीनकाल के ऋषियों के

तपोवन का जिस प्रकार वर्णन सुना है, पार्वतीबाबू का आश्रम भी वैसा ही देखा। निर्जन बगीचा नाना प्रकार के फल-फूल से सुशोभित है, शृंखलाबद्ध विविध प्रकार के वृक्षों से घिरा हुआ है। वहाँ पहुँचते ही इच्छा हुई कि किसी स्थान पर बैठकर नाम-जप करूँ। वृक्ष-लता के साथ पूरा आश्रम मानो भगवत्-भाव से परिपूर्ण है। लोकालय में ऐसा सुन्दर तपोवन कहीं देखा नहीं। पार्वतीबाबू की भजन कुटीर विस्तृत बगीचे के एक ओर स्थित है। पार्वतीबाबू को भी देखकर ऐसा लगा, मानो किसी ऋषि का दर्शन किया। रक्तिम गौरवर्ण के ज्योतिर्मय शरीर में मानो तेजस्विता एवं पवित्रता मिश्रित है। वे बारहों महीने प्रतिदिन सूर्योदय के पूर्व गंगा-स्नान और संध्या-तर्पण आदि करके आश्रम में प्रवेश करते हैं, फिर शालग्राम और पंचदेवता की पूजा करके चण्डी, गीता, उपनिषदादि धर्मशास्त्र का पाठ करके होम किया करते हैं; 11 बजे आसन से उठकर स्वपाक हविष्यान्न ग्रहण करते हैं; उसके बाद एक घण्टा विश्राम करके कुटिया के बरामदे में बैठते हैं एवं भगवत्-भाव में अभिभूत होकर सारा दिन ध्यान-धारण में व्यतीत करते हैं। रात्रि में भी केवल कुछ समय सो लेने के बाद, अवशिष्ट रात्रि इष्ट-स्मरण में व्यतीत कर देते हैं। आज 42 वर्ष से वे इसी नियम से हैं। सुना है, एक दिन के लिए भी उनके नियमित कार्य में विघ्न नहीं हुआ। षड्दर्शन के ये अगाध पण्डित हैं; पुराण, उपनिषदादि शास्त्र ग्रन्थों में इनका असीम विश्वास है; फिर बाइबिल, कुरानादि का भी ये श्रद्धा के साथ पाठ किया करते हैं। यहाँ के शिक्षित लोग इन्हें 'थियोसॉफिष्ट' कहते हैं। 'थियोसॉफी' के अनेक संवादपत्रादि का ढेर इनके आसन के पास रखा हुआ देखा। अपनी भजन-पद्धति के प्रति तत्पर और निष्ठावान् रहकर सभी सम्प्रदाय के धर्मार्थियों पर किस प्रकार ऐसी श्रद्धा-भक्ति करते हैं, यह बड़ा आश्चर्यजनक लगा। पार्वतीबाबू भक्त हैं या ज्ञानी, समझ नहीं पाया। भक्ति की बात करते-करते वे रोकर व्याकुल हो जाते हैं; फिर ज्ञान की आलोचना के समय स्वयं ब्रह्म होकर बैठते हैं। सरल मन से, बिना जाति-विचार के, विनयपूर्वक हाथ जोड़कर सभी को प्रणाम करते हैं। पार्वतीबाबू से मिलकर मुझे बहुत ही अच्छा लगा। सप्ताह में दो बार तो मैं उनके पास जाया ही करता हूँ। पार्वतीबाबू का भी असाधारण स्नेह मुझे मिला। वे मुझे उपनिषद् का मर्म समझाने की इच्छा से बहुत संक्षेप में सांख्य, पातंजल आदि के मतों का उपदेश देने लगे।

ऋषि-प्रणीत ग्रन्थों की विवेचना से शास्त्र-सदाचार में मेरी निष्ठा बढ़ गई। उसके फलस्वरूप प्रत्येक पग पर, प्रत्येक कार्य में मैं विचार करके चलने लगा। शुद्धाचार में रहकर बड़े उत्साह के साथ नियम-निष्ठापूर्वक साधन-भजन करने का फल मैं गुरुदेव की कृपा से आश्चर्यजनक रूप से प्रत्यक्ष कर रहा था; लेकिन कुछ दिन के बाद इस दर्शन-शास्त्र के व्यष्टि, समष्टि और घट-घटादि के विचार-वितर्क

से मेरा अन्तःकरण धीरे-धीरे शुष्क और संशयपूर्ण हो गया। गुरुदेव की असाधारण कृपा के ऊपर भी मैं विचार करने लगा। तब उनके द्वारा प्रदत्त अप्राकृत साधन-राज्य में भूकम्प से महाप्रलय का संकेत मिला। अपने स्मरण के लिए इन सब अवस्थाओं की भूमिका लिखकर रख रहा हूँ। दो-चार पुराणों का पाठ करके और दर्शन-शास्त्र की थोड़ी-बहुत आलोचना सुनकर, 'साधना करने की आवश्यकता क्या है?' यह सन्देह उत्पन्न हो गया। 'पुरुषकार के अनुष्ठान अथवा प्रारब्ध के भोग को लेकर ही यह पूरा संसार चल रहा है' पुराणादि में भी तो यही देख रहा हूँ; परन्तु पुरुषकार के द्वारा ही यदि प्रारब्ध का उद्‌भव अवश्यम्भावी होता है, तब तो उसका फलाफल बड़ा अनिश्चित हो जाता है। क्योंकि असदनुष्ठान से दुर्भोग, सदनुष्ठान से निवृत्त होने पर प्रारब्ध का कोई भोग निर्दिष्ट अथवा स्थायी निश्चित नहीं हो सकता। फिर यह प्रारब्ध ही यदि कार्य की प्रवृत्ति अथवा उसके अनुष्ठान का हेतु होता है, तब पुरुषकार की बात तो बिल्कुल ही अर्थहीन बात हो जाती है। फिर पुरुषकार द्वारा भोग की सृष्टि होती है, इस बात को स्वीकार न करें तो भोग आया कहाँ से? और यदि प्रारब्ध ही सम्पूर्ण कार्य और भोगादि का हेतु होता है, तब तो उस प्रारब्ध के अर्थ को मूलतः भगवत् इच्छा के सिवा और क्या कहूँगा? उनकी ही इच्छा से प्रारब्ध की सृष्टि हुई है एवं कार्य और भोग हो रहा है। जीव की प्रारब्ध के सिवा कोई स्वतंत्र अथवा स्वाधीन इच्छा नहीं है। अतएव लगता है, सभी भगवत् इच्छा से हो रहा है; जीव केवल द्रष्टा और भोक्ता है। ऐसा होने से साधन-भजन फिर क्यों करूँ; नियम, निष्ठा एवं सदाचार से रहते हुए इतनी अशान्ति व उद्वेग का भोग ही क्यों कर रहा हूँ? गुरुदेव ने स्वयं ही कहा था कि अब मेरी कोई स्वाधीनता ही नहीं है, मैं उनकी गर्भस्थ सन्तान हूँ; तब तो केवल जो मेरे भीतर संचारित हो रहा है, उसका ही मैं भोग करता हूँ। गर्भस्थ सन्तान की देह की पुष्टि और जीवन-धारण कुछ भी उसके स्वयं के प्रयास से नहीं होता; वह साधारणतः गर्भधारिणी के स्वास्थ्य और सम्पूर्ण रूप से भगवत् इच्छा के ऊपर निर्भर करता है। सन्तान के अंग संचालन से गर्भधारिणी को क्लेश होता है, यह प्रत्यक्ष सत्य है; नियम, सदाचार, साधन-भजन एवं गुरुवाक्य के पालन से देह-मन स्थिर रहता है; अतएव उससे गर्भिणी शान्ति से रहती है; फिर उल्टा-सीधा आचरण करने से, जो इच्छा हो वही करने से देह और मन की चंचलता के साथ-साथ गर्भधारिणी को यन्त्रणा हुआ करती है। अतएव देख रहा हूँ, नियम व सदाचार से रहने का एवं साधन-भजन करने का अब कोई प्रयोजन ही नहीं है; केवल स्वयं स्थिर रहकर आधारस्वरूप जननी को स्वस्थ रखना ही इन सबका उद्देश्य है। अनियम व स्वेच्छाचार से चलकर, उद्दण्डतापूर्वक हाथ-पैर हिलाने-डुलाने से जननी को बहुत यन्त्रणा होगी, यह भाव अन्तःकरण में उदित हुआ; साथ-साथ

इस प्रकार का संस्कार भी मन में दृढ़ हो गया कि मेरे प्रत्येक कार्य, प्रत्येक कदम को श्री गुरुदेव अनुभव कर रहे हैं। मैं जितना ही नियम और सदाचार से रहूँगा एवं साधन-भजन करूँगा, गुरुदेव उतना ही स्वस्थ रहेंगे और आनन्द प्राप्त करेंगे। स्वयं की उन्नति के लिए साधन-भजन नहीं है; गर्भधारिणी जननी को आराम में रखना ही नियम-निष्ठा और साधन-भजन का उद्देश्य है।

कर्म ही धर्म है

फरवरी के आरम्भ से मध्य तक। गुरुदेव की अद्‌भुत कृपा से जो सब कल्पनातीत भाव मेरे भीतर में संचारित होकर मुझे बड़े उत्साह के साथ उसमें नियुक्त कर रहा है, अपनी भ्रान्त बुद्धि को गुरुदेव के उसी भाव के अनुगामी करके विचार द्वारा उसे प्रमाणित करने का प्रयास किया कि ज्ञान का अंकुरण हुए बिना तत्त्व के विचार अथवा विवेचना का प्रयास यद्यपि मूर्खता अथवा वाचालता के सिवा और कुछ नहीं है, तथापि जिन सब उल्टी-सीधी जल्पना-कल्पना से मुझे अपने गुरुदेव की इच्छानुसार चलने में कोई दुविधा नहीं हो रही है, उन सबके साथ इस जीवन का विशेष सम्बन्ध होने से उसे यहाँ बहुत संक्षेप में लिखकर रख रहा हूँ। इस समय मुझे लग रहा है– कर्म ही सार है। कर्म ही धर्म है; कर्म नहीं करने से कुछ नहीं होगा। कर्म के द्वारा जीव की वासना पूर्णतः तृप्त होकर क्षीण होती है एवं उसी से अन्त में जीव की स्वरूप अवस्था प्राप्त होने पर मुक्ति हो जाती है। अब किस प्रकार के कर्म से किसकी वासना का क्षय होगा, वह कैसे ज्ञात होगा? कर्म से बन्धन होता है, शास्त्र में ऐसा उपदेश भी तो देखा हूँ। शास्त्र-वाक्य जब अभ्रान्त है, तब उसके साथ मेरे इस सिद्धान्त का सामंजस्य कहाँ है?

वासना के अनुरूप कर्म के फलभोग से ही जब जीव की पूर्णतृप्ति में स्वरूप की प्राप्ति होती है, तब वह वासनानुरूप कर्म ही उसके लिए कल्याणकर अथवा स्वाभाविक धर्म है! वासना के अनुरूप भोग के निमित्त कोई जीव तो सत्त्वगुण का आश्रय लेकर अच्छे कर्म द्वारा भोग की समाप्ति से स्वरूप अवस्था प्राप्त करता है, फिर कोई अन्य प्रकार से भोग की कल्पना द्वारा उसके अनुरूप रजो-तमोगुण की सहायता से भोग की तृप्ति प्राप्त करके मूल अवस्था में पहुँचता है। कौन-सा जीव किस प्रकार से किस कर्म के द्वारा अपनी वासना का क्षय करते हुए मुक्ति के पथ में अग्रसर होगा, वह कोई निश्चित नहीं है। अच्छे कर्म द्वारा जिस प्रकार सत्त्वगुण का आश्रय लेने वाले का कल्याण हो रहा है, उसी प्रकार बुरे या असत्कर्म द्वारा भी रजो-तमोगुण से आक्रान्त जीव की वासना के क्षय होने से उपकार हो रहा है। संध्या, वन्दना, यज्ञ, तपस्यादि करके जिस प्रकार एक व्यक्ति का परम मंगल हो रहा है, फिर उसी प्रकार हो सकता है, उसके सम्पूर्ण विपरीत कार्यों के अनुष्ठान

से किसी अन्य का बहुत कल्याण हो रहा है। किसी जीव की मुक्ति के लिए जिस प्रकार केवल सत्कर्म का प्रयोजन है, उसी प्रकार किसी जीव की मुक्ति का कारण असत्कर्म की आवश्यकता भी रह सकती है। गीता (3/35) में कहा गया है–

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।'

(अपने धर्म में तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय देने वाला है।)

वासना के अनुरूप भोग के लिए जिन समस्त गुणों का अवलम्बन करके जीव कार्य में प्रवृत्त होता है, वही जीव का स्वधर्म है, जीव का व्यक्तिगत धर्म है। इस धर्म में प्रवृत्त होकर जीव सम्पूर्ण रूप से सफल हुए बिना यदि विनाश को प्राप्त होता है, तो भी वह मंगलकारी है; क्योंकि वासना में आंशिक तृप्ति से जीव अपनी स्वरूप अवस्था की ओर ही थोड़ा अग्रसर हुआ; लेकिन गुणों की स्वाभाविक प्रवृत्ति के विरुद्ध कार्य करने से बहुत सात्विक होने पर भी उसके द्वारा जीव का कोई कल्याण नहीं होता। उससे जीव की वासना के अनुरूप भोग की तृप्ति नहीं होती, मुक्ति भी नहीं होती। लोग जिसे अधर्म कहते है, पाप कहते हैं, अपराध कहते हैं, कोई उसी का अनुष्ठान करके आत्मज्ञान-प्राप्ति के पथ पर अग्रसर हो सकता है; फिर स्वभाव के विरुद्ध सद्धर्म में कालयापन करके, पूजा, वन्दना और परोपकारादि करके परधर्म के अनुष्ठान के फल से अपनी स्वरूप अवस्था से और दूर जाकर कर्मों में और भी आबद्ध हो सकता है। किसी जीव के पक्ष में साधारण पाप भी धर्म हो जाता है और साधारण धर्म भी पाप हो जाता है। अतएव पाप-पुण्य की ओर किसी प्रकार की धारणा न रखकर केवल भीतर के अदम्य वासनारूपी कर्म को ही करते जाऊँ, उससे ही धीरे-धीरे वासना की पूर्ण तृप्ति से अन्तःकरण के द्वंद की निवृत्ति होगी एवं मुक्ति मिल जाएगी। बारदी के ब्रह्मचारी को जीवन्मुक्त महापुरुष कहा जाता है, सुना हूँ। उनके गुरुदेव ने उन्हें वासना के अनुरूप भोग की निवृत्ति करवाने के लिए लोकाचार-विरुद्ध कार्य में कौशलपूर्वक नियुक्त किया था। रात-दिन उसमें इच्छानुसार अनुरक्त रहकर भी बहुत कम दिनों के भीतर ही उनकी उस आकांक्षा की सम्पूर्ण निवृत्ति हो गई थी। इस प्रकार के और भी बहुत-से दृष्टान्त हैं। वासना से ही देह की उत्पत्ति हुई है; देह केवल कर्म का ही यन्त्र है; कर्म के लिए ही आया है। कर्म ही धर्म है एवं कर्म से ही मुक्ति मिलती है।

संस्काररहित बुद्धि से इस प्रकार का सिद्धान्त लेकर अविश्राम कर्म करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई; अतएव अत्यधिक कर्म करने लगा। किस प्रकार के कर्म से मेरी वासना प्रेरित होगी, उसे देखने के लिए नाना प्रकार के कर्म करने लगा। मध्याह्न में ऑफिस जाकर काम सीखने लगा। अपराह्न में मथुर बाबू की विस्तृत गृहस्थी की समस्त नियम-व्यवस्था में नियुक्ति हो गया। इससे मेरे ऊपर कर्म का

दबाव इतना बढ़ गया कि दिनभर में मेरे पास थोड़ा भी समय नहीं रहता। प्रातःकाल में एवं रात्रि में नाम-जप की निर्दिष्ट संख्या को पूर्ण करने लगा। लगातार अत्यधिक श्रम से मेरे रोग की वेदना और भी बढ़ गई। क्रमशः शरीर की अवसन्नता बढ़ने के साथ-साथ कर्म की आकांक्षा भी कम होने लगी। जिन सब कर्मों में मेरी प्रबल आकांक्षा थी, मन में उत्साह था, उसमें धीरे-धीरे निस्तेज भाव, विरक्ति और क्लेश का अनुभव होने लगा। मैंने ऑफिस जाना बन्द कर दिया, गृहस्थी के भी सब कर्म से उदासीन हो गया। ठीक इसी समय एक साधु के निष्काम अनुष्ठान को देखकर मेरे भीतर कर्म के सम्बन्ध में फिर एक बड़ी हलचल आरम्भ हो गई।

पगले साधु का निष्काम कर्म

हमारे निवास-स्थान के सामने, गंगा के उस पार बालू के ऊपर एक व्यक्ति दिनभर पड़ा रहता है। सभी उसे 'पागल' कहकर पुकारते हैं। पगला कभी गंगा के किनारे बैठा रहता है तो कभी तप्त बालू के ऊपर सोया रहता है, फिर कभी अपने मन से वहाँ दौड़-धूप करता है। वह किसी के साथ बातचीत नहीं करता। रात्रि में गंगा के किनारे शिव मन्दिर में जाकर पड़ा रहता है।

एक दिन देखा, पगला एक वृक्ष की कटी हुई डाल कहीं से उठा लाया है। गंगा से दो-तीन मिनट की दूरी पर उसे बालू के मैदान में गाड़ दिया है एवं एक बड़े घड़े में गंगा से पानी ला-लाकर लगातार उसकी जड़ में डाल रहा है। प्रातःकाल से संध्या तक पागल का यह कार्य रुका नहीं। बीच-बीच दम लेने के लिए थोड़ा बैठता है, फिर तुरन्त मानो पीछे से किसी की डाँट खाकर, घड़ा कन्धे में लेकर एकदम से दौड़ता एवं गंगा से पानी लाकर डाल की जड़ में डालता है। सूर्योदय से सूर्यास्त तक तीन दिन इसी प्रकार कठोर श्रम करने के बाद उसने जब देखा कि डाल बची नहीं, सूख गई है, तब घड़ा फेंककर एक ओर भागते-भागते वह अदृश्य हो गया। पागल को फिर वहाँ देखा नहीं; कहाँ चला गया, यह भी कोई बता न सका। पगला मेरी ओर बड़े स्नेह से देखता था! पगला का उस कटी हुई डाल की जड़ में पानी डालना मानो बहुत ही आवश्यक काम है, पगला इस प्रकार का भाव दिखलाता था। यह पगला एक अच्छा साधु है, उसके कुछ निःस्वार्थ कार्य से इस बात का प्रमाण मिला। वह चावल, छोला या भुट्टा आदि जो कुछ पाता, पक्षियों को डाल देता था; घोंघा, झींगा आदि जो तरंग के साथ बहकर किनारे आ जाते, पगला उसे उठाकर गंगा में डाल देता था– इत्यादि। पागल के उपरोक्त कार्य को देखकर मेरे भीतर कर्म के सम्बन्ध में फिर एक समस्या आ गई।

निष्काम कर्म ही धर्म है

लगता है, पंचभूत के संयोग से त्रिगुण की क्रिया के सम्पादित होने का नाम ही कर्म है। इस कर्म में भोग की इच्छा होने से या वासनाजड़ित होने से वह सकाम होता है और भोग-लालसारहित या वासनाविहीन होने से वह निष्काम होता है। जीव की वासना को गुण के साथ मिलाकर गुण द्वारा पंचभूत से सम्पादित सकाम कर्म से जीव की स्वरूप अवस्था प्राप्त करना बड़ा ही कठिन काम है; सामान्य सुख-प्राप्ति की चेष्टा में कितना दुःख सहना पड़ता है, क्षणिक भोग के पथ पर कितने संकट आते हैं– जीव इसे देखकर यदि भोगेच्छा का परित्याग करता है, तो अनासक्त-भाव से त्रिगुण द्वारा जो कार्य निष्पादित होगा, वही निष्काम कर्म है; इस निष्काम कर्म से जीव अन्तर्मुखी होकर स्वरूप अवस्था की ओर उठता जाएगा।

इस प्रकार एकमात्र निष्काम कर्म को ही मैंने मुक्ति प्राप्ति का सहज उपाय मान लिया। जिस कार्य में मेरा किसी प्रकार का स्वार्थ अथवा आसक्ति नहीं है, वरन् बहुत विरक्ति ही है, उसे उत्साह के साथ करने लगा। मथुर बाबू की वृहत गृहस्थी का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर ले लिया। उनके मातृविहीन छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों को दोनों समय अपने हाथ से मत्स्यादि आहार कराने लगा। मध्याह्न में ऑफिस के काम में महाविष्णु बाबू की सहायता करने लगा। बगीचे में मालियों के साथ-साथ रहकर उन लोगों के काम-काज की देख-रेख करने लगा। अपराह्न में प्रतिदिन स्कूल के कई बच्चों को 'जिम्नास्टिक' सिखाना आरम्भ किया। कुछ समय इस प्रकार करने के बाद बारम्बार मेरे मन में विचार आने लगा, यदि मैं निष्काम कर्म ही करता हूँ, तो फिर इसमें इतना उत्साह क्यों है? उत्साह के मूल में वासना क्षय करना, कर्म समाप्त करना, मुक्ति का पथ स्वच्छ करना, इस प्रकार का संस्कार भीतर विद्यमान है, यह स्पष्ट समझ गया। निष्काम कर्म करने के संकल्प से कोई भी कार्य क्यों न करूँ, वह भी सकाम है; अर्थात् मूलतः निष्काम कर्म का उद्देश्य रखकर निःस्वार्थ कर्म करने पर भी कर्म के प्रत्येक प्रयास में निष्काम कर्म कर रहा हूँ, यह संस्कार धीरे-धीरे प्रकट हो जाता है। अतएव संस्काररहित हुए बिना निष्काम कर्म किस प्रकार करूँगा? सत्-असत्, भला-बुरा का ज्ञान रहने से कभी भी संस्कार का त्याग नहीं होता। कार्यक्षेत्र में इन सब विचार-बुद्धि का लोप किस प्रकार होगा? लगता है– सदाचार में बहुत समय तक रहने से यदि वह स्वभाव से अभ्यस्त हो जाए, तब तो स्नान-आहार, मल-मूत्रत्याग के समान संकल्पहीन स्वाभाविक अभ्यस्त क्रिया होने से वह कुछ निष्काम हो सकता है।

यह सब विचार करके मैंने पहले की भाँति फिर घड़ी रखकर दैनिक कार्य करना आरम्भ किया। ये सब कार्य अभ्यस्त हो जाने से एक प्रकार से निष्काम होंगे, यही उद्देश्य है।

ज्योति-दर्शन

अविचल एकाग्रता के साथ अनिमेष साधना करते-करते गुरुदेव की कृपा से धीरे-धीरे एक-एक करके अद्‌भुत दर्शन होने लगे। यथाक्रम उसे लिखते जाता हूँ–

1. पहले कुछ दिन स्थिर श्वेत छटा के भीतर अनेक घनी नीली ज्योति के खण्ड क्षण-क्षण में संलग्न और विच्छिन्न होकर बाईं और दाहिनी ओर द्रुतगति से घूमते हुए मन्द तरंग में प्रतिबिम्बित चन्द्र की चंचल छाया के समान दिखने लगे। ज्योति का वर्ण कुछ-कुछ मयूरपंख के केन्द्र से दूसरी सतह के अनुरूप है।

2. क्रमशः परिवर्तित होकर वह अन्य प्रकार के हो गए। वलयाकार श्वेत छटा से घिरी हुई उज्ज्वल गहरी नीली चंचल ज्योति बारम्बार घूर्णन और कम्पन के साथ दिखने लगी। तीन-चार इंच परिमाण का परिपूरित मण्डल देखने लगा।

3. कुछ दिन बाद धीरे-धीरे वह भी परिवर्तित हो गया। पीत आभायुक्त श्वेत ज्योतिर्मण्डल के मध्य अत्यन्त उज्ज्वल हरे रंग की ज्योति देखने लगा। निकट से यह ज्योति नख के बराबर छोटे आकार में उज्ज्वल मणि के समान स्थिर भाव से प्रकाशित होती है; फिर दूर में रहने से अपेक्षाकृत बहुत बड़े आकार में कम्पन के साथ दिखने लगी। आँखें बन्द अथवा खुली रहे, सब प्रकार की अवस्था में स्थान-अस्थान में जहाँ-तहाँ वह स्पष्ट रूप से उदित होने लगी। मयूर पंख के केन्द्र से चतुर्थ सतह के साथ इस वर्ण की कुछ तुलना की जा सकती है।

4. उसके बाद धीरे-धीरे श्वेत मण्डल विलुप्त हो गया। ठीक मटर के आकृति की हरे और नीले मिश्रित रंग की अत्यन्त उज्ज्वल ज्योति निकट से और दूर होने से भी एक ही आकार में निश्चल रूप से दिखने लगी। मिश्रित होने से मयूर पंख के रंग की किसी भी सतह के साथ उसकी समानता समझ नहीं आई।

5. अब अचानक विद्युत के समान चंचल बड़ी अद्‌भुत दीप्तियुक्त गहरी ज्योति क्षण-क्षण में मनोरम छटा फैलाकर तुरन्त ही अन्तर्धान होती है! इस ज्योति की तुलना नहीं है। प्रकाशित होने से जैसे आनन्द से दिग्भ्रान्त हो जाता हूँ, अन्तर्धान से वैसे ही चित्त में हाहाकार मच जाता है।

मेरी वर्तमान मानसिक अवस्था: कर्म-त्याग ही धर्म है

मुझे कोई भी कर्म अच्छा नहीं लग रहा है। सर्वदा आसन पर बैठे रहने की इच्छा होती है। लोग जिसे सत्कार्य, पुण्यकार्य कहते हैं, आत्मा के कल्याण के पक्ष में वह भी मानो विघ्नकारी लगता है। प्रवृत्ति के अनुकूल विचार-बुद्धि से सारे कर्म ही अब मुझे विमुख कर रहे हैं। अब लगता है कि सारे कर्म धर्म-विरोधी हैं। जीवात्मा का स्वरूप अवस्था में भगवान् के साथ संलग्न रहना ही धर्म है। जीवात्मा

के क्रमागत विकास की गति ही कर्म है। अतएव कर्म सर्वदा जीव की बहिर्मुख अवस्था है। जीवात्मा की सूक्ष्म स्वरूप अवस्था से पतित होकर क्रमशः स्थूल से स्थूलतर में अवनति इसका परिणाम है। जहाँ जीवात्मा का कर्म समाप्त होता है, वहाँ उसके विकास की भी निवृत्ति होती है। अतएव दैहिक स्थूल कर्म से धीरे-धीरे सूक्ष्म मानसिक कर्म की भी निवृत्ति होने पर जीव की देहात्म-बुद्धि का अथवा स्थूलता प्राप्ति के मूल का विलय होने से सूक्ष्म मानसरूप का भी अवसान होगा। उसके बाद जीव जितना ही सूक्ष्मतर कर्म का त्याग करके निष्क्रिय अथवा स्थिर होता रहेगा, उतना ही वासनाविहीन स्वरूप अवस्था की ओर पहुँचेगा। इस कारण सभी कर्मों की जड़ वासना को भी त्याग करके– **'आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।'** (मन को परमात्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवा और कुछ भी चिन्तन न करें।) निवृत्ति ही यथार्थ धर्म है, सभी कर्म जीवात्मा के विकास का क्रम होने से धर्म-विरोधी हैं।

गुरुदेव की अद्भुत कृपा है। भीतर-ही-भीतर ज्ञान की आलोचना से कर्म के अनुष्ठान के सम्बन्ध में उन्होंने मुझे बिल्कुल उदासीन कर दिया। अब मुझे लग रहा है, कर्म करना बड़ा अनर्थ है। कुछ दिनों से मैंने बाहर के जितने कर्म हैं, सबको त्याग दिया है। नित्य प्रयोजनीय अभ्यस्त कार्य आहार-निद्रा आदि को छोड़कर अवशिष्ट समय निर्जन में बैठकर नियमानुसार इष्टनाम-साधना में बारम्बार मन को लगाने का प्रयास कर रहा हूँ। उस प्रकार नाम जपने के साथ-साथ गुरुदेव का रूप अपने-आप चित्त में उदित होता है। मेरे शरीर में गुरु का शरीर है, मेरी प्रकृति में गुरु की प्रकृति है, इस प्रकार की धारणा नाम-स्मरण के समय प्रबल वेग से अन्तःकरण में आ जाती है। मेरा प्रत्येक अंग-प्रत्यंग, सिर से पैर तक सभी अंग मानो श्री गुरुदेव का ही कलेवर है; वे मुझे आच्छादन करके मानो इस देह में हैं। नाम-जप के साथ-साथ इस प्रकार अचिन्तनीय धारणा चित्त में उदित होती है। मैं साधना के समय पृथक रहकर, अपने भीतर स्वयं को न पाकर गुरुदेव का दर्शन करता हूँ। इससे मुझे इतना आनन्द होता है कि उसे व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं है। नामरूपी सच्चिदानन्द स्वरूप गुरुदेव का अपने भीतर तन्मय होकर ध्यान करते-करते मानो मेरा बाह्यज्ञान विलुप्त हो जाता है; सर्वांग अवसन्न हो जाते हैं; अविराम अश्रुधारा बहा करती है। गुरुदेव के परम सुन्दर मनोहर रूप के स्मरण से मेरे भीतर जो कुछ होता है, उसे फिर कह नहीं पाता।

शुष्क ज्ञान की आलोचना से साधना के राज्य में एक प्रकार से युग-प्रलय की अवस्था आ गई थी। ज्योति-दर्शन कुछ समय के लिए बन्द ही हो गया था। नये उत्साह से, नये विश्वास से जब फिर से साधना करनी आरम्भ की, तो प्रायः विलुप्त हरा आलोक श्वेत आलोक के साथ मिलकर प्रकाशित होने लगा।

अल्पकाल के मध्य ही मिश्रित दोनों आलोक खण्ड-खण्ड होकर ज्योतिर्मय हो गए। 13 फरवरी, गुरुवार को अपराह्न के समय, श्वेत ज्योति के मध्य नख के बराबर गहरे काले रंग की एक आकृति का दर्शन किया। 14 फरवरी को भी निद्रित न होने तक दर्शन होता रहा। फिर धीरे-धीरे जैसे ही श्वेत ज्योति का घटना आरम्भ हुआ, काला रूप वैसे ही क्रमशः स्पष्ट होने लगा। काला रूप देखकर समझ में आने लगा कि कृष्ण का रूप प्रकट होगा; क्योंकि उनके मस्तक में मुकुट के जैसा देखने लगा। हाथ, पैर और आकृति का गठन देखकर स्पष्ट लगा कि कृष्ण ही प्रकाशित होंगे; पर अब देख रहा हूँ, काली आकृति कृष्ण नहीं है। पहले जो आकृति खड़ी हुई थी, अब देख रहा हूँ वह बैठी है। पहले जो सूक्ष्म थी, अब देख रहा हूँ वह स्थूल है। मस्तक में मुकुट नहीं, जटा है; आकृति और गठन ठीक गुरुदेव के ही अनुरूप है। फिर भी बहुत स्वच्छ नहीं है, अस्पष्ट है। इस रूप के ऊपर एकटक दृष्टि रखकर और मन स्थिर करके बड़े तेजस् के साथ नाम-जप करने लगा। अब देख रहा हूँ, उस आकृति का रंग धीरे-धीरे गहरा हो रहा है। यह रूप भूमि-आकाश, सब जगह, सब समय, आँखें बन्द और खुली अवस्था में भी एक जैसा ही दिखाई दे रहा है; मानो मेरी आँखों में लगा हुआ है। नाम से रूप का स्फुरण, रूप से नाम का स्मरण, यह एक अद्भुत मेल देख रहा हूँ। यह दर्शन आरम्भ करके ठाकुर ने मुझे रात-दिन विमल आनन्द में डुबा रखा है। पता नहीं, मेरा यह आनन्द कितने दिन रहेगा!

दर्शन के विषय में विचार

जिसका स्वभाव संशयपूर्ण है, प्रत्यक्ष विषय में भी उसके मन में नाना प्रकार के विचार-वितर्क होते हैं। मैं जो स्पष्ट देख रहा हूँ, उसको अच्छे-से ठोक-बजाकर देख लेने की इच्छा हो गई। दर्शन का क्रम अनुसन्धान करके विचार करने लगा। काले रंग की जो आकृति प्रायः सर्वदा ही नेत्रों के सामने रहती है, वह क्या है? कहाँ उसका दर्शन होता है? इस दर्शन से मेरी आत्मा का क्या मंगल हो रहा है? देख रहा हूँ, असीम आकाश की ओर ताकने पर बहुत बड़ी अस्पष्ट काली छाया नभोमण्डल में फैली हुई दिखाई पड़ती है। उसकी ओर कुछ समय तक दृष्टि स्थिर करने से देखते-देखते वह छोटी हो जाती है। क्रमशः बहुत छोटे गहरे काले रंग के मनुष्य की आकृति में रूपान्तरित हो जाती है। फिर सीमाबद्ध स्थान पर दृष्टि स्थिर करने पर उसका फैलाव क्रमशः कम होने से वह नख के बराबर आयतन की हो जाती है। किसी निर्दिष्ट स्थान पर दृष्टि रखने से पहले सुस्पष्ट ज्योति का दर्शन होता है। इस ज्योति के सामने अथवा भीतर में रूप प्रकट होता है। ज्योति किसी एक वस्तु के ऊपर ही दिखाई देती है; परन्तु रूप ज्योति-संलग्न अवस्था में आकाश में ही दिखाई पड़ता है। इस रूप का दर्शन बाहर हो रहा है

या भीतर में हो रहा है, अब अनुसन्धान करके भी कुछ स्थिर नहीं कर पा रहा हूँ, क्योंकि आँखें खुली रखने पर जिस प्रकार बाहर में वह स्पष्ट दिखता है, आँखें बन्द रहने पर भी ठीक उसी प्रकार दिखाई पड़ता है। आँखें बन्द और खुली रखने पर एक ही प्रकार का दर्शन होने से उसका आधार क्या है, उसे पकड़ नहीं पाता हूँ। निरन्तर किसी वस्तु अथवा ज्योति के ऊपर रूप प्रकाशित होने से वस्तु अथवा ज्योति को ही रूप का आधार समझूँगा; लेकिन वैसा नहीं है। एक बार समझ बैठा कि वायु ही रूप का आधार है; परन्तु देख रहा हूँ वैसा नहीं है; क्योंकि वायु तो सर्वदा ही चंचल है, किन्तु आँधी-तूफान में रूप स्थिर है। ज्योति के सम्बन्ध में भी ऐसा ही है। यद्यपि किसी वस्तु के ऊपर ही ज्योति का प्रकाश देखा जाता है, तथापि ज्योति उस वस्तु से संयुक्त नहीं है; क्योंकि वस्तु के चंचल होने से भी ज्योति स्थिर रहती है। प्रचण्ड आँधी से जब वृक्षों की डालें बड़ी तीव्रता के साथ हिलते रहती हैं अथवा नदी जब प्रबल तरंग और प्रवाह के साथ बहती जाती है, तब भी वृक्ष की कम्पित डाल में एवं चंचल जल में ज्योति को एक ही स्थान पर, एक ही अवस्था में धीर और स्थिर भाव से अवस्थित देखता हूँ। अतएव स्थान अथवा वायु ज्योति और रूप का आधार नहीं है, यह समझ में आ रहा है।

आँखें बन्द और खुली रखने पर एक ही प्रकार का दर्शन क्यों होता है? बाहर किसी वस्तु का दर्शन होने पर नेत्र के दोष से अथवा संस्कारवश आँखें बन्द करने पर भी उसे देखा जा सकता है; किन्तु वस्तु जब दृश्य का आश्रय लेती है, उस समय बाहर उसका दर्शन होता है, यह किस प्रकार कहूँगा? फिर बाहर हो या भीतर, उसे ही देख रहा हूँ, उस विषय में अब कोई संशय नहीं। यह दर्शन इतना घना और स्पष्ट है कि पुस्तक पढ़ नहीं पाता; किसी छोटी वस्तु को स्पष्ट देख नहीं पाता; दृष्टि स्थिर होते ही ज्योति और रूप वस्तु को आवृत कर देते हैं। आँखें बन्द और खुली रखने पर एक ही प्रकार का दर्शन होने से यह दर्शन कहाँ, किस प्रकार हो रहा है, निर्णय नहीं कर पाता हूँ। यह दर्शन मेरी कल्पना नहीं है अथवा किसी संस्कार का फल नहीं है, उसमें मुझे कोई संशय नहीं।

अनादर से रूप का अन्तर्धान

कुछ दिनों से दर्शन में ही मुग्ध रहता हूँ। मेरी सम्पूर्ण चित्तवृत्ति दर्शन की ओर आकृष्ट हो गई है; पर इस दर्शन से मेरी आत्मा का यथार्थ मंगल हो रहा है या वह अनन्त उन्नति के पथ पर विघ्न दे रहा है? इस सम्बन्ध में अपने-आप मेरे भीतर बड़ी हलचल होने लगी। देख रहा हूँ, रूप के प्रति मेरा बहुत आकर्षण है। क्षणभर भी उसे नहीं देख पाने से अधीर हो जाता हूँ। रूप का और भी स्पष्ट दर्शन करने के लिए ही जैसे साधन-भजन कर रहा हूँ। मेरे मन की ऐसी दशा क्यों हुई?

सच्चिदानन्द स्वरूप, परमानन्दमय, अनन्त परब्रह्म जिसका लक्ष्य है, वह अब नख के बराबर एक ज्योतिर्मय मनुष्य आकृति के रूप की छटा पर मुग्ध हो गया है! अतएव दुर्दशा के लिए अब बचा ही क्या? आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ साधना के राज्य में ये सब दृश्य यदि निर्दिष्ट ही रहते, तो फिर उसमें इतना अनुराग अथवा आकर्षण का कारण क्या है? जो कोई नियम-प्रणाली के अनुसार साधन-भजन करेगा, उसे तो ये सब दर्शन होंगे। फिर यदि गुरुदेव की कृपा से यह मेरी कोई संचारी अवस्था हुआ करती, तब तो केवल देखते रहने के सिवा उसके साथ मेरा और क्या सम्बन्ध; आज जिन्होंने दया करके यह अवस्था दी है, फिर वे कल ही मेरी कोई त्रुटि देखने पर उसे छीन सकते हैं। जो वस्तु मेरे द्वारा उपार्जित नहीं है या मेरी नहीं है, उसे लेकर मैं ममता में आबद्ध क्यों हो रहा हूँ? फिर इन सब द्विभुज, चतुर्भज अथवा अन्य किसी रूप के दर्शन को तो कभी किसी ने धर्म कहा नहीं। सत्य, सरलता, विनय, पवित्रता, दया, सन्तोषादि को ही एकमत से सभी धर्म-शास्त्र धर्म कहकर उल्लेख किए हैं। मानवात्मा की यह सब सद्वृत्ति यदि प्रस्फुटित होकर न बढ़े, तो ये सब अलौकिक छवि देखकर मेरा क्या होगा? साधन-पथ पर दो-चार कदम चलकर यदि एक बिन्दु ज्योति के सौन्दर्य से अथवा एक रूप की मधुरता से आकृष्ट होकर उसमें आबद्ध हो जाता हूँ एवं उससे अनन्त उन्नति के पथ को अन्धकार करके भगवत् प्राप्ति की आकांक्षा और प्रयास को जलांजलि देकर उसी में सन्तुष्ट रहता हूँ, तब तो मेरी दुर्दशा का अन्त ही न रहा। गुरुदेव का सुन्दर रूप सर्वदा स्पष्ट रूप से मेरी आखों पर स्थिर रहने से परमानन्द में रहूँगा, इसमें कोई सन्देह नहीं; लेकिन उससे भी मेरा क्या होगा? उसको क्या भगवद्दर्शन मानकर सन्तुष्ट रह सकता हूँ? वैसा होने से फिर इस रुग्ण शरीर द्वारा प्राणपण से साधन-भजन करके इतने नियम-संयम में रहकर क्लेश क्यों सहन कर रहा हूँ? थोड़ा रेल-भाड़ा जुटाकर तुरन्त ही तो साक्षात् भगवत्संग प्राप्त कर सकता हूँ। गुरु ही भगवान् हैं, बिन्दु ही सिन्धु है– इन सब बातों का अर्थ मैं नहीं जानता। किस अवस्था में रहकर महापुरुष लोग इन सब बातों को सत्य कहकर साक्ष्य देते है, पता नहीं; लेकिन तब भी मैं अपना अस्तित्व रहते प्रत्यक्ष सत्य को अग्राह्य करके कल्पना को प्रतिष्ठित नहीं कर पाऊँगा।

उपरोक्त भाव मन में आने से दर्शन के प्रति वैसा मनोयोग न रखकर, नियमित रूप से साधना करते जाने लगा। कुछ दिन दर्शन के सम्बन्ध में बिल्कुल ही उदासीन रहा। आज साधना करते समय अचानक रूप की बात मन में आई। इस बीच कब कैसे रूप अन्तर्धान हो गया, ध्यान न रहने से कुछ समझ न सका। अब उसी सुन्दर रूप की स्मृति हृदय में उदित होने से, उसके दर्शन के लिए छटपटा रहा हूँ; मेरा हृदय दग्ध हुआ जा रहा है। हाय, हाय, मुझे ये क्या हो गया?

अनादर से मैंने किसका विसर्जन कर दिया? लगता है, मेरे प्राणेश्वर गुरुदेव दया करके प्रकट हो रहे थे, मेरा अनादर और अग्राह्य भाव देखकर अन्तर्धान हो गए। सुना था, 'इन सब दर्शन की वस्तुओं को बाल-बच्चों की भाँति सर्वदा देख-रेख में रखना पड़ता है, यत्नपूर्वक आदर करना पड़ता है; अन्यथा वह टिकती नहीं।' ठाकुर! इस बार अपनी दग्ध दुःखित सन्तान को क्षमा करो। साधना के गर्व से गर्वित होकर कई बार बड़े दुःसाहस के साथ तुम्हारी कृपा को प्रलोभन समझकर अग्राह्य कर दिया हूँ। हाय, हाय, अब मेरी क्या गति होगी?

इतने दिन दर्शन में चित्त आविष्ट रहने से साधना के समय नाम बहुत ही सरस होकर निकलता था। नाम जपने के साथ-साथ किसी सारवान् वस्तु को लेकर हिला-डुला रहा हूँ, यह अनुभव करता था। अब कुछ दिनों से मेरी वैसी अवस्था नहीं रही; इस समय क्लेश के साथ केवल नीरस नाम-जप कर रहा हूँ। श्वास-प्रश्वास की ओर ध्यान रखने पर दो-चार मिनट में ही हैरान हो जाता हूँ, मन सर्वदा ही उद्विग्न रहता है। बिल्कुल अधर में लटककर, पकड़ने का कुछ भी सहारा न पाकर भय और आतंक से बेचैन हो रहा हूँ। हाय, मुझे यह क्या हो गया? यह यन्त्रणा अब सहन नहीं कर पाऊँगा! गुरुदेव, प्राणेश्वर दया करो।

लाल का प्रभाव और योगैश्वर्य

15 से 27 फरवरी तक। आज प्रातः आसन पर बैठकर नाम-जप कर रहा हूँ और भीतर की ज्वाला से छटपटा रहा हूँ। स्वामीजी (हरिमोहन) लाल को लेकर अचानक मेरे सामने आकर खड़े हो गए। मैं तुरन्त ही साधन छोड़कर उठ गया। लाल को कमरे में ले जाकर अपने बिछौने के पास उसके लिए आसन बिछा दिया। थोड़ा विश्राम हो जाने के बाद लाल से पूछा– लाल! अचानक अभी तुम कहाँ से, किस प्रकार यहाँ आए? लाल ने कहा– 'श्रीवृन्दावन में गोसाँईजी के साथ में था। एक दिन अचानक तुम लोगों की बात हुई; फिर देखने के लिए मन अधीर हो उठा। तुरन्त बिना कहे पैदल ही चला आया। रास्ते में, कानपुर में मन्मथ बाबू के निवास पर केवल दो दिन ठहरा था। फिर आगे के रास्ते पर बीच-बीच में कोई-कोई मुझे गाड़ी में बैठाकर दो-चार स्टेशन तक ले भी आए।

मैं– तुम्हारे पास तो एक लोटा अथवा दूसरा एक भी कपड़ा तक नहीं है, केवल वह लंगोटी और कम्बल ही देख रहा हूँ। इतनी दूर किस प्रकार से आए? रास्ते में कोई कष्ट नहीं हुआ?

लाल– नहीं, कष्ट क्यों होगा? मैं तो अच्छे-से आया। कोई कष्ट नहीं हुआ। गुरुदेव क्या किसी का कष्ट देख सकते हैं?

अल्पवयस्क लाल किस प्रकार श्रीवृन्दावन से इतनी दूर पैदल चलकर, केवल एक लंगोटी और कम्बल का अवलम्बन करके बिना क्लेश के यहाँ आ गए, सोचकर बड़ा आश्चर्य हुआ!

इन कुछ महीनों से हमारे निवास-स्थान पर साधन-भजन का एक अच्छा स्रोत चल रहा है। भागलपुर के अनेक सम्मानित लोग प्रतिदिन अपराह्न में हमारे निवास पर आते हैं। धर्मार्थियों के सम्मिलन से प्रतिदिन मानो उत्सव चलता है। अच्छे गायक महाविष्णु बाबू के स्वरचित संगीत से सब लोग मुग्ध हो जाते हैं। लाल ने यहाँ आकर धर्म-स्रोत में मानो एक भयंकर तूफान ला दिया। संकीर्तन में लाल का महाभाव, आसन पर बैठे-बैठे स्थिर समाधि और अद्‌भुत विकास देखकर एवं धर्मालोचना में उसका असाधारण पाण्डित्य देखकर सभी विस्मित होने लगे।

एक दिन हम लोग लाल को लेकर श्रद्धेय पार्वतीबाबू के पास गए। लाल का परिचय पाकर पार्वतीबाबू सन्तुष्ट हुए एवं धर्मालोचना के प्रसंग में लाल के सामने उन्होंने सांख्य, वेदान्तादि शास्त्र के मर्म का उपदेश देकर अन्त में 'अहं ब्रह्म' इस मत का निरूपण किया। लाल ने शान्त भाव से सब सुना, कुछ कहा नहीं। फिर पार्वतीबाबू ने लाल से धर्म के विषय में कुछ कहने के लिए अनुरोध किया। तब लाल सामान्य रूप से लौकिक धर्म की दो-चार बातें उठाकर इतने गहन तत्त्व का उपदेश देने लगे कि उनकी एक बात भी मैं समझ न सका। देवव्रती, ब्रह्मज्ञानी और भगवत्-उपासक महात्मा एकमात्र गुरु की कृपा से परमतत्त्व प्राप्त करते हैं– इस कथन को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने संस्कृत, पाली, तिब्बती, अरबी और अन्यान्य भाषाओं के विभिन्न धर्म-शास्त्रों से लगातार वाक्य उद्‌धृत करके, प्राचीन बौद्धमत को सनातन-धर्म शास्त्र के साथ मिलाकर स्थापन किया। एकमात्र सद्‌गुरु के एक पलक के दृष्टि-संचार से, एक अंगुलि के संकेत से अथवा एक मुहूर्त की इच्छाशक्ति से ही आश्रित शिष्य के भीतर ब्रह्म-ज्ञान, तत्त्वज्ञान, भगवत्-भक्ति संचारित और प्रतिष्ठित हो जाती है, लाल ने इसे स्पष्ट रूप से समझा दिया। पार्वतीबाबू सुनकर स्तब्ध हो गए; फिर वे स्थिर न रह सके, साष्टांग होकर उन्होंने लाल के चरणों में गिरकर कहा– 'आप मेरा उद्धार करने आए हैं। किस स्तर पर पहुँचकर आपने इस परम गुह्य तत्त्व की बात कही है, मेरी सीमाबद्ध संकीर्ण दृष्टि उस स्तर की सीमा के भी भीतर नहीं जाती। आप मुझ पर थोड़ी दया कीजिए।' इसके बाद से ही पार्वतीबाबू बार-बार लाल से मिलने हमारे निवास पर आने लगे। इससे भागलपुर में लाल का नाम सर्वत्र प्रचारित हो गया।

24 फरवरी, सोमवार को मैं पातंजल-दर्शन पढ़ रहा था। लाल ने पूछा– अरे, क्या पढ़ रहे हो?

मैं– पातंजल।

लाल– यह सनक तुम्हें क्यों हो गई? वह सब पढ़ने से क्या होगा? एक 'लाइन' भी नहीं समझोगे; व्यर्थ ही समय नष्ट होगा। नाम का जप करो न! गुरुकृपा से सभी शास्त्र नाम के भीतर से होकर अन्तःकरण में प्रकट हो जाएँगे।

मैं– पढ़ाई-लिखाई कुछ न करने से, केवल गुरुकृपा से, गुरु के वरदान से सरस्वती का वरपुत्र हो सकते हैं, यह बात इस युग के बच्चों से भी मत कहना।

लाल– यह मेरा कुसंस्कार नहीं है। गुरुकृपा से वास्तव में सब ज्ञात हो जाता है। इसे मैं प्रत्यक्ष अनुभव करके कह रहा हूँ।

मैं फिर लाल की बात का प्रतिवाद करने लगा। तब लाल ने मेरे हाथ से पातंजल ग्रन्थ लेकर उसके प्रथम, मध्य और अन्त के पृष्ठ को केवल कुछ सेकेण्ड के लिए एक बार थोड़ा देखकर पुस्तक को अपने मस्तक से कुछ क्षण लगाए रखा, फिर तुरन्त उसे मेरे हाथ में लौटाकर कहा– 'अच्छा, यह लो। मैंने तो केवल प्राथमिक शिक्षा– तीसरी कक्षा तक ही पढ़ाई की है। मेरे वर्णज्ञान से इस ग्रन्थ की उच्चारण क्षमता भी नहीं आ सकती है। अच्छा, तुम मुझसे इस ग्रन्थ से कहीं से भी प्रश्न करो, जहाँ जिस प्रकार लिखा है, मैं ठीक उसी प्रकार बतला दूँगा।' मैंने बड़ी उत्सुकता के साथ ग्रन्थ के विभिन्न स्थानों से सात-आठ प्रश्न पूछा; टीका-टिप्पणी सहित जिस विषय में जैसी विवेचना ग्रन्थ में है, लाल के मुख से एक-एक अक्षर ठीक उसी प्रकार का उत्तर पाकर मैं विस्मय से स्तम्भित और अवाक् रह गया। सोचा– 'यह क्या मामला है!' कुछ क्षण के बाद लाल से पूछा– भाई, यह अद्भुत शक्ति तुमने किस प्रकार से प्राप्त की? लाल ने मुझसे कहा– 'गुरुकृपा से! एक दिन गुरुभाई श्री सुरेशचन्द्र सिंह (डिप्टी मजिस्ट्रेट) के साथ उनके घर जाकर मनोविज्ञान की आलोचना कर रहा था। सुरेश बाबू अचानक उठकर कमरे के भीतर गए। मैं वहीं बैठा रहा। टेबिल के ऊपर एक मनोविज्ञान की अँग्रेजी पुस्तक थी। सोचा, लिखना-पढ़ना सीखा नहीं; यदि सीखा होता तो इन सब पुस्तकों में किस-किस विषय की मीमांसा है, जान पाता। यह सोचकर, ग्रन्थ को बार-बार प्रणाम करके मस्तक पर रखा, फिर गुरुदेव को स्मरण करने लगा। उसी समय अचानक मेरे मस्तक में एक अन्य प्रकार का अनुभव होने लगा, तब ग्रन्थ के भीतर जो कुछ विचार-मीमांसा है, समस्त मेरे मस्तिष्क में प्रवेश कर गई! ऐसा क्यों हुआ, पता नहीं। उस दिन से किसी भी विषय को जानने की मेरी इच्छा होती है, तो अपने-आप ही वह विषय अन्तःकरण में आ जाता है। गुरुकृपा के सिवा इसका और क्या कारण हो सकता है? इस प्रकार की आकांक्षा करने से सम्भवतः धर्म-जीवन में बहुत हानि होती है। कोई भी आकांक्षा न करके, अज्ञानी बनकर गुरुदेव की ओर ताकते रहना ही अच्छा है; लेकिन वैसा कौन कर सकता है? महाशक्तियुक्त नाम पाए हो, नाम-जप करो, गुरुदेव की कृपा से क्षणभर में सम्पूर्ण

शास्त्र भीतर में प्रकट हो सकते हैं। यह मेरी कल्पना नहीं है, सत्य कह रहा हूँ।'

लाल गुरुदेव का साथ छोड़कर अचानक पैदल भागलपुर किसलिए आए, उसका कारण ढूँढ़ने लगा। स्वामीजी ने संन्यास व्रत ग्रहण किया था– भाग्य के चक्कर से, कुसंग से आचार-भ्रष्ट होकर वे अब स्वेच्छाचार से दिन बिता रहे हैं; यह जानकर लाल को बड़ा क्लेश हो रहा था एवं शीघ्र उसके प्रतिकार के लिए वे व्यग्र हो गए। लाल प्रतिदिन ही स्वामीजी को संन्यास के नियमों का प्रतिपालन करते हुए गुरुदेव के आदेशानुसार चलने के लिए बारम्बार कहने लगे; लेकिन स्वामीजी ने लाल की इन सब बातों पर ध्यान ही नहीं दिया। तब लाल, सहज में काम नहीं होगा, यह सोचकर थोड़ा योगैश्वर्य प्रकट करने के लिए बाध्य हुए। 26 फरवरी, बुधवार को रात्रि लगभग 10 बजे कमरे के भीतर बैठकर हम सब लोग बातचीत कर रहे हैं, लाल ने पूर्ववत् स्वामीजी से संन्यास के नियमों का पालन करके चलने का अनुरोध किया। अपनी बात पर स्वामीजी का उपेक्षा भाव देखते ही लाल एकदम उछल पड़े एवं ऊपर की ओर हाथ हिलाते हुए चीत्कारने लगे– 'मत आओ, मत आओ, मत आओ। क्यों आ रहे हो? चले जाओ! चले जाओ!' ठीक इसी समय हम लोगों के सामने से सनसनाता हुआ, भयंकर ध्वनि के साथ पता नहीं कुछ चला गया। हम लोग चकित हो गए! कुछ क्षण बाद लाल मानो चौंक उठे और कहने लगे– 'हाय, हाय! यह क्या हुआ? एकदम आत्महत्या! ओफ कितना भयानक है! यह तो अब देखा नहीं जाता!' यह कहकर वे रो पड़े; रोते-रोते उन्होंने फिर कहा– 'अब फिर मेरे पास क्यों आए? मेरे पास आने से क्या होगा? गुरुजी के पास जाओ। मेरे द्वारा कुछ कल्याण नहीं होगा। मेरे पास मत आओ, मत आओ। सुनते क्यों नहीं? अच्छा, तो फिर आ जाओ।' लाल के इतना कहते ही, सनसनाहट के साथ पता नहीं कुछ आकर हमारे कमरे के गंगा की ओर की खिड़की में धम् से गिर पड़ा। खिड़की और शीशे से बने कपाट भीतर से बन्द थे; आश्चर्य की बात यह है कि खिड़की अचानक खुल गई एवं शीशे वाले कपाट के तीन शीशे टूटकर चूर-चूर हो गए! हम सभी चौंक उठे। चकित होकर एक-दूसरे की ओर ताकने लगे। लाल कुछ क्षण चुप रहकर फिर चीख उठे– 'यह क्या है? यह क्या देख रहा हूँ? जीवित मनुष्य को चिता पर चढ़ा दिए! कितना भयानक है! ओफ कितनी भयानक चिता! वह देखो, वह देखो।' स्वामीजी तब चीत्कार करते हुए जाकर बरामदे में गिर पड़े; 'हाय, हाय! ये क्या हो गया? ये क्या हो गया? जीवित मनुष्य को चिता में जला दिए!' कई बार इस प्रकार कहकर वे रोते-रोते मूर्च्छित हो गए। लगभग डेढ़ घण्टे बाद चेतना लौटने पर भी वे चिता की बात सोचकर अधीर होने लगे। लाल तब बीच-बीच में रोमांचित होकर कहने लगे– 'धामराई ग्राम आज उजड़ गया। हाय, हाय!'

स्वामीजी ने तब बिना कुछ कहे अपने शरीर का कम्बल लाल को ओढ़ाकर उसकी कौपीन खींच ली; फिर मुझसे हाथ जोड़कर कहा– 'भाई, कुछ बुरा न मानना, थोड़ा पागलपन करता हूँ।' यह कहने के साथ ही वे बरामदे की आड़ के ऊपर से कूदकर नीचे गिरे एवं बालू के मैदान में सीधे दौड़कर अदृश्य हो गए। रात्रि में डेढ़ बज गए। कुछ क्षण बाद लाल ने कहा– 'अब स्वामीजी को मत ढूँढ़ना। वे वृन्दावन की ओर भागे हैं।' तथापि मथुर बाबू ने दो दिन तक स्वामीजी को ढूँढ़ा, लेकिन कोई खोज-खबर नहीं मिली।

मेरे बहनोई मथुर बाबू ने लाल की असाधारण अवस्था और योगैश्वर्य की अनेक बातें लोगों से सुनी थी। वे लाल को अपने घर में पाकर, उस सम्बन्ध में कुछ दिखलाने हेतु लाल के पीछे पड़ गए। लाल उनके अनुरोध को टाल न सके। उन्होंने एक दिन मथुर बाबू को निर्जन में बुला लिया, फिर मेरी मृत बहिन को परलोक से आह्वान करके अनेक अद्‌भुत और विचित्र गुप्त बातें उन्हें सुनवाई। किसी दुश्चरित्र स्त्री की कुचेष्टा से अभिचारिक क्रिया द्वारा जिस प्रकार असमय में मेरी बहिन की अस्वाभाविक मृत्यु हुई, वह सब विवरण सुनकर मथुर बाबू स्तब्ध हो गए। उस स्त्री द्वारा इसी प्रकार और भी जो सब भयंकर अनर्थ की सृष्टि होगी, वह भी लाल ने स्पष्ट बतला दिया। मथुर बाबू के सिवा जिसे इस संसार में और कोई नहीं जानता, ऐसे कुछ गुप्त विषय लाल के मुख से सुनकर वे चकित हो गए। हमारे निवास-स्थान में भूत-प्रेत के नाना प्रकार के उपद्रव को दूर करने के लिए प्रतिदिन हरिनाम-संकीर्तन, तुलसी-सेवा करना एवं साधु-सज्जनों को यहाँ रखकर उनके साधन-भजन की व्यवस्था करना आवश्यक है, लाल ने इस विषय में मथुर बाबू को विशेष जोर देकर कहा। मथुर बाबू भी उनके उपदेशानुसार चलने के लिए सहमत हो गए।

बाद में लाल एक दिन किसी से कुछ कहे बिना अचानक कहीं चले गए। उनके चले जाने के बाद हम सब लोग विषाद से व्याकुल हो गए। रात-दिन हमारे निवास में धर्म की जो अग्नि प्रज्ज्वलित रहकर हम लोगों को प्रकाश दे रही थी, लाल के चले जाने पर हम लोगों का अन्तःकरण शिथिल और अवसन्न होने से वह अग्नि धीरे-धीरे शान्त हो गई।

लाल और स्वामीजी के अचानक चले जाने के बाद मेरा मन बहुत विचलित हो गया। विषाद से सब कुछ शून्यमय देखने लगा। साधन-भजन का उत्साह कुछ समय से बिल्कुल ठण्डा पड़ गया है। नियमित साधना भी अब नहीं हो रही है। आसन पर बैठने से बेचैनी होती है। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप नहीं कर पाता, तीन-चार मिनट में ही हैरान हो जाता हूँ, लगता है, जैसे सामर्थ्य से अधिक बोझा लेकर खींचातानी कर रहा हूँ। आसन त्यागकर उठ जाने की इच्छा होती है।

गुरुदेव की दुर्लभ कृपा को दुःसाहस से मैंने अग्राह्य कर दिया है, इसका स्मरण होने से मेरा हृदय फट जाता है। अब इस अपराध का ही दण्ड भोग रहा हूँ; साधन-भजन फिर क्या करूँगा? हाय-हाय करके ही मेरा दिन-रात बीत रहा है। कुछ दिनों से रोग की यन्त्रणा बहुत बढ़ गई; उसे अब सहन नहीं कर पा रहा हूँ। शरीर और मन में ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसके सहारे थोड़ा भी आराम मिले। निराशा और यन्त्रणा से मर जाने की इच्छा होती है। महापुरुषों की आश्वासवाणी का स्मरण करके ही इस समय थोड़ी बहुत शान्ति मिल रही है। मेरी यह दुर्दशा होगी, यह जानकर ही लगता है, नागा बाबा ने कहा था– 'बच्चा, घबराओ मत। गुरुजी तुम पर बहुत कृपा करेंगे। उनके ऊपर तुम्हारी सच्ची भक्ति हो जाएगी।' पतित दास बाबा जी ने कहा है– 'थोड़े ही दिनों में तुम्हें गुरु-भक्ति प्राप्त होगी, धन्य हो जाओगे।' फिर गुरुदेव ने भी कहा था– 'कम आयु में साधन मिला है; जीवन में बहुत उन्नति कर सकोगे। धन्य हो जाओगे!' इत्यादि। यदि इन सब महापुरुषों के वाक्य सत्य होते हैं, यदि आजन्म सत्य-संकल्प, सत्यवादी गुरुदेव का वाक्य अन्यथा नहीं होता है, तो फिर मुझे क्या चिन्ता? रोग मुझे जितना ही दुःख से पीड़ित और अवसन्न क्यों न करे, स्वेच्छाचार में मैं जितना ही क्यों न डूब जाऊँ, अन्त में मेरा कल्याण अवश्य होने वाला है।

मेरे लिए लाल का उपदेश

28 फरवरी, शुक्रवार। लाल मुझसे तीन बातें कह गए– 1. डायरी लिखना मत छोड़ना। भविष्य में उसका प्रयोजन है। 2. साधन मत छोड़ना, नाम-जप खूब करो; तुम संन्यासी बनोगे। 3. गुरुदेव की कृपा के बिना कुछ होना सम्भव ही नहीं है। गुरु के प्रति एकनिष्ठ रहो; उनका संग प्राप्त करने का प्रयास करो।

मैंने तो कुछ समय से साधन-भजन करना एक प्रकार से छोड़ ही दिया है। अनावश्यक कर्म की सृष्टि करके उसमें समय बिता रहा हूँ। मेरा मंगल किसमें है, यह जानकर भी उसे कर नहीं पा रहा हूँ। निरर्थक कार्यों में, वृथा बातों में दिन का अधिकांश समय बिता रहा हूँ। भीतर में भयंकर दुःख और ज्वाला है, फिर बाहर में मेरी बातें मधुर कैसे होंगी? मित्र लोग भी अब मेरे संग से उदासीन हो रहे हैं। मैं बड़े संकट में पड़ गया हूँ।

मार्च–मई, सन् 1890 ई०

स्वप्न : वाक्य संयम

5 मार्च, बुधवार। आज रात्रि में एक स्वप्न देखा। गुरुदेव के संग की प्रत्याशा से दौड़ रहा हूँ। आँधी-तूफान में बहुत दुर्गम पथ से होकर गुरुदेव के पास पहुँचा। देखा, गुरुदेव मौन हैं। स्नेहपूर्ण दृष्टि से जिसकी ओर देख रहे हैं, वही आनन्द में डूब जा रहा है। मैं गुरुभाइयों के साथ हँसी-मजाक, तर्क-वितर्क करने लगा। गुरुदेव ने मेरी ओर देखकर थोड़ा विरक्त होकर कहा— **'ओफ, बाबा, तुम इतनी बातें कर सकते हो!'** यह सुनते ही मेरी निद्रा भंग हो गई। मैं समझ गया, गुरुदेव मेरा अत्यधिक कहना पसन्द नहीं करते। अब अनावश्यक बातें नहीं कहूँगा, निश्चय किया।

स्वप्न : संन्यास की अवस्था के सम्बन्ध में उपदेश

13 अप्रेल से 13 मई। मैं साधन-भजनविहीन, स्वेच्छाचारी और भयंकर दुर्दशाग्रस्त होकर भी गुरुदेव के उस अनुशासन वाक्य को भूल नहीं पाया। बातचीत आरम्भ करते ही गुरुदेव की वही दृष्टि, वही कुछ बातें मन में आ जातीं; मैं फिर कुछ कह नहीं पाता। लाल के जाने के बाद से चार-पाँच दिन के अन्तर-अन्तर में स्वप्न देख रहा हूँ— मानो मैं संन्यासी हो गया हूँ। अपने सम्बन्ध में लाल की भविष्यवाणी सुनने के फलस्वरूप ही इस प्रकार हो रहा है समझा था, अतः उतना ध्यान नहीं दिया; परन्तु अब देख रहा हूँ— उन सब स्वप्नों से मेरे भीतर में भयंकर द्वन्द्व चल रहा है। स्वप्नावस्था में स्वयं को जिस प्रकार कठोर वैराग्यपूर्ण, उद्यमशील, भजनानन्दी संन्यासी के रूप में देखता हूँ, दिन में प्रातः से संध्या तक मेरी वही मूर्ति मानो आँखों के सामने लगी रहती है। सर्वदा उसी की चिन्ता करना अच्छा लगता है। भीतर में सर्वदा जैसा चिन्तन करके आराम पाता हूँ, बाहर उस प्रकार नहीं हो पाने से कैसे अच्छा लगेगा? कुछ दिन हाथ-पैर समेट लिया था; किन्तु अधिक दिन नहीं रह सका। हृदय में ज्वाला होने लगी। अतः स्वप्न में दिखी अपने संन्यास की आकृति-प्रकृति जैसी अवस्था प्राप्त करने की प्रबल इच्छा हुई। इस बार मैं कठोर साधना करने लगा। दिन में केवल एक बार आहार करने लगा। शय्या पर शयन करना त्याग दिया। केवल एक कम्बल उपयोग के लिए रखा हूँ। कमरे में रहना छोड़कर पुलिनपुरी के बगीचे में तमाल वृक्ष के नीचे आसन लगाया; लंगोटी पहनकर, धूनी जलाकर तमाल वृक्ष के नीचे सारी रात बिताने लगा। असाधारण स्थान के प्रभाव से ही लगता है, साधना में मेरी स्पृहा और कठोरता से दिनो-दिन व्याकुलता बढ़ने लगी है। इस तमाल के नीचे का स्थान सम्भवतः

एक सिद्ध महात्मा की भजन-स्थली थी। वृक्ष बहुत पुराना एवं छत्राकार गोल है। घने पत्तों से परिपूर्ण सारी डालें चारों ओर फैलकर भूमि को स्पर्श कर रही हैं। वृक्ष के नीचे का स्थान अच्छा स्वच्छ है, मण्डलाकार में 15–20 लोग सहज में बैठ सकते हैं। केवल एक संकीर्ण पथ से होकर वृक्ष के नीचे जाना होता है, अन्य किसी ओर से जाने का मार्ग नहीं है। वृक्ष के नीचे कोई रहे, तो बाहर से किसी प्रकार भी उसे देखा नहीं जा सकता। ऐसा सुन्दर वृक्ष इससे पहले मैंने कहीं देखा नहीं। तमाल वृक्ष के नीचे बैठने से चंचल मन अपने-आप मानो निश्चल हो जाता है। गुरुदेव की कृपा से साधना में मुझे जो अपूर्व दर्शन हुए थे, उससे विमुख होकर मैं उन्मत्त-सा हो गया था; साधना में अश्रद्धा, नाम में अरुचि उत्पन्न हो गई थी। जीवन में फिर कभी यह साधना कर पाऊँगा, इसकी कल्पना भी नहीं की थी; लेकिन गुरुदेव ने बारम्बार मुझे स्वप्न के माध्यम से तेजस्वी भजनानन्दी संन्यासी का रूप दिखलाकर साधन-भजन, तपस्या में पुनः मेरी प्रबल इच्छा उत्पन्न कर दी। गुरुदेव का अद्‌भुत कौशल है!

मेरा शरीर दिनो-दिन दुर्बल होता जा रहा है। मन के उत्साह से तमाल वृक्ष के नीचे रात्रि-यापन और अनियमित जागरण आदि अतिरिक्त शारीरिक क्लेश से थोड़े समय के भीतर ही मैं दुबला-पतला, कंकालवत् हो गया। आत्मीयजन, इष्ट-मित्र मुझे बारम्बार सावधान करने लगे; लेकिन मन के अटल आवेग से मैंने किसी की बात नहीं सुनी। सोचा– 'गुरुदेव की कृपा से जब मैं वंचित हो गया हूँ, दुर्बुद्धि व अहंकार से जब दुर्लभ साधन-फल गँवा दिया हूँ, तब इस बार अपना अन्तिम प्रयास करके देखूँगा; असफल होने से ही देह त्याग दूँगा।'

मैं एक महीने से अधिक समय तक निर्विघ्न यथारीति नियम आदि का पालन करके चला। भीतर-ही-भीतर दृढ़ विश्वास उत्पन्न हुआ, रोग से मुक्त होने पर चेष्टा करके साधन-बल से सहज में ही संन्यास की दक्षता प्राप्त कर लूँगा। इसी समय एक अद्‌भुत स्वप्न-दर्शन से मेरा अभिमान चूर्ण हो गया। समझ गया, संन्यास प्राप्ति की चेष्टा मेरे लिए विडम्बना ही है। मैं विषम स्थिति में पड़ गया।

मेरा चचेरा भाई मनोमोहन मेरी अपेक्षा नौ दिन बड़ा था। एक ही स्थान पर जन्म-ग्रहण करके, एक ही गृहस्थी में प्रतिपालित हुए थे। 13 वर्ष की अवस्था में मनोमोहन ब्राह्मधर्म अवलम्बन करके सत्यनिष्ठ, उपासनाशील जीवन-यापनपूर्वक असमय मृत्यु को प्राप्त हो गया। उसके देहान्त के तीन दिन पहले स्वप्न देखा था, मनोमोहन ने आकर मुझसे कहा– 'भाई, मुझको देखने की इच्छा हो तो शीघ्र आओ; इस बार मैं चला।' आश्चर्य की बात यह है कि घटना भी उसी प्रकार हुई।

बहुत दिन बाद गत रात्रि में स्वप्न देखा– भाई मनोमोहन संन्यासी के वेश

में मेरे पास आया। उसको देखकर खूब प्रसन्न होकर मैंने कहा– वाह, तुम संन्यासी हो गए? अच्छा! मैं भी संन्यासी होकर तुम्हारे साथ रहूँगा। संन्यासी भाई ने कहा– 'संन्यास तो वेश नहीं है, अवस्था है; काम को जीते बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होती। जितना सहज सोचते हो, उतना सहज नहीं है।'

मैं– कामिनी के साथ भी मेरे चित्त में विकार नहीं होता। संन्यास की योग्यता मेरे स्वभाव में ही है।

संन्यासी भाई ने कहा– 'ऐसा? अच्छा, एक बार उलंग हो तो।'

मैं तुरन्त उलंग हो गया। मुझे देखकर संन्यासी भाई ने थोड़ा हँसकर कहा– 'हो गया, हो गया। अब कपड़े पहन लो। इस योग्यता को लेकर संन्यासी बनोगे? अभी वह संकल्प छोड़ दो। उपस्थ के रहते यथार्थ संन्यास नहीं होता। साधन-भजन के प्रभाव से उपस्थ को संयत करके देह में ही लय करना होगा; अन्यथा होगा नहीं। अभी साधना करो, खूब नाम-जप करो। गुरु की कृपा होने से सब होगा। व्यग्र मत हो। मैं चलता हूँ।'

मैंने कहा– संन्यास का लक्षण तुम्हारा कहाँ तक हुआ है, देखना चाहता हूँ।

संन्यासी भाई तुरन्त उलंग हो गया। उसका पुरुषांग न देखकर मैंने चकित होकर कहा–'ये क्या भाई?' ये तो नारियों की भाँति देख रहा हूँ! संन्यासी भाई ने कहा– 'नहीं वैसा नहीं है। कामभाव के दमन के साथ-साथ उपस्थ की चंचलता नष्ट हो जाती है। क्रमशः वह संकुचित होकर वामन आकृति धारण कर लेता है; फिर पलटकर ऊपर की ओर अवस्थान करके मूल सहित पूरा भीतर की ओर खिंच जाया करता है; उससे उस स्थान का आकार वैसा हो जाता है। देखने से वह नारी के चिह्न की भाँति ही दिखता है; लेकिन वास्तव में वह बाहर में केवल पुरुषांग की सम्पूर्ण अनुपस्थिति है। ये तो कुछ नहीं संन्यासी का एक बाह्य लक्षण ही है। संन्यासी के भीतर की असाधारण दुर्लभ अवस्था गुरु-प्रसाद से ही प्राप्त होती है।' यह कहकर संन्यासी भाई अन्तर्हित हो गए; मैं भी जाग उठा।

स्वप्न देखकर बहुत ही आश्चर्य हुआ। संन्यासी का ऐसा लक्षण मैंने पहले कभी सुना नहीं। स्वप्न को स्वप्न सोचकर, कल्पित मानकर मैं उसकी अवेहलना नहीं कर सका। उसकी प्रत्येक बातें सत्य के रूप में मेरे मन में अंकित हो गई। स्वप्न में देखी अवस्था को प्राप्त करने के लिए मन में व्याकुलता उत्पन्न हो गई। मैं अत्यन्त कठोरता के साथ साधना करने लगा।

———

मई–जून, सन् 1890 ई०

पाप पुरुष का आक्रमण

14 मई से 13 जून। महात्माओं के मुख से सुना है, मैंने भी कई बार अनुभव किया है, उत्साह के साथ साधन-भजन, तपस्या आरम्भ करने के साथ-साथ ही अज्ञात रूप से साधक के अभिमान का आश्रय लेकर एक भयंकर पिशाच-शक्ति उसके पीछे-पीछे चला करती है। साधक में आन्तरिक व्याकुलता या बाह्यिक दीनता का थोड़ा भी अभाव होने से अथवा उसके नियम-निष्ठा के घेरे में असावधानीवशतः ज्ञात या अज्ञात रूप से थोड़ी भी शिथिलता आने से ही वह भयानक पिशाच तुरन्त प्रबल वेग से साधक पर आक्रमण करता है एवं नाना प्रकार की दुर्दमनीय दुर्मति चित्त में उत्पन्न करके कदाचार और व्यभिचार द्वारा साधक को अत्यन्त गर्हित हीन अवस्था में पहुँचा देता है।

कुछ दिन कठोरता के पथ पर चलकर थोड़ी साधना करने से ही भीतर-भीतर अभिमान उत्पन्न हो गया– ऐसा लगा, मैंने काम को जीत लिया है। मन में इस भाव का उदय होते ही दर्पहारी भगवान् ने मेरा दर्प चूर्ण करने के लिए अद्‌भुत उत्पात की सृष्टि की। जन-मानवहीन बगीचे को उपासना के लिए सब प्रकार से उत्पातमुक्त समझ लिया था; इसलिए मैंने आशा की थी कि मन लगाकर साधना करूँगा और पुण्य तमाल वृक्ष के नीचे सिद्ध महात्मा की भजन-स्थली में संमयपूर्वक साधना के बल से मैं संकल्पित विषय में शीघ्र ही सफल होऊँगा, निरापद् अवस्था प्राप्त करूँगा; किन्तु प्रतिष्ठा और अभिमान के मोह से अन्धा होकर अब मैं घोर अन्धकूप में गिर पड़ा हूँ। इस विपत्ति से मेरे बचने का उपाय नहीं है।

नाना प्रकार की आभिचारिक क्रिया के कारण भागलपुर बहुत प्रसिद्ध है। नीच जाति के लोगों के बीच ही इस भयंकर दुष्क्रिया का प्रचलन अधिक है। 'आभिचारिक' विद्या का समय-समय पर प्रयोग न होने से सम्भवतः उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है, इस कारण उस कार्य में जो लोग उस्ताद हैं, वे लोग सब समय व्यक्तियों की खोज में घूमा करते हैं। उपयुक्त यजमान जुट जाने से दो पैसे का रोजगार भी हो जाता है। किसी के प्रति सामान्य कारण से किसी की शत्रुता आदि उत्पन्न होने से, उन लोगों के द्वारा एक दूसरे को परास्त करने के लिए बाण मारने, फूल छोड़ने, धूल गिराने इत्यादि का प्रयास करते हैं। इस भयंकर शक्ति का किसी व्यक्ति-विशेष पर प्रयोग होने से सम्भवतः उसका जीवन भी चला जा सकता है।

हम लोगों के बगीचे से संलग्न उत्तर की ओर स्थित एक मकान में एक सज्जन किराये पर रहते हैं। साधु-प्रकृति और धार्मिक होने के कारण, पड़ोसी के हिसाब से हम लोगों की उनके साथ थोड़ी बहुत घनिष्टता हो गई। कुछ दिनों से

उनकी एक 15 वर्ष की युवती पुत्री इस आभिचारिक उत्पीड़न से दुःखी हो गई है। लड़की ने एक बच्चे को भी जन्म दिया था, परन्तु माँ के दूध के अभाव में अनाहार के कारण मरा गया। युवती और भी नाना प्रकार के उत्पात भोग रही है। असाधारण रूप-लावण्य ही उसकी इस भयंकर विपत्ति का कारण बना। निर्जन तमाल वृक्ष के नीचे रात-दिन मैं धूनी जलाकर बैठा रहता हूँ; अतएव निश्चय ही मैं एक शक्तिशाली महापुरुष हूँ, इस प्रकार का एक कुसंस्कार यहाँ अनेक लोगों के भीतर उत्पन्न हो गया है। मेरी थोड़ी कृपादृष्टि से ही लड़की का यह सब 'ऊपरी' उपद्रव शान्त हो जाएगा, इस प्रकार की धारणा से लड़की के पिता जिद करके मुझे अपने घर ले गए। फिर उस सुन्दर पुत्री को निर्जन कमरे में मेरे पास छोड़कर स्वयं वहाँ से हट गए, जिससे लड़की मन खोलकर अपने दुःख की कहानी कह सके। शोक से व्याकुल सरल युवती ने अत्यन्त कातर भाव से मुझसे कहा– 'आप दया करके मेरी रक्षा कीजिए। किसी दुष्ट की कुदृष्टि से प्रसव के कुछ दिन पहले ही मेरा एक स्तन बिल्कुल सूख गया है; दूसरे में एक बूँद भी दूध नहीं है। छाती का दूध नहीं मिलने के कारण अनाहार से मेरा बच्चा मर गया।' यह कहकर शोक से व्याकुल युवती ने निःसंकोच छाती का वस्त्र खोलकर मुझे दिखलाया। उसकी छाती के बाईं ओर स्तन का कोई चिह्न नहीं है। देखकर मैं चकित हो गया। दूसरा स्वाभाविक, स्थूल और सुगठित है। मेरी दृष्टि पड़ने से और हाथ के स्पर्श से कुग्रह की दृष्टि दूर हो जाएगी, ऐसी उसकी धारणा है। उसके हृदय की दुःसह यातना और आन्तरिक अनुरोध ने मेरे चित्त को स्पर्श किया। मैं बिना किसी भय के निःसंकोच उसके सर्वांग पर हाथ फेरकर आशीर्वाद देकर चला आया। इसके बाद से उस निर्जन बगीचे में मेरे दर्शन की आकांक्षा से युवती प्रतिदिन आने लगी। मैं दूर से उसको आशीर्वाद देकर अपने कार्य में लगा रहता।

कुछ दिनों के बाद देखा, किसी दिन यथासमय युवती के न आने से मेरा मन अधीर हो जाता है, उसके रूप की स्मृति मेरे चित्त को चंचल कर देती है। उस समय मैं फिर आसन पर स्थिर नहीं रह पाता, उसी बगीचे में इधर-उधर टहलने लगता। फिर उसको देखने के लिए कभी-कभी उसके घर के पास जाकर खड़ा रहता। हाय, हाय– मेरी यह कैसी दशा हो गई? मैं कहाँ से कहाँ आ गया? आचरण के सम्बन्ध में पहले से सावधान न रहकर, भीतर स्थित दुष्प्रवृत्ति के सूक्ष्म आकर्षण से मैं धीरे-धीरे पैर बढ़ाकर मानो नरककुण्ड में आ गया हूँ। मेरा सब कुछ मानो नष्ट हो गया, सर्वनाश हो गया है। अब अपने आपको अत्यन्त अधम अनुभव कर रहा हूँ। सर्वदा शोक से, पश्चाताप से मेरा दिन-रात बीत रहा है। साधन-भजन सब छूट गया है।

मैंने तमाल वृक्ष के नीचे का स्थान त्याग दिया– नाम-जप, प्राणायाम छोड़

दिया है। सामने घोर अन्धकार देखकर आतंक से पागल के समान हो गया हूँ। गुरुदेव इस समय तुम कहाँ हो?

कौन हो तुम?

अचिन्तनीय घटना जीवन में जो घट रही है, सोचकर स्तब्ध हो जाता हूँ। गत रात्रि में मैंने जो देखा, कह नहीं सकता। जीवन में कभी ऐसा दृश्य नहीं देखा। घटना गुरुदेव को सुनाने के लिए यथासाध्य लिखकर रख रहा हूँ।*

रात्रि के 12 बज गए। बिछौने पर पड़ा हूँ; कमरे के खिड़की-दरवाजा सब खुले हुए हैं। उज्ज्वल चन्द्र की किरण से बिछौने का आधा भाग आलोकित है। रोग की यन्त्रणा और मन की ज्वाला से मैं छटपटा रहा हूँ। व्याकुल मन से गुरुदेव के चरणों में प्रार्थना की– 'ठाकुर, मैं तो अब सह नहीं सकता। अब तुम दया करो। मैं तुम्हारी उस ममतापूर्ण शीतल दृष्टि को अन्तःकरण में रखकर चिरकाल के लिए सारे उत्पातों को शान्त करूँगा।' प्रार्थना के अन्त में गुरुदेव की पवित्र मूर्ति के ध्यान के साथ-साथ इष्ट नाम का जप करने लगा। पता नहीं कब धीरे से अनजाने में कामिनी-कल्पना चित्त में आ गई। मैं उसी में तन्मय हो गया। जाग्रत अवस्था में था या निद्रित, पता नहीं; एकाएक मेरे पैर की ओर से कामिनी के कण्ठ की ध्वनि सुनाई दी। शुष्क कण्ठ से कातर स्वर में मुझसे कहा– 'अरे क्या सोच रहे हो? मैं तो आ ही गई।' स्वर में बड़ी घनिष्टता का बोध हुआ; लेकिन पहचान न पाने से मैंने पूछा– तुम कौन हो? इस समय यहाँ क्यों आई हो?

रमणी ने कहा– 'तुम मुझे स्थिर होने ही नहीं देते– खींचकर ले आए हो। बहुत भुगत चुकी हूँ– अब कष्ट मत दो। पैर पड़ती हूँ, मुझे छोड़ दो।'

मैंने चकित होकर कहा– मैंने कब तुम्हें बुलाया? कौन हो तुम? यहाँ क्यों आई हो?

कामिनी ने कहा– 'तुम्हारे अदम्य कामभाव से मेरी ऊर्ध्वगति रुक गई है। तुम्हारी कल्पना और उत्तेजना के साथ-साथ मैं तुम्हारी ओर आकृष्ट हो जाती हूँ। तुम्हारे विकार के रहते मुझे छुटकारा नहीं मिलेगा। अब वासना को परिपूर्ण करो– शान्त हो। मैं भी छुटकारा पाऊँ।'

मैंने कहा– कौन हो तुम? तुम्हारी बातें सुन रहा हूँ, फिर भी तुम्हें देख नहीं

---

*अप्रेल, सन् 1891 ई॰ में इसी घटना को सुनकर ठाकुर ने कहा– **'प्रकृति को तृप्त करना होगा। प्रकृति ने ही आकर तुमसे वैसा कहा है। दो उपाय से प्रकृति को तृप्ति प्रदान किया जाता है। एक वैध भोग के द्वारा और एक साधना द्वारा। साधना द्वारा ही तुम्हें प्रकृति को तृप्त करना होगा। तुम्हारे लिए साधना ही एकमात्र उपाय है।'**

पा रहा हूँ। मैं कामिनी-कल्पना करता हूँ– उससे तुम्हें क्या? तुम आकृष्ट क्यों हो?

युवती अस्पष्ट छाया के समान थोड़ा प्रकाशित होकर चारपाई के किनारे मेरे पैर की ओर खड़ी हो गई। फिर बिछौने के ऊपर अर्ध-शायित अवस्था में गिरकर मेरे दोनों पैरों को पकड़ ली। उनके अंग के स्पर्श से शरीर में आनन्द की धारा संचारित होने लगी, मैं बारम्बार सिहरने लगा।

युवती ने तब मुझसे कहा– 'छिः! तुम्हारी यह दशा है? कामभाव, कामिनी-कल्पना– इसे तुम छोड़ नहीं पाए? अपना ही सर्वनाश कर लिए! फिर इससे मेरी भी कितनी दुर्गति हुई, देखो न। बड़े आनन्द से समाधि में थी। सविकल्प अवस्था अतिक्रम करके इतने दिनों में निर्विकल्प समाधि प्राप्त कर लेती। केवल तुम्हारे साथ अभेद सम्बन्ध होने के कारण आबद्ध हूँ। तुम्हारी भयंकर उत्तेजना का खिंचाव मेरे को उठने नहीं दे रहा है। मैं निरुपाय होकर आई हूँ। मुझको अब मुक्त कर दो। अपनी आकांक्षा मिटा लो।'

मैं तुरन्त ही उठकर बैठ गया, कहा– तुम कौन हो, बोलती क्यों नहीं हो? तब रमणी अचानक चारपाई के किनारे मेरे पास बाईं ओर आकर खड़ी हो गई एवं मधुर भाव से नम्रता के साथ कहा, 'एक बार मुझको पकड़कर आलिंगन करो न! अभी परिचय मिल जाएगा।' उनको गोद में बैठाने के अभिप्राय से जैसे ही उनकी कमर पर मैंने हाथ रखा, रमणी का असाधारण रूप देखकर वैसे ही विस्मय से सुन्न हो गया। मेरे शिथिल हाथ खसक गए। कामदेव को पराजित करने वाले उनके उस सुन्दर अंग का केवल नाभि तक स्पष्ट रूप से मेरे सामने प्रकाशित हुआ। देखा, नील लावण्ययुक्त सुन्दरी श्यामा अनावृत अवस्था में सामने खड़ी हुई हैं। अल्प-विस्तृत सूक्ष्म शुभ्र वस्त्र से उनकी स्थूल जाँघों का सन्धिस्थल आवृत्त है। नवयौवना स्त्री के नाभि से पैर के अँगूठे तक असंख्य गहरी नीली किरण प्रस्फुटित हो रही है। अद्‌भुत रूप देखकर, चकित होकर उनको पकड़ने के लिए मैंने हाथ बढ़ाया। रमणी ने तब थोड़ा पीछे की ओर हटते हुए मुझसे कहा– 'अब किसलिए? बहुत हो गया; अब काम-कल्पना मत करो, मुझको मत खींचो। इस बार सोचकर देखो मैं कौन हूँ। अभी जाती हूँ।' यह कहकर उलंगिनी कामिनी, श्याम अंग की उज्ज्वल छटा से सभी दिशाओं को आलोकित करके ऊपर की ओर उठने लगीं। तब उनके प्रत्येक अंग-प्रत्यंग से नीली सघन चिनगारियाँ निकलकर विशाल नभोमण्डल को शोभित कर दी। देखते-देखते ज्योतिर्मयी श्यामा-प्रतिमा अनन्त नीलाकाश में स्वरूप को मिलाकर धीरे-धीरे विलीन हो गई। 'हाय, हाय, कहाँ गई! कहाँ गई!' चीत्कार करते हुए मैं बाहर निकल पड़ा।

अवशिष्ट रात्रि आकाश की ओर ताकते हुए किस प्रकार से बिताई, उसे लिखने का कोई उपाय नहीं है।

यह अप्राकृतिक दृश्य देखने के बाद से मेरे अन्तःकरण में सर्वदा वह रूप उदित होने लगा। रात-दिन मैं उसी के ध्यान में लगा रहता हूँ। कब, कैसे उस अनुपम प्रतिमा का फिर दर्शन मिलेगा– इसी चिन्ता से मन विचलित होने लगा। हानिकारक सब दूषणीय कल्पनाओं से इतने दिन जो सुख मिला, उसमें अब रुचि नहीं रही, वरन् विरक्ति ही उत्पन्न हो रही है। साधन-भजन करने से फिर उस मनमोहिनी असाधारण रमणी को देख पाऊँगा, यह सोचकर साधना में मेरी प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई; परन्तु लोभ में पड़कर साधना करने का उत्साह रखने के बाद भी, प्रयास करने का सामर्थ्य अब मुझमें नहीं रहा। मैं भयंकर पित्तशूल की असह्य वेदना से सीधे शय्यागत हो गया हूँ। प्रतिदिन दो-तीन बार वमन करता हूँ; लग रहा है, कण्ठनली में घाव हो गया है। चुल्लूभर पानी पीने से भी पेट तक में जलन होने लगती है। रात-दिन लगातार दुःसह वेदना से मेरा आहार-निद्रा सब छूट गया है। 24 घण्टे बिछौने में पड़े-पड़े पीड़ा से आह-ऊह और उठना-बैठना ही करता हूँ। मानसिक यन्त्रणा जितनी तीव्र क्यों न हो, शारीरिक क्लेश की तुलना में वह कुछ भी नहीं है, अब इसे स्पष्ट समझ रहा हूँ। असह्य दैहिक क्लेश से छुटकारा पाने के लिए लगता है, ऐसा अधर्म, अनाचार या अकर्म नहीं है जिसे कर नहीं सकता। यह तो अवस्था है!

असह्य रोग-यन्त्रणा: जीवन में अरुचि
अप्रत्यक्ष रूप से गुरुदेव का आह्वान

14–20 जून। रात-दिन लगातार पित्तशूल वेदना के असह्य कष्ट से मेरी आत्महत्या करने की इच्छा हुई। क्रमशः यन्त्रणा की तीव्रता के साथ-साथ उस प्रकार का संकल्प मेरे भीतर जड़ पकड़ने लगा। सुना है, गुरुदेव इस समय श्रीवृन्दावन में हैं। निश्चय किया– 'उनकी पापनाशन मनमोहन मूर्ति चिरकाल के लिए एक बार देखकर, उनकी स्नेहमयी शीतल दृष्टि हृदय में रखकर पवित्र यमुना के जल में इस पाप-जनक देह का विसर्जन करूँगा।' लेकिन इस समय रोगग्रस्त दुर्बल शरीर में चलने-फिरने का भी सामर्थ्य नहीं है; फिर भी श्रीवृन्दावन जाने के लिए बेचैन हो गया। इस समय बिछौने से उठकर चलने-फिरने के लिए भी कोई मुझे उत्साह नहीं देता। फिर श्रीवृन्दावन जाने के लिए खर्चादि माँगूँगा भी किससे? इस समय बार-बार विचार आने लगा कि गुरुदेव के दया करने पर असम्भव भी सम्भव हो जाएगा। किसी भी प्रकार से शीघ्र ही मेरे जाने का जुगाड़ हो जाएगा– इस आशा से व्याकुल होकर उनको ही मन की आकांक्षा से अवगत कराने लगा। आश्चर्य है गुरुदेव की दया का! अप्रत्याशित रूप से मेरे श्रीवृन्दावन जाने की

व्यवस्था हो गई। जय गुरुदेव! जय गुरुदेव!

श्री मथुर बाबू के ज्येष्ठ पुत्र, श्रीमान् सुरेन्द्र विलायत जाने के उद्देश्य से हैदराबाद में अपने चाचा श्री अघोरनाथ चट्टोपाध्याय जी के पास रहकर पढ़ाई-लिखाई कर रहे थे। किसी कारणवश अपने पिता के पास आना आवश्यक होने से, द्वितीय श्रेणी का आने-जाने का (रिटर्न) टिकट करके इस समय भागलपुर आए हुए हैं। मेरी श्रीवृन्दावन जाने की तीव्र आकांक्षा से अवगत होकर उन्होंने गोपनीय रूप से मुझे टिकट देकर कहा– 'अब और मेरा हैदराबाद जाना होगा नहीं। मामा, आप यह टिकट लीजिए। इससे आप इलाहाबाद तक जा सकेंगे।' टिकट पाकर मैं इसे एक प्रकार से गुरुदेव का ही स्नेहयुक्त आह्वान समझकर रो पड़ा। तुरन्त श्रीवृन्दावन जाने के लिए प्रस्तुत हो गया। इस समय मुझे रोकना व्यर्थ समझकर श्री मथुर बाबू ने दस रुपये और महाविष्णु बाबू ने तीन रुपये दिए। मैं दो जोड़ी पुराने वस्त्र, गमछा, एक लोटा एवं डायरी लिखने का सब समान और एक हरिवंश (ग्रन्थ) झोले में बाँधकर तैयार हो गया।

मेरी स्वर्गीया बहिन के शिशु पुत्र-कन्या के पालन-पोषण का भार इतने समय से मेरे ऊपर ही था। आज उन्हें छोड़कर जा रहा हूँ; बड़ा कष्ट होने लगा।

———

जुलाई, सन् 1890 ई॰
श्रीवृन्दावन–यात्रा

1 जुलाई मंगलवार। उत्साहित मन से सारा दिन बिताकर संध्या के थोड़ा पहले, गाड़ी का समय जानकर स्टेशन के लिए निकल पड़ा। गुरुदेव का स्मरण करके कदम बढ़ाते ही वही निरुपम काला रूप बहुत समय बाद 'झलमल' करके प्रकाशित हुआ। छः-सात फीट के अन्तर में, शून्य में स्थित वह ज्योतिर्मय-रूप समान गति से मेरे आगे-आगे चलने लगा। देखकर मेरा मन प्रफुल्लित हो उठा। यथासमय स्टेशन पहुँचा। खुले बदन, कम्बल लेकर भिखारी वेश में फटा झोला हाथ में लेकर गाड़ी के द्वितीय श्रेणी में चढ़कर बैठ गया। पता नहीं क्या समझकर सभी मेरी ओर चकित होकर एकटक देखने लगे। कुछ समय बाद एक व्यक्ति ने आकर टिकट माँगा एवं टिकट देखकर मुझे सलाम करके चला गया। कुछ समय बाद ही गाड़ी छूट गई। थका हुआ था; कुछ क्षण के भीतर मुझे निद्रा ने घेर लिया। इस समय वह काली मूर्ति धीरे-धीरे लुप्त हो गई। रात बड़े आराम से ही बिताई।

प्रयागधाम के प्रभाव की अनुभूति

2 जुलाई, बुधवार। स्थिर बैठकर नाम-जप कर रहा हूँ, गाड़ी प्रयागधाम के पूर्व की ओर कुछ दूरी पर एक विशाल मैदान के मध्य आ पहुँची। मैदान की ओर देखते ही मेरा सारा शरीर सिहर उठा, उदासीनता ने मेरे मन को अवसन्न कर दिया। भीतर से अपने-आप स्पष्ट रूप से 'अगस्त्य' 'अगस्त्य' शब्द उठने लगा। भारद्वाज, वशिष्ठादि महातपस्वी ऋषिगण एक समय इसी स्थान पर थे, इस प्रकार का भाव मन में उदित होने से उन लोगों के लिए शोक होने लगा। यह शोक धीरे-धीरे मुझे इतना अभिभूत कर डाला कि मैं किसी प्रकार भी अपने को रोने से रोक नहीं पाया। खाली गाड़ी में सुविधा पाकर, ऋषियों का नाम लेकर कितना रोया! ऐसा लगा, मानो ऋषिगण इस स्थान पर रहकर मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। मैं कातरपूर्ण भाव से उन लोगों के चरणों के उद्देश्य से बारम्बार प्रणाम करके प्रार्थना करने लगा– 'हे आर्य ऋषिगण, आज तुम लोगों ने मुझ पर इस प्रकार क्यों इतनी कृपा की? आज अचानक तुम लोगों की बात मन में आने से तुम लोगों के लिए मेरा मन इस प्रकार क्यों रो पड़ा? मैं तो इस जीवन में कभी तुम लोगों के विषय में एक बार सोचा भी नहीं। कभी तुम लोगों का स्मरण करके मस्तक झुकाया नहीं। लगता है, यह विशाल मैदान तुम लोगों के पुण्य आश्रम से परिपूर्ण था; इसलिए तुम लोगों ने इस स्थान का त्याग नहीं किया। अनन्त स्तर-विशिष्ट जगत् के किसी एक सूक्ष्म स्तर पर– इस प्रयाग में अपनी परम आदर की वस्तु साधन के फल की सम्पूर्ण रूप से रक्षा करके, अदृश्य शरीर में अवस्थानपूर्वक लगता है, इस स्थान में ही उसका उपभोग कर रहे हो। तुम लोगों के इस आकांक्षित पुण्य साधन क्षेत्र में आज अनजाने में श्रद्धाशून्य हृदय से प्रवेश करते ही मेरे ऊपर कृपादृष्टि रखकर तुम लोगों ने दया करके मेरे चित्त में अपनी स्मृति उदित कर दी। आज मैं चिरकाल के लिए धन्य हो गया। हे मूर्तिमान् दयारूपी ऋषिगण! दया करके आशीर्वाद दो, जिससे तुम लोगों का अनुगत हो सकूँ; अविचलित मन से तुम लोगों के सनातन निर्मल पथ का अनुसरण कर सकूँ; हृदय के ठाकुर गुरुदेव के श्रीचरणों में एकनिष्ठ होकर अवशिष्ट जीवन बिता दूँ। और कुछ नहीं चाहता। इस शुभ मुहूर्त में तुम लोगों की कृपा से सुमति होने से अपना अविनीत उग्र मस्तक तुम लोगों के चरणरज में लोटाता हूँ– मेरी आकांक्षा पूर्ण करो।' भावुकता हो या कल्पना ही हो, मुझे ऐसा लगा, मानो ऋषियों ने प्रसन्न होकर मुझे आशीर्वाद दिया। मैं भी स्थिर बैठकर नाम-जप करने लगा। कुछ समय बाद ट्रेन प्रयागधाम पहुँची।

तत्पश्चात् गाड़ी से उतरकर स्टेशन से कुछ दूरी पर एक बड़े वृक्ष के नीचे जा पहुँचा। वहाँ आसन लगाकर मन में नाम-जप करते-करते अद्‌भुत रूप से मेरे भीतर एक भाव का स्रोत उमड़ पड़ा। मैं सोचने लगा– 'अहा! आज मैं कहाँ हूँ?

यह वही प्रयागधाम है। एक समय इस स्थान पर कितना कुछ हुआ था! कितने योगी, कितने ऋषियों ने एक समय इस क्षेत्र में वृहत् कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित रखकर दीर्घकाल-व्यापी याग-यज्ञ का अनुष्ठान किया था। कितने सहस्र-सहस्र ऋषि-मुनि-तपस्वियों ने एक समय इस स्थान पर ध्यान-धारणा-समाधि में विमल आनन्द उपभोग करके युग-युगान्तकाल व्यतीत किया था। तीव्र तपस्या और एकान्त साधन-भजन द्वारा अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के साथ संयोग हेतु असीम शक्ति प्राप्त करके कितने दीर्घतपस्वी योगी-ऋषि इस पुण्य भूमि में दीर्घकाल अवस्थान किए थे। उन लोगों की असाधारण साधन-शक्ति इस स्थान पर संचारित होकर यहाँ के प्रति अणु-परमाणु को जीवन्त शक्तिशाली कर रखी है। इस पवित्र क्षेत्र के संस्पर्श से लगता है, ऋषियों की असाधारण साधन-शक्ति का बीज अलक्षित भाव से जीव के भीतर प्रविष्ट होता है एवं उसी अव्यर्थ शक्ति के अंकुरण से जीव का किसी-न-किसी काल में उद्धार हो जाता है। इसीलिए ऋषियों ने इस भूमि को मुक्तिधाम कहा है। हे देवर्षि-ब्रह्मर्षिगण के अप्राकृत साधन-शक्ति के आंशिक भण्डार तीर्थराज प्रयाग! मैं अनुभव करूँ या न करूँ, तुम्हारे इस आनन्द का विस्तार करने वाले धूलिकण को स्पर्श करके आज मैं धन्य हुआ। तीर्थराज! आशीर्वाद दो, आज तक तुम्हारे सान्निध्य में जो लोग आए हैं, उन सभी की चरण-धूलि मेरे मस्तक पर पड़े।' इस भाव से अभिभूत होकर, भूमि पर लेटकर प्रयागधाम को साष्टांग प्रणाम किया। उसी समय भावावेग की एक प्रबल तरंग कुछ क्षण के लिए मेरे भीतर बह गई। मैं स्थिर बैठकर नाम-जप करने लगा।

इसी समय एक प्रयागवासी सज्जन मुझे अपने घर ले गए। वहाँ मैं स्नान करने के बाद कुछ जलपान करके यथासमय स्टेशन आ गया। तृतीय श्रेणी का एक टिकट लेकर वृन्दावन की यात्रा की। गाड़ी में मुझे कोई भी कष्ट नहीं हुआ; बड़े आराम से गया। जय गुरुदेव!

ज्योतिर्मय श्रीवृन्दावन में उपस्थित: गुरुदेव की दया

3 जुलाई, गुरुवार। प्रातःकाल हाथ-मुँह धोकर गाड़ी के एक कोने में बैठा रहा। श्रीश्री गुरुदेव के चरणों का स्मरण कर बारम्बार प्रणाम करके बड़े उत्साह के साथ नाम-जप करने लगा। मथुरा व वृन्दावन के जितना ही समीप पहुँचने लगा, दोनों ओर विस्तृत मैदान व घने वन को देखकर मानो मेरा मन उतना ही मचलने लगा! जिस श्रीकृष्ण को देखने की आकांक्षा से बहुत छोटी अवस्था में अकेला जहाँ-तहाँ निर्जन स्थान में व्याकुल होकर कितना रोता फिरा हूँ; जिनका वास-स्थान यह है सुनकर, लोगों के साथ इस स्थान पर आने के लिए कितना अनुरोध किया–

बाल्यावस्था की अपनी मानस-कल्पना के उसी श्रीवृन्दावन में आज मैं आ गया हूँ; यह सोचते ही मुझे रोना आ गया। इसी समय देखा, दोनों ओर वन और मैदान में अति उज्ज्वल नीली घने कृष्णवर्ण की खण्ड-खण्ड असंख्य ज्योतियाँ बिजली के समान क्षण-क्षण में प्रकाशित होकर स्निग्ध शीतल प्रकाश फैलाकर तुरन्त ही विलुप्त हो जाने लगीं। उस नयनाभिराम मनमोहन कृष्णवर्ण की तुलना जगत् में कहीं नहीं है। वह इतनी सुन्दर मनोमोहन है कि उसको भाषा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। उस विचित्र ज्योति का बारम्बार दर्शन करने के बाद भी, अन्तर्धान होने पर फिर किसी भी प्रकार से उसको स्मृति में नहीं लाया जा सका। इस अनुपम दिव्य ज्योति का खेल देखते-देखते मैं क्रमशः श्रीवृन्दावन पहुँच गया।

दिन में लगभग 1 बजे वृन्दावन स्टेशन पहुँचा। रास्ते में अनाहार व अनिद्रा से मेरा शरीर अत्यन्त क्लान्त हो गया था; हृदय की वेदना भी खूब बढ़ गई थी। मध्याह्न की प्रखर धूप के उत्ताप से अधिक दूर तक चल न सका; एक-दो मिनट चलकर ही रास्ते के किनारे छाया देखकर बैठ जाता। इसी समय चलती गाड़ी से एक सज्जन ने मुझे पुकारकर कहा– 'महाराज, कहाँ जाएँगे?' मैंने कहा– गोपीनाथ के बाग में। यह सुनकर उन्होंने गाड़ी रोककर कहा– 'आइए, आप इस गाड़ी में चढ़िए, मैं भी उसी ओर जाऊँगा।' मैं गाड़ी में बैठ गया। कुछ ही समय बाद हमारी गाड़ी गोपीनाथ के बाग में आकर रुकी। मैं वहीं पर उतर गया। ठीक इसी समय एक ब्रजवासी वृद्ध ब्राह्मण ने मुझसे पूछा– 'क्या बाबू, गोसाँईजी के पास जाओगे? चलो, हम भी वहीं जा रहे हैं।' मैं ब्राह्मण के पीछे-पीछे चलने लगा। व्यस्ततावश उनका परिचय लेने की भी बुद्धि नहीं आई। एक गली में कुछ दूर जाने के बाद एक घर दिखाकर ब्राह्मण ने कहा, 'जाओ उस कुंज में गोसाँईजी हैं।' यह कहकर ब्राह्मण अन्यत्र चले गए। कुछ कदम चलते ही मैंने देखा, मेरे गुरुदेव कुंज के द्वार पर खड़े हुए हैं। मेरे देखने के पहले उन्होंने मुझे पुकारकर कहा– **"क्यों कुलदा आ गए? अच्छा, अच्छा! आओ। झोला लेकर सीधे ऊपर आओ।"**

मैं गुरुदेव के पीछे-पीछे चलकर दो तल्ले में पहुँचा। झोला रखकर उनके श्रीचरणों में गिरकर साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ फेरकर कहा– **"शरीर अस्वस्थ है; थोड़ा विश्राम करो। फिर यमुना में स्नान कर आना। हम सब लोगों का भोजन हो गया है। तुम्हारे लिए प्रसाद रखा है।"** यह कहकर गुरुदेव आसन पर स्थिर भाव से बैठे रहे। मैं उनकी देह की दशा देखकर, चकित होकर देखता रह गया। देखा, ठाकुर की अब वह आकृति नहीं रही। विशाल शरीर सूखकर अद्भुत लम्बा दिख रहा है। सुन्दर कान्ति अब अस्थि चर्म रह जाने से अत्यन्त शुष्क हो गई है। जगह-जगह शरीर की त्वचा ढीली होकर

झूल गई हैं। सुगोल, सुन्दर मुखमण्डल मांस के अभाव से सिकुड़कर लम्बा हो गया है। पहले का वह उज्ज्वल वर्ण भी अब नहीं रहा; बिल्कुल साँवला हो गया है। मस्तक के लम्बे केश को एक गैरिक वस्त्र द्वारा लपेटकर बाँध रखे हैं। ललाट में ऊर्ध्वपुंड्र तिलक और कण्ठ में तुलसी, पद्मबीज व रूद्राक्ष की माला धारण किए हैं। उनकी देह की दुर्बलता देखकर मुझे बड़ा क्लेश होने लगा, मैं रो पड़ा एवं चकित होकर ठाकुर के नवीन वेश और दुर्बल शरीर की ओर देखता रहा। ठाकुर की देह की ऐसी दुर्दशा और कभी मैंने देखी नहीं। कुछ समय बाद गोसाँईजी ने कुंज के मालिक दामोदर पुजारी को बुलाकर कहा– **'इनको यमुना में स्नान करवाकर ले आओ। फिर भोजन जो है, दे देना।'**

मैं 'झोला-झुली' आसन-कम्बलादि पास के कमरे में रखकर स्नान करने गया। 11 रुपये थे; उसे खुले कमरे में अलग-से रखकर जाने में भरोसा नहीं हुआ; अंटी में बाँधकर रख लिया। यमुना के शीतल निर्मल जल में उतरकर स्नान करके बड़ा आराम मिला। मेरे पास जो रुपये हैं, उसे दामोदर ने देख लिया। वे मेरे कमर की ओर अंटी में रुपये के प्रति लोलुप दृष्टि से देखने लगे। मैंने सोचा, 'यह भी एक अच्छी समस्या हो गई। जितने दिन तक ये कुछ रुपये मेरी पूँजी रहेगी, नाना प्रकार के अभाव बतलाकर ये उतने दिन तक मुझे सताएँगे। अतएव इस विपत्ति से छुटकारा पाना ही अच्छा है। मुझे तो अभी कुछ दिन यहाँ रहना ही होगा; इसलिए ये 11 रुपये इन्हें देकर यदि अपने खाने-पीने का थोड़ा पक्का बन्दोबस्त कर लूँ, तो अच्छा निश्चिन्त होकर रह सकूँगा।' इस आशय से मैंने अंटी से रुपये निकालकर दामोदर के हाथ में देते हुए उसे प्रणाम करके कहा, 'पुजारीजी, आप ये कुछ रुपये लीजिए। ठाकुर की सेवा में लगा दीजिएगा; फिर जितने दिन तक मैं यहाँ रहूँगा, मुझे एक मुट्ठा प्रसाद दीजिएगा। मेरे पास अब एक भी पैसे नहीं है।' रुपये पाकर पुजारीजी बड़े प्रसन्न हुए एवं मेरे माथे पर हाथ फेरते-फेरते कहने लगे, 'अरे, तू तो बड़ा भगत है। सब दे दिया! जितने दिन मन हो, रहो। खूब अच्छा-अच्छा खिलाऊँगा। तेरे ऊपर राधारानी की बहुत कृपा है।' मैं थोड़ा हँसा। उसके बाद हम लोग कुंज में आ गए।

दाऊजी के मन्दिर से संलग्न रसोईघर में दामोदर ने मुझे बैठा दिया। फिर एक शाल के पत्ते में सजा हुआ दाल, भात, रोटी मेरे सम्मुख रखकर कहा, 'गोसाँई बाबा ने प्रसाद पाते-पाते इतना सब उठाकर रख दिया था।' सुनकर मेरी आँखों में पानी आ गया। अहा, ठाकुर की इतनी दया! आज मैंने यथार्थ प्रसाद पाया है। यह प्रसाद मेरे लिए अधिक होने पर भी बड़े आनन्द से रुचिपूर्वक पूरा खा लिया।

दण्डाघात

भोजन के बाद जाकर गोसाँईजी के पास बैठ गया। उन्होंने पूछा– **"तुम्हारे भैया कैसे हैं? उनका वह मित्र देवेन्द्र अभी कहाँ है?"**

मैंने कहा– भैया अच्छे हैं। तब से देवेन्द्र के साथ भैया की भेंट नहीं हुई। आपके द्वारा दण्डाघात न करने से लगता है, भैया को देवेन्द्र मार ही डालता।

गोसाँईजी– **ऊह! क्या भयानक आदमी है! और कुछ दिन रह जाता तो वह बड़ा विपद् ही करता, तुम्हारे भैया का बिल्कुल नाश कर देता। वह जघन्य स्वार्थ साधने के लिए वहाँ था। तुम्हारे भैया इस पृथ्वी के व्यक्ति नहीं हैं; संसार से कोई लगाव रखते नहीं; वे इस युग के नहीं हैं; सत्ययुग के व्यक्ति हैं। देवेन्द्र के साथ तुम्हारे भैया का कोई झगड़ा तो नहीं हुआ?**

मैं– झगड़ा कुछ नहीं हुआ। भैया के पास से आपके चले आने के बाद नागा बाबा और पतितदास बाबा ने भैया को देवेन्द्र का संग त्यागने के लिए कहा था; लेकिन देवेन्द्र के गुण से भैया इतने मुग्ध हो गए थे, उसकी धार्मिकता देखकर इतने भ्रमित हो गए थे कि महात्माओं के आदेश पालन करने की भी भैया की प्रवृत्ति नहीं हुई। देवेन्द्र का वशीकरण विद्या में अच्छा अभ्यास था; उससे ही लगता है, भैया को उसने बिल्कुल अपनी मुट्ठी में कर लिया था। फिर आपने जिस दिन कानपुर से उसके ऊपर दण्डाघात किया, उसी दिन देवेन्द्र को अचानक न जाने क्या हो गया; बिल्कुल निस्तेज और शक्तिहीन हो गया। उसके भीतर क्या हुआ था, वह कोई नहीं जानता। भैया से भी कुछ कहे बिना वह उसी समय भाग गया। सुना है, फैजाबाद से पाँच-छः कोस दूर, यमुना के किनारे एक ग्राम में ठहरा था। वहाँ उसको असह्य रोग हो गया, बहुत क्लेश पाया। फिर सम्भवतः पागल हो जाने से कहीं चला गया। अब वह मर गया या बचा है, पता नहीं। कुछ लोगों का कहना है, बचा नहीं। रोग के समय इच्छा होने से वह भैया के पास तो आ सकता था; लेकिन आश्चर्य यह है कि उसकी वैसी मति भी नहीं हुई। धर्म का ढोंग करके उसने हजारों रुपये भैया से ठग लिया। यहाँ तक कि हम लोग तो भैया के जीवन के विषय में भी शंकित हो गए थे।

बहुत समय तक गोसाँईजी ने भैया की बातें कही। कुछ क्षण बाद मैंने नीचे जाकर देखा, दाऊजी के मन्दिर के सामने गुरुभाई लोग बैठकर भैया के विषय में ही बातें कर रहे हैं। वह सब विषय मेरा पहले से जाना हुआ था; अभी पुनः सबके मुख से सुना। गोसाँईजी फैजाबाद से श्रीवृन्दावन जाने के समय कानपुर में श्री मन्मथनाथ मुखोपाध्याय जी के निवास में कुछ दिन रुके थे। एक दिन प्रातः चाय

पीने के बाद सब गुरुभाई गोसाँईजी के पास बैठे थे, कुछ गुरुभाइयों को एक भयंकर दृश्य दिखलाई पड़ा। उन्होंने देखा, सर्प द्वारा मेंढक को निगलने की भाँति एक पिशाच ने धीरे-धीरे भैया को पाँव से कमर तक ग्रस लिया, और भी ग्रसने की प्रयास करने लगा। यह दृश्य देखकर वे लोग बेचैन हो गए। स्वामीजी (हरिमोहन) ने तुरन्त गोसाँईजी का पैर पकड़कर व्याकुलता के साथ कहा– 'दया करके रक्षा कीजिए। हरकान्त को पिशाच ने ग्रस लिया है।' गोस्वामीजी एक ही अवस्था में स्थिर रहते हुए मन्द-मन्द मुस्कुराए। फिर कहे– **'अच्छा, मेरा दण्ड लाओ तो!'** एक गुरुभाई ने तुरन्त दण्ड लाकर गोसाँईजी के सामने रख दिया। गोसाँईजी ने दण्ड हाथ में लेकर भूमि पर एक बार थोड़ा आघात करके कहा– **'जा निश्चिन्त हुआ।'** ठीक उसी दिन, उसी समय देवेन्द्र अचानक निर्विष सर्प की भाँति बिल्कुल निर्जीव हो गया। भैया ने लिखा था, उस समय देवेन्द्र के भीतर एक अद्‌भुत असह्य यन्त्रणा हुई। वह क्लेश का कारण मेरे सामने प्रकट न करके पागल के समान भागकर कहीं चला गया। लगता है, गोस्वामीजी की इच्छा से ही देवेन्द्र की सारी शक्ति नष्ट हो गई थी। इसीलिए वह फिर यहाँ आया नहीं। इत्यादि।

मेरा उभय संकट

गुरुभाइयों ने मुझसे कहा– 'भाई, श्रीवृन्दावन आए हो, बड़ी अच्छी बात है। अब कुछ दिन यहाँ रह सको तो अच्छा है। जिनके पास आए हो, जिनके साथ रहना है, वे अब पहले जैसे नहीं हैं; गोसाँईजी अब वैसे नहीं रहे; वे अन्य प्रकार के हो गए हैं। सर्वदा ही बड़ा उग्रभाव धारण किए रहते हैं। कुछ कहो या न कहो, उनके बैठने और देखने का ढंग देखकर हम लोगों का हृदय धड़कने लगता है। दिनभर में एक बार भी उनके पास जा नहीं सकते, पास में बैठ भी नहीं सकते। यदि कभी हम लोगों में से किसी को पुकारते हैं– पुकार सुनते ही काँप उठते हैं। एक बार आगे-पीछे ताककर, अन्त में धीरे-धीरे सिर खुजलाते-खुजलाते उनके पास पहुँचते हैं। उसके बाद कैसे क्या होता है, समझ नहीं आता; उनके साथ जो भी बातें क्यों न हो, अन्त में भयंकर डाँट खाकर लौटते हैं। किसी की सामान्य थोड़ी भी त्रुटि देख लें, तो फिर बचाव नहीं है– भयानक दण्ड देते हैं, कभी-कभी कुंज से निकल जाने को कहते हैं। इसीलिए भय से हम लोग प्रयोजन के अनुसार कुंज में रहकर, सब समय बाहर-बाहर घूमते हैं। भाई, तुम थोड़ा सावधान रहना। गोसाँईजी की उग्र मूर्ति देखकर हम लोग सदैव भयभीत रहते हैं। ऐसा न हो कि धक्का खाकर शीघ्र ही तुमको खिसकना पड़ जाए, इसलिए ये सब बातें बतला दे रहे हैं।' मैंने कहा– क्यों? तुम लोग गोसाँईजी का शान्त रूप क्या कभी देखे नहीं? श्रीधर ने कहा– 'वह क्यों नहीं देखेंगे? शान्त भाव में जब रहते हैं, तब इतने गम्भीर

हो जाते हैं कि पास जाएगा कौन? बड़ी हिचकिचाहट होती है। दोनों ही भाव का आधिक्य है। पहले कभी गोसाँईजी को इस प्रकार से रहते हुए देखा नहीं। इसीलिए कहता हूँ– सावधान!'

गुरुभाइयों की बातें सुनकर मैं दुविधा में पड़ गया। मैं वेदना से पीड़ित हूँ, उन लोगों के समान बाहर-बाहर घूमने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है; जाने का साहस करने पर शय्यागत हो पड़ूँगा। अतएव वह मेरे लिए बिल्कुल असम्भव है। सोचा–

ना जाए नृप वध करे, जाए डसे भुजंग।
रावण सह विपदा भई ज्यों मारीच कुरंग।।

{न जाने से वध करे राजा, जाने से डसे भुजंग। रावण के साथ जैसे मारीच कुरंग (हिरण)।}

मेरी भी दशा यही हो गई, मैं उभय संकट में पड़ गया। जो भी हो, मैं जाकर गोसाँईजी के आसन के पास बैठ गया। इसी समय दामोदर पुजारी ने आकर हाथ जोड़कर गोसाँईजी को प्रणाम करके कहा– 'बाबा, आपका वचन सिद्ध है। आपने सबेरे जैसा कहा, वैसा हमको मिल गया। यह बाबू बड़ा भगत है, बड़ा सुपात्र है– हमको 11 रुपिया दिया।' गोसाँईजी ने कहा– **"दाऊजी बड़े दयालु हैं! अच्छे-से मन लगाकर उनकी सेवा करो, देखना वे तुम्हारा कोई अभाव नहीं रखेंगे। वैसा नहीं करने से ही मुस्किल है।"**

सुना है, आज प्रातः दामोदर पुजारी ने गुरुदेव से कहा था– 'बाबा, भण्डार खाली है, आज दाऊजी का भोग किस प्रकार होगा?' गोसाँईजी ने तब कहा था– **'अच्छा थोड़ी प्रतीक्षा करो, अधीर मत हो; आज तुम्हें कुछ मिलेगा।'**

श्रीवृन्दावन वास की विधि

संध्या के कुछ पहले ठाकुर अपने-आप मुझसे कहने लगे– **'श्रीवृन्दावन में आए हो, अच्छा हुआ। यहाँ तो कोई कामकाज है नहीं। अब दिनभर खूब साधन-भजन करो। रात्रि में आहार के बाद तीन-चार घण्टे नींद लो; फिर गहन रात्रि में उठकर नाम-जप करो। गहन रात्रि में साधन-भजन की एक विशेषता सर्वत्र ही अनुभव की जाती है। इस स्थान की तो बात ही छोड़ो। कुछ दिन नियमानुसार बैठने से ही समझ पाओगे, यह स्थान पृथ्वी के अन्य स्थानों के जैसा नहीं है– इसको अप्राकृत धाम कहते हैं। इस धाम का अद्‌भुत माहात्म्य समझना हो, तो इस स्थान के लिए जो सब विधि व्यवस्था है, उसका पालन करके चलना होगा। किसी तीर्थ में केवल वास करने से, उस स्थान के पालनीय विशेष-विशेष विधि-निषेध का पालन किए बिना, स्थान का यथार्थ माहात्म्य समझ नहीं आता।**

इस स्थान में वास करने के लिए (1) हिंसा का त्याग करना होता है, (2) परनिन्दा विषवत् त्याग करनी होती है, (3) वृथा समय बिताते नहीं, (4) अनिवेदित वस्तु कभी नहीं खाते, (5) सर्वदा साधन-भजन में लगे रहना होता है। इन नियमों का पालन करके कुछ समय चलने से ही, यह धाम क्या है, धीरे-धीरे उसका अनुभव होगा। दो-पाँच दिन यहाँ रहकर जो लोग चले जाते हैं, वे कैसे इस स्थान का माहात्म्य समझेंगे? गर्भवती स्त्री जिस प्रकार स्वस्थ शरीर में नियम से रहकर दस मास बाद सन्तान प्रसव करती है, इन स्थानों में भी उसी प्रकार दीर्घकाल रहना होता है। अन्ततः एक वर्ष भी नियम के अनुसार रहने से धाम का थोड़ा प्रभाव समझ सकते हैं। मैं तो यह सब कुछ भी नहीं जानता था। परमहंसजी के आदेशानुसार कुछ समय यहाँ वास करने से ही अब दिनो-दिन स्थान का अद्भुत माहात्म्य प्रत्यक्ष करके चकित हो रहा हूँ। नियमानुसार खूब साधना करो– विशेष उपकार होगा। इस धाम का प्रभाव बड़ा ही आनन्ददायक है।'

मैंने पूछा– गर्भधारण करके स्वस्थ शरीर में रहकर दस मास बाद जिस प्रकार सन्तान प्रसव होता है, तीर्थ के नियम यथारीति प्रतिपालन करके दीर्घकाल तीर्थवास करने से क्या तीर्थ देवता भी पुत्र-रूप में प्रकाशित होते हैं?

ठाकुर ने कहा– **"पुत्र-रूप की बात नहीं है; अपने रूप में ही वे प्रकाशित होते हैं। गर्भधारण के समान नियम धारण करके तीर्थवास करना चाहिए, तभी तो!"**

ब्रह्मचारीजी का अनुताप और शेषकालीन कथा

बारदी के ब्रह्मचारीजी के एकाएक देहत्याग की बात सुनकर बड़ा कष्ट हुआ। गोसाँईजी से पूछा– ब्रह्मचारीजी ने और सौ वर्ष रहने की बात कही थी। इतने शीघ्र उन्होंने देहत्याग क्यों किया? किस रोग से उनकी मृत्यु हुई?

गोसाँईजी– **मृत्यु क्या कभी महापुरुषों की होती है? रोग– वह भी थोड़ा दिखाने के लिए। अपनी इच्छा से ही उन्होंने देहत्याग किया है। कहा कि अब उनके और रहने का कोई प्रयोजन नहीं है। उनके रहने से वरन् लोगों की और भी हानि होगी।**

मैंने कहा– अपनी इच्छा से उन्होंने क्यों देहत्याग किया? देहत्याग के पूर्व क्या आपसे कुछ कहा था?

गोसाँईजी– **हाँ, बहुत-कुछ कहा था। देहत्याग की पूर्व रात्रि में वे**

यहीं थे। रातभर मेरे साथ उनका झगड़ा हुआ। मुझसे बार-बार जिद करके कहने लगे– 'तू जाकर मेरे आसन में बैठ; मैं अब देह में नहीं रहूँगा।' मैंने कहा– एक वर्ष यहाँ रहने का संकल्प करके मैंने आसन लगाया है; मेरे लिए यह धाम छोड़कर जाना सम्भव नहीं है। उन्होंने कहा– 'तो मैं यह देह छोड़ दूँ?' मैंने कहा– आपकी जो इच्छा करिए। आपकी देह के लिए मुझे थोड़ा भी मोह नहीं है।

मैंने गोसाँईजी की बातें सुनकर कहा– आपके साथ किस विषय को लेकर झगड़ा हुआ?

गोसाँईजी– **और कुछ नहीं, तुम लोगों के ही विषय को लेकर। ब्रह्मचारी के पास जाकर उनकी बातचीत सुनने से तुम लोगों में से किसी-किसी का बहुत अनिष्ट हुआ है। इसलिए उनसे कहा कि आपने किसी को अद्वैतवाद की शिक्षा देकर, किसी को अदृष्ट-प्रारब्ध कह-कहकर उन लोगों की बुद्धि बिगाड़ दी है। वे साधन-भजन छोड़कर अन्य प्रकार के हो गए हैं। अब उनका संशोधन होना कठिन है। लोगों का इस प्रकार तो उपकार कर रहे हो! उन्होंने कहा– 'अरे, जिसका जैसा संस्कार है, वह मेरी बात को वैसा ही समझता है। मैं क्या करूँ? सभी लोग मुझे अपने-अपने दृष्टिकोण से देखते हैं; परन्तु मुझको कोई समझा नहीं, पहचाना नहीं। मेरा स्वयं का तो कोई प्रयोजन नहीं है, उनके लिए ही तो हूँ। वे लोग ही जब मुझको पहचाने नहीं, मेरे द्वारा उनका कोई उपकार अब नहीं होगा, तो फिर रहने से क्या लाभ? मैं देह छोड़ दूँगा।' मैंने देखा, वास्तव में उनसे अब किसी का कोई उपकार नहीं होगा। उनकी बातें सच में लोग समझते नहीं; उनका भाव, उनकी भाषा अन्य प्रकार की है। इसलिए उनसे रहने के लिए फिर अनुरोध नहीं किया।**

मैं– ब्रह्मचारीजी का भाव ठीक है, हम लोग नहीं समझ सके– बातें भी क्या नहीं समझ सके?

गोसाँईजी– **कहाँ समझे? एक व्यक्ति ने ब्रह्मचारी के पास जाकर कहा, 'महाराज, शास्त्र-विधि के अनुसार स्त्रीसंग करने को कहा था, वह तो मैं कर नहीं पाता। मेरा कामभाव बहुत अधिक है। अब मैं क्या करूँ?' ब्रह्मचारी ने उनसे कहा, 'यदि वैसा नहीं कर सकते, तो क्या करोगे? जाकर वेश्यागमन करो, व्यभिचार करो।' उस व्यक्ति ने मेरे पास आकर कहा– 'महाराज, ब्रह्मचारीजी ने मुझसे वेश्यागमन करने को कहा है। महापुरुष के कथानुसार काम करने से तो कभी पाप होगा नहीं!' वैसी बात सुनकर मुझे सन्देह हुआ। 'ब्रह्मचारी क्या कभी ऐसा कह सकते हैं?**

ब्रह्मचारी की बात का वैसा आशय नहीं है।' मेरे ऐसा कहने पर बारम्बार वे सज्जन जिद करके कहने लगे– 'महाराज, मैं असत्य नहीं कह रहा हूँ। उन्होंने स्पष्ट कहा है, जाकर वेश्यागमन करो।' ब्रह्मचारी के साथ भेंट होने पर मैंने उनसे कहा, आप ये सब क्या कर रहे हैं? आपके उपदेश से लोगों का सर्वनाश ही होगा, धर्म-कर्म सब छोड़ देंगे; स्वेच्छाचार, व्यभिचार से समाज उजड़ जाएगा। 'जाकर वेश्यागमन करो' 'जाकर व्यभिचार करो' 'घूस लो', आपकी ये सब बातें मानकर लोग भयंकर काण्ड ही करेंगे! सुनकर ब्रह्मचारी ने मुझसे कहा, 'अरे, तू क्या कहता है? वे साले लोग मेरे पास आते क्यों हैं? मेरी बात समझते नहीं, मुझसे पूछते क्यों हैं? विधि के अनुसार जो लोग स्त्रीसंग कर नहीं सकते, उन्हीं को कह देता– 'जाकर व्यभिचार करो', 'जाकर वेश्यागमन करो'। इसका मतलब क्या अन्य स्त्री का संग करने को कहा है, या बाजार की वेश्या का संग करने को कहा है? शास्त्र-विरुद्ध आचार ही तो व्यभिचार है; शास्त्र-विधि का उल्लंघन करके अपनी स्त्री का संग करना भी वेश्यागमन है। मैंने तो ऐसे व्यभिचार, ऐसे वेश्यागमन की बात कही है।' एक बार एक ब्रह्मसमाजी ने ब्रह्मचारी के पास जाकर, ईश्वर साकार है या निराकार, इस सम्बन्ध में चर्चा की। ब्रह्मचारी ने उनकी सब बातें सुनकर कहा, 'ईश्वर के मुँह में मैं हगता हूँ, उसी के मुँह में मैं मूतता हूँ।' यह बात सुनकर ब्रह्मसमाजी तो अत्यन्त विरक्त होकर चले गए। दस लोगों के सामने कहने लगे, 'ब्रह्मचारी बड़ा पाखण्डी है, वह नास्तिक है। ईश्वर के मुँह में हगता हूँ, मूतता हूँ, वह इस प्रकार की बातें कहता है।' ब्रह्मचारी से यह बात पूछने पर उन्होंने कहा, "अरे उन्होंने स्वयं ही खूब उच्च अवस्था की बात कही थी। फिर मेरी वैसी बात सुनकर विरक्त क्यों हुए? उन्होंने कहा, 'ईश्वर सर्वव्यापी हैं।' मैंने कहा, उस ईश्वर के मुँह में मैं हगता हूँ, मूतता हूँ। ईश्वर सर्वव्यापी होने से मैं हगूँ मूतूँ कहाँ, तुम्हीं कहो न?" ब्रह्मचारी की सब बातें इसी प्रकार की थी। उनकी बातें लोगों को समझ में न आने से बहुत गड़बड़ हुआ है।

मैं– उन्होंने मुझे कितना भरोसा दिया था; रहने से तो वे वह सब करते!

गोसाँईजी– **उसके लिए इतना क्यों सोचते हो? मैं किसलिए हूँ? तुम लोगों से जो कहा है, करते जाओ। तुम लोगों के लिए जो करना है, वह मैं ही करूँगा। उसके लिए अन्य किसी के ऊपर तुम लोगों को भरोसा करना नहीं होगा। तुम लोगों का कुछ भी अभाव नहीं रहेगा। समय पर सभी पूर्ण होगा।**

मैंने पूछा– ब्रह्मचारीजी क्या पुनः जन्म ग्रहण करेंगे?

गोसाँईजी– **हाँ, उनका काम है। वे शीघ्र ही बुद्धदेव की भाँति पूर्ण ज्ञान के साथ जन्म ग्रहण करेंगे।**

गुरुदेव के साथ बहुत समय तक ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में अनेक बातें हुईं। इससे तो यही लगता है, जैसे गोस्वामीजी ने ही ब्रह्मचारीजी को हटा दिया है। एक बार भी यदि ठाकुर उनको इस संसार में रहने के लिए कहते, तो वे इतने शीघ्र देहत्याग कभी नहीं करते।

अन्त में गोसाँईजी ने कहा– **अनेक लोग उनके भाव और भाषा न समझकर भ्रमित हुए हैं। मैंने ब्रह्मचारीजी से कहा था, जिस भाव से, जिस प्रकार की बात कहने से साधारण लोग आपका यथार्थ भाव समझ सकें, उस प्रकार से उन्हें क्यों नहीं कहते? उस पर ब्रह्मचारी ने कहा– 'अच्छा! तो अब मैं उनकी भाषा सीखने जाऊँगा? वैसे लोग मेरे पास आते क्यों हैं? मैं तो किसी को बुलाकर लाता नहीं।'**

सद्‌गुरु की कृपा के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर

गुरुदेव ने हमारे जीवन की अनन्त उन्नति का समस्त भार ग्रहण किया है एवं उस पथ पर वे स्वयं ही हम लोगों को ले जाएँगे, यह बात उनके मुख से सुनकर बड़ा आश्वस्त हुआ। ब्रह्मचारीजी के ऊपर जो निर्भर हुआ था, उसके लिए मैं वास्तव में लज्जित होने लगा। गोसाँईजी से फिर कुछ न पूछकर मैं मन-ही-मन नाम जपने लगा; लेकिन धीरे-धीरे मेरे मन में फिर एक आन्दोलन उपस्थित हुआ। सोचा, 'समस्त अभाव यदि गोसाँईजी ही पूर्ण कर सकते हैं, तो फिर इतना क्यों भुगत रहा हूँ? जिनकी इतनी दया है, वे क्या कभी अन्य का क्लेश दूर करने में समर्थ होते हुए भी उसे न करके स्थिर रह सकते हैं?' गोसाँईजी से ये सब बातें पूछने के लिए अवसर ढूँढ़ने लगा; इस समय एक बार मेरी ओर देखकर अपने-आप वे कहने लगे, **'खूब साधना करते जाओ। अभी फलाफल की ओर ध्यान मत दो। समय पर फल पाओगे। असमय में तो कुछ होता नहीं। सबका ही एक निर्दिष्ट समय है। देखो, पेड़ में जो फूल होते हैं, फल होते हैं, उसका एक समय है। किसान लोग जो खेती करते हैं, उसका भी एक समय निश्चित है; समय का अतिक्रम करके कोई कुछ करता नहीं। देखे तो हो– किसान बीज बोने के पूर्व कितना कुछ करते हैं? समय पर हल चलाकर खेत से घास-फूस सब जड़ से निकालकर अलग कर देते हैं; फिर बीज बोते हैं। बीज जब अंकुरित होता है, तब पुनः अच्छे-से**

आसपास की घास आदि निकाल देते हैं। फिर वह सब पौधे बढ़ते हैं, फसल भी अच्छी होती है। जो किसान पहले खेत को स्वच्छ नहीं करते, विभिन्न प्रकार के जंगली घास-फूँस लगने से उनके खेत की फसल नष्ट होने लगती हैं। तब घास-फूँस निकालते-निकालते किसानों के तो प्राण निकलने लगते हैं, फिर उन सब पौधों में फसल भी अच्छी नहीं होती; किसानों की तो बड़ी दुर्दशा होती ही है, फसल भी काम की नहीं रहती। सभी इसी प्रकार समझना। समय पर ही किसान लोग सब कर लेते हैं; असमय में कुछ करने से वैसा फल नहीं होता। जैसा कहा जाता है, करते जाओ। अभाव कुछ भी नहीं रहेगा– समय पर ही सब कुछ होगा। खूब नाम-जप करो।'

गोसाँईजी की बातें सुनकर मैं सोचने लगा– 'तो फिर लोग सद्गुरु का आश्रय क्यों लेते हैं?' मैंने पूछा– समय पर जिसका जो होना है, वह तो होगा ही। उसके लिए प्रयास करें या न करें, गुरु सहायक हो या न हो, स्वाभाविक होगा। ऐसा होने पर फिर सद्गुरु का आश्रय लेने से लाभ क्या हुआ? सद्गुरु कृपा करके किसी भी समय क्या थोड़ी अवस्था खोल नहीं सकते? समय पर ही सब होता है, तो फिर 'कृपा' शब्द का अर्थ क्या है?

गोसाँईजी ने कहा– **"सद्गुरु की कृपा से सब कुछ हो सकता है; फिर गुरु की जब इच्छा हो उसी समय सब कर सकते हैं– यह बात सत्य है; लेकिन उससे क्या लाभ? एक वस्तु का मूल्य न जानने से यदि वह सहज में प्राप्त होती है, तो उसके लिए कोई तत्परता नहीं रहती। जिस वस्तु के लिए जितना अभाव बोध होता है, प्राप्त होने पर उससे उतना लगाव रहता है; जिस वस्तु के अभाव से जितना क्लेश होता है, उस वस्तु की प्राप्ति से उतना आनन्द होता है। फिर गुरु द्वारा एकाएक कोई अवस्था प्रदान करने से तो उसकी मर्यादा जानी नहीं जाती! इसलिए साधन-भजन करके, चेष्टा करके जब लोग समझ जाएँ कि एक अवस्था को प्राप्त करना कितना कठिन है, कितना दुर्लभ है, तब गुरु कृपा करके वह अवस्था प्रदान करते हैं। गुरु वस्तु का मूल्य समझाकर वह शिष्य को देते हैं– यही नियम है।"**

मैंने कहा– वस्तु की मर्यादा न कर पाने से, वस्तु की मर्यादा न जानने से वह मुझे न मिले। जिस वस्तु को पाकर फिर खोना होगा, वह भी मैं नहीं चाहता। मेरे भीतर की सब बुराइयाँ दूर कर दीजिए, ऐसा होने से बच जाऊँगा। सभी जब गुरु कृपा से होगा, तब मेरे कुछ करने के लिए फिर रहा क्या?

गुरुदेव मेरी बात सुनकर कुछ क्षण शान्त रहे। फिर बड़े स्नेह के साथ मेरी

ओर देखकर कहने लगे– **'जो कहा है, वही करते जाओ। श्वास-प्रश्वास में नाम जपने की खूब चेष्टा करो। नाम-साधना के जैसा श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। अपने स्वयं के जीवन में मैंने नाम-साधना का फल पाया है। एक बार उस प्रकार से नाम-साधना करके तो देखो, फल कैसे नहीं मिलता! पहले-पहले नाम-जप करने में बहुत विरक्ति लगती है; किन्तु उस कारण से उसे छोड़ते नहीं। विरक्ति लगती है, तो क्या हुआ? उससे तो कोई हानि नहीं है? खूब नाम-जप करते जाओ। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने से बहुत लाभ है; श्वास-प्रश्वास में नाम जपने से प्रारब्ध धीरे-धीरे कट जाते हैं। तब अच्छी-अच्छी अवस्थाएँ भी प्राप्त हुआ करती हैं। प्रारब्ध क्षय का ऐसा उत्तम उपाय और नहीं है।'** यह कहकर ठाकुर ने आँखें बन्द कर लीं। मैं धीरे-धीरे नीचे जाकर दाऊजी के मन्दिर के बरामदे में बैठ गया। कुछ समय बाद दाऊजी की आरती आरम्भ हुई; मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं पुनः ऊपर जाकर बैठ गया। वेदना से बड़ा कष्ट होने लगा।

गोपीनाथजी के मन्दिर में महोत्सव: ठाकुर का नृत्य

श्रीवृन्दावन आकर कुंज से अभी तक बाहर नहीं गया। सुना है, श्रीगोपीनाथजी के मन्दिर में आज संकीर्तन-महोत्सव होगा। श्रीवृन्दावन के समस्त वैष्णव-समाज उस उत्सव में सम्मिलित होंगे। थोड़ा दिन चढ़ने पर गुरुदेव के साथ हम लोग मन्दिर की ओर निकल पड़े। रास्ते में देखा, एक विशाल संकीर्तन-दल आ रहा है। गोसाँईजी संकीर्तन के उद्देश्य से साष्टांग प्रणाम करके चौड़े रास्ते के बीच में खड़े हो गए। हाथ-जोड़कर सतृष्ण नयनों से वे कीर्तन की ओर देखते रहे। उनका सारा शरीर थरथर काँपने लगा। देखते-देखते ही मृदंग-करताल की ध्वनि से चारों दिशा को कम्पित करते हुए संकीर्तन-मण्डली गोसाँईजी के सम्मुख आ गई। वैष्णवगण गोसाँईजी का दर्शन करके दुगुने उत्साह के साथ कीर्तन करने लगे। वे लोग गोसाँईजी की परिक्रमा करते हुए बड़े उल्लास के साथ उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। गोसाँईजी तब सामने हाथ उठाकर उच्च स्वर में– **'जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन'** कहते-कहते गिर पड़े। संकीर्तन के बड़े-बड़े पृथक दल एक साथ मिलकर बड़े उत्साह से गोसाँईजी को चारों ओर से घेरकर उच्च स्वर में कीर्तन करने लगे। इस समय गोसाँईजी ब्रज-रज में बार-बार लोटकर, धूल से लथपथ होकर अचानक उठकर खड़े हो गए। फिर मृदंग-करताल के ताल के साथ दो-चार कदम बढ़कर सीधे उछल पड़े। **'जय हे! जय हे!'** कहकर दाहिना हाथ ऊपर उछालते हुए उन्होंने उद्दाम नृत्य आरम्भ कर दिया। देखते-देखते वे मल्ल वेश में नृत्य करके उस भीड़ में, विशाल राजमार्ग पर बिजली की भाँति भाग-दौड़

करने लगे। पता नहीं, किस प्रकार इतनी भीड में अबाध गति से गोसाँईजी का वह विशाल शरीर मानो हवा में उड़ने लगा। दाएँ-बायें, आगे-पीछे, जब जिस दिशा में गोसाँईजी दौड़े, भावावेग का प्रबल तूफान उठने से उन सब दिशाओं में बडा कोलाहल मच गया। गोसाँईजी की बारम्बार ललकार व हरिध्वनि सुनकर सभी लोग दिग्भ्रमित हो गए। जगह-जगह वैष्णवगण भावावेश में अचेत होकर गिर पड़े। इसी समय गोसाँईजी कीर्तन-स्थल पर सर्वत्र दौड़-दौड़कर, जगह-जगह एक-एक बार घबराए हुए की भाँति खड़े होकर, तुरन्त सामने अपने दोनों हाथ फैलाकर, **'जय शचीनन्दन, जय शचीनन्दन'** कहते-कहते भूमि पर गिरकर लोटने लगे। ब्रज-रज सारे अंग में मलकर फिर तुरन्त उछल पड़े एवं अत्यधिक उत्साह के साथ हरिध्वनि करके नृत्य करने लगे। भावोन्मत्त श्रीधर खूब उछलते-उछलते अपने कम्बल को उड़ाकर गोसाँईजी के आगे-आगे चलने लगे। उनकी हुंकार और अद्‌भुत उछल-कूद से वैष्णव बाबाजी लोग भी उन्मत्त हो उठे। उन लोगों के विचित्र भावावेग को सहन न कर पाने के कारण मैं फिर पीछे की ओर हट गया। इसी समय मैंने पीछे देखा, गोसाँईजी के पुत्र श्री योगजीवन दौड़ते हुए आ रहे हैं। योगजीवन ढाका के गेण्डारिया-आश्रम में हैं, यही जानता हूँ; अचानक उनको इस समय कीर्तन-स्थल में उपस्थित देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। संकीर्तन-स्थल में गोसाँईजी को देखकर योगजीवन उन्मत्त हो उठे। वे बड़ी दूर से ही ठाकुर को पकडने के लिए दोनों हाथ फैलाकर बारम्बार आगे बढ़ने का प्रयास किए; किन्तु मतवाले के समान लड़खड़ाते हुए चलते-चलते पग-पग पर दाएँ-बायें गिरने लगे। मैंने योगजीवन को पकड़ लिया। तब गोसाँईजी एकाएक पीछे मुड़कर रुक गए एवं योगजीवन की ओर एक क्षण स्थिर भाव से देखकर उच्च स्वर में हरिध्वनि करने लगे। योगजीवन ऊँघते-ऊँघते क्षणभर गोसाँईजी की ओर देखकर अचेत हो गए।

गोसाँईजी ने संकीर्तन के साथ-साथ गोपीनाथ मन्दिर में प्रवेश किया। भावविह्वल योगजीवन को साथ में लेकर कुछ समय बाद मैं भी वहाँ पहुँच गया। मन्दिर के आँगन में जाकर श्रीश्री गोपीनाथजी को साष्टांग प्रणाम करते ही गोसाँईजी समाधिस्थ हो गए। दिन के 3 बजे तक उन्हें बाह्यज्ञान नहीं हुआ। समाधि भंग होने के बाद हम सभी कुंज में आ गए।

माता ठाकुरानी का श्रीवृन्दावन में आगमन: दाऊजी का मन्दिर

श्री योगजीवन गोस्वामी अपनी छोटी बहिन कुतुबुड़ी (श्रीमती प्रेमसखी) और माता श्री योगमाया देवी को लेकर आज श्रीवृन्दावन आए हैं। कुंज में प्रवेश करते ही उन लोगों को देखा। माता ठाकुरानी के आने से हम सभी बड़े आनन्दित हुए। माँ ने भी हम सभी का खूब आदर किया; परन्तु गोसाँईजी ने माता ठाकुरानी के

साथ उस प्रकार से कोई बातचीत नहीं की। सामान्य रूप से दो-चार बातें गेण्डारिया की दशा के विषय में पूछकर अपने आसन पर शान्त बैठे रहे। सुना है, माता ठाकुरानी इस बार गोसाँईजी को बिना सूचना दिए ही यहाँ आई हैं। गोसाँईजी के शरीर की दुरावस्था के सम्बन्ध में माता ठाकुरानी विशेष रूप से अवगत होकर विचलित हो गई थीं। उनकी अनुपस्थिति से गेण्डारिया-आश्रम में बहुत असुविधा होगी, जानते हुए भी उस बात की अवहेलना करके चली आईं। माता ठाकुरानी चकित होकर गोसाँईजी की देह की ओर बहुत समय तक एकटक देखती रहीं।

इस छोटे-से मकान में हम लोगों के रहने की सुव्यवस्था गोसाँईजी ने स्वयं ही कर दी है। नीचे हम लोगों के रहने का स्थान नहीं है। मकान बहुत छोटा है। पूरे मकान में लगभग पाँच-छः कट्ठा जमीन है। इस मकान के पूर्व की ओर मुख्य दरवाजा है। इस दरवाजे से प्रवेश करने से सामने ही 15-20 फीट के अन्तर में पूर्व की ओर द्वार वाला दाऊजी ठाकुर का मन्दिर है। सामने एक बरामदा है। मन्दिर से संलग्न दक्षिण की ओर नीचे मात्र दो कमरे हैं। एक कमरा अपेक्षाकृत थोड़ा बड़ा है; वहीं भोग की रसोई बनती है और प्रसाद पाते हैं। पीछे की ओर दूसरे छोटे कमरे में एक ब्रह्मचारी रहते हैं। इसी कमरे के पास से ऊपर जाने के लिए सीढ़ी है। यह सीढ़ी ऊपर लम्बे बरामदे के पश्चिम की ओर निकलती है। बरामदे से संलग्न दक्षिण दिशा में पास-पास तीन कमरे हैं। सीढ़ी से जाने पर पहले कमरे में ही गोसाँईजी का आसन है। कोई खिड़की न रहने से इस कमरे में दिन के समय भी अन्धकार रहता है। इस कमरे के पूर्व ओर, दरवाजे के ठीक किनारे, उक्त बरामदे में गोसाँईजी का आसन दिनभर बिछा रहता है। इसी आसन पर गोसाँईजी उत्तरमुखी होकर प्रातः से संध्या तक स्थिर भाव से बैठे रहते है। मकान के उत्तरी भाग में कुछ खुली जमीन पड़े रहने के कारण बरामदे से देखने में कोई रुकावट नहीं है। गोसाँईजी के आसन-गृह के पूर्व की ओर अर्थात् बीच वाले कमरे में हम लोगों के रहने की व्यवस्था हुई है। पूर्व की ओर अन्तिम कमरे में कुतुबुड़ी व योगजीवन को लेकर माता ठाकुरानी रहेंगी। हम लोगों के कमरे में भी वैसा उजाला नहीं आता। अतएव दिन के समय माता ठाकुरानी के कमरे में हम लोग इच्छानुसार रह सकेंगे। उनके कमरे में पूर्व की ओर एक बड़ी खिड़की रहने से कमरा अच्छा उज्ज्वल है। यह कमरा गोसाँईजी के आसन से थोड़ा दूर होने के कारण हम लोगों को बातचीत करने की भी अच्छी सुविधा मिल गई है।

ठाकुर की कृपा-दृष्टि से उत्कट रोग की शान्ति
विविध प्रकार की बातें

6 जुलाई, रविवार। श्रीवृन्दावन में आकर अपने पित्तशूल के रोग में कोई कमी नहीं देख रहा हूँ। रात्रि में नींद न आने तक इस भयंकर कष्टदायक वेदना का विराम नहीं है। संध्या के समय गोसाँईजी के पास कुछ क्षण बैठ भी नहीं पाता, बिछौने पर पड़ा रहता हूँ। जिस दिन से वृन्दावन आया हूँ, उस दिन से इस रोग की यन्त्रणा मानो और भी बढ़ती जा रही है। गोसाँईजी मेरे शरीर की दुर्बलता देखकर, अपने पीने के थोड़े परिमाण के दूध का आधा भाग प्रतिदिन मुझे देते हैं। मैंने पूछा, अपने पीने के थोड़े परिमाण के दूध में से आप आधा मुझे क्यों देते हैं? मुझे दूध की कोई आवश्यकता नहीं है।

गोसाँईजी ने कहा– **"बचपन से ही तुम्हें दूध पीने का अभ्यास है। अब नहीं पीने से अस्वस्थ हो सकते हो।"** मेरे नहीं चाहने पर भी गोसाँईजी जिद करके प्रतिदिन मुझे दूध देते हैं।

प्रातः यमुना में स्नान करके, गोसाँईजी के पास बैठकर नाम जपने लगा। थोड़ा दिन चढ़ते ही मेरी वेदना भयंकर बढ़ गई। यन्त्रणा से मैं बेचैन हो गया। ऐसा न हो कि गोसाँईजी को पता चल जाए, इस भय से लम्बे समय तक एक-एक बार श्वास रोककर धीरे-धीरे दीर्घ श्वास छोड़ने लगा। गोसाँईजी समाधिस्थ थे। इस समय अचानक वे दो-तीन बार उठने के लिए तत्पर हो गए, जैसे डर गए हैं। फिर स्नेहपूर्वक मेरी ओर डबडबाई आँखों से देखते हुए कहने लगे– **'ओह! तुम इतना कष्ट पा रहे हो! अच्छा, तुम्हें अब भुगतना नहीं पड़ेगा।'** इतना कहकर उन्होंने दो-तीन बार मेरी ओर देखकर पुनः आँखें बन्द कर लीं। गोसाँईजी का मुख इस समय लाल होकर सूज गया। वे पुनः समाधिस्थ हो गए।

मेरी वेदना की बात यहाँ कोई नहीं जानता। गोसाँईजी को यह किस प्रकार पता चल गया एवं **'अब भुगतना नहीं पड़ेगा'**, यह बात भी उन्होंने क्यों कही? यही सब सोचते-सोचते मैं नीचे चला गया।

भोजन के बाद ठाकुर के पास बैठकर नाम-जप कर रहा था, थोड़ा अन्यमनस्क हो गया। इस समय धीरे-धीरे पता नहीं कब मेरी वेदना कम हो गई। कुछ क्षण बाद वेदना बिल्कुल ही नहीं रही, यह देखकर चौंक उठा। सोचने लगा, 'ये अब क्या हुआ? इतने समय से जो असह्य यन्त्रणा अविराम भुगतता आया हूँ, अचानक वह कहाँ गई?' यह असम्भव घटना देखकर कुछ क्षण के लिए मैं स्तब्ध रह गया। सोचा, 'लगता है यह मेरे गुरुदेव की ही कृपा है।' जो हो, वेदना वास्तव में दूर हो गई या नहीं, स्पष्ट जानने के लिए रात्रि में अधिक रोटी व अरहर की

दाल एवं अधिक मिर्च व खट्टा खाया; लेकिन सारी रात मुझे आराम से नींद आई; वेदना का लेशमात्र भी अनुभव नहीं किया।

——————

7 जुलाई, सोमवार। आज प्रातः यमुना में स्नान करके आने के बाद देखा, गुरुदेव अपने आसन पर शान्त भाव से बैठे हुए हैं, किन्तु उनका चेहरा बिल्कुल काला हो गया है। ठाकुर का श्रीमुख देखकर मानो मेरी छाती फट गई। तुरन्त हाथ में रखे वस्त्र फेंककर चीत्कार करते हुए गिर पड़ा। ठाकुर का पैर पकड़कर रोते-रोते कहा, मेरा रोग ले लेने से आप काले हो गए! मेरा रोग मुझे ही दीजिए; उसे मैं भोगूँगा। ठाकुर ने मेरा हाथ छुड़ाकर कहा– **"ये क्या है? ऐसा क्यों कर रहे हो? भोग-टोग वह सब कुछ नहीं है। किसका भोग कौन लेता है!"**

केवल इतना कहकर ठाकुर ने आँखें बन्द कर ली। मुझे फिर कुछ पूछने का अवसर नहीं मिला। बैठे-बैठे रोने लगा। सोचने लगा, "हाय! ठाकुर मेरे लिए कितनी दुःसह यन्त्रणा को सहन कर रहे हैं! ब्रह्मचारीजी ने मुझसे कहा था, 'यह रोग प्रारब्ध का है, भोगने से ही समाप्त होगा। अभी हाथ फेरकर हटा सकता हूँ; लेकिन ऐसा होने से अन्य जन्म में फिर भुगतना होगा।' हाय! उस समय मैं यदि उनकी बात मान लेता, छाती पर हाथ फेरने देता, तो अभी मेरे ठाकुर की छाती पर यह भयानक भाला नहीं पड़ता।" रोग की यन्त्रणा की अपेक्षा यह क्लेश मुझे अधिक बोध होने लगा। मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा– ठाकुर, यह आशीर्वाद दो, जिससे जीवन में तुम्हारी यह दया भूलूँ नहीं। मुझे स्वस्थ व शीतल रखने के लिए इस भयंकर रोग को लेकर अपनी छाती में आग जला लिए, इस बात को स्मरण में रखकर ही मेरा यह जीवन समाप्त हो।

——————

भोजन के बाद कुछ समय गुरुभाइयों के साथ बातचीत में बीत जाता है। प्रतिदिन 3 बजे ठाकुर के पास हरिवंश का पाठ किया करता हूँ। ठाकुर उसे सुनकर बड़े आनन्दित होते हैं। मैं पाठ के समय ठाकुर को बहुत हैरान करता हूँ। हरिवंश के तथ्य की बातें मुझे कुछ समझ में नहीं आतीं। ठाकुर से आज पूछा– 'ये सब कथाएँ तो कुछ समझ में नहीं आतीं। वृथा पढ़ने से क्या लाभ?

ठाकुर ने कहा– **"अभी केवल पढ़ते जाओ। साधना के द्वारा जब ये सब तत्त्व प्रकाशित होंगे, तब ये सब समझोगे। एक बार पढ़ा हुआ रहने से अच्छा है।"**

मैं– तत्त्व प्रकाशित होने से ही तो सब जान जाऊँगा। तो फिर अभी क्यों पढ़ना?

ठाकुर ने कहा– **"नहीं, पढ़ा रहने से अच्छा है। प्रत्यक्ष होने पर ये सब शास्त्र-पुराणों का लिखा हुआ ही हैं, यह देखकर विश्वास और भी दृढ़ होगा।"**

मैं– यदि 20 वर्ष बाद किसी विषय का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, तो फिर उसका प्रमाण किस ग्रन्थ में कहाँ किस अंश में है, वह कैसे स्मरण होगा?

ठाकुर– **एक बार पढ़ा रहने से, प्रत्यक्ष विषय कहाँ पढ़ा गया था, 20 वर्ष बाद भी वह स्मरण हो जाता है।**

ठाकुर से बहुत समय तक विविध प्रश्न किया। ठाकुर प्रतिदिन ही संध्या के समय श्रीमद्भागवत का पाठ सुनने श्री नीलमणि गोस्वामी जी के घर जाते हैं। नीलमणि गोस्वामी जी स्वयं ही उसका पाठ करते हैं। ठाकुर के साथ हम सब लोग भी जाया करते हैं। ऐसा भागवत-पाठ कदाचित् श्रीवृन्दावन में किसी ने सुना नहीं। एक-एक श्लोक की व्याख्या में नीलमणि गोस्वामी जी एक घण्टा भी लगा देते हैं। ठाकुर ने कहा– **"ग्रन्थ पाठ के समय उनकी व्याख्या में ज्ञान और भक्ति मानो मूर्तिमान् होकर प्रकाशित होते हैं। ऐसी असाम्प्रदायिक व्याख्या आजकल सुनी नहीं जाती।"**

श्री नीलमणि गोस्वामी जी ठाकुर को 'काका' कहते हैं और उनके प्रति बहुत श्रद्धा रखते हैं।

बातों-बातों में आज एक बार ठाकुर से पूछा, सुना है, हम लोगों के भयंकर मानसिक भोगों को आप ग्रहण करते हैं। प्रारब्ध का तीव्र दैहिक भोग भी क्या आपको भुगतना होता है?

ठाकुर ने कहा– **"अरे बाबा, सभी भुगतना पड़ता है।"**

गोसाँईजी और माता ठाकुरानी का कलह

8 जुलाई, मंगलवार। गोसाँईजी के शरीर की अवस्था बहुत खराब है, यह जानते ही माता ठाकुरानी घबराकर श्रीवृन्दावन आ गई। गेण्डारिया छोड़कर इस समय माता ठाकुरानी यहाँ न आएँ, इसके लिए ठाकुर ने बार-बार पत्र लिखा था। ठाकुर के मना करने के बाद भी माता ठाकुरानी यहाँ आए बिना रह नहीं सकीं। गोसाँईजी के शरीर की अवस्था से अवगत होकर वे बेचैन हो गई! यहाँ आने के बाद से किन्तु माता ठाकुरानी मानो डरी-डरी-सी हैं; गोसाँईजी के पास जातीं नहीं, बैठतीं नहीं। ठाकुर भी उन्हें किसी काम से बुलाते नहीं। वे दिनभर अपने कमरे में ही बैठी रहतीं हैं, हम लोगों के साथ भी पहले के समान बातचीत नहीं करतीं।

आज रात्रि में लगभग 11 बजे माता ठाकुरानी साहस करके गोसाँईजी के आसन के पास जाकर बैठ गई एवं धीरे-धीरे उनको हवा करने लगीं। रात्रि में गोसाँईजी भयंकर गर्मी के कारण आसन-गृह में रह नहीं पाते; दिन के समय जहाँ रहते हैं, उसी बरामदे के आसन पर ही रात बिता देते हैं। मैं भी गरम अन्धकूप कमरे में न रह पाने के कारण बरामदे में रहता हूँ। गोसाँईजी के आसन से लगभग पाँच फीट के अन्तर में मेरा बिछौना है। गोसाँईजी ने मुझे वहाँ सोने के लिए कहा है। मैं जितने समय तक जागता रहा, ठाकुर समाधिस्थ ही थे। रात्रि में लगभग 3 बजे मेरी नींद टूटी; तब उसी प्रकार बिछौने में लेटे रहकर गोसाँईजी और माता ठाकुरानी का झगड़ा सुनने लगा। श्रीमती शान्तिसुधा (ठाकुर की बड़ी कन्या) गर्भवती हैं; बूढ़ी नानीजी (गोस्वामीजी की सास) अस्वस्थ हैं; योगजीवन की पत्नी भी बहुत छोटी है; इस अवस्था में उन लोगों को गेण्डारिया में छोड़कर माता ठाकुरानी का आना ठीक नहीं हुआ, गोसाँईजी बार-बार यही बात कहने लगे एवं उनको तुरन्त ढाका लौट जाने के लिए हठपूर्वक कहने लगे। माता ठाकुरानी ने कहा कि गोसाँईजी का शरीर अभी जिस प्रकार अस्वस्थ और दुर्बल हो गया है, उनको इस प्रकार छोड़कर वे इस समय किसी भी परिस्थिति में कहीं नहीं जाएँगी। वे कोई श्रीवृन्दावन की तीर्थ-यात्रा पर नहीं आईं, ठाकुर की सेवा करने आई हैं एवं सेवा ही करेंगी। इस प्रकार वाद-विवाद में क्रमशः रात लगभग बीत गई। गोसाँईजी ने तब थोड़े तेज स्वर में माता ठाकुरानी से कहा–

"मैंने जो आश्रम ग्रहण किया है, तुम मेरे साथ रहोगी तो उस आश्रम की मर्यादा नहीं रहेगी। तुम्हें श्रीवृन्दावन में रहना है, तो और कहीं जाकर रहो। इस कुंज में नहीं रह पाओगी। इसमें यदि तुम जिद करती हो, तो मैं कहीं और चला जाऊँगा; उत्तरकुरु चला जाऊँगा।"

गोसाँईजी का यह कथन सुनकर माता ठाकुरानी ने फिर कुछ नहीं कहा, स्तब्ध होकर बैठी रहीं। इधर सबेरा भी हो गया। मैं शौच के लिए चला गया।

माता ठाकुरानी का अलौकिक रूप से अन्तर्धान

9 जुलाई, बुधवार। प्रातःकाल यथासमय ठाकुर उठकर शौच के लिए गए, हम सब लोग भी नीचे आ गए। योगजीवन, सतीश, श्रीधर आदि एक-एक करके सभी स्नान करने गए। मैं भी मुँह धोकर यमुना जाने के लिए प्रस्तुत हुआ। इसी समय माता ठाकुरानी नीचे आईं। उन्होंने मुझे देखकर कहा– 'क्यों कुलदा, यमुना जाओगे नहीं?' मैंने कहा– हाँ जाऊँगा। आप मेरे साथ जाएँगी? माता ठाकुरानी ने कहा– 'मैं जाऊँगी। लेकिन, तुम जाओ न! तुम्हारा लोटा मुझे दो।' यह कहकर वे

मेरे हाथ से लोटा लेकर 12-15 फीट के अन्तर में कुएँ के किनारे खड़ी हो गईं। फिर कुल्ला करते-करते एक-एक बार मेरी ओर देखने लगीं। मैं स्नान के लिए जाने से पहले एक बार ठाकुरजी को पाँच-छः सेकेण्ड के लिए प्रणाम करके सिर उठाकर देखा, माता ठाकुरानी नहीं हैं। कुँए के किनारे केवल लोटा पड़ा हुआ है। माता ठाकुरानी को न देखकर, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ; सोचा– 'इतने शीघ्र माँ कहाँ गईं? अभी तो वे यहीं पर खड़ी थीं। कहीं से जाने का रास्ता भी नहीं है! दीवाल से घिरा मकान, चारों ओर कुछ है भी नहीं। मुख्य दरवाजे से जाएँगीं भी तो मेरे पास से होकर ही जाएँगीं।' मैं लोटा उठाकर यही सब विचार करते-करते यमुना की ओर चला गया। यमुना में स्नान करके कुंज में प्रवेश करते ही योगजीवन ने मुझसे पूछा– 'क्यों! तुम माँ को कहाँ छोड़कर आ गए, माँ आईं नहीं।'

मैंने कहा– कहाँ, माँ तो मेरे साथ गईं नहीं। वे क्या अपने कुंज में नहीं हैं? योगजीवन 'नहीं' कहकर विस्मयपूर्वक मेरी ओर देखते रह गए। तब मैंने रात्रि में हुए कलह का विवरण सबको बतलाया। सभी ने अनुमान लगाया कि ठाकुर के प्रति अप्रसन्न होकर सम्भवतः किसी कुंज में चली गई हैं। कुछ समय तक प्रतीक्षा करके हम लोगों ने देखा, माँ आईं नहीं; तब श्रीधर, सतीश, स्वामीजी, योगजीवन एवं मैं विचलित होकर माता ठाकुरानी को ढूँढ़ने बाहर निकले। प्रातः साढ़े 6 बजे से दिन के 1 बजे तक वृन्दावन के कुंज-कुंज में, रास्ते में, मन्दिर में, बागान में और यमुना के किनारे सभी जगह अच्छे-से माता ठाकुरानी को तलाश किया; लेकिन कहीं उनका पता नहीं चला। परिचित सभी लोगों से पूछा गया, लेकिन कोई भी कुछ बतला नहीं पाया। 1 बजे तक सारे वृन्दावन में दौड़-धूप करके, थककर हम लोग कुंज में लौटे। नीचे बैठकर सभी परामर्श करने लगे, 'अब क्या किया जाए?' योगजीवन और श्रीधर बार-बार मुझसे जिद करके कहने लगे– 'भाई, तुम जाकर माँ के विषय में गोसाँईजी से कहो। आज वे इतने गम्भीर हैं कि उनके पास जाने का हम लोगों का बिल्कुल भी साहस नहीं होता।' अन्त में कोई उपाय न देखकर मैं धीरे-धीरे जाकर ठाकुर के पास बैठ गया; कुछ क्षण बाद ठाकुर ने आँखें खोलीं। मैंने तुरन्त कहा– माता ठाकुरानी नहीं मिल रही हैं। वे तो अकेली कभी कुंज से कहीं जाती नहीं; लेकिन पता नहीं आज कहाँ चली गईं? सबेरे से अब तक हम लोग उनकी खोज में सारा वृन्दावन घूमते रहे, कहीं भी नहीं मिलीं। ठाकुर ने बिन्दुमात्र भी व्यग्रता न दिखलाकर, सहज भाव से कहा– **"कहाँ जाएँगीं? तलाश करके देखो। यमुना के किनारे देखे हो?"**

मैंने कहा– कोई भी स्थान छोड़ा नहीं। रास्ते के लोगों से भी पूछा है। ठाकुर ने क्षणभर चुप रहकर थोड़ा मुस्कुराते हुए कहा– **"उनको ढूँढ़ने से भी अब मिलेंगीं नहीं। परमहंसजी उनको ले गए।"**

मैंने पूछा– परमहंसजी माताजी को क्यों ले गए?

ठाकुर ने कहा– **"कल जब उनको अन्यत्र रहने के लिए कहा गया, मना कर दीं। बहुत समझाकर कहा, किसी प्रकार भी सहमत नहीं हुईं। तब मैंने परमहंसजी को स्मरण किया। वे तुरन्त आकर मुझसे कहे, 'इसके लिए व्याकुल क्यों हो रहे हो? चिन्ता की कोई बात नहीं। कल ही मैं उनको अन्यत्र ले जाऊँगा।' वे उनको ले गए; ढूँढ़ना व्यर्थ है।"**

मैं– तो फिर यहाँ क्या माताजी के आने की सम्भावना नहीं है?

ठाकुर– **उनकी किसी ओर भी अब ममता नहीं है; केवल कुतु के प्रति थोड़ा आकर्षण है। इसी से कुतु के लिए पुनः आ भी सकती हैं। अभी उस विषय में स्पष्ट कुछ कहा नहीं जा सकता। आना, नहीं आना उनकी इच्छा पर है।**

मैं– परमहंसजी किस प्रकार ले गए? उनको तो वहाँ पर देखा नहीं! माताजी मेरे से मात्र 12-15 फीट के अन्तर में थीं। पाँच-छः सेकेण्ड के लिए केवल एक बार मेरी दृष्टि अन्य ओर थी। मुड़कर देखा, माताजी नहीं हैं। परमहंसजी आते तो वे दिखलाई पड़ते!

ठाकुर– **परमहंसजी सूक्ष्म शरीर में आए थे; उनको कैसे देखोगे? वे तो सूक्ष्म शरीर में आकर ले गए!**

मैं– परमहंसजी तो सूक्ष्म शरीर में आए थे, किन्तु माताजी तो सूक्ष्म शरीर में गई नहीं! माताजी के स्थूल शरीर को क्षणभर के भीतर परमहंसजी किस प्रकार अन्यत्र ले गए?

ठाकुर– **वे लोग सब-कुछ कर सकते हैं। योगी लोग केवल इच्छा से इस स्थूल देह को सूक्ष्म में परिवर्तन कर सकते हैं, सूक्ष्म देह को भी स्थूल कर सकते हैं। शरीर के पंचभूत को पंचभूत में मिलाकर, स्थूल को सूक्ष्म करके क्षणभर के भीतर उनको ले गए।**

मैं– परमहंसजी माताजी को कहाँ ले गए? क्या श्रीवृन्दावन में ही उनको सूक्ष्म शरीर में रखे हैं, या और कहीं ले गए?

गोसाँईजी– **श्रीवृन्दावन में अब क्यों रखेंगे? परमहंसजी उनको सीधे मानससरोवर ले गए।**

मैं– मानससरोवर में माताजी क्या सूक्ष्म शरीर में हैं?

गोसाँईजी– **वैसा क्यों? वहाँ जाकर फिर जैसी थीं, वैसी हो गईं।**

मैं– मानससरोवर में परमहंसजी हैं; वहाँ क्या और भी कोई हैं– या परमहंसजी अकेले ही रहते हैं?

ठाकुर– **अन्य भी बहुत हैं! कितने ऋषि-मुनि, कितने देवी-देवता हैं!**

मैं– अब वहाँ रहकर माताजी क्या करेंगीं?

ठाकुर– **साधन-भजन करेंगीं, कितना आनन्द करेंगीं! वहाँ जाने के बाद फिर क्या लौटने की इच्छा होती है?**

मैं– मानससरोवर तो तिब्बत में है। वहाँ देवी-देवता, ऋषि-मुनि रहते हैं?

ठाकुर– **नहीं, नहीं, ये वह मानससरोवर नहीं है। भूगोल में जिस मानससरोवर को पढ़े हो, वह नहीं– वह तो 'मानतलाब' है। मानससरोवर बहुत दूर हिमालय के ऊपर है।**

मैं– हम लोग क्या मानससरोवर जा नहीं सकते?

ठाकुर– **इस शरीर से किस प्रकार जाओगे? मार्ग बड़ा ही दुर्गम है। खूब योगैश्वर्य न होने से वहाँ जा नहीं सकते। लोग जिसको मानससरोवर समझते हैं, वहाँ सहज में ही जा सकते हैं। वह तो मानससरोवर नहीं है! मानससरोवर कैलास जाने के मार्ग पर है।**

मैं– तो माताजी कुतु के लिए फिर आ सकती हैं?

ठाकुर– **वह कह नहीं सकते– इतनी-सी ममता को इच्छा करने से ही वे लोग हटा सकते हैं।**

ठाकुर के साथ बातचीत में बहुत समय बीत गया। संध्या के समय और दिनों की भाँति आज भी ठाकुर के साथ भागवत-पाठ सुनने गया। कुंज लौटने में रात हो गई।

योगजीवन को गृहस्थी में रहने का आदेश

10 जुलाई। माता ठाकुरानी के अन्तर्धान से सबके मन में आघात लगा। योगजीवन बड़े बेचैन हो गए। अब गेण्डारिया नहीं जाएँगे, गृहस्थी में नहीं रहेंगे– कहने लगे। वे बिल्कुल निर्लिप्त हो जाना चाहते हैं। ठाकुर उन्हें स्नेहपूर्वक अच्छा उपदेश देकर शान्त करने लगे। योगजीवन ने आज बहुत समय तक ठाकुर के साथ तर्क किया। ठाकुर ने अन्त में कहा, **'अब अधिक दिन तुझे गृहस्थी में रहना नहीं होगा, निश्चित जान ले। शीघ्र ही तेरा सब ठीक हो जाएगा। फिर भी वह न होने तक कुछ समय गृहस्थी में रहना होगा। उतना-सा कर्म समाप्त किए बिना चलेगा नहीं। अभी ढाका जाकर रहो।'** अत्यन्त आग्रह समझकर योगजीवन फिर शीघ्र ही पुनः ढाका जाने के लिए सम्मत हो गए।

संध्या के समय जब हम लोग श्रीमद्भागवत सुनने जाते हैं, रास्ते में सब ओर हम लोग केवल माता ठाकुरानी की ही खोज किया करते हैं। माता ठाकुरानी के अन्तर्धान के बाद ठाकुर ने मुझसे कहा– **"कुतु पर सदैव दृष्टि रखना। पाठ सुनने जब जाओगे, कुतु का हाथ पकड़कर ले जाना। पाठ सुनने जब बैठोगे, उसको पास में ही बैठाना। कहीं उसको ले न जाएँ!"**

मैंने पूछा– क्या कुतु को भी ले जा सकते हैं?

ठाकुर– **क्यों नहीं ले जा सकते? बिल्कुल ले जा सकते हैं।**

आश्चर्य यह है कि माता ठाकुरानी के लिए कुतु में थोड़ा भी दुःख का भाव नहीं देख रहा हूँ। कुतु दिनभर ठाकुर के पास बैठी रहती हैं; ठाकुर के साथ बातचीत में, हँसी-मजाक में दिन बिता देतीं; एक बार भी माँ का स्मरण नहीं करतीं, किसी से माँ के सम्बन्ध में कोई बात पूछतीं भी नहीं। इतनी बड़ी एक घटना हो गई, कुतु मानो कुछ जानतीं ही नहीं। कुतु को लक्ष्य करके ठाकुर से मैंने पूछा– माँ के अभाव में क्या किसी-किसी को कुछ भी कष्ट नहीं होता? ठाकुर ने कहा– **"हाँ, कष्ट सभी को होता है; तो भी किसी-किसी में धैर्य बहुत अधिक होता है।"**

वानर 'कृष्णदास'

भोर में प्रातःक्रिया सम्पन्न करने के बाद, ठाकुर बरामदे में अपने आसन पर बैठते हैं। इसी समय 'कृष्णदास' आकर हाजिर होते हैं। 'कृष्णदास' एक छोटा-सा बन्दर है। ठाकुर ने आदरपूर्वक उसका नाम 'कृष्णदास' रखा है। ठाकुर रात्रि में भोजन करने के पहले 'कृष्णदास' के लिए कम-से-कम एक रोटी रख देते हैं। प्रातःकाल प्रतिदिन 'कृष्णदास' आकर उसे खाते हैं। 'कृष्णदास' के लिए यहाँ रोक-टोक नहीं है। प्रातःकाल आते ही 'कृष्णदास' बाहर से दो-तीन बार चीं-चीं करके आवाज करते हैं। तब ठाकुर अपने हाथ में रखकर उनको खाना देते हैं। दो-चार बार आवाज करने के बाद भी जब 'कृष्णदास' को खाना न मिले, तो वे सीधे ठाकुर के आसन-गृह में जाते हैं; जहाँ खाना रखा होता है, वहाँ से खाना लेकर ठाकुर के सामने आकर बैठते हैं; फिर धीरे-धीरे पाँच-सात मिनट में खाना पूरा करके चले जाते हैं; लेकिन यदि किसी आकस्मिक कारण से 'कृष्णदास' को आने के बाद भी खाना नहीं मिलता, तो वे ठाकुर का हाथ-पैर पकड़कर खींचा करते हैं– कभी गोद में, तो कभी सीधे ठाकुर के कंधे पर चढ़कर बैठ जाते हैं। उनको जब तक खाना न दे दें, ठाकुर स्थिर होकर आसन पर बैठ नहीं पाते। 'कृष्णदास' बहुत शान्त प्रकृति के नहीं हैं; फिर भी ठाकुर के बड़े दुलारे हैं।

भक्त बूढ़े वानर का कार्य

एक और बूढ़ा बन्दर ठाकुर का भक्त है। ये बहुत अनुभवी हैं। जिस दिन से ठाकुर ने यहाँ आसन लगाया है, उस दिन से ही ये ठाकुर के नित्य संगी हैं। प्रातः चाय पीने के बाद श्रीधर कुछ समय तक श्रीचैतन्य-चरितामृत ग्रन्थ का पाठ करते हैं। फिर दिन के 9 बजे ठाकुर श्रीमद्भागवत का पाठ आरम्भ करते हैं। ठीक उसी समय ये बूढ़े बन्दर आकर ठाकुर के पास ही कटघरे के बाहर बैठते हैं एवं गाल पर हाथ रखकर शान्त भाव से ठाकुर की ओर देखा करते हैं; लगता है, जैसे भागवत सुन रहे हैं। पाठ समाप्त न होने तक वे किसी प्रकार भी अपना स्थान छोड़ते नहीं। यदि कोई दुष्ट बन्दर पाठ के समय गड़बड़ करे, तो वे ऐसी दृष्टि से एक बार उसकी ओर देखते हैं कि वह भय से चीं-चीं करके भाग जाता है। पाठ के समय बूढ़े को कुछ खाने की वस्तु देने से वे किसी प्रकार भी उसे खाते नहीं, रख देते हैं; पाठ समाप्त होने पर धीरे-धीरे उसे खा लेते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि एक दिन के लिए भी बूढ़े बन्दर का यह भागवत-श्रवण बन्द नहीं होता। दिनभर वे कहीं भी क्यों न रहें, 9 से 10 बजे तक वे निर्दिष्ट स्थान छोड़कर कहीं नहीं रहते। वे इस मुहल्ले के बन्दरों के मुखिया हैं। उनका शरीर अच्छा हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ है। देखकर बड़ा आनन्द आता है। बूढ़े के और भी अद्भुत कार्य के बारे में सोचकर चकित हो जाता हूँ। पूरे वृन्दावन में घर-घर में बन्दरों का उपद्रव बहुत अधिक है। बूढ़े के कारण ही लगता है, हमारे कुंज में बन्दरों का वैसा उपद्रव नहीं है। एक दिन प्रातः अचानक एक बन्दर आकर हम लोगों का एक लोटा ले गया। शौच के लिए जाने में बड़ी असुविधा होने लगी। बूढ़े बन्दर कुछ क्षण बाद ही कुंज में आए। ठाकुर ने बूढ़े से कहा– **"बूढ़ा, तुम्हारे दल का एक बन्दर आकर हमारा एक लोटा ले गया, हम लोगों को बड़ी असुविधा हो रही है। लोटा ला दोगे?"** ठाकुर की बात सुनकर वे तुरन्त उछलकर एक ऊँचे स्थान पर चढ़ गए; वहाँ दोनों पैरों पर खड़े होकर चारों ओर देखने लगे। जो बन्दर हम लोगों का लोटा लेकर भागा था, वह तीन-चार मकान के बाद एक ब्रजवासी के घर की छत पर बैठा था। बूढ़े ने एक बार उसकी ओर इस प्रकार से देखा कि वह लोटा छोड़कर चीं-चीं करते हुए भागकर अदृश्य हो गया। तब बूढ़े ने धीरे-धीरे जाकर लोटा उठा लिया एवं ठाकुर के पास रखकर वे शान्त भाव से बैठ गए।

वानर की इस प्रकार बुद्धि की इसके पहले मैंने कभी कल्पना भी नहीं की। वानर पालतू नहीं है; फिर भी ऐसा बुद्धिमान और आज्ञाकारी है, यही आश्चर्य है! ठाकुर ने कदाचित् कहा है– **'ये कोई वैष्णव महात्मा हैं, ब्रजवास की आकांक्षा से वानर देह धारण किए हुए हैं।'**

ठाकुर के भोजन की अत्यन्त दुरावस्था

भोर में ठाकुर आसन से उठकर शौच के लिए जाते हैं। श्रीधर जल, कौपीन और बहिर्वास आदि लेकर खड़े रहते हैं। मुँह धोने के बाद ठाकुर ऊपर आकर 'कृष्णदास' को खाना देते हैं। फिर जाकर अपने आसन पर बैठते हैं। श्रीधर इसी समय चाय बनाने लगते हैं।

चाय की दुर्दशा देखकर बड़ा कष्ट हुआ। एक पैसे का थोड़ा-सा बासी दूध और थोडी-सी चीनी का किसी प्रकार जुगाड़ होता है। अर्थाभाव के कारण अत्यन्त साधारण श्रेणी की चाय सस्ते में थोड़ी-थोड़ी खरीदकर लाई जाती है। ठाकुर ने एक दिन की बनी चाय की पत्ती को न फेंककर, उसे सुखाकर रखने के लिए कहा है। अभाव होने पर उन्हीं पत्तियों को जल में उबालकर ठाकुर को दिया जाता है। मलेरिया के कारण बहुत समय से ठाकुर को चाय पीने का अभ्यास है। समय पर वह न मिलने से उन्हें असुविधा होती है; लेकिन इस प्रकार की नीरस चाय ठाकुर किस प्रकार पीते हैं, समझ में नहीं आता। चाय के ऐसे अभाव की खबर एक बार कोलकाता पहुँचते ही सैकड़ों गुरुभाई अच्छी उत्कृष्ट चाय आग्रहपूर्वक भेज देंगे; परन्तु ठाकुर की इच्छा के बिना कुछ करना, किसी के लिए भी सम्भव नहीं है। ठाकुर की अनुमति का भरोसा न करके मैंने भैया को उत्कृष्ट चाय भेजने के लिए लिख दिया।

ठाकुर के चाय पीने के बाद श्रीधर श्रीचैतन्य-चरितामृत का एक अध्याय पाठ करते हैं। फिर 9 बजे ठाकुर स्वयं श्रीमद्भागवत का पाठ किया करते हैं।

मध्याह्न में किसी-किसी दिन ठाकुर यमुना में स्नान करते हैं। फिर 12 बजे नीचे रसोई में जाकर सभी के साथ प्रसाद ग्रहण करते हैं। ठाकुर का शरीर इतना क्यों सूख गया है, प्रसाद का रूप देखने से ही वह स्पष्ट समझा जा सकता है। ठाकुर जब श्रीवृन्दावन में आए थे, अनेक सम्पन्न भक्तों ने ठाकुर को अच्छे मकान में ले जाकर सेवा करने का यथेष्ट आग्रह किया था; लेकिन दामोदर गरीब है, इसलिए दामोदर की प्रार्थना और 'जिद' से ठाकुर उसके ही कुंज में आ गए। ठाकुर की सेवा के लिए जो कुछ भी हर महीने आता है, ठाकुर उसका एक कौड़ी भी न रखकर दाऊजी ठाकुर के भोग के लिए दामोदर के हाथ में दे देते हैं। दामोदर ने आरम्भ में दो-तीन महीने तक तो दाऊजी का भोग ठीक ही दिया था। फिर ठाकुर के शिष्यों में अनेक धनवान् लोग हैं, यह खबर पाकर उसने बड़ा 'छल-कपट' आरम्भ कर दिया। ठाकुर को आहारादि का बहुत कष्ट हो रहा है, भक्त शिष्यगण यह सुनकर निश्चय ही मुट्ठी भर-भरकर रुपये भेजेंगे, यही दामोदर का दृढ़ विश्वास है। इसी कारण अब दाऊजी की सेवा के लिए रुपये मिलने पर

दामोदर उससे सर्वप्रथम अपने घर की मासिक प्रयोजनीय सामग्री जमा करता है। फिर जो बचता है, उससे किसी प्रकार दाऊजी की सेवा की व्यवस्था होती है। प्रायः तीन महीने से रोटी, भात और उबला कुम्हड़ा दाऊजी को भोग लग रहा है। नमक और मसाला के बिना केवल जल में उबला कुम्हड़ा पत्थर की मूर्ति दाऊजी के भोग में ही अनन्तकाल चल सकता है; परन्तु रक्त-मांस के शरीर में जो लोग वह प्रसाद पाते हैं, वे लोग फिर कब तक उसमें रुचि और भक्ति रखेंगे?

भरपेट भोजन ठाकुर का एक दिन भी नहीं होता। किसी प्रकार थोड़े-से दूध में एक मुट्ठी भात डालकर उसे ही खाकर ठाकुर उठ जाते हैं। केवल नमक और उबले कुम्हड़े के साथ बेकार सस्ते मोटे आटे की रोटी, दो-एक से अधिक ठाकुर किसी दिन भी खा नहीं पाते। रात्रि भोजन की व्यवस्था और भी भयानक है। मध्याह्न का ही उबला कुम्हड़ा और मोटी रोटी अल्प मात्रा में रात के लिए रख दी जाती है। जिसके पेट में भूख की ज्वाला होती है, केवल वही उस सड़े दुर्गन्ध युक्त कुम्हड़े और कड़कड़ी रोटी को एक गहरी श्वास छोड़कर 'हरे कृष्ण', 'हरे कृष्ण' कहते-कहते गले से नीचे उतारकर चला आता है। अनुनय-विनय करके दामोदर से भोग का थोड़ा अच्छा बन्दोबस्त करने के लिए कहते हैं, तो दामोदर रुपये के लिए 'बंगला मुल्क के' गोसाँई के 'चेलों' के पास 'खत' भेजने का उपदेश देता है। वह हम लोग करते नहीं; अतः 'गोसाँई का क्लेश तुम लोगों के प्राण में लगता नहीं' कहकर, वह हम लोगों को 'पाखण्डी' कहकर गाली देता है। हर महीने इतने रुपये पाकर भी दामोदर भोग की अच्छी व्यवस्था क्यों नहीं करता, हम दो-चार लोग मिलकर यह पूछते हैं, तो दामोदर माला फेरते-फेरते तत्त्व की बातें कहता है। कहता है– 'अरे, भला भोजन भजनवादी। भगत् का लोभ नहीं चाहि।' हाथ-पैर पकड़कर दामोदर से हम लोग भोजन में थोड़ा परिवर्तन करने के लिए कहते है तो दामोदर उबला कुम्हड़ा न देकर उसका छिलका उबालकर देता है। 'रुपया-पैसा अपने हाथ में रखकर, हम स्वयं ही ठाकुर के भोग की व्यवस्था करेंगे' यह भय दिखाने पर दामोदर बड़ा उत्साह दिखलाते हुए बाजार जाता है; बाजार का छँटा-छँटा सूखा व कीड़ा लगा, लोगों का त्यागा हुआ बैंगन और 'पंचमेल' साग लाकर उसे ही पकाकर देता; फिर 'कैसा खिलाया' 'कैसा खिलाया' कहकर 10-15 दिन तक उसी की बड़ाई करता। पेट की ज्वाला से सर्वदा हमारे भीतर से 'भागो भागो' की चीख निकलती है। हे भगवान्! और कब तक यह भोगना पड़ेगा! प्रतिदिन भोजन के लिए बैठते ही दामोदर को पीटने की इच्छा होती है, किन्तु एक दिन भी कुछ कहने का अवसर नहीं मिलता। 'दामोदर का यह अत्यधिक अत्याचार अब सहन नहीं होता' ठाकुर से कहने पर उन्होंने मुस्कुराते हुए मधुर स्वर में कहा– **"दाऊजी जागृत देवता हैं। वे सब-कुछ देख रहे हैं। समय पर दाऊजी**

ही दामोदर को दण्ड देंगे। तुम लोग दामोदर को कुछ मत कहना।" ठाकुर के अच्छा पल्ले पड़कर देखता हूँ, अब 'बचाओ मधुसूदन' पुकारना होगा।

दामोदर को दाऊजी महाराज का दण्ड

14 जुलाई, सोमवार। आज प्रातः ठाकुर के चाय पीने के बाद, असमय में दामोदर पुजारी कुंज में आया। मुख फूला हुआ है, किसी के साथ बात नहीं की। वह काँपते-काँपते ठाकुर के सामने जाकर प्रणाम करके रो पड़ा। ठाकुर ने पूछा— **"क्यों दामोदर, क्या हुआ?"**

दामोदर ने अपने पूरे शरीर में, विशेषकर दोनों गालों में प्रहार के चिह्न दिखलाकर कहा— 'बाबा, दाऊजी ने हमको बहुत मारा।' दाऊजी महाराज ने क्यों मारा, ठाकुर के यह पूछने पर दामोदर ने कहा— 'बाबा, रात्रि के अन्तिम प्रहर में मैंने निद्रित अवस्था में स्वप्न देखा, दाऊजी ने अचानक आकर मुझे दबा दिया। वे दोनों हाथ से मेरे गालों पर भयंकर थप्पड़ मारने लगे। फिर मेरे पूरे शरीर में घूँसे और कुहनी से भयंकर मारते-मारते कहने लगे, 'पाखण्डी, तेरा इतना साहस? अच्छे-से भोग नहीं देता; गोसाँई खा नहीं पाते। उनको खाने का कष्ट देता है! आज तुझे घूँसे से मार डालूँगा।' दाऊजी के भयंकर प्रहार की व्यथा से मैं चीत्कार करते हुए जाग उठा, किन्तु मेरे सारे शरीर की वेदना कम नहीं हुई। यह देखिए, बाबा, मेरे गाल सूजे हुए हैं। इन सब अंगों में मुझे अभी भी क्लेश हो रहा है।'

ठाकुर ने दामोदर से कहा— **"दाऊजी महाराज ने तुम्हें दण्ड दिया है— तुम भाग्यवान् हो। भक्तिपूर्वक दाऊजी की सेवा करो। वे तुम्हारा कोई अभाव नहीं रखेंगे।"**

हमें दामोदर के गालों की दशा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। स्वप्न का प्रहार शरीर पर उभर आया— ऐसा पहले कभी नहीं देखा। दाऊजी महाराज का कैसा अनुशासन है, वह विचार-बुद्धि द्वारा कुछ समझ नहीं आता। वह जो भी हो, दामोदर का कठोर दण्ड-भोग देखकर मन में बड़ी प्रसन्नता हुई; सोचा— अब से दोनों समय भरपेट भोजन करके श्रीवृन्दावन वास कर सकूँगा।

कुतु की बात: माता ठाकुरानी की वापसी

16 जुलाई, बुधवार। आज मध्याह्न में अवकाश पाकर ठाकुर से माता ठाकुरानी के सम्बन्ध में पूछा— माताजी को गए इतने दिन हो गए, उनकी तो कोई खोज-खबर अभी तक नहीं मिली। वे क्या अब वास्तव में नहीं आएँगीं?

ठाकुर– **वह कह तो दिया, कुतु के प्रति थोड़ा आकर्षण है। यदि आती हैं, तो कुतु के लिए ही आएँगीं। जो सब महात्मा उन्हें ले गए हैं, वे लोग इच्छा मात्र से उस थोड़े-से आकर्षण को भी काट सकते हैं। अतः उनके आने के सम्बन्ध में निश्चियपूर्वक कुछ कहा नहीं जा सकता।**

मैं– महात्मा लोग माँ के आकर्षण को ही तो काटेंगे न। कुतु तो बच्ची है, उसका तो माँ के प्रति एक स्नेह है।

ठाकुर– **कुतु को क्या माँ के लिए कष्ट हो रहा है?**

मैं– वह कुछ समझ नहीं आता। कुतु की बातचीत, हँसी-मजाक, चलना-फिरना देखकर तो लगता नहीं, वह एक बार भी माँ को स्मरण करती है। माँ यहाँ रहने की आशा से आई थीं। उनके इस प्रकार जाने से सभी को बड़ा दुःख हुआ।

ठाकुर– **उनके इस प्रकार जाने से अच्छा हुआ। ऐसे जाने से कोई हानि नहीं होगी, मंगल होगा। इस बार श्रीवृन्दावन आने से उनको कभी वापस ले जाना सम्भव नहीं होगा। अपने स्थान पर ही वे रह जाएँगीं। इसी कारण उनको श्रीवृन्दावन आने के लिए बारम्बार मना किया था।**

इसी समय कुतु ने आकर ठाकुर से कहा– 'बाबा, माँ पाठ सुनने आती हैं। प्रायः ही माँ को देखती हूँ। आज भी माँ को वहाँ देखी।'

ठाकुर– **वे कहाँ थीं? कैसी लगीं?**

कुतु– क्यों? माँ हम लोगों के पास ही तो बैठी थीं। इस शरीर में नहीं थीं। आज लगता है, माँ अपने कुंज में आएँगीं।

ठाकुर– **हाँ आ सकती हैं।**

मैंने कुतु से पूछा– कुतु, माँ के लिए क्या तुम्हें कष्ट होता है?

कुतु ने कहा– 'कष्ट क्यों होगा? माँ को नहीं देख पाती तो फिर कष्ट होता। माँ को तो कई बार देखती हूँ। अब देखना, माँ आज आएँगीं।'

मैंने कहा– वह तुम कैसे समझीं?

कुतु ने मेरी बात से थोड़ा विरक्त होकर कहा– 'इसमें फिर क्या समझना? सुने नहीं– बाबा ने भी तो कहा है!' एकाएक इस समय कुतु ने ठाकुर से कहा– 'बाबा, मुझे ऐसा क्यों होता है? दिन के समय जब जागती रहती हूँ, तब भी स्वप्न जैसा लगता है।'

ठाकुर– **क्या कहती हो– थोड़ा स्पष्ट कहो न?**

कुतु– सब समय रह-रहकर मुझे लगता है, जो कुछ देखती हूँ, सुनती हूँ, करती हूँ ये सब कुछ नहीं है, मिथ्या है; सभी मानो स्वप्न देख रही हूँ लगता है।

ऐसा क्यों होता है?

ठाकुर– **तेरा बड़ा सौभाग्य है, इसीलिए। यथार्थ में ही ये सब-कुछ, कुछ भी नहीं है। सभी मिथ्या है। स्वप्न ही तो है। ये सब स्वप्न हैं, स्पष्ट जान लेने से ही तो हो गया! और क्या?**

———

संध्या के थोड़ा पहले, कुतु के साथ ठाकुर की ये सब बातचीत हो रही है, इसी समय एक बूढ़ी आकर नीचे से ही हम लोगों को पुकारते हुए कहने लगीं– 'अरे, कोई है? तुम लोगों की माता-गोसाँई हमारे कुंज में ही हैं। तुम लोगों को खबर देने आई हूँ। मैंने अभी तुरन्त ही देखा, माता-गोसाँई हमारे घर पर बैठी हुई हैं। कब आईं, कहाँ से आईं– कुछ पता नहीं। घर पर उनको देखते ही तुम लोगों के पास दौड़कर आई हूँ।'

ठाकुर ने योगजीवन को बुलाकर कहा– **"योगजीवन, अभी चले जाओ। जाकर ले आओ।"**

हमारे कुंज के दो मकान के बाद ही एक गरीब गृहस्थ के घर में माता ठाकुरानी बैठी थीं। योगजीवन ने जाकर माताजी को ले आया। माताजी के शरीर में कोई विशेष परिवर्तन दिखा नहीं, परिवर्तन में केवल उनके वस्त्र गेरुए दिखे। माता ठाकुरानी ने आकर ठाकुर को प्रणाम किया। ठाकुर भी बड़े सन्तुष्ट भाव से उनके साथ बातचीत करने लगे; परन्तु माता ठाकुरानी जो इतने दिन कहाँ किस प्रकार थीं, उस सम्बन्ध में उन्होंने एक बात भी नहीं पूछी।

रात्रि में, भोजन के बाद ठाकुर के आसन के पास लेटा रहा। ठाकुर रातभर बरामदे में ही रहते हैं। मच्छरों का बड़ा उपद्रव है। माता ठाकुरानी पंखा लेकर पहले की भाँति ठाकुर को हवा करने लगीं। इसी समय योगजीवन, श्रीधर आदि द्वारा माता ठाकुरानी के आकस्मिक अन्तर्धान के विषय में पूछने पर माता ठाकुरानी ने कहा– "परमहंसजी पाँच महापुरुषों को साथ लेकर आए थे। वे नौ-दस फीट लम्बे थे; सभी के सिर पर पगड़ी थी। वे लोग मुझे यमुना में ले गए। उन्होंने कहा– 'यहाँ स्नान करो।' मैंने स्नान किया। फिर वे लोग मुझे कहाँ किस प्रकार ले गए– कुछ पता नहीं। कुछ क्षण बाद देखी– पहाड़ पर हूँ। बहुत ही सुन्दर स्थान है। परमहंसजी ने मेरे रक्षक के रूप में उन पाँच महापुरुषों को नियुक्त कर रखा था। वे लोग सर्वदा मेरे पास-पास रहते थे; मैं इच्छानुसार जहाँ-तहाँ घूम सकती थी। वह स्थान ऐसा है कि किसी प्रकार की दुश्चिन्ता या अशान्ति मन में आती नहीं। बड़ा ही आनन्ददायक स्थान है। वे लोग ही फिर मुझे यहाँ लाकर रख गए।"

प्रश्न– आपने क्या आना चाहा था?

माता ठाकुरानी– वहाँ से क्या आने की इच्छा होती है? फिर भी समय-समय पर कुतु की बात मन में आती थी।

मेरे कौमार्य की आकांक्षा का प्रकाश

17 जुलाई, गुरुवार। मेरी पित्तशूल की वेदना सम्पूर्ण रूप से ठीक हो गई है। इस रोग के ठीक होने से मुझे थोड़ी चिन्ता होने लगी– शरीर स्वस्थ हो गया है, अब सम्भवतः ठाकुर अधिक दिन मुझे अपने साथ नहीं रखेंगे। गाँव जाने से भैया लोग मुझे पढ़ाई-लिखाई करने हेतु कहेंगे; वह मेरे लिए यम-यातना से भी अधिक कष्टदायक है। पढ़ाई-लिखाई न करने से भी नौकरी तो मुझे करनी ही पड़गी। उस समय फिर मुझे विवाह करने के लिए सब लोग निश्चय ही विविश करेंगे। इन सब उत्पातों से किस उपाय से रक्षा होगी?

हरिवंश पाठ के बाद आज ठाकुर से कहा– कुछ दिनों से मुझे बड़ी दुश्चिन्ता हो रही है, आपसे सब कहने की इच्छा होती है।

ठाकुर ने कहा– **"दुश्चिन्ता किसलिए? खुलकर कहो।"**

उत्साह पाकर मैं मन खोलकर इस प्रकार कहने लगा– मेरा शरीर स्वस्थ हो गया है, अब मैं क्या करूँ? गाँव जाने से तो भैया लोग स्कूल में भर्ती कर देंगे; परन्तु पढ़ाई-लिखाई बहुत समय से छोड़ दी है, पुनः नये सिरे से पढ़ाई-लिखाई करके परीक्षा पास करने की चेष्टा करना, वह मुझे बड़ा ही कष्टदायक लगता है। उस ओर मेरी रुचि बिल्कुल नहीं है। उसके बाद वे लोग यदि नौकरी जुटा दें, उससे भी मुझे अत्यन्त कष्ट होगा। लिखाई-पढ़ाई कुछ की नहीं; नौकरी करनी होगी तो खूब सामान्य आय की नौकरी ही करनी होगी। नौकरी होने से तो फिर सब मुझे विवाह करने के लिए बाध्य करेंगे। विवाह करने से अपने परिवार का अल्प आय में भरण-पोषण मेरे लिए कठिन होगा; क्रमशः परिवार वृद्धि होने से उस समय क्या करूँगा, समझ नहीं आता। उसके बाद नौकरी करने से सब लोग कुछ-न-कुछ मेरे से आशा करेंगे। मेरी अवस्था के विषय में कोई सोचेगा नहीं; फिर आकांक्षा के अनुसार कुछ न मिलने पर सभी विरक्त होंगे। जो लोग मुझे अभी इतना चाहते हैं– यह नौकरी करने के कारण ही उनके मन में मेरे प्रति असद्भाव की सृष्टि होगी। बहुत समय से मैं निरोग अवस्था में रहा नहीं। यद्यपि अभी मेरा शरीर स्वस्थ है, सामान्य अनियम से फिर पीड़ित हो सकता है। मेरे भीतर की अवस्था जिस प्रकार शोचनीय है, फिर उस स्थिति में विवाह करने से मैं किसी प्रकार भी आत्मरक्षा नहीं कर पाऊँगा। संयम की ओर शिथिल होने से ही मैं कहाँ जाकर गिरूँगा, कह नहीं सकता। तब कदाचार व्यभिचार करने में वह पैसा ही मेरा परम सहायक होगा।

हाथ में पैसा पाकर स्वाधीन रहने के कारण मैं किस भयंकर नरक में जा गिरूँगा, नहीं जानता। इस कारण नौकरी और विवाह मेरे लिए नरक का द्वार लगता है। इस विपत्ति से आप मेरी रक्षा कीजिए। उसके सिवा कोई उपाय नहीं है।

ठाकुर ने कहा– **"तुम्हारे शरीर की अवस्था जैसी है, उसमें विवाह करना तो किसी प्रकार भी ठीक नहीं। शरीर अच्छा स्वस्थ होने से तो नौकरी करके भैया लोगों की सेवा कर सकते हो।"** विवाह नहीं करना होगा, ठाकुर की बात से यह जानकर मुझे सान्त्वना मिली। सोचा– 'अब नौकरी भी नहीं करनी पड़ेगी, ठाकुर एक बार ऐसा कह दें, तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।' मैं फिर धीरे-धीरे कहने लगा– अविवाहित अवस्था में रहकर नौकरी करना मेरे लिए क्या सुरक्षित होगा? मुझे लगता है, साधारण लोगों की अपेक्षा मुझमें दुष्प्रवृत्ति की उत्तेजना बहुत अधिक है। केवल वैसा अवसर न मिलने के कारण ही अब तक मैं ठीक हूँ; साधन-भजन के नियम बन्धन में आबद्ध रहने से ही मैं रक्षा पा रहा हूँ। इससे थोड़ा 'अलग' होते ही मेरी क्या दशा होगी, कोई ठीक नहीं। नौकरी करने से ही तो रुपया-पैसा लेकर रहना होगा; मति-गति सभी बहिर्मुख हो जाएँगी, साधना की सब कठोर नियम प्रणाली तब कुछ भी नहीं रहेगी; उस समय प्रलोभन आने पर उससे रक्षा पाने का सामर्थ्य मुझमें नहीं रहेगा। वरन् हाथ में रुपया-पैसा होने से स्वेच्छाचार में चलने का पथ स्वच्छ हो जाएगा। नियमानुसार आप मुझे बाँधकर न रखें, तो मेरी रक्षा का कोई उपाय नहीं है। नौकरी करने से अधिकांश समय ही आपके संग से वंचित रहूँगा। तब भीतर के समस्त कुभाव सिर उठाएँगे। मेरी रक्षा किस प्रकार होगी? इसलिए लगता है, केवल नौकरी से ही मेरा यह जीवन नरक-ग्रस्त हो जाएगा। मैं क्या करूँ, कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है। मेरे भविष्य का मंगल-अमंगल किसमें है, आप ही जानते हैं। जिसमें मेरा यथार्थ मंगल होगा, आप मुझे बता दीजिए। मैं वही करूँगा। फिर भी मेरी इच्छा होती है, मैं चिरकाल अविवाहित रहूँ, साधन-भजन करूँ। ऐसा होने से नौकरी के लिए मुझसे कोई जिद भी नहीं करेगा; क्योंकि हमारे घर में वैसा कोई अभाव है नहीं। आप यदि कहें, तो फिर मैं आजीवन कुँआरा रहूँगा।

ठाकुर ने कहा– **"केवल कहने से ही क्या तुम कुँआरा रह सकोगे? वैसा क्या होता है? तुम एक काम करो, ब्रह्मचर्य व्रत ले लो। कौमार्य ब्रह्मचर्य के ही अन्तर्गत है। फिर ब्रह्मचर्य में और भी बहुत-कुछ नियम हैं, उसका पालन करके चलना होता है। थोड़ा व्रत के बन्धन में रहे बिना केवल ऐसे ही ठीक नहीं रह पाओगे। कुँआरी अवस्था में रहना है तो ब्रह्मचर्य ग्रहण करो। थोड़ा व्रत के बन्धन में पड़ने से ही निरापद् है। तीन दिन तुम इस विषय में अच्छे-से चिन्ता करो। व्रत लेने पर ठीक**

प्रकार से उसका प्रतिपालन करना पड़ता है, नहीं तो अपराध होता है; ये सब अच्छे-से विचार करके मुझे बताओ, फिर ब्रह्मचर्य दिया जाएगा।"

ब्रह्मचर्य ग्रहण के सम्बन्ध में आलोचनाः ठाकुर की अनुमति

19 जुलाई, शनिवार। ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करना है या नहीं, ठाकुर ने मुझसे इस विषय में तीन दिन सोच–विचार करके बतलाने के लिए कहा है। यद्यपि वे मुझे यह व्रत देने के लिए इच्छुक हैं, यह उनकी बात से ही स्पष्ट समझ में आ गया; तथापि उनके आदेशानुसार इसके पक्ष और विपक्ष में बहुत सोच-विचार किया; लेकिन कुछ भी निश्चित नहीं कर पाया। एकान्त में योगजीवन और श्रीधर को अलग-अलग ले जाकर उनसे इस विषय में पूछा। श्रीधर तो सुनकर आनन्द से उछल पड़े, कहने लगे– 'भाई, तुम्हारी दीक्षा के दिन इसी उद्देश्य से मैंने अन्तःकरण से प्रार्थना की थी। आज भी मुझे उसका स्मरण है। तुम वीर्यधारण करो, अविवाहित अवस्था में रहकर साधन-भजन में ही जीवन बिताओ, यही आकांक्षा है। व्रत का पालन नहीं कर पाने से वे क्या तुम्हारी इच्छा से ही यह व्रत देंगे? गोसाँईजी यदि तुम्हें यह दुर्लभ व्रत दें, तो बिना संशय के इसी क्षण ग्रहण करो।' योगजीवन ने कहा– 'तुम तो बड़े सौभाग्यवान् लगते हो! किसी की इच्छा रहने से ही क्या यह व्रत मिल सकता है? गोसाँईजी तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हैं, वे तुम पर विशेष रूप से कृपा करेंगे। संसार की नाना प्रकार की ज्वाला-यन्त्रणा से सहज में रक्षा हो जाएगी। व्रत की रक्षा कर पाओगे या नहीं, वैसा क्यों सोचते हो? महापुरुष कभी अपात्र को यह व्रत नहीं देते– पात्र को पहचानकर कृपा करते हैं। वे यदि दया करके तुमको ब्रह्मचर्य देते हैं, तो अभी जाकर ग्रहण करो।'

माता ठाकुरानी को इस विषय में बतलाने पर वे अचानक चौंक उठीं; उन्होंने मुझे डाँटते हुए कहा– 'ये क्या? ब्रह्मचर्य कैसे लोगे? ऐसी बुद्धि क्यों हुई? शरीर जितने दिन अस्वस्थ रहेगा, विवाह मत करना। ऐसे ही ब्रह्मचर्य पालन करके रहना। शरीर स्वस्थ होने से रीति के अनुसार सब करना। फिर विवाह करने से क्या धर्म नहीं होता? स्वेच्छा से वह सब कठोरता करने की क्या आवश्यकता है? व्रत लेना इतना सहज नहीं है, बहुत कठिन है। फिर यदि व्रत भंग कर डालोगे, तो अपराध होगा नहीं? अनर्थक यह मति क्यों हुई?'

माता ठाकुरानी की बात से मैं बड़े संशय में पड़ गया; मन भी मानो बिल्कुल निस्तेज हो गया। मैं बड़ी समस्या में पड़कर सोचने लगा– 'ब्रह्मचर्य व्रत लेकर यदि उसका यथारीति प्रतिपालन न कर सका, तो व्रत-भंग करने का दोष लगेगा। उसकी अपेक्षा यह कठोर व्रत न लेना ही अच्छा है; किन्तु यह व्रत ग्रहण न करने

से विवाह और नौकरी के अनर्थ से छुटकारा पाने का भी तो कोई उपाय नहीं है। इस उभय संकट की स्थिति में मैं क्या करूँ, विचार करने लगा। फिर सोचा, व्रत ग्रहण करने से मैं ठाकुर के विशेष शासन के अधीन रहूँगा, व्रत भंग करने से मेरे दयालु ठाकुर ही मुझे दण्ड देंगे। दण्ड भोगने से भी वह मेरे ठाकुर का कार्य है, सोचकर बहुत शान्ति मिलेगी; विविध दुर्दशा में पड़कर तीव्र भोग की उत्पत्ति होने से भी उसे उनका ही विधान समझूँगा। यदि नरक में भी डुबा, तो ठाकुर के साथ कम-से-कम भाव का एक योग रहेगा; किन्तु विवाह करने से जो अशान्तिपूर्ण घिनौने संसार की सृष्टि होगी एवं नौकरी करने पर पैसे की गर्मी से जो दुर्नीतिपूर्ण नरक कुण्ड में डुबूँगा, उसे सर्वदा अपनी ही करतूत समझूँगा, उसके साथ ठाकुर का किसी प्रकार का सम्बन्ध है– इसे भाव अथवा कल्पना में भी ला नहीं सकूँगा। अतएव अपने ऐहिक और पारलौकिक स्वार्थ एवं सुविधा की ओर देखकर कार्य करने से लगता है, ब्रह्मचर्य ग्रहण करना मेरे लिए लाभदायक है; किन्तु फिर जब सोचता हूँ, अपने इस तुच्छ जीवन के आराम के लिए परम आराध्य ऋषियों का विशुद्ध आश्रम कलुषित होगा; विशेषकर आजन्म सत्यसंकल्प पुण्यमूर्ति गुरुदेव के परम पावन नाम को मैं कलंकित करूँगा, तब व्रत ग्रहण करने की प्रवृत्ति नहीं होती। अपने भाग्य का भोग मैं भोगूँ। शुद्ध स्फटिक जैसे श्रीश्री गुरुदेव के अमल शुभ्र रूप में बिन्दुमात्र कालिमा मैं किसी प्रकार भी लगा नहीं सकता। अतएव अपने इस हीन एवं असार सामर्थ्य पर निर्भर करके मैं कभी ब्रह्मचर्य ग्रहण नहीं करूँगा।

आज मध्याह्न में भोजन के बाद हरिवंश पाठ करने हेतु ठाकुर के पास जाकर बैठा। ठाकुर ने मुझसे पूछा, **'क्यों? तुमने क्या ठीक किया? ब्रह्मचर्य लोगे?'** मैंने कहा, इस सम्बन्ध में मैं कुछ निश्चय नहीं कर पाऊँगा। आप जैसा कहेंगे, वैसा ही करूँगा। दुर्लभ व्रत अनायास ग्रहण करके प्रकृति के दोष से अन्त में उसका पूरा-पूरा पालन न कर पाने से ऋषियों का पवित्र आश्रम मेरे द्वारा कलुषित होगा। मेरे भीतर की सारी अवस्था तो आप जानते हैं; मुझमें कामभाव अत्यन्त अधिक है। वैसा प्रलोभन आने पर अपनी शक्ति से आत्मरक्षा कर पाने का विश्वास नहीं है। इस प्रकार की अवस्था में पवित्र ब्रह्मचर्य माँगने का साहस कैसे करूँ? व्रत ग्रहण करने की मेरी बहुत इच्छा है; पर उसका पालन करने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है। मुझे दुर्बल समझकर यदि आप दया करके अपनी शक्ति से मेरे ब्रह्मचर्य व्रत की सम्पूर्ण रूप से रक्षा करें, तो फिर मैं उसे ग्रहण कर सकता हूँ; अन्यथा मुझे आवश्यकता नहीं है। यह कहकर मैं रो पड़ा। तब ठाकुर कुछ क्षण मेरी ओर स्नेहपूर्वक एकटक देखते रहे; फिर प्रसन्न होकर मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा– **"अच्छा, वही होगा। कोई अच्छी तिथि देखकर यह व्रत ग्रहण करना। ब्रह्मचर्य ग्रहण न करने तक किसी से कुछ न कहना। अब पढ़ो।"**

मैं तब निश्चिन्त होकर हरिवंश पाठ करने लगा। आज मेरे मन में आनन्द की सीमा नहीं रही। सोचा– 'आज ठाकुर ने मेरा सारा भार अपने ऊपर लेकर मुझे पूर्णतः सुरक्षित कर दिया; आज मेरा उद्धार हो गया।' यह व्रत लेने की बात मैं और किसी से नहीं कहूँगा, निश्चय किया; लेकिन माता ठाकुरानी पूछीं, तो क्या कहूँगा; चिन्ता हो गई। वे मेरे इस व्रत लेने के विरोध में हैं। कुतु का विवाह मुझसे कराने की आकांक्षा उनकी बहुत समय से है। किसी-किसी के सामने यह इच्छा व्यक्त भी की हैं। संकेत द्वारा मुझे भी उस बात से अवगत नहीं कराया, ऐसा नहीं है। क्या पता? लगता है, इसी कारण माताजी मेरे ब्रह्मचर्य ग्रहण के पक्ष में नहीं हैं। जिस दिन इच्छा होगी, ठाकुर मुझे ब्रह्मचर्य देंगे; मैं दिन-मुहूर्त कुछ नहीं जानता। जय गुरुदेव! तुम्हारी इच्छा ही पूर्ण हो।

ठाकुर के साथ महापुरुष के दर्शन

20 जुलाई, रविवार। संध्या के समय ठाकुर के साथ हम लोग दर्शन के लिए बाहर निकले। ठाकुर अन्यान्य दिनों की अपेक्षा आज तीव्र गति से चलने लगे। माता ठाकुरानी, कुतु, श्रीधर आदि बहुत पीछे रह गए। मैं ठाकुर का कमण्डलु हाथ में लेकर साथ-साथ दौड़ा। ठाकुर सीधे कालीदह की ओर चलने लगे। सुना है, आज कालीदह में बहुत बड़ा मेला है, हजारों की संख्या में लोग वहाँ उपस्थित हैं। रास्ते में भी लोगों की भीड़ कम नहीं है। मेला-स्थल के निकट से होकर चलते-चलते ठाकुर एकाएक रुक गए एवं एक व्यक्ति की ओर एकटक देखने लगे। यह देखकर मैं विशेष रूप से उस व्यक्ति की ओर लक्ष्य रखने लगा। उनकी वेशभूषा कुछ नहीं, कौपीन के ऊपर केवल एक पुराना मलिन बहिर्वास लपेटे हैं; श्याम वर्ण के हैं, आकृति दीर्घ एवं बहुत ही दुर्बल है; शरीर में धूल अथवा ब्रज की रज लगी है (इससे मानो और भी कुरूप दिख रहे हैं)। शरीर में माला या तिलक का नामो-निशान नहीं है, माथे पर लम्बे-लम्बे लाल-भूरे रंग की जटा है, देखने में ठीक जैसे रास्ते के मजदूर के समान हैं; लेकिन आँखों की असाधारण ज्योति देखकर मैं चकित हो गया। ऐसा लगा जैसे उनके पलक झपकने के साथ-साथ उज्ज्वल नक्षत्र चमक रहे हैं।

ठाकुर को देखते ही वे लगभग सौ गज दूर रहकर विश्रृंखल भाव से नृत्य करते हुए अग्रसर होने लगे एवं समान गति से ठाकुर के पास से होकर चले गए। एक बार भी 'हरे कृष्ण' नहीं कहे। ठाकुर फिर पीछे देखे बिना ही कालीदह की ओर चलने लगे। आश्चर्य यह है कि मैंने तुरन्त पीछे की ओर देखा, वे कहीं दिखाई नहीं दिए।

मेला देखकर हम लोग संध्या के बाद कुंज में आ गए। रात्रि में ठाकुर के पास बैठा हूँ, ठाकुर ने कहा– **"मेले में आज एक महापुरुष का दर्शन हुआ। ऐसे महात्मा लोकालय में प्रायः आते नहीं, पहाड़ों पर ही रहते हैं।"**

मैंने कहा– मैं तो आपके साथ-साथ ही था; महापुरुष को आपने कहाँ देखा? मुझे क्यों नहीं दिखलाया?

ठाकुर– **अविश्वास से भरा संसार है! इतने बड़े महात्मा पर कैसे विश्वास कर पाएँगे? हिमालय के ऊपर ही रहते हैं, ऐसे महापुरुष लोग अधिकतर नीचे नहीं आते। जब आते हैं, तब इसी प्रकार छद्मवेश में तीर्थ आदि घूमकर चले जाते हैं। पहले भी एक बार इन्हीं महात्मा के साथ मेरी भेंट हुई थी। इस बार केवल क्षणभर प्रकाश फैलाकर देखते-देखते अन्तर्धान हो गए। बड़ा आश्चर्य है! वास्तव में महापुरुष हैं!**

मैंने कहा– इतने लोगों के बीच आप एक व्यक्ति की ओर कुछ समय तक देखते रहे, मैंने देखा था। उनका कोई वेश नहीं था, ठीक साधारण मजदूर की भाँति; वे ही क्या वह महापुरुष थे?

ठाकुर– **होंगे, वही होंगे। उनके दोनों पैर भूमि से एक फुट ऊपर थे, रज पर वे चरण नहीं रखते। पैर की ओर तो कोई देखता ही नहीं! पैर की ओर देखने से कई बार पकड़ में आ जाते हैं।**

मैं– वे तो रुके नहीं, आपके साथ उन्होंने कोई बात भी नहीं की?

ठाकुर– **जो कुछ कहने का था, सभी कहा। वे लोग क्या हम लोगों के समान केवल मुख से ही बातें करते हैं? संकेत से, दृष्टि से, कई प्रकार से वे लोग सारी बातें कहा करते हैं।**

मैं– संकेत द्वारा एवं दृष्टि से भी क्या बातचीत कर सकते हैं?

ठाकुर– **तो क्या नहीं कर सकते? खूब कर सकते हैं! ऐसे कई जीव हैं, जो मुख से कहते नहीं; संकेत व दृष्टि द्वारा ही सब व्यक्त करते हैं।**

ब्रह्मचर्य ग्रहण का दिन निर्धारित

21 जुलाई, सोमवार। आज मध्याह्न में ठाकुर ने सदाचार के सम्बन्ध में अनेक उपदेश दिया। ब्राह्मणों का आचार, नित्यकर्म, संध्या-तर्पणादि कितना उपकारी है, वह समझाकर कहा।

बातों-बातों में मैंने पूछा, वैदिक धर्म का अनुष्ठान करने से आजकल क्या कोई ऋषियों के समान हो सकता है? अभी भी क्या वशिष्ठ, याज्ञवल्क्यादि के

जैसा ब्राह्मण होना सम्भव है?

ठाकुर ने कहा– **"वैदिक धर्म का अनुष्ठान करना आजकल बहुत कठिन है, सहज नहीं है। यदि कोई उस प्रकार अनुष्ठान कर सकते हैं, तो सम्भव क्यों नहीं होगा? समय अधिक लगता है।"**

मैं– वैदिक धर्म का अनुष्ठान करके प्राचीन ऋषियों के जैसा ब्राह्मण होने की इच्छा होती है। आप दया करके मुझे वैसा ब्राह्मण बना दें।

ठाकुर– **वही ठीक है। उसके लिए अब वैदिक ब्रह्मचर्य लेना होता है। ब्रह्मचर्य लेकर ठीक उसी नियम के अनुसार चलो, तब ठीक होगा। अच्छा दिन देखकर बताओ, ब्रह्मचर्य दे दूँगा।**

मैं– दिन देखना मैं जानता नहीं।

ठाकुर– **पंचांग लेकर आओ न।**

मैंने एक पंचांग लाकर ठाकुर के हाथ में दे दिया।

ठाकुर ने देखकर कहा– **"27 जुलाई, श्रावण शुक्ल दशमी का दिन अच्छा है। उसी दिन एकान्त में आकर ब्रह्मचर्य ग्रहण करना। मैं ही उस दिन तुमको समय पर बुला लूँगा। अभी किसी से कुछ कहना मत।"** हरिवंश पाठ के बाद ठाकुर ने कहा– **"पाठ का एक नियम रहना अच्छा है। समय निश्चित करके नियमानुसार अच्छी-अच्छी पुस्तकों का पाठ करना।"**

मैं– मेरे लिए कौन-कौन-सी पुस्तकों का पाठ करना उपयुक्त है, वह तो मैं जानता नहीं। आप ही मुझे बतला दीजिए।

ठाकुर– **गीता का नियमानुसार प्रतिदिन पाठ करना; महाभारत का शान्तिपर्व और श्रीमद्‌भागवत पढ़ना।**

केलिकदम्ब के पेड़ में राधाकृष्ण नाम

संध्या के समय हम सभी ठाकुर के साथ घूमने के लिए बाहर निकले। श्रीमदनमोहनजी का दर्शन करके कालीदह की ओर गए। प्रबोधानन्द सरस्वती की समाधिवेदी का दर्शन करके यमुना के किनारे जा पहुँचे। वहाँ कालीय सरोवर के समीप एक प्राचीन वृक्ष के नीचे हम लोग बैठ गए। ठाकुर ने कहा– **"यह वही केलिकदम्ब का पेड़ है, बहुत प्राचीन है। कहा जाता है कि इसी वृक्ष के ऊपर खड़े होकर श्रीकृष्ण कालीयदमन के समय यमुना में कूद पड़े थे। इस वृक्ष पर अपने-आप 'राधाकृष्ण', 'राम राम', 'राधेश्याम'– ये सब नाम लिखे हुए हैं। तुम लोगों की इच्छा हो तो देख लो।"**

ठाकुर की यह बात सुनकर हम लोग वृक्ष के नीच जाकर खोज करने लगे। पेड़ के तने में और ऊपर शाखाओं-प्रशाखाओं में वह सब नाम स्पष्ट रूप से छाल की शिराओं द्वारा संस्कृत और बंगला अक्षरों में लिखा हुआ है। दो-एक स्थानों पर दो-चार नाम नहीं, समूचे वृक्ष पर ऐसे असंख्य नाम देखकर आश्चर्य होने लगा। मेरा चित्त बहुत ही सन्देहपूर्ण है, सहज में कुछ भी विश्वास नहीं करता। मैंने ठाकुर से पूछा– दुष्ट पण्डे लोग पैसा कमाने के लोभ में ये सब नाम छुरी से काट-काटकर तो नहीं लिख दिए? ठाकुर ने मेरी बात सुनकर कहा– **"तुम जो कहते हो, वह भी ठीक है। पण्डों ने दो-चार स्थानों में छुरी से काटकर वह सब नाम लिखा है; परन्तु वह देखते ही समझ में आ जाता है। स्वाभाविक नाम था तभी तो पण्डों ने वह लिखा है!"** यह कहकर ठाकुर उठकर खड़े हो गए एवं वृक्ष के निकट जाकर उन्होंने चार-पाँच नाम दिखलाते हुए कहा– **"यह देखो, ये सब पण्डे लोगों की करतूत है। पैसा कमाने के लोभ से पण्डों ने इन सब स्वाभाविक वस्तु की नकल करके मूल वस्तु के ऊपर लोगों का सन्देह उत्पन्न कर दिया है। यह सब बड़ा अपराध है। कितने देवी-देवता, ऋषि-मुनि, वैष्णव महापुरुष श्रीवृन्दावन की रज पाने के लिए वृक्ष-लता के रूप में विद्यमान हैं; उन्हें इस प्रकार क्षत-विक्षत करना बड़ा अपराध है। थोड़ा ध्यान से देखो, स्वाभाविक और नकल समझ पाओगे।"**

मैं– यह सब देखकर स्वाभाविक है या नहीं, कैसे समझेंगे? छुरी से अंकित अक्षर भी तो अधिक दिन तक हरे पेड़ में रहने से स्वाभाविक की भाँति ही दिखेगा।

ठाकुर ने थोड़ा हँसकर कहा– **"वह ठीक है। अच्छा, एक काम करो, पेड़ की जो सब मोटी-मोटी छालें सूखकर एक ओर से थोड़ा अलग हो गई हैं, उसके भीतर देखो। वहाँ तो लिखना सम्भव नहीं है।"**

मैंने तभी उस पुराने वृक्ष की तीन-चार इंच थोड़ी निकली हुई दो छाल को खींचकर निकाला। तब ठाकुर– **'ओह! ओह! क्या किया?'** कहकर सिहर उठे। मैं फिर छाल न निकालकर बड़े ध्यान से उसके भीतर की ओर देखने लगा। 'राधाकृष्ण', 'राम राम' नाम स्पष्ट रूप से वृक्ष की शिरा-शिरा में लिखा देखकर चकित हो गया। पेड़ के ऊपर शाखाओं-प्रशाखाओं में, डाल-डाल में, नीचे की ओर भी वह सब नाम स्पष्ट दिखलाई पड़ा। वैसे स्थानों पर किसी प्रकार से कोई नाम लिख नहीं सकता, यह समझ में आ गया। देवी-देवता या महापुरुष वृक्ष रूप में हैं, अथवा वृक्ष का आश्रय लेकर अवस्थान कर रहे हैं, इन सब बातों पर विश्वास करने का मुझमें सामर्थ्य नहीं है; लेकिन यह वृक्ष जो असाधारण है, उस विषय में अब कोई सन्देह नहीं रहा। ठाकुर के साथ सब लोगों ने वृक्ष की परिक्रमा करके

साष्टांग प्रणाम किया। मैंने भी प्रणाम किया।

मनोरम वन की शोभा: हिंसारहित वृन्दावन

कालीदह दर्शन करके हम लोगों ने यमुना के किनारे-किनारे जाकर श्रीवृन्दावन के घने वन में प्रवेश किया। वन की स्वाभाविक शोभा देखकर बड़ा आनन्द आया। छोटे-बड़े सभी पेड़ों को अन्य स्थानों के पेड़-पौधों से अलग प्रकार का देखा। ऊँचे-ऊँचे प्राचीन एवं विशाल सभी वृक्ष सर्वत्र ही सिर झुकाए हुए हैं। उनकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ चारों ओर फैलकर क्रमशः भूमि से लग गई हैं। देखकर लगता है, मानो श्रीधाम की रज को स्पर्श करने के मनोभाव से सब वृक्ष शाखारूपी बाहु फैलाकर उसे पाने के लिए प्रयास कर रहे हैं। प्राचीन वृक्षों की सब शाखाएँ-प्रशाखाएँ जो भूमि से लगी हुई हैं, वे भी मानो रज के स्पर्श से कामना पूर्ण हो जाने पर स्थिर समाधि लगा रखे हैं। वृक्षों की इस प्रकार अद्‌भुत शोभा इस जीवन में मैंने और कहीं देखी नहीं। श्रीवृन्दावन के छोटे-बड़े सभी वृक्ष-लताओं की शाखाएँ-प्रशाखाएँ यहाँ तक कि पत्ते आदि भी नीचे झुके हुए हैं। वृक्षों की ऐसी अपूर्व सृष्टि और सौन्दर्य इस स्थान पर ही देखा। जगह-जगह इन झाड़ियों के भीतर में अच्छी-अच्छी परित्यक्त भजन-कुटिया रिक्त अवस्था में पड़ी हुई दिखी। ठाकुर ने कहा– **"एक समय इन सब भजन-कुटियों में कितने ही वैष्णव महात्माओं ने साधन-भजन किया है। ओह! ये सब स्थान अब चोर-डकैतों का अड्डा हो गया है।"**

ऐसी अच्छी-अच्छी भजन-कुटिया सूनी पड़ी हैं, देखकर बड़ा दुःख हुआ। ठाकुर से पूछा– 'इन कुटियों में आजकल कोई साधन-भजन नहीं कर सकता? वैष्णव साधु लोग यहाँ क्यों नहीं रहते?'

ठाकुर ने कहा– **"रहेंगे कैसे? इन स्थानों पर रहने के लिए कंगाल होकर रहना पड़ता। मिट्टी का एक करवा और फटी कथरी लेकर ही सुरक्षित रहा जा सकता है, अन्यथा थोड़ा-कुछ भी रहने से चोर-डकैतों के अत्याचार से बचाव कठिन है।"**

हम लोग ठाकुर के पीछे-पीछे वन के भीतर से होकर चलने लगे। हम लोगों ने देखा, दोनों ओर अनेक मोर-मोरनी जगह-जगह घूम रहे हैं, खेल रहे हैं, आनन्द से पंख फैलाकर नाच रहे हैं। हम लोगों से सात-आठ फीट दूर रहकर भी उन्हें बिल्कुल डर नहीं है; भागने का प्रयास नहीं है, स्फूर्ति का भी विराम नहीं। देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। वन के हिरण भी मनुष्य को मानो मनुष्य नहीं समझते; वे निर्भीक होकर स्वेच्छानुसार निःसंकोच मनुष्य के शरीर से स्पर्श करते हुए

चलते-फिरते हैं। भगवान् के राज्य में यह अपूर्व दृश्य न देखने से कभी विश्वास नहीं करता। ठाकुर से पूछा– 'वन के हिरण, मोर, ये लोग इतने निर्भीक क्यों हैं?' ठाकुर ने कहा– **"श्रीवृन्दावन में हिंसा नहीं है; इसलिए इस स्थान के जीव-जन्तु, पशु-पक्षी मनुष्य के पास भी इतने निर्भय हैं।"**

हम लोग श्रीवृन्दावन के घने वन में पशु-पक्षी, वृक्ष-लता के ये सब भाव और असाधारण अवस्था देखकर संध्या के बाद कुंज में लौटे। श्रीवृन्दावन के इन स्थानों पर पहुँचने के बाद फिर लोकालय में लौटने की इच्छा नहीं होती। लगता है, जीवन-भर इन स्थानों में रहने से भी इसकी नित्य-नवीनता कभी कम नहीं होगी।

ब्राह्मण का विशेषत्व: सद्‌गुरु आश्रित लोगों की गति

22 जुलाई, मंगलवार। भोजन करके हरिवंश पाठ करने के बाद ठाकुर से पूछा– जाति से जो लोग ब्राह्मण हैं, उन लोगों का क्या कोई बड़ा सत्कर्म था?

ठाकुर– **अवश्य था। कुछ विशेषता थी ही।**

मैं– यदि पुनः संसार में आना पड़ता है, तो किस प्रकार चलने से वर्तमान अवस्था से और नीचे नहीं गिरेंगे? ब्राह्मण लोग किस प्रकार चलने से अगले जन्म में भी ब्राह्मण ही होते हैं?

ठाकुर– **ब्रह्मचर्य ग्रहण करके ठीक उसी प्रकार चलो। ब्रह्मचर्य का ठीक नियमानुसार पालन करके चल पाने से फिर कभी निम्न अवस्था में जाना नहीं पड़ेगा। संध्या, गायत्री, नित्य-क्रिया आदि का अनुष्ठान करते रहने से ब्राह्मण अगले जन्म में भी ब्राह्मण होता है।**

मैं– हम लोगों की यह साधना जिन्होंने प्राप्त की है, उन लोगों को भी क्या पुनः जन्म लेना होगा?

यह प्रश्न सुनकर माता ठाकुरानी ने प्रसंगवश कहा– 'श्यामाकान्त पण्डित जी ने एक दिन देखा था, साधन-प्राप्त सब लोगों को तीन श्रेणी में रखा गया है; पण्डित जी प्रथम श्रेणी में हैं; द्वितीय श्रेणी में अधिक लोग नहीं हैं; तृतीय श्रेणी में ही अधिक लोग हैं। जो प्रथम श्रेणी में हैं, उन्हें अब संसार में पुनः नहीं आना पड़ेगा, यह उनका अन्तिम जन्म है। द्वितीय श्रेणी के लोगों को और एक बार आना होगा; लेकिन जो लोग तृतीय श्रेणी में हैं, उनको और भी दो बार आना पड़ सकता है।'

मैं– अच्छा, जो लोग सद्‌गुरु प्राप्त करके देह त्यागकर पुनः जब जन्म लेंगे, तब वे लोग क्या फिर सद्‌गुरु की कृपा प्राप्त करेंगे?

ठाकुर– **उसमें कोई संशय नहीं, वे अवश्य ही सद्‌गुरु की कृपा प्राप्त करेंगे।**

मैं– सद्गुरु की कृपा यदि प्राप्त होती है, तो पुनः संसार में आने में आपत्ति क्या है? कठिनाई भी क्या है?

ठाकुर– **बाबा, संसार की माया में बड़ी आशंका है, संसार में बड़ी ज्वाला है।**

मैं– सद्गुरु का आश्रय प्राप्त होने से एक जन्म में ही क्या मुक्त हुआ जा सकता है?

ठाकुर– **बिना सन्देह के गुरु के आदेश का पालन करने से और गुरु के प्रति निष्ठा उत्पन्न होने से एक जन्म में ही मुक्त हो जाते हैं।**

मैं– गुरु आदेश का पालन तो प्रयास करने से बहुत-कुछ हो सकता है; परन्तु निःसन्देह होना तो प्रयास के ऊपर निर्भर नहीं है। मन में अपने-आप जो संशय आता है, उसे किस प्रकार रोकूँगा?

ठाकुर– **गुरु जो करने के लिए कहते हैं, वही करने से हो गया। सन्देह होता है, होने दो; काम ठीक प्रकार कर लेने से ही सब होगा।**

मैं– जो लोग इस बार साधन पाए हैं, यत्नपूर्वक साधना करने से वे लोग क्या फिर संसार में नहीं आएँगे? इस एक जन्म में ही उनका सब हो जाएगा?

ठाकुर– **तीन जन्म के पहले मुक्ति प्राप्त करना अधिकतर देखा नहीं जाता। तीन जन्म प्रायः लगते हैं।**

मैं– तब तो हम सभी को तीन जन्म लेना होगा?

ठाकुर– **लेना होगा और नहीं भी होगा।**

मैं– जो लोग इस बार सद्गुरु कृपा प्राप्त किए हैं, पहले भी क्या उन्हें सद्गुरु का आश्रय मिला था?

ठाकुर– **किसी-किसी को पहले भी सद्गुरु का आश्रय मिला था; फिर अनेक लोगों को इस बार ही मिला है।**

मैं– मुझे क्या पहले भी सद्गुरु का आश्रय मिला था?

ठाकुर ने मस्तक हिलाते हुए संकेत द्वारा मेरे इस प्रश्न का उत्तर दिया। मैंने फिर पूछा, सद्गुरु आश्रय लेने पर जिन लोगों की तीन जन्म में मुक्ति होगी, उन लोगों की मुक्ति न होने तक क्या सद्गुरु को भी संसार में आना होगा? जन्म लेकर सद्गुरु क्या शिष्य के साथ रहते हैं?

ठाकुर– **सद्गुरु साथ ही रहते हैं। जन्म न लेकर भी कितने प्रकार से, कितने उपायों से शिष्य पर कृपा करते हैं। वृक्ष-लता, मनुष्यादि के भीतर से, नाना विषयों के भीतर से सद्गुरु कृपा करते हैं। फिर वे लोग**

क्या सब समय आते हैं? चार कल्प के बाद नानक इस बार आए थे।

मैं– तब तो बड़ी कठिनाई है! प्रत्यक्ष रूप से गुरु न मिले, वह तो बड़ा कष्टदायक है।

ठाकुर– **कष्ट तो है ही। तो भी जो गुरुवाक्य के अनुसार चलते हैं, उनको तो फिर कोई कष्ट नहीं है! अपने भाव के अनुसार मनमाना करने से ही भटकना पड़ता है। जब तक गुरुवाक्य के अनुसार नहीं चलते, उन पर निष्ठा उत्पन्न नहीं होती, तब तक बारम्बार जन्म लेना होगा। सद्‌गुरु के साथ कोई मायिक सम्बन्ध तो है नहीं, शिष्य के कल्याण के लिए ही वे संसार में आते हैं; शिष्य का उपकार करना ही उनके आने का उद्देश्य है। अतएव उनके आदेश के अनुसार न चलने से कैसे होगा? ठीक गुरुवाक्य के अनुसार चलना पड़ता है, ऐसा होने से फिर कोई उत्पात नहीं रहता।**

मैं– गुरु कई बार शिष्य की विभिन्न प्रकार से परीक्षा भी लिया करते हैं? ऐसा होने से उनका यथार्थ आदेश कैसे समझा जाएगा?

ठाकुर– **जो सद्‌गुरु हैं, वे कभी भी शिष्य की परीक्षा नहीं लेते। वैसा क्यों करेंगे? जिससे शिष्य का यथार्थ कल्याण होता है, सद्‌गुरु वही कह देते हैं। फिर भी जो लोग उस वाक्य को अग्राह्य करके अपने मन के अनुसार चलते हैं, गुरु उनको ही विभिन्न परिस्थितियों में गिराकर ठीक कर लेते हैं।**

पितृ-ऋणादि के सम्बन्ध में उपदेश

विक्रमपुर निवासी श्री सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय एक शिक्षक थे। गृहस्थी की जो कुछ आवश्यकताएँ हैं, उनकी नौकरी द्वारा ही पूर्ण होती थी। कुछ दिन पहले पिता की मृत्यु का संवाद पाकर सतीश तुरन्त वैरागी के समान घर से निकल पड़े; घर पर विधवा माता के कष्ट की ओर एक बार ताके भी नहीं। पैदल यात्रा करके वे श्रीवृन्दावन पहुँचकर अब ठाकुर के साथ रहते हैं। घर जाकर पिता का श्राद्ध एवं शोक से व्याकुल रोगग्रस्त माता की सेवा करने के लिए ठाकुर ने सतीश से कई बार कहा; लेकिन सतीश कहते हैं, ठाकुर के इस आदेश का पालन किसी प्रकार भी नहीं कर पाएँगे और वैराग्य का ही आश्रय लेकर शेष जीवन बिताएँगे। ठाकुर जब सतीश से घर जाकर पिता का श्राद्ध करने और संसार-धर्म का पालन करने के लिए कहते हैं, तो तुरन्त उनका माथा गरम हो जाता है; उस समय वे ठाकुर के साथ तर्क-वितर्क करके झंझट करने लगते हैं। ठाकुर आज पुनः सतीश

को लक्ष्य करके बड़े तेज स्वर में कहने लगे– **'सतीश का जिससे वास्तविक कल्याण होगा, बारम्बार वह कहा; अब नहीं सुनता तो क्या किया जाए? पितृ-ऋण शोध किए बिना उसका कुछ नहीं होगा; घर जाकर मातृ-सेवा न करने से यह जीवन व्यर्थ चला जाएगा। केवल यह जन्म ही क्यों, इस अपराध के कारण कितने जन्म व्यर्थ चले जाएँगे, कोई ठीक नहीं। शुकदेवादि के समान तीव्र वैराग्य होने से किसी प्रकार रुका नहीं जाता, सच है; लेकिन वैसा हुए बिना तो होगा नहीं! यथार्थ वैराग्य उत्पन्न न होने तक प्रणाली के अनुसार चलना पड़ता है। जिसका जो कर्त्तव्य है, उसकी अवहेलना करके पलायन कर पाना सम्भव नहीं है। हरिमोहन को गृहस्थी करने के लिए कई बार कहा, अभी ये लोग समझ नहीं रहे हैं; लेकिन मैं निश्चित रूप से कहता हूँ, अभी ठीक प्रकार से नहीं चलते हैं, तो इसके बाद सूद सहित कौड़ी-कौड़ी चुकानी होगी। बात नहीं सुनते तो फिर क्या किया जाए? बाद में अच्छे-से समझेंगे।'**

ठाकुर कुछ समय तक उन लोगों से इस प्रकार कहकर चुप हो गए। तब मैंने धीरे-धीरे पूछा– देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण से कैसे मुक्त होते हैं?

ठाकुर ने कहा– **"पुत्रोत्पत्ति द्वारा पितृ-ऋण से; याग-यज्ञ, पूजा, तीर्थ-दर्शन द्वारा देव-ऋण से और ऋषि प्रणीत शास्त्र-ग्रन्थ के अध्ययन आदि के द्वारा ऋषि-ऋण से मुक्त हुआ जाता है; अन्य उपाय नहीं है।"**

मैं– श्राद्ध-तर्पणादि करने से क्या पितृ-ऋण से मुक्त नहीं हो सकते? सभी को क्या इसके लिए पुत्रोत्पत्ति करनी होगी?

ठाकुर– **केवल तर्पणादि करने से पितृ-ऋण से मुक्त नहीं हुआ जा सकता। ऋण से मुक्त होने का यही एक उपाय है। फिर जो असमर्थ हैं, उनके लिए अलग प्रकार की व्यवस्था है।**

मैं– किस प्रकार का असमर्थ?

ठाकुर– **जैसे कि कोई बहुत अस्वस्थ है; शारीरिक अस्वस्थता के कारण पुत्रोत्पत्ति में असमर्थ है अथवा अन्य किसी विशेष असुविधा या असमर्थता के कारण वह कार्य सम्पन्न नहीं हुआ, ऐसा भी हुआ करता है। बहुतों को विवाह करने के बाद भी पुत्र की प्राप्ति नहीं होती। इन सब कारणों से निःसन्तान होने पर ऋणी नहीं होना पड़ता।**

भोजन के बाद इस प्रकार प्रश्नोत्तर में हम लोगों का बहुत समय बीत गया। संध्या के समय ठाकुर के साथ हम लोग चीर (वस्त्र-हरण) घाट गए। यमुना की ओर देखते हुए ठाकुर बहुत समय तक घाट पर बैठे रहे। माता ठाकुरानी, कुतु,

भारत पण्डित जी*, सतीश, श्रीधर और मैं भी स्थिर बैठकर नाम-जप करने लगे। बाद में सतीश के साथ बातों-बातों में मेरा झगड़ा हो गया। श्रीधर भी उसमें सम्मिलित हो गए। संध्या के बाद हम लोग कुंज में आ गए।

बारदी के मार्ग में श्रीधर का काण्ड

25 जुलाई, शुक्रवार। संध्या के समय सब गुरुभाई दाऊजी के बरामदे में बैठकर बातचीत करने लगे। बारदी के ब्रह्मचारीजी के अद्‌भुत योगैश्वर्य और दया की बातें होने लगी। श्रीधर की एक बार विपिन बाबू के साथ बारदी जाते समय जो घटना हुई थी, गुरुभाइयों ने उसे सुनने का आग्रह किया। श्रीधर ने जो कहा उसे सुनकर आश्चर्यचकित हो गया। घटना को श्रीधर के कथनानुसार लिखकर रख लिया–

हमारे गुरुभाई श्री विपिनबिहारी राय क्षय (टी॰ बी॰) रोग से पीड़ित होकर प्राण की आशंका से भयभीत हो गए। ढाका आकर उन्होंने गुरुदेव की सहमति से श्रीधर आदि कुछ गुरुभाई के साथ बारदी जाने लगे। श्रीधर ने उपदेश दिया– 'खाली हाथ साधु-दर्शन नहीं करते।' तदनुसार ब्रह्मचारीजी के लिए विविध साक-सब्जी, फल-फलादि साथ में ले लिए गए। विपिन बाबू ने ब्रह्मचारीजी को अपने हाथ से देने की आकांक्षा से बाजार का सबसे अच्छा चार फजली आम अधिक मूल्य में क्रय करके उसे अच्छे-से बाँधकर रख लिया। श्रीधर साथ में जाएँगे; उनकी मति-गति का भरोसा नहीं; रास्ते में अवसर पाकर कहीं कुछ आम समाप्त न कर दें, यह सोचकर विपिन बाबू ने श्रीधर आदि के लिए भी अलग से एक टोकरी आम क्रय करके ले लिया। नौका में सामान रखते समय श्रीधर फजली आम को बड़े ध्यान से देखने लगे। यह देखकर विपिन बाबू ने श्रीधर से कहा– 'भाई, दुहाई है तुम्हारी! बड़ी आशा से ये चार आम महापुरुष के लिए ले जा रहा हूँ। उसमें हाथ मत देना। तुम लोगों के लिए एक टोकरी अच्छे आम अलग लिया हूँ। उसे ही खाना।' श्रीधर ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा– 'तुम क्या कहते हो, हँ? ऐसी बात तुम मुझसे कहते हो? ब्रह्मचारीजी के लिए आग्रहपूर्वक एक वस्तु ले जा रहे हो, उसे मैं खाऊँगा! इस प्रकार की नीच कल्पना तुम्हारे मन में आई कैसे? तुम तो बड़े भयंकर लगते हो!' विपिन बाबू ने लज्जित होकर श्रीधर से क्षमा माँगी। कुछ दूर जाने के बाद नौका एक बाजार के पास पहुँची। सभी गुरुभाई वहाँ उतरे। श्रीधर को भी साथ में ले जाने के लिए विपिन बाबू ने दो-तीन बार प्रयास किया; भजन में मग्न श्रीधर ने मौन रहते हुए हाथ हिलाकर समझाया– 'तुम लोग जाओ। मैं नहीं जाऊँगा।' नौका से उतरकर विपिन बाबू ने श्रीधर से एक बार फिर कहा–

*विक्रमपुर निवासी, गुरुनिष्ठ साधन-परायण गुरुभाई, ढाका नार्मल स्कूल के भूतपूर्व शिक्षक।

'भाई, आम खाने की इच्छा हो तो टोकरी में अच्छे-अच्छे आम हैं, लेकर खा लेना।' श्रीधर गम्भीर रहे। विपिन बाबू चलते-चलते भी बार-बार पीछे की ओर देखते हुए कुछ दूरी पर स्थित बाजार में प्रवेश किए। उनके अदृश्य होने पर श्रीधर व्यग्रतापूर्वक आसन से उठकर चारों ओर चंचल दृष्टि से देखने लगे। इसी समय पाँच-सात वर्ष के चार उलंग बालक एक भिखारिन के साथ नौका के समीप आए। श्रीधर ने आग्रह के साथ उनसे पूछा– 'क्या चाहते हो?' दुःखी बालकों ने कहा– 'बाबा, कुछ खाने को दोगे?' श्रीधर ने तुरन्त उठकर वही बड़े-बड़े चारों फजली आम निकाल लिया; फिर उसे उन बालकों के हाथ में देकर धमकाते हुए कहा– 'जाओ, शीघ्र चले जाओ; नहीं तो फिर आम छीन लूँगा।' श्रीधर की धमकी से डरकर बालकों ने दौड़ लगा दी। तब श्रीधर पुनः आसन पर स्थिर होकर बैठ गए एवं बड़े उत्साह के साथ भावमग्न होकर भजन गाने लगे। संयोगवश, गुरुभाइयों के साथ विपिन बाबू जिस पथ से आ रहे थे, उसी पथ से वे बालक हाथ में आम लेकर जा रहे थे। बालकों के हाथ में बड़े-बड़े फजली आम देखकर विपिन बाबू देखते ही रह गए। उन्होंने जीभ निकालकर सिर पर हाथ रखते हुए गुरुभाइयों से कहा– 'देख लिया! पगले का काम देख लिया!! पगले ने सर्वनाश कर दिया। इतना समझाकर जो मना किया था, पगला वही किया– वही चारों आम दे दिया।' उस समय विपिन बाबू ने फिर आठ आना देकर बालकों से आम पुनः ले लिया और बड़ा क्रोध व्यक्त करते हुए नौका पर पहुँचे। वे श्रीधर को खूब गाली देने लगे। तब श्रीधर और भी उच्च स्वर में गाने लगे। कुछ क्षण बाद श्रीधर ने भजन समाप्त करके, विपिन बाबू के कुछ कहने के पहले ही उनको खूब धमकाते हुए कहा– 'क्यों, ये कैसी बात है? भजन के समय गड़बड़ कर रहे थे? तुम्हें अक्ल नहीं है?' विपिन बाबू ने धमक खाकर थोड़ा दबने पर भी गुरुभाइयों का बल पाकर कहा– 'तुम्हारी तो खूब अक्ल है, तुमने क्या सोचकर मेरे चारों आम दूसरों को दे दिया?' श्रीधर ने कहा– 'दे दिया तो क्या हुआ? वापस मिल तो गया? हाथ बदल होने से दोष हो जाता है?' विपिन बाबू ने कहा– 'ब्रह्मचारीजी के लिए आम रखा था, तुमने किसके हुक्म से दूसरों को दिया?' श्रीधर ने कहा– 'ब्रह्मचारीजी के हुक्म से दिया। जाओ, उनसे पूछ लो? इस प्रकार झगड़े के बाद दोनों ही चुपचाप बैठे रहे। इधर संध्या हो गई। प्रदीप जलाने के लिए बाती नहीं थी। 'बाती बनाने के लिए थोड़ा-सा फटा कपड़ा कहाँ मिलेगा'– सोचकर सभी अधीर हो गए। श्रीधर के झोले में फटे-पुराने कपड़ों के बहुत-से टुकड़े हैं, सभी जानते हैं। उसे श्रीधर सहज में निकालेंगे नहीं, फटे-पुराने कपड़ों की झोली में सिर रखकर वे शयन करते हैं। विपिन बाबू ने अन्धकार में अवसर देखकर, गुरुभाइयों के संकेत से, बाती बनाने के लिए श्रीधर के झोले से जैसे ही कपड़े का एक टुकड़ा निकाला, वैसे ही श्रीधर

भयंकर चीत्कार करते हुए विपिन बाबू के सामने आ गए एवं कुछ कहे बिना सीधे उनकी जाँघ के बीच में दाँत से काटने लगे। विपिन बाबू 'बाप रे, मार डाला रे, खून कर दिया रे' कहते हुए चिल्लाने लगे। गुरुभाई लोग भी जब उन्हें खींच-तान करके नहीं छुड़ा पाए, तब वे लोग श्रीधर की पीठ पर लगातार घूँसा मारने लगे। उस पर भी श्रीधर ने परवाह नहीं की। तब वे लोग नौका की पटिया निकालकर श्रीधर की पीठ पर धड़ाधड़ मारने लगे। श्रीधर सिर हिलाते हुए पूरी शक्ति के साथ प्राणपण से काटने लगे। क्षत-विक्षत जाँघ से खून निकलने लगा। तब कोई उपाय न देखकर माझियों ने कहा– 'आप लोग भी उसको दाँत से काटो, वह छोड़ देगा।' माझियों की बात मानकर दो-तीन लोग श्रीधर की पीठ पर दाँत से काटने लगे। तब श्रीधर काटना छोड़कर अचानक उछल पड़े; 'जय निताई, जय निताई' कहकर दो-एक बार उछलकर, चलती नौका से नदी में कूद पड़े। श्रीधर तैरना नहीं जानते, यह सभी जानते थे। अतः जो जिस अवस्था में थे, तुरन्त नदी में कूद पड़े। गोते लगा-लगाकर सब लोग श्रीधर को खींच-तानकर नौका पर चढ़ाए। इस प्रकार सारी रात उद्वेग में व्यतीत हुई। धीरे-धीरे नौका बारदी के बाजार में पहुँची।

प्रातःकाल सभी फल-मिठाई, सीधा की सामग्री हाथ में लेकर ब्रह्मचारीजी के दर्शन के लिए चल पड़े। श्रीधर के पास कुछ भी नहीं है; ब्रह्मचारीजी के लिए क्या लेकर जाएँगे, यह सोचकर श्रीधर दुःखी मन से चुपचाप बैठे रहे। अचानक नौका से उछलते हुए नीचे उतरकर नहर से पत्ते वाली घास, करेमु शाक, लता-पत्ता एकत्र करके नहर के किनारे रखने लगे। ढेर हो जाने पर अपने बहिर्वास द्वारा उसे बाँध लिए और केवल लंगोटी पहने हुए ही घास के उस विशाल बोझे को श्रीधर अपने सिर पर उठाकर ब्रह्मचारीजी के आश्रम की ओर सीधे दौड़ पड़े। इधर विपिन बाबू आदि को आश्रम पहुँचने पर ब्रह्मचारीजी के दर्शन नहीं हुए। थोड़ी प्रतीक्षा करनी पड़ी। यथासमय ब्रह्मचारीजी ने सब लोगों को बुलाया। प्रणाम करके वे लोग जैसे ही बैठे, ब्रह्मचारीजी ने उनसे पूछा– 'अरे, वह श्रीधर कहाँ है? तुम लोगों के साथ नहीं आया?' गुरुभाइयों ने कहा– 'वह नौका पर ही बैठा है।' ब्रह्मचारीजी ने कहा– 'वह आया क्यों नहीं? उसको क्या तुम लोगों ने मारा है?' विपिन बाबू ने कहा– 'महाराज, उसके कारण बहुत कष्ट हुआ। उसने रास्तेभर बड़ा उपद्रव किया। मेरी जाँघ में काटकर घाव कर दिया।' ब्रह्मचारीजी ने आम देखकर कहा– 'तुम लोगों को यह आम फिर कहाँ से मिला?' इसी समय सिर पर बोझा लेकर श्रीधर हाँफते-हाँफते आश्रम में आए। श्रीधर को देखते ही ब्रह्मचारीजी आसन से उठकर थोड़ा आगे बढ़े; श्रीधर ने वैसे ही घास का बोझा उनके सामने धम् से पटककर 'इसे खाओ, इसे खाओ' कहते हुए उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। ब्रह्मचारीजी एक बार हँसकर बड़ी प्रसन्नतापूर्वक घास की प्रशंसा करने लगे।

श्रीधर का कार्य देखकर सभी हँस पड़े। एकजन ने श्रीधर से पूछा— 'ये सब क्या ब्रह्मचारीजी को खाने के लिए दिए हो?' श्रीधर ने सिर उठाकर तेज स्वर में कहा— शास्त्र जानते हो? 'गोब्राह्मणहितायच'। उन्होंने पूछा— 'इसका अर्थ क्या हुआ?' श्रीधर ने कहा— 'अरे पहले गाय का; फिर बामुन बेटों का; उसके बाद तुम्हारा, हमारा, जगत् का। 'नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहितायच। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।।' इसलिए पहले गाय को जो प्रिय है, वही तो ब्राह्मणों को भी सब लोगों की अपेक्षा प्रिय है।' श्रीधर की बात सुनकर सभी खूब हँसने लगे। विपिन बाबू ने तब अपने रोग का परिचय देकर रोग से मुक्ति के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मचारीजी ने कहा— 'श्रीधर ने तेरी जाँघ में काटा है न? उससे खून निकला तो?' विपिन बाबू ने कहा— 'जी हाँ, बुरी तरह से काट खाया।' ब्रह्मचारीजी ने कहा— 'उससे ही तेरा रोग दूर हो जाएगा। श्रीधर क्यों काटा, उससे एक बार पूछा नहीं?' तब श्रीधर सबके पूछने पर बडे ही उत्साह के साथ कहने लगे— 'अरे भाई, तुम लोग तो सब बाजार चले गए। मैं अचानक कीर्तन की ध्वनि सुनकर चौंक उठा। नौका से उतरकर चारों ओर देखा, संकीर्तनादि कुछ नहीं है। ब्रह्मचारीजी चार ऋषि बालकों को लेकर नौका के निकट पहुँचे। कहने लगे— 'अरे, मेरे लिए जो चार आम रखे हैं, उसे लाकर इन लोगों को दे दे।' मैंने तुरन्त चारों आम दे दिया। सच है या झूठ, ब्रह्मचारीजी से पूछ लो। इसी के लिए तो तुम लोगों ने मुझे कितनी गालियाँ दी! तुम लोग की बातों पर कान न देकर मैं नाम-जप करने लगा। देखा, आकाश मार्ग से एक संकीर्तन का दल आ रहा है! ब्रह्मचारीजी ने संकीर्तन दल से आगे आकर कहा— 'अरे, उसकी जाँघ में काटकर रक्त निकाल दे, उससे उसका रोग दूर हो जाएगा।' मैंने सोचा, अकारण कैसे काटूँ? इसी समय विपिन बाबू की ओर देखा, वे मेरे झोले में से एक फटा कपड़ा खींचकर निकाल रहे हैं। तुरन्त मेरा माथा गरम हो गया। नेपाल, कामाख्या, चन्द्रनाथ और पश्चिम के विभिन्न स्थानों में घूम-घूमकर जिन सब महात्मा-महापुरुषों का दर्शन मिला, प्रत्येक का व्यवहृत बहिर्वास, लंगोटी, आसन आदि का कुछ-न-कुछ अंश संग्रह करके अपने झोले में रखा हूँ; वह सब मेरे हृदय का रक्त है। मैला फटा-पुराना चीथड़ा समझकर विपिन बाबू एक टुकड़ा जब निकाल रहे थे, मैंने तुरन्त उनकी जाँघ में काट खाया। उसके बाद तुम लोग घूँसा मारो या लाठी मारो, रक्त न निकलने तक तो छोड़ूँगा नहीं। रक्त निकलते ही मैं उछल पड़ा। सामने संकीर्तन का कोलाहल देखा। महाप्रभु, नित्यानन्द प्रभु एवं अद्वैत प्रभु नृत्य कर रहे हैं और गोसाँईजी संकीर्तन के आगे 'हरि बोल, हरि बोल' कहते हुए जा रहे हैं। मैं शीघ्र उस कीर्तन में कूद पड़ा। फिर देखा डूब रहा हूँ। तब तुम लोगों ने खींच-तानकर मुझे नौका पर चढ़ाया।' श्रीधर के मुख से यह कहानी सुनकर उस समय सभी लोग आश्चर्यचकित हो गए।

धन्य है श्रीधर!

ब्रह्मचर्य दीक्षा

27 जुलाई, रविवार, शुक्ल दशमी तिथि। आज ब्रह्मकुण्ड में स्नान का महायोग है। सुना है, हजारों की संख्या में लोग स्नान करने के लिए वहाँ सम्मिलित हुए हैं। हमारे कुंज के भी सब लोग आज वहाँ गए हैं। मैं अन्य दिनों की भाँति प्रातः शौच के बाद यमुना में स्नान करने के लिए जाने लगा, ठाकुर ने मुझे बुलाकर कहा– **"तुम जाकर केशीघाट पर मुण्डन करवाकर ब्रह्मकुण्ड में स्नान करके शीघ्र चले आओ। एक चोटी रखना।"**

मैं गुरुदेव के कहे अनुसार यमुना के किनारे केशीघाट पहुँचा। एक शिखा रखकर पूरा मुण्डन करा लिया। ब्रह्मकुण्ड में जाकर देखा, असंख्य लोगों के समागम से स्थान आज परिपूर्ण है। पानी भाँग के घोल के जैसा बहुत मटमैला होने पर भी स्नानार्थियों का भक्ति भाव देखकर मेरी भी स्नान करने की प्रबल इच्छा जागी। जल में उतरकर स्नान के बाद तर्पण करके शीघ्र ही कुंज में आ गया। गुरुदेव के श्रीचरणों में प्रणाम करके अपने आसन पर बैठ गया। इसी समय ठाकुर ने मुझको पुकारकर कहा– **"कुलदा मेरे आसन-गृह में आओ। अभी तुमको ब्रह्मचर्य दूँगा। बैठने के लिए एक आसन ले आना।"** मैंने आसन लेकर ठाकुर के कमरे में प्रवेश करके देखा, ठाकुर पहले से ही अपने आसन पर बैठे हैं। मुझसे कहा– **"पूर्व की ओर मुख करके मेरे सामने बैठो।"** मैं कम्बल का आसन बिछाकर ठाकुर के सामने स्थिर बैठ गया। उस समय मुझे रोना आ गया, मैं सिसकने लगा। सोचा, गुरुदेव आज मुझे ऋषि-मुनियों के पवित्र ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा दे रहे हैं। ठाकुर कितने दयालु हैं! ठाकुर कुछ क्षण स्थिर रहकर धीरे-धीरे मुझसे कहने लगे– **'यह नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत 12 वर्ष, तीन वर्ष अथवा एक वर्ष के लिए दिया जाता है। अभी तुम्हें एक वर्ष के लिए ही व्रत दे रहा हूँ। यदि नियमपूर्वक ठीक प्रकार से यह एक वर्ष चल सको, तब फिर से दिया जाएगा। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य में निष्ठा मूल है। निष्ठा खूब होनी चाहिए। अपनी निष्ठा का किसी भी प्रकार से त्याग नहीं करना। जो नियम कह रहा हूँ, निष्ठा के साथ उन सबका पालन करके चलना।"**

1– प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्त में उठकर साधना करना। फिर प्रातःक्रिया समाप्त करके पवित्रता के साथ आसन पर बैठना। गायत्री-जप करना। उसके बाद गीता का कम-से-कम एक अध्याय पाठ करना। स्नान के बाद गायत्री-जप करके तर्पणादि करना।

2– स्वपाक आहार करना अथवा अच्छे ब्राह्मण के द्वारा बना अन्न भी आहार कर सकते हो। आहार में किसी प्रकार का अनाचार न हो। आहार का एक नियम रखना। सीमित आहार करना, बहुत अधिक या कम न हो। जिससे कामभाव उत्तेजित होता है, ऐसी वस्तु नहीं खाना। अधिक तीखा, खट्टा और मीठा त्याग करना। मधु और घी से उत्तेजना बढ़ती है; ये सब वस्तुएँ भी अधिक नहीं खाना। आहार के सम्बन्ध में खूब सावधान रहना। आहार अच्छी शुद्धता के साथ करना।

3– आहार के बाद कुछ क्षण बैठकर विश्राम करना। फिर भागवत, महाभारत, रामायण आदि का कुछ समय पाठ करना। पाठ के बाद निर्जन में बैठकर ध्यान करना। संध्या के समय इच्छा होने पर थोड़ा टहल सकते हो।

4– संध्या के समय गायत्री-जप करना। फिर साधनादि जैसा किया करते हो, करना। खूब भूख लगने पर थोड़ा-कुछ जलपान करना। दोनों समय भात नहीं खाना।

5– अत्यन्त साधारण वस्त्र पहनना। साधारण शैय्या पर सोना। वस्त्र और बिछौना अपना निर्दिष्ट रखना। दिन के समय सोना नहीं। समय-समय पर साधु-संग करना, उनके उपदेश को श्रद्धापूर्वक सुनना। अपनी साधना के प्रति विशेष रूप से निष्ठा रखना।

6– किसी की निन्दा नहीं करना; किसी की निन्दा नहीं सुनना; जिस स्थान पर निन्दा होती है, उस स्थान का विषवत् त्याग कर देना।

7– किसी प्रकार का साम्प्रदायिक भाव नहीं रखना। जो जिस भाव से साधना करते हैं, उनको उसी भाव की साधना करने के लिए प्रोत्साहित करना।

8– किसी के मन में कष्ट नहीं देना; सभी को सन्तुष्ट रखने का प्रयास करना। जितना तुमसे सम्भव हो, अन्य लोगों की सेवा करना। मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष-लतादि की यथासाध्य सेवा करना। स्वयं को अन्य लोगों से छोटा समझना। सभी को सम्मान देना। सभी कार्य विचारपूर्वक करना। प्रत्येक कार्य में सर्वदा विचार करके चलने से कोई विघ्न नहीं होता।

9– सर्वदा सत्य कथन कहना; सत्य व्यवहार करना। असत्य कल्पना को मन में भी नहीं आने देना। बातें कम करना।

10– युवती स्त्रियों को स्पर्श नहीं करना। देव-दर्शन में, भीड़-भाड़,

रास्ते आदि में या अनजाने में स्पर्श होने से वह स्पर्श के अन्तर्गत गण्य नहीं होगा। अत्यन्त गुप्त रूप से अपना काम करते जाना।

11– सर्वदा खूब पवित्रता से रहना। पवित्र स्थान में पवित्र आसन पर बैठना।

"इन सब नियमों का पालन करके चल सकने पर आगामी वर्ष और भी नियम बतला दिए जाएँगे।"

इन सब नियमों का उपदेश देकर ठाकुर मेरी ओर देखते हुए खूब प्राणायाम करने लगे। मुझे भी साथ-साथ प्राणायाम करने को कहा; मैं प्राणायाम करने लगा। फिर मुझे दुर्लभ ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा दी। इस समय आनन्द से मुझे नृत्य करने की इच्छा हुई। भाव में अभिभूत होकर बहुत समय तक बैठा रहा। फिर ठाकुर ने मुझसे उठने के लिए कहा।

मैं जैसे ही ठाकुर के कमरे से बाहर निकला, तभी सब लोग कुंज में आ गए। मेरे व्रत के विषय में कोई भी कुछ नहीं जान सका।

विचारपूर्वक दान का उपदेश

संध्या के समय हम सब लोग ठाकुर के साथ श्रीश्री गोविन्दजी के दर्शन के लिए बाहर निकले। मन्दिर के निकट एक वृद्ध को देखकर ठाकुर रुक गए। वृद्ध ज्वर से अत्यन्त पीड़ित एवं कंगाल वेश में थे। ठाकुर के सामने आकर संकेत द्वारा अपने मन का भाव व्यक्त करने लगे। हम लोगों को उनका संकेत कुछ भी समझ नहीं आया। इस समय मैंने ठाकुर से पूछा– वृद्ध क्या कह रहा है? ठाकुर ने कहा– **"तुम्हारा ओढ़ा हुआ कम्बल चाहता है।"** मैं– तो दे दूँ? ठाकुर ने कहा– **"तुम्हारी इच्छा हो तो दे सकते हो।"** तब मैं वृद्ध को कम्बल देकर, खुले बदन ठाकुर के पीछे-पीछे चलने लगा। ठाकुर ने मुझसे पूछा– **"तुम्हारे पास ओढ़ने का अन्य कोई कपड़ा नहीं है?"** मैं– केवल एक फटी धोती है, दूसरा कुछ नहीं है। प्रातःकाल अपनी गरम ऊनी चदार एक भिखारी को दे दी। सुनकर ठाकुर ने कहा– **"जिस वस्तु के अभाव से अत्यन्त क्लेश होता है, वैसी नितान्त आवश्यक वस्तु छोड़नी नहीं चाहिए। उसके अभाव से कष्ट होने पर यदि एक बार भी दान के लिए अनुताप होता है, तो सब मिट्टी में मिल जाता है। इसलिए सभी कार्य विचारपूर्वक करना चाहिए। ठीक है, भगवान् तुम्हारे लिए जुगाड़ कर रखे हैं।"**

कुंज में आकर ठाकुर ने माता ठाकुरानी से कहा– **"बिछाकर सोने हेतु कुलदा को तुम्हारे आसन का कम्बल दे दो।"** माता ठाकुरानी ने तुरन्त मुझे

अपना कम्बल लाकर दे दिया। माता ठाकुरानी के बहुत दिनों के साधन-भजन का कम्बल-आसन पाकर अपने को बड़ा भाग्यवान् समझा। मन में बड़ी प्रसन्नता हुई।

आसन का ग्रन्थ

28 जुलाई, सोमवार। भोर में यथारीति प्रातःक्रिया करने के पश्चात् यमुना में जाकर स्नान और तर्पण किया। कुछ दिनों से ब्रह्मसमाजी मित्र गुरुभाई सतीशचन्द्र भी मेरे साथ तर्पण कर रहे हैं। तर्पण करने से सम्भवतः उनको अपना शरीर हल्का अनुभव होता है, मन में भी वे एक अपूर्व आनन्द का अनुभव करते हैं। उनकी यह बात सुनने के बाद से मेरी भी तर्पण के प्रति श्रद्धा बढ़ गई। स्नान के बाद अपने आसन पर बैठकर मैंने कुछ समय तक साधना की। मेरे लिए प्रतिदिन एक अध्याय गीता-पाठ करने का आदेश हुआ है, परन्तु मेरे पास गीता नहीं है। मैं साहस करके ठाकुर के आसन-गृह में गया और उनकी गीता लेकर आ गया। फिर पाठ करने के बाद पुनः उसे यथास्थान पर रख दिया। ठाकुर ने मुझसे कहा– **"आसन का ग्रन्थ कभी स्थानान्तरित नहीं करते, हानि होती है।"**

मैं– आपने मुझसे गीता-पाठ करने को कहा है, मेरे पास गीता नहीं है।

ठाकुर– **वही गीता तुम निःसंकोच पढ़ो। अन्य कमरे में न ले जाना ही अच्छा है। मेरे आसन-गृह में ही बैठकर पढ़ सकते हो।**

मैं– आसन से ग्रन्थ उठाने से भी तो स्थानान्तरित करना होगा?

ठाकुर– **उससे कोई दोष नहीं होता। आसन-गृह में रहने से ही हो गया।**

दृष्टि-साधना

अपराह्न में कुछ समय दृष्टि-साधना करके ठाकुर के पास जाकर पूछा– बहुत दिनों से क्षिति में दृष्टि-साधना करता आ रहा हूँ। अब अन्य भूत में अभ्यास करूँ? ठाकुर ने कहा– **"नहीं, अभी यही करो। और भी पक्का होने दो। एक का ठीक अभ्यास हो जाने पर ही फिर अन्य का करना अच्छा है। एक बिन्दु पर ही दृष्टि को पूर्णतः स्थिर करना चाहिए।"**

मैं– दृष्टि-साधना से क्या उपकार होता है? ठाकुर ने कहा– **"आँखें स्वच्छ होती हैं; दृष्टि-शक्ति बढ़ती है। बहुत दूर की वस्तु और सूक्ष्म विषय सभी स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। और भी जो-जो होते हैं, दृष्टि-साधना करते-करते ही वह समझोगे।"**

'करते-करते ही वह समझोगे'– ठाकुर के इस प्रकार कहने पर मेरा फिर कोई प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ। सोचा, 'इस कथन के द्वारा ही उन्होंने मुझे चुप रहने का संकेत किया है।' मैं चुपचाप बैठकर नाम-जप करने लगा।

श्रीविग्रह दर्शन का उपदेश

कुछ समय बाद ठाकुर ने अपने-आप कहा– **"श्रीवृन्दावन में जितने दिन रहोगे, प्रतिदिन मन्दिर जाकर ठाकुरजी का दर्शन करो, उपकार होगा।"** मैंने कहा, ठाकुरजी तो पत्थर की मूर्ति है, वह दर्शन करने से क्या उपकार होगा? आपके साथ तो कितने दिन दर्शन किया ही हूँ। क्या उपकार हुआ, वह तो कुछ समझ ही नहीं आया।

ठाकुर– **जिन स्थानों पर भगवान् के उद्देश्य से हजारों-हजारों लोग श्रद्धा-भक्ति अर्पण करते हैं, वहाँ उन सब भावों का एक योग रहता है। उन स्थानों पर जाने से भीतर के सब धार्मिक भाव जागृत हो जाते हैं। यह क्या कम उपकार है? फिर इस श्रीवृन्दावन के सब विग्रह साधारण प्रस्तर-मूर्ति नहीं हैं। 'भक्तमाल' पढ़े हो? एक बार पढ़ो।**

मैंने पूछा– क्या श्रीवृन्दावन के सब ठाकुरजी बात करते हैं, हाथ-पैर हिलाते हैं? सभी कहते हैं, यहाँ के सब ठाकुरजी जागृत हैं। किस प्रकार जागृत हैं?

ठाकुर ने कहा– **"जिनके उस प्रकार नेत्र-कर्ण हैं, वे लोग ठाकुरजी का हाथ-पैर हिलाना देखते हैं, वाणी भी सुनते हैं। यह सब कहने से साधारण लोग कैसे विश्वास कर पाएँगे?"**

स्वप्न: गंगा के भँवर में डूबना

29 जुलाई, मंगलवार। माता ठाकुरानी के आने से ठाकुर के लिए चाय की अब अच्छी व्यवस्था हो गई है। श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव के कृपापात्र श्री राखाल बाबू (ब्रह्मानन्द स्वामी), प्रबोधचन्द्र एवं दक्ष बाबू नित्य चाय पीने हमारे कुंज में आते हैं। श्री रामदास काठिया बाबा के आश्रित श्री अभय बाबू भी प्रतिदिन आया करते हैं। सब लोगों के चाय पी लेने के बाद श्रीधर श्रीचैतन्य-चरितामृत का पाठ करते हैं। उसके बाद ठाकुर के आदेशानुसार अभय बाबू 'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट' का भी पाठ और बंगानुवाद करके सब लोगों को सुनाया करते हैं। ठाकुर ने आज इस पुस्तक की बहुत प्रशंसा करके कहा– **'इमिटेशन ऑफ क्राइस्ट' नित्य पाठ के उपयुक्त है। ग्रन्थ को जिन्होंने लिखा है, वे एक महापुरुष हैं।**

सब चले गए, गत रात्रि के एक स्वप्न का वृत्तान्त ठाकुर को बतलाया। स्वप्न यह है– निर्मल शीतल गंगा के जल में गले तक उतरकर आनन्द से स्नान कर रहा हूँ, किसी ओर भी मेरी दृष्टि नहीं थी। अचानक प्रबल धारा में गिर पड़ा। धारा मुझे बहाकर ले जाने लगी। बहुत अच्छा तैरना जानता हूँ; अतएव उस ओर मैंने ध्यान नहीं दिया। फिर जब देखा, किनारे से बहुत दूर आ गया हूँ, तब किनारे जाने के लिए प्राणपण से चेष्टा करने लगा; लेकिन धारा के प्रतिकूल तैरने से मेरा सर्वांग अवसन्न हो गया। तब बहुत थक जाने के कारण बाध्य होकर हाथ-पैर चलाना छोड़ दिया। कुछ क्षण के बाद देखा, बहुत भयंकर स्थान पर आ गया हूँ। तरंगरहित बहुत विस्तृत मण्डलाकार भँवर 'सन्-सन्' शब्द के साथ घूमते-घूमते क्रमशः नीचे की ओर एक अज्ञात केन्द्र के गर्त में गिर रहा है। मैं उस भँवर में जल के साथ-साथ धीरे-धीरे पाताल की ओर जाने लगा। चारों ओर देखने लगा, किनारा कहीं नहीं है। तब सोचा, 'हाय, यह क्या हुआ? परम पवित्र साक्षात् ब्रह्मरूपिणी-गंगा के बीच था, उन्हीं के भँवर में पड़कर अब रसातल में जा रहा हूँ!' इसी समय अचानक मँझले भैया गंगा के किनारे आए एवं मेरे जीवन को संकट में देखकर उन्मत्त के समान हित-अहित का विचार किए बिना तुरन्त गंगा में कूद पड़े एवं शीघ्र तैरते हुए मेरे पास आ गए। फिर बायें हाथ से मुझे पकड़कर अपनी छाती से लगाया और दाहिने हाथ से पूरी शक्ति लगाकर तैरते हुए किनारे पहुँचे। किनारे पहुँचते ही हाँफते-हाँफते मैं जाग उठा।

ठाकुर ने स्वप्न का विवरण सुनकर कहा– **"जो स्वप्न देखोगे, उसे लिखकर रखो। कई बार स्वप्न में भविष्य का आभास मिलता है।"**

स्वप्न की बात होते-होते मैंने मँझले भैया की बात उठाई। ठाकुर से पूछा– क्या मँझले भैया ने दीक्षा ली है?

ठाकुर– **दीक्षा लिए रहने पर भेंट होने से समझ जाओगे।**

मैं– किस प्रकार जानूँगा? वे क्या मुझे बतलाएँगे?

ठाकुर– **उनके न बतलाने पर भी तुम समझ जाओगे। यह शक्ति जिन्हें मिल जाती है, फिर वे क्या अपने पास गुप्त रख सकते हैं?**

मैं– आपकी बातों से ही समझ आता है, उन्हें दीक्षा मिल गई है। फिर स्पष्ट रूप से क्यों नहीं कहते?

ठाकुर ने बच्चों के समान थोड़ा हँसते-हँसते कहा– **"वह कैसे कहूँगा? उन्होंने मुझे मना जो किया है।"**

ठाकुर की यह बात सुनकर सभी खूब हँसने लगे।

श्रीवृन्दावन की रज

श्रीवृन्दावन आकर देख रहा हूँ, गुरुभाइयों में उच्छिष्ट का विचार नहीं है, साफ-सुथरा रहने की भी किसी की मति नहीं होती। भोजन के बाद सभी जूठा हाथ माटी में मलते हैं, उच्छिष्ट मुख में भी माटी मल लेते हैं। पानी से उनका हाथ धुलाने पर वे मुझे दबाकर पकड़ लेते हैं और बलपूर्वक मेरे हाथ-मुँह में धूल-माटी रगड़कर कहते, 'अब पवित्र हुआ।' स्नान करके आते समय भी मेरे स्वच्छ शरीर में कीचड़, धूल-माटी डाल देते। मेरे क्रोध करने पर अथवा विरक्त होने पर रास्ते के दोनों ओर से वैष्णव बाबाजी लोग मुझे शान्त होने का उपदेश देकर कहते– 'क्रोध मत कीजिए! आनन्द कीजिए। उससे राधारानी की कृपा होती है, कृष्ण-भक्ति प्राप्त होती है।' गुरुभाइयों का उत्साह इससे और भी बढ़ जाया करता है। आज मध्याह्न में हरिवंश पाठ के बाद गुरुभाइयों के इन सब अनाचार, अत्याचार और अशिष्ट व्यवहार के प्रतिकार की प्रत्याशा से ठाकुर से प्रश्न किया, 'श्रीवृन्दावन की माटी का क्या इतना गुण है कि उसको लगाने से उच्छिष्ट भी शुद्ध हो जाता है?'

ठाकुर ने कहा– **"श्रीवृन्दावन की माटी नहीं, रज कहना चाहिए। ब्रज की रज परम पवित्र है। पृथ्वी के अन्य किसी भी स्थान की माटी के साथ इसकी तुलना नहीं होती। उच्छिष्टादि सब इस रज को लगाने से शुद्ध हो जाते हैं; श्रीवृन्दावन में पानी की अपेक्षा रज अधिक पवित्र होती है।"**

मैंने कहा– खा-पीकर उच्छिष्ट हाथ-मुँह में रज लगाने से शुद्ध हो जाएगा? फिर पानी से धोना नहीं पड़ेगा?

ठाकुर ने कहा– **"मैं जब पहले यहाँ आया, भोजन के बाद पानी से ही हाथ-मुँह धोकर आचमन करता था; ब्रजवासियों ने मुझसे कहा, 'बाबा, ब्रज-रज लगाने से और अधिक शुद्ध होता है।' दो दिन जब मुझसे इस प्रकार कहा गया, तो मैंने सोचा, अच्छा, देख क्यों न लूँ? तीसरे दिन मैं जल का उपयोग न करके हाथ-मुँह में रज मलने लगा। ऐसा करने पर मेरे मन में बिल्कुल भी दुविधा नहीं हुई, उच्छिष्ट का कुछ संस्कार न रहा। गंगाजल से धोने पर जैसे पवित्रता का बोध होता है, मुझे वैसा ही बोध हुआ। उसके बाद से मैं यह रज लेकर मल लेता हूँ। स्वच्छता के लिए थोड़ा पानी लेकर हाथ-मुँह धोने से ही हो जाता है। यहाँ ठाकुरजी के भोग का बर्तन तक रज में घिस लेते हैं, उससे ही**

पवित्र हो जाते हैं।"

मैंने पूछा— ब्रज-रज का इतना गुण है? जो उसको शरीर में मलने से सत्वगुण बढ़ जाता है? रज में विश्वास न होने से क्या केवल शरीर में लगाने से सत्वगुण बढ़ेगा?

ठाकुर ने कहा— **लगाकर देखने से ही समझ सकोगे। विश्वास करो या न करो, वस्तु का गुण जाएगा कहाँ? कुछ दिन पहले एक बंगाली सज्जन श्रीवृन्दावन आए थे। दो-तीन दिन विग्रह आदि का दर्शन करके दाऊजी के मन्दिर पर आए। मैं उस समय मन्दिर के पास बैठा था। बातों-बातों में उन्होंने मुझसे कहा, 'महाराज, गाँव में रहते समय वृन्दावन के माहात्म्य की कितनी बातें सुनी है; लेकिन कहाँ है? कुछ भी तो दिखा नहीं। रज का कितना गुण सुना था, वह भी तो कुछ समझ नहीं पाया! फिर सब स्थान जैसे हैं, इसे भी वैसा ही देख रहा हूँ।' मैंने उनसे कहा, रज की विशेषता अवश्य है। आप एक बार रज में लोटकर देखिए तो। उन्होंने एक बार रज में माथा टिकाकर कहा, 'कहाँ, जैसा है, वैसा ही तो है।' मैंने कहा, शरीर का कुर्ता उतारिए, साष्टांग प्रणाम करके रज में एक बार लोटिए, उसके बाद देखिए कोई परिवर्तन होता है या नहीं! वे तभी परीक्षण करने के लिए कुर्ता खोलकर रज में लोटने लगे। दो-तीन बार लोटते ही उन्हें क्या हुआ, वे ही जानें, सिसककर रो पड़े। कहे, 'महाराज, मैं घोर अविश्वासी हूँ; लेकिन जीवन में रज का यह गुण कभी भूलूँगा नहीं।'**

ठाकुर बहुत समय तक ऐसे नाना दृष्टान्त देकर रज की असाधारण महिमा की बातें कहीं। कुछ समय बाद हम सब लोग विग्रह-दर्शन के लिए बाहर निकले।

मथुरा के पथ पर श्रीधर की कीर्ति

30 जुलाई, बुधवार। अन्य दिनों की भाँति 9 बजे के भीतर आसन का कार्य समाप्त किया। ठाकुर ने मुझे बुलाकर कहा— **"कुछ दिनों से हरिमोहन ज्वर से बड़ा कष्ट पा रहे हैं। तुमको देखना चाहते हैं। मनोमोहन (मथुरा के असिस्टेन्ट सर्जन) के निवास पर हैं। तुम्हारे लिए आज ही वहाँ एक बार जाना उचित है। पीड़ित अवस्था में कोई देखना चाहे, तो जाना चाहिए। तुम अभी सीधे वहाँ जाओ।"**

मैंने कहा— मैं रास्ता नहीं जानता, मनोमोहन बाबू का घर भी नहीं जानता। किसके साथ जाऊँगा? ठाकुर ने श्रीधर को बुलाकर कहा— **"कुलदा को मथुरा**

में मनोमोहन बाबू के घर ले जाओ। कुलदा मथुरा गया नहीं; अस्पताल भी नहीं जानता है।"

श्रीधर के साथ जाने लगा। सतीश भी हमारे साथ हरिमोहन को देखने गए। नाना स्थानों से घूमते हुए बहुत कष्ट से दिन के लगभग 11 बजे हम लोग मथुरा पहुँचे। मुझे देखकर स्वामी हरिमोहन को अत्यन्त आराम मिला। कुछ समय वहाँ विश्राम करके श्रीवृन्दावन के लिए निकल पडे। श्रीधर का माथा गरम हो गया है। रास्तेभर उन्होंने हम लोगों को बहुत भुगताया। मनोमोहन बाबू के घर पर हमें पहुँचाते ही बिना कुछ कहे सीधे श्रीवृन्दावन की ओर भाग गए! हम लोग रास्तादि कुछ भी नहीं जानते। लगभग 3 बजे हम लोग कुंज पहुँचे। आहारादि करके ठाकुर के पास बैठते ही उन्होंने कहा– **"श्रीधर तुम लोगों को ठीक रास्ते से तो ले गए थे? उन्होंने कोई गड़बड़ तो नहीं की?"**

उत्तर में मैं कहने लगा– कुंज से जाते समय ही श्रीधर हाथ-मुँह मटकाते हुए 'चल मथुरा चल, इस बार तुम लोगों को मथुरा दिखाऊँगा' कहते ही लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाकर विपरीत दिशा में चलते हुए सीधे वंशीवट में पहुँच गए। हम लोगों को वहाँ से यमुना के किनारे-किनारे चलकर सीधे राधाबाग ले गए। जंगल में प्रवेश करके श्रीधर ने कहा, 'सीधा चलो।' हमने कहा, 'रास्ता कहाँ है?' तब श्रीधर तीव्र गति से चलकर हम लोगों को घुमाने लगे। एक ही स्थान में दो-तीन बार घूम-फिरकर समझ गया, श्रीधर का माथा गरम हो गया है। तब धीरे से पूछा, 'भाई श्रीधर, मथुरा किस ओर है?' श्रीधर ने उत्तर दिया, 'मयूर देखो!' हम लोग फिर क्या करते? चुप रह गए। फिर श्रीधर साफ-सुथरे रास्ते से न चलकर रास्ते के दाएँ, बायें, वन के भीतर से दौड़ने लगे। हम लोग भी उनके पीछे-पीछे बहुत समय तक जंगल में दौड़-भाग करके थक गए। इस प्रकार कष्ट भोगते-भोगते अन्त में हम लोग एक विशाल मैदान के सामने पहुँचे। तब श्रीधर को समीप पाकर फिर पूछा, 'भाई श्रीधर, मथुरा और कितनी दूर है?' श्रीधर ने रास्ते में एक विशाल वट वृक्ष दिखलाकर कहा, 'प्रणाम करो। इस वृक्ष की गोसाँईजी ने खोज की है।' वृक्ष को प्रणाम करके हम लोगों ने देखा, पूरे वृक्ष में देवमूर्तियाँ हैं; तने पर स्पष्ट रूप से ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेशादि की मूर्ति अपने-आप बनी हुई हैं। हाथ से बनाए मिट्टी के पुतलों की भाँति इतनी स्पष्ट देवमूर्ति वृक्ष में किस प्रकार उत्पन्न हुई, सोचकर चकित हो गया। मूर्ति आदि को सतीश और मैं ध्यान से देख रहे हैं, अचानक श्रीधर पुनः मैदान के बीच से दौड़ पड़े। हम लोग उसके पीछे-पीछे चलकर एक बस्ती में पहुँचे। उस बस्ती के विभिन्न गंदे स्थानों से हम लोग को ले जाकर फिर एक विशाल मैदान में ले आए। श्रीधर उस विशाल मैदान के मध्य तक तो खूब धीरे-धीरे चले। फिर मैदान के मध्य स्थल पर पहुँचते ही हम लोगों

से कुछ कहे बिना ही लम्बी दौड़ लगा दी। हम भी उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। तब श्रीधर एक बार दाएँ एक बार बायें एकदम से दौड़ने लगे। हम लोग रास्तादि कुछ जानते नहीं, क्या करें? उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। इतना कष्ट भुगतकर बहुत देर बाद हम लोग उनके साथ यमुना के किनारे पर पहुँचे। तब श्रीधर घास के जंगल के बीच से धीरे-धीरे चलने लगे। कुछ दूर जाकर अचानक 'जलजन्तु रे, जलजन्तु' कहकर उन्होंने घास के ऊपर से दौड़ लगा दी। हम लोग कोई उपाय न देखकर उनके पीछे-पीछे भागे। कुछ दूर जाकर हम लोग एक छोटी नहर के किनारे पहुँचे। तब श्रीधर से पूछे, 'श्रीधर ये कहाँ ले आए?' श्रीधर ने कहा, 'नहर पार करो।' हमने कहा, 'तुम आगे जाओ।' उन्होंने कहा, 'तैरना नहीं जानता।' तब सतीश ने धमकाते हुए कहा, 'आओ, इस बार तुम्हें पानी में डुबाएँगे।' श्रीधर ने एक बार आगे-पीछे देखकर सीधे दौड़ लगा दी। हम लोग निरुपाय होकर उनके पीछे-पीछे भागे। श्रीधर एक स्थान पर कुछ हड्डियाँ देखकर वहाँ रुक गए। हड्डियों में छानबीन करते-करते हमारी ओर बार-बार देखने लगे। सतीश ने कहा, 'श्रीधर क्या कर रहे हो? वह तो गाय की हड्डी है! छिः, छिः।' यह बात सुनकर श्रीधर 'रुक साला' कहकर, गाय की विशाल मेरुदण्ड की हड्डी कन्धे में उठाकर सतीश को भगाने के लिए आए। 'पगला साला इस बार खून करेगा रे' कहते हुए सतीश ने दौड़ लगा दी, मैं भी प्राण बचाकर दौड़ने लगा। श्रीधर हम लोगों को पकड़ने ही वाला है; इस समय दूसरा उपाय न देखकर सतीश के साथ मैं भी नहर में कूद पड़ा। श्रीधर भी उस हड्डी को साथ में लेकर दौड़ते हुए पानी में कूद पड़े। श्रीधर तैरना नहीं जानते; गोता खाते-खाते हड्डी को छोड़ दिए। तब हम लोगों ने ही किसी प्रकार से उनको खींच-तानकर दूसरे किनारे पर उठाया। फिर बड़े कष्ट से हम लोग उनके साथ मथुरा में मनोमोहन बाबू के निवास-स्थान पर जा पहुँचे। स्वामी हरिमोहनजी को देखा, वे अब थोड़ा ठीक हैं। स्वस्थ होते ही वे यहाँ आएँगे। श्रीधर ने मनोमोहन बाबू से हम लोग के जलपान के लिए कुछ आने पैसे लेकर कहा– 'भाई, तुम लोग थोड़ा बैठो, तुम लोगों के लिए भूने चने लेकर आता हूँ।' यह कहकर श्रीधर सीधे स्टेशन चले गए एवं हम लोगों के जलपान के उस पैसे से एक टिकट लेकर श्रीवृन्दावन आ गए। हम लोग उनकी प्रतीक्षा में बहुत समय तक रुककर फिर चले आए।'

ठाकुर श्रीधर के पागलपन की ये सब बातें सुनकर खूब हँसने लगे। उनकी प्रसन्नता देखकर हम लोगों को बड़ा आनन्द आया। धन्य है श्रीधर! तुम्हीं धन्य हो! साधन-भजन की अपेक्षा तुम्हारा यह पागलपन ही श्रेष्ठ है।

मैंने ठाकुर से पूछा– उस वृक्ष को क्या आपने ही सबसे पहले देखा था? उन सब मूर्तियों में सिन्दूरादि का टीका भी तो देखने को मिला।

ठाकुर— **पंचकोसी-परिक्रमा करते समय उस वृक्ष को देखा था। तब तक वृक्ष की ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। जो साथ में थे, उन्हें उस वृक्ष में देवी-देवताओं की मूर्ति दिखलाने से उन लोगों ने ही प्रचार कर दिया। अब पण्डे लोग उस वृक्ष को दिखाकर यात्रियों से प्रणामी लेते हैं; सिन्दूर भी पण्डों ने ही लगाया है।**

मैंने कहा— वृक्ष लेकिन बड़ा ही अद्‌भुत है! सुना है, वे सब देवी-देवता वास्तव में उस वृक्ष में हैं। अच्छा, देवी-देवता वहाँ उस जंगल में वृक्ष का आश्रय लेकर क्यों रहेंगे?

ठाकुर— **अरे बाबा, कितने ही देवी-देवता ऋषि-मुनि इस श्रीवृन्दावन की रज पाने के लिए लालायित हैं! इस स्थान में रज के प्रत्येक कण में महाविष्णु विद्यमान हैं।**

उसके बाद श्रीवृन्दावन की रज का माहात्म्य ठाकुर के मुख से सुनते-सुनते संध्या हो गई। हम लोग दाऊजी की आरती देखने नीचे आ गए।

अगस्त, सन् 1890 ई०

स्वप्न: गृहस्थ नहीं होना पड़ेगा

1 अगस्त, शुक्रवार। रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक स्वप्न देखकर मन बड़ा विचलित हो गया। अवसर मिलने पर ठाकुर को स्वप्न सुनाया— निर्जन मनोरम एक स्थान पर पाँच महापुरुष अपने-अपने आसन में बैठे हुए धर्म-प्रसंग में लीन हैं; मैं उन लोगों के निकट जा पहुँचा। बारदी के ब्रह्मचारीजी भी उनमें से एक हैं। मैं सभी के चरणोद्देश्य से साष्टांग प्रणाम करके उन लोगों का दर्शन करने लगा। मुझे देखकर सभी महापुरुष एकदम से कह उठे, 'ये क्या? तुम यहाँ पर कैसे आए? क्या चाहिए? तुम्हारा जो कर्म है, वह अभी पूर्ण नहीं हुआ है। संसार के अनेक कर्म तुमको करने होंगे।' मैंने कहा, संसार-कर्म यदि मेरे प्रारब्ध में रहता है, तो होएगा; लेकिन प्रारब्ध कर्म तो मेरे ठाकुर की मुट्ठी में है। वे जो कहेंगे, वही तो कर्म है। उसके सिवा और कर्म क्या है? अच्छा, अपने गुरुदेव से पूछता हूँ, वे मुझे गृहस्थ में जाने कहते हैं या नहीं। यह कहकर उन लागों को प्रणाम करके मैं आपके पास आ गया। महापुरुषों की बातें आपको बतलाकर आपसे पूछा, मुझे क्या कर्म-बन्धन से मुक्त नहीं करेंगे? तो क्या वास्तव में मुझे फिर वही घर-गृहस्थी करनी होगी? आपने मेरी ओर स्नेहपूर्वक देखकर सिर हिलाते हुए कहा— **'नहीं, नहीं, तुमको अब गृहस्थी नहीं करनी पड़ेगी।'** ये कुछ बातें सुनकर मैं जाग गया। यह स्वप्न

क्या सत्य है?

ठाकुर ने कहा– **"ऐसे स्वप्न मिथ्या नहीं होते। तुम्हें अब संसार-कर्म या घर-गृहस्थी नहीं करनी पड़ेगी। स्वप्न को लिखकर रखो। अब से सभी स्वप्नों को लिखकर रखो। और भी कितने स्वप्न देखोगे!"**

वृक्षरूपी वैष्णव महापुरुष

कल श्रीवृन्दावन परिक्रमा मार्ग पर मुख्य मार्ग के किनारे जिस प्राचीन वट वृक्ष का दर्शन करके आए थे, उस वृक्ष के सम्बन्ध में दो-चार बातें उठाने से और भी बातें होने लगी। श्रीवृन्दावन में वृक्ष के रूप में कितने महापुरुष हैं, कहा नहीं जा सकता। गुरुदेव ने स्वयं जो प्रत्यक्ष किया था, वह कहने लगे– **एक दिन मैं घूमते-घूमते राधाबाग जा पहुँचा। यमुना के किनारे एक निर्जन स्थान देखकर वहाँ एक वृक्ष के नीचे स्थिर होकर बैठ गया। कुछ ही क्षण में 'सर् सर्' ध्वनि मेरे कानों में आने लगी। देखा, सामने में एक वृक्ष काँप रहा है। देखकर बहुत ही आश्चर्य हुआ। मैं वृक्ष की ओर देखता रहा। फिर देखा वृक्ष नहीं है, एक बहुत सुन्दर वैष्णव महात्मा वहाँ खड़े हुए हैं। उनके द्वादश अंग में यथारीति तिलक, गले में कण्ठी, तुलसी की माला, हाथ में भी जप की तुलसी-माला है। उनके विषय में जानने की इच्छा व्यक्त करने पर उन्होंने मुझे पूरा परिचय दिया, फिर कहा, 'यहाँ मैं वृक्ष के रूप में हूँ।' और भी अनेक बातें कहकर उन्होंने पुनः वृक्ष का रूप धारण कर लिया। मैंने यह बात दो-एक वैष्णवों से कही, वे लोग विश्वास नहीं कर पाए, वरन् उपहास करके गौर शिरोमणि जी के पास जाकर कह दिए। इस विषय में शिरोमणि जी के पूछने पर मैंने उन्हें सब स्पष्ट रूप से बतलाया। वे सुनकर रज में लोटने लगे, रोने लगे; फिर उन्होंने मुझसे कहा, 'प्रभु, ये सब बातें जिस किसी को भी न कहें; विश्वास नहीं कर पाएँगे, उपहास करेंगे।'**

सुना है, बाद में गौर शिरोमणि जी भी राधाबाग में उसी वृक्षरूपी वैष्णव महात्मा का दर्शन करके आए थे। मैंने ठाकुर से पूछा– महात्मा लोग यहाँ वृक्ष के रूप में क्यों रहते हैं?

ठाकुर ने कहा– **"श्रीवृन्दावन अप्राकृतिक धाम है। अप्राकृतिक लीला यहाँ नित्य हो रही है। वैष्णव महापुरुष निश्चिन्त होकर उसी का दर्शन करने के लिए वृक्षादि के रूप में विद्यमान हैं; ब्रजधाम में वास करके आनन्द से भजन करते हैं और लीला दर्शन करते हैं।"**

मैंने कहा– वृक्षरूप में जो सब महापुरुष वृन्दावन में हैं, फिर उन्हें तो साधारण लोग जानते नहीं! वृक्ष के ऊपर किसी प्रकार का अत्याचार करने से उन महापुरुषों को कोई हानि नहीं होती?

ठाकुर ने कहा– **"इसीलिए ब्रज के वृक्ष-लता को हानि नहीं पहुँचाते। हानि पहुँचाने से उनको बहुत कष्ट होता है। अभी कुछ दिन पहले ही तो एक वृक्ष पर अत्याचार करने से भयानक अनिष्ट हो गया।"**

क्या हुआ था, यह जानने की इच्छा व्यक्त करने पर ठाकुर कहने लगे– **"यहाँ पास में ही एक कुंज में एक बहुत पुराना नीम का सुन्दर वृक्ष था, कुंज के वैष्णव बाबाजी वृक्ष की खूब सेवा-जतन करते थे। एक दिन वहाँ की एक युवती वैष्णवी ने रजस्वला अवस्था में वृक्ष को पकड़ लिया। रात्रि में बाबाजी ने स्वप्न देखा– एक वैष्णव ब्रह्मचारी ने आकर उनसे कहा, 'तुम्हारे कुंज में इतने समय से बड़े आराम से था, कल तुम लोगों की वैष्णवी ने अशुद्ध काम-कलुषित अवस्था में वृक्ष को कई बार पकड़ा। इससे मेरी अत्यन्त हानि हुई है; इसीलिए मैंने यह स्थान त्याग दिया।' बाबाजी ने प्रातः उठकर देखा, वृक्ष सूख गया है। हम लोगों ने भी जाकर देखा, एक रात्रि में ही वह बड़ा वृक्ष बिल्कुल सूख गया।"**

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर चकित रह गया। मुँगेर में जो घटना हुई थी, उसी गुलाब के पौधे की बात आज मन में आ गई। ठाकुर को वह बात बतलाने पर उन्होंने कहा– **"वास्तविक रूप से सेवा कर सको, तो वृक्ष की बातचीत भी सुनी जा सकती है।"**

श्रीवृन्दावन के सब वृक्ष वास्तव में अद्‌भुत हैं। छोटे-बड़े सभी वृक्षों की शाखाएँ-प्रशाखाएँ लता के समान झूलकर भूमि की ओर लटक गई हैं, पत्ते तक डंडी सहित नीचे की ओर मुख किए हुए हैं। ऐसा कहीं नहीं देखा। निधुवन एवं अन्यान्य प्राचीन कुंज और वन में बड़े-बड़े सब वृक्ष रज में लोटते हुए बढ़ रहे हैं। वृक्ष ऊपर की ओर क्यों नहीं उठते, वह कुछ समझ में नहीं आता। उन वनों में अत्यन्त प्राचीन अनेक वृक्ष भी लता के समान ही लगते हैं। अद्‌भुत है ब्रजभूमि! लगता है, भूमि का ही यह गुण है कि मस्तक उठाने नहीं देता। निर्लज्ज स्वभाव के अशिष्ट लोग का भी श्रीवृन्दावन में दीर्घकाल तक वास करने पर रज के प्रभाव से मस्तक झुक जाता है, इस पर फिर अविश्वास करने का मन नहीं होता। अन्यान्य सैकड़ों दोष रहने पर भी ब्रजवासियों का स्वभाव मृदु एवं नम्र देखता हूँ।

श्रीवृन्दावन में अपार मच्छर

श्रीवृन्दावन में दिनभर तो आनन्द रहता है, परन्तु संध्या होते ही आतंक! दिन शेष होते-होते मच्छरों के उत्पात की बात सोचकर ही मैं बेचैन हो जाता हूँ। ऐसे भयंकर मच्छर और कहीं नहीं देखा। रात्रि होते ही झुंड-के-झुंड मच्छर आकर शरीर पर बैठते हैं। निद्रा का तो अवसर ही नहीं मिलता, एक स्थान पर स्थिर होकर थोड़े समय के लिए बैठना भी असम्भव हो जाता है। सारी रात छटपटाते हुए काटता हूँ; सोचता हूँ, कब सबेरा होगा। रात्रि में ठाकुर कमरे में न रहकर अब भी पूर्ववत् बरामदे में बैठा करते हैं। माता ठाकुरानी भी रातभर पंखा हाथ में लेकर ठाकुर को हवा करती हैं। ठाकुर दो-तीन बार माता ठाकुरानी को विश्राम करने के लिए कहते हैं; लेकिन माताजी वह बात सुनती नहीं, शान्त भाव से सबेरे तक मच्छर भगाया करती हैं। हवा करके माता ठाकुरानी ठाकुर की सेवा में ही सारी रात काट देती हैं। उधर कुतु मच्छर के काटने से छटपटाती है। बड़ा कष्ट है। ठाकुर के पास एक मच्छरदानी थी, परन्तु उसका वे उपयोग नहीं कर पाए। श्रीवृन्दावन पहुँचने के कुछ दिन बाद ही श्री राखाल बाबू (ब्रह्मानन्द स्वामी) ज्वर से शय्यागत हो गए थे। ठाकुर उन्हें देखने गए थे; देखे, राखाल बाबू अन्धेरे कमरे में पड़े हुए हैं। ठाकुर तुरन्त कुंज में आकर अपनी मच्छरदानी, रस्सी और लोहे के चार कील लेकर राखाल बाबू के कमरे में पहुँचे एवं उनके बिछौने के ऊपर उसे चुपचाप लगा कर चले आए। आज बातों-बातों में कुतु ने ठाकुर से कहा, 'बाबा, श्रीवृन्दावन में तो हिंसा नहीं करनी चाहिए, लेकिन रात्रि में मच्छर भगाते समय जो हिंसा हो जाती है?'

ठाकुर– **तो तू मच्छर को मार डालती है? दो-चार दिन मच्छर को काटने दे न। फिर देखना, मच्छर के काटने से कष्ट नहीं होगा।**

कुतु ने कहा– 'आपको मच्छर के काटने से कष्ट नहीं होता?'

ठाकुर ने कहा– **"अब और होता नहीं। पहले जब यहाँ आया था, तब खूब हुआ था। एक दिन मच्छर भगाने के लिए हाथ के ऊपर हाथ फेरने गया तो देखा, हाथ मच्छरों से भरा हुआ है! तब फिर क्या करता? भगाने पर तो सैकड़ों मच्छर मर जाएँगे। मैं उस समय हाथ-पैर हिलाए बिना एक ही दशा में रहा। रातभर में मेरा इतना रक्त पी गए कि प्रातः उठने पर मेरा शरीर अशक्त लगने लगा; लेकिन उससे मेरी कोई हानि नहीं हुई, बहुत उपकार ही हुआ। उस समय मुझे प्रतिदिन मलेरिया का ज्वर होता था। मच्छरों ने जिस दिन उस प्रकार काटा, फिर उस दिन से मुझे ज्वर नहीं होता। मच्छरों ने मलेरिया का सारा विष चूस लिया।**

फिर उस दिन से मच्छरों के काटने से मुझे कष्ट भी नहीं होता। तुम थोड़ा सहन करके नहीं रह सकती? एक-दो दिन सहन करके देख तो, बाद में कष्ट होता है या नहीं? नहीं तो मच्छर से कह भी तो सकती है कि मुझे काटना मत। ऐसा कहने से ही तो हो जाता है।"

कुतु– हाँ! मच्छरों को कहने से क्या वे सुनेंगे?

ठाकुर– **नहीं सुनेंगे? अच्छा देख, मैं कह देता हूँ, देखना सुनते हैं या नहीं? 'मच्छर तुम लोग कुतु को काटना मत।' जा, इसके बाद यदि तेरे को मच्छर काटे तो मुझसे कहना।**

साधना में विविध अनुभूतियों का क्रम

2 अगस्त, शनिवार। भोजन के बाद हरिवंश पाठ करके हम सभी गुरुदेव के पास बैठे हैं। गुरुदेव अपने-आप धीरे-धीरे कहने लगे– **"दर्शन के विषय जैसे क्रमशः थोड़ा-थोड़ा करके धीरे-धीरे स्पष्ट रूप से प्रकाशित होते हैं, श्रवण भी ठीक उसी प्रकार ही हुआ करता है। श्रवण के आरम्भ में एक प्रकार का 'किच् किच्' शब्द कान के भीतर पहले-पहले सुन पाते हैं। वह शब्द होने पर यदि विरक्त होकर उसे अग्राह्य किया जाए, तब तो अनिष्ट हुआ करता है। नाम-जप करते-करते बड़ी निष्ठापूर्वक उस शब्द को सुनना पड़ता है; निष्ठा रहने से ही धीरे-धीरे सब प्रकार के शब्द सुन सकते हैं। फिर अन्यान्य शब्द के जैसा यह शब्द नहीं है, इसमें कुछ विशेषता रहेगी ही। वह आरम्भ से ही पता चल जाता है। निष्ठापूर्वक स्थिर चित्त से वह सब शब्द सुनने से धीरे-धीरे बातें भी सुन सकते हैं। तब बातचीत की जा सकती है, पूछने पर उत्तर मिलता है; किन्तु बातचीत न होने तक पूरा-पूरा विश्वास नहीं होता। विश्वास की दृढ़ता के साथ-साथ बात करने वाले के अंगादि का स्पर्श भी क्रमशः स्पष्ट रूप से हुआ करता है। यह स्पर्श पंचभौतिक स्पर्श नहीं है। यह अन्य प्रकार का स्पर्श है। ये सब जब होते हैं, तभी ठीक समझ सकते हैं; नियमानुसार साधना करते जाने से ये सब अवस्थाएँ सभी की होंगी। इच्छा करने से भी होंगी, नहीं करने से भी होंगी। ठीक समय होने पर ही होंगी।"** इस प्रकार और भी कई बातें कहकर ठाकुर चुप हो गए। वे बातें मेरी कुछ भी समझ में नहीं आई। ठाकुर से मैंने पूछा– ये सब दर्शन, स्पर्शन, श्रवणादि के लिए एवं अनेक प्रकार के अलौकिक ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए क्या अन्य प्रकार की कोई साधना करनी होती है?

ठाकुर इस प्रश्न के उत्तर में **'इस नाम में ही सब है'** कहकर कुछ क्षण चुप रहे, फिर अपने-आप ही पुनः कहने लगे– **"एकमात्र श्वास-प्रश्वास में नाम-जप का अभ्यस्त होने से ही सब होता है। 'शरीर से मैं पृथक् हूँ' इसका स्पष्ट ज्ञान न होने से वह सब अवस्था होती नहीं। 'शरीर से मैं पृथक् हूँ' समझने के लिए श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना पड़ता है। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना बहुत सहज नहीं है; तीन-चार लाख नाम का जप करो या तीन-चार करोड़ नाम का जप करो, श्वास-प्रश्वास में लक्ष्य रखकर नाम-जप करने जैसा फल किसी प्रकार भी नहीं होता। इसकी उपयोगिता ही अन्य प्रकार की है। स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास में एक बार ठीक से नाम गुँथ जाने से आत्मदर्शन होता है। 'शरीर से आत्मा पृथक् है' जानकर थोड़ा स्थिर हो सकने से ही उस आत्मा में नाना प्रकार की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। तब वह आत्मा अनेक अलौकिक कार्य सहज में कर सकती है।"**

ठाकुर की बात से मेरे बड़े भारी भ्रम का संशोधन हुआ। 21600 (इक्कीस हजार छः सौ) नाम गिनकर प्रतिदिन जप करना भी कुछ क्षण श्वास-प्रश्वास में नाम-जप के प्रयास के तुल्य नहीं है। अतएव भीतर-ही-भीतर लज्जित होकर मैंने फिर अपनी उस संख्या जप की बात नहीं बतलाई।

मैंने पूछा– आत्मा की इस प्रकार क्षमता उत्पन्न हो जाने पर किसी प्रकार के अलौकिक कार्य करने से क्या कुछ अनिष्ट होता है?

ठाकुर ने कहा– **"बहुतों को देखा गया है कि उस प्रकार थोड़ा योगैश्वर्य मिलते-मिलते ही उसका प्रयोग करके वे बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो गए हैं। उस ऐश्वर्य के द्वारा अनेक प्रकार के सम्पद् वृद्धि, रोगारोग्य एवं इच्छानुसार और भी अनेक अलौकिक कार्य करने की क्षमता हो जाती है, सत्य है; लेकिन धर्म-प्राप्ति के पथ में वह भयंकर विघ्न और प्रलोभन है। उन सब ऐश्वर्य के प्राप्त होते ही शक्ति का प्रयोग नहीं करते। तभी धीरे-धीरे विभिन्न आश्चर्यजनक अवस्थाएँ प्राप्त होती हैं। और शक्ति प्रयोग करने से थोड़े समय के भीतर ही उसका सर्वनाश हो जाता है; धर्म-कर्म तो चूल्हे में जाता है, वह शक्ति भी नष्ट हो जाती है; परन्तु वह ऐसा प्रलोभन है कि थोड़ा-कुछ मिलते ही शक्ति प्रयोग करने की इच्छा होती है। इस विषय में बहुत सावधान रहना पड़ता है।"**

लाल के सम्बन्ध में ठाकुर का अनुशासन

बातों-बातों में माता ठाकुरानी ने इस समय लाल की बात उठाकर कहा, 'लाल के भीतर बहुत-सी अद्‌भुत शक्तियाँ देखी है। उन्होंने बहुतों के अतीत जीवन के ऐसे सब गोपनीय विषय उन लोगों को कहा है, जिसे उन लोगों के सिवा संसार में और कोई भी नहीं जानता। बहुतों के भविष्य की बातें भी स्पष्ट कह देते हैं। साधारण बातों में भी लाल की ऐसी एक शक्ति है कि जो उसे सुनता है, मुग्ध हो जाता है। योगजीवन कमरे में बैठकर पढ़ाई-लिखाई करता था और लाल गेण्डारिया के जंगल से एक प्रकार की ध्वनि निकालते; उस ध्वनि की ऐसी आकर्षण शक्ति थी कि योगजीवन उसे सुनकर फिर घर पर रह नहीं पाता था। पढ़ना छोड़कर वह लाल के पास तुरन्त दौड़ पड़ता था। इन सब कारणों से ही योगजीवन परीक्षा पास न कर सका।' माता ठाकुरानी ने लाल के योगैश्वर्य के सम्बन्ध में और भी कई बातें कही। तब इस क्रम में मैंने भी भागलपुर में लाल के योगैश्वर्य प्रकट करने की बात कही। ठाकुर ने सारी बातें ध्यान से सुनकर कहा– **"बार-बार लाल को ये सब करने के लिए मना किया, किसी प्रकार भी बात सुनता नहीं। इसके बाद धक्का खाकर सीखेगा।"**

मैंने यह बात सुनकर थोड़ा चकित होते हुए कहा, क्यों? कितने लोगों के जीवन का भार आपने ही तो लाल के ऊपर दिया है; लाल के मुँह से सुना है, उन लोगों का ही कल्याण करने के लिए वह यथासाध्य प्रयत्न करता है।

ठाकुर ने कहा– **"यह क्या? तुम क्या कह रहे हो? स्पष्ट रूप से कहो। लाल ने तुमसे क्या कहा था, ठीक वही कहो।"**

इस प्रकार ठाकुर से उस विषय में कहने का आदेश पाकर मैंने कहा– लाल ने मुझसे पहले भी एक बार कहा था, इस बार भागलपुर में भी कहा, 'गोसाँईजी वृद्ध हो गए हैं। इतने लोगों का बोझा वे अब कितना वहन करेंगे? इसलिए हम तीन लोगों के ऊपर सभी का भार बाँट दिए हैं; कुछ लोगों का तो श्यामाकान्त पण्डित के ऊपर, कुछ का बिहारी नाम के पश्चिम के एक संन्यासी गुरुभाई के ऊपर और कुछ मेरे ऊपर।' मैंने पूछा– मैं किसके भाग में हूँ? लाल ने उत्तर दिया– 'तुम मेरे भाग में हो।' ठाकुर ने सब बातें सुनकर कहा– **"अच्छा, तो इतना बढ़ गया है? बहुत अधिक उछलने लगा है। महापुरुषों की कृपा से साधारण एक सरसों का बिन्दु पाते ही अभिमान से आसमान पर उड़ने लगा है। शीघ्र ही उस कण को उठा लेने पर वह स्वयं क्या है, अच्छे-से समझेगा। ठहरो, घबराओ मत।**

यह कहकर ठाकुर आसन बैठे-बैठे ही एक बार थोड़ा दाएँ-बायें हिले, तभी

मुझे लगा, 'आज प्रलय होगा, लाल का सर्वनाश हो गया, अब छुटकारा नहीं है।'

साधना के प्रभाव से देहतत्त्व का ज्ञान

कुछ समय बाद बातों-बातों में ठाकुर से पूछा– देहतत्त्व का ज्ञान प्राप्त न रहने से कहाँ क्या रोग है, क्यों है, यह कैसे पता चलता है? फिर रोग से मुक्त होना किस प्रकार सम्भव है?

ठाकुर ने कहा– **"इस शरीर से आत्मा पृथक ही है, इसका अच्छे-से ज्ञान होने पर स्थूल शरीर का कहाँ पर क्या है, सभी ठीक-ठीक दिखलाई पड़ेंगे। तब शरीर के ऊपर और भीतर सभी स्थानों के चमड़े, मांस, हड्डी-मज्जा, नस-नाड़ी, शिरा-धमनी जो कुछ हैं, वह सब स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ने लगते हैं। तब शरीर के किस स्थान पर किस वस्तु का अभाव है, कहाँ किसकी अधिकता है, वह पता चल जाता है; पृथ्वी की किस वस्तु के साथ देह का क्या सम्बन्ध है, वह भी स्पष्ट समझा जा सकता है।"**

गेरुआ क्या है?

सतीश ने बातों-बातों में प्रश्न किया– 'गेरुआ वस्त्र पहनने की क्या कोई अवस्था है, या धर्मार्थी लोग अपनी इच्छा से ही उसे पहन सकते हैं?'

ठाकुर ने कहा– **"गेरुआ पहनने, भस्म लगाने, दण्ड, कमण्डलु और चिमटा आदि सब धारण करने की पृथक-पृथक विशेष अवस्थाएँ हैं। उस अवस्था की प्राप्ति के अनुसार ही इन सब चिह्नों को धारण करने का अधिकार होता है; अन्यथा विडम्बना है, अपराध होता है। आजकल इन सब विषयों का विचार न रहने से बड़ी हानि हो रही है। तुम लोगों के लिए उन सबका अभी कोई प्रयोजन नहीं है। अवस्था होने पर वह ग्रहण कर पाओगे। शास्त्र में है– भगवती के रजः से गेरुआ हुआ है। गेरुए वस्त्र को भगवत्-वस्त्र कहते हैं; वह भगवान् नारायण का वस्त्र है। देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, योगी-महापुरुषों के लिए वह बड़े आदर एवं सम्मान की वस्तु है। उसे ग्रहण करके उचित रूप से उसकी मर्यादा की रक्षा न कर पाने से बहुत बड़ा अपराध होता है। गेरुए वस्त्र में किसी का किसी भी प्रकार से एक बिन्दु वीर्यपात होने से सभी देवी-देवताओं, ऋषि-मुनियों, सिद्ध महात्माओं का शाप लगता है; पहले इन विषयों पर दृष्टि थी, शासन था, वस्तु की ठीक मर्यादा थी। अब विदेशी राजा है,**

कौन शासन करेगा? तभी तो फेरीवाला भी गेरुआ वस्त्र पहनता है।"

प्रतिदिन नये तत्त्व का प्रकाश: परतत्त्व

भोजन के बाद हरिवंश पाठ करके कुछ क्षण चुपचाप बैठा रहता हूँ; ठाकुर स्वयं कोई बात उठाते हैं, तभी साहस करके विभिन्न विषयों पर प्रश्न करता हूँ। जिस दिन किसी प्रसंग पर बातचीत होती है, उस दिन माता ठाकुरानी कुंज में रहती हैं; नहीं तो श्रीधर के साथ कुतु को लेकर दर्शन के लिए चली जाती हैं। ठाकुर जिस दिन बाहर जाते हैं, हम सभी उनके साथ जाया करते हैं; फिर जिस दिन ठाकुर कुंज में रहते हैं, दर्शन के लिए कुंज के अन्य सभी लोगों के जाने पर भी मैं ठाकुर के ही पास बैठा रहता हूँ एवं अवसर मिलने से नाना विषयों पर प्रश्न करता हूँ। संध्या के समय ठाकुर किसी-किसी दिन आसन पर ही बैठे रहते और हम लोगों को विग्रह-दर्शन हेतु जाने के लिए कहा करते हैं; लेकिन स्वयं उस दिन प्रातः से संध्या तक एक बार के लिए भी आसन छोड़कर कहीं जाते नहीं। इसका क्या तात्पर्य है, जानने की इच्छा हुई। ठाकुर से पूछा– आप भी नियमित रूप से दर्शन के लिए क्यों नहीं जाते? थोड़ा चलने-फिरने से शरीर भी स्वस्थ रहता है।

ठाकुर ने कहा– **"श्रीवृन्दावन आने के बाद ही गुरुजी ने मुझसे कहा, 'कम-से-कम एक वर्ष तक यहाँ तुमको आसन लगाना होगा। आसन पर प्रतिदिन तुम्हारे समक्ष नये-नये तत्त्व प्रकट होंगे।' तब से प्रतिदिन ही दो-एक नये तत्त्व प्रत्यक्ष हो रहे हैं। जब तक कम-से-कम एक तत्त्व प्रकट नहीं होता, मैं आसन छोड़कर कहीं नहीं जाता। इसीलिए मैं प्रतिदिन दर्शन करने नहीं जा पाता। वह हो जाने पर ही मैं आसन छोड़ता हूँ, दर्शन के लिए भी जाता हूँ।"**

ठाकुर की बात सुनकर मैं बिल्कुल स्तब्ध हो गया। कुछ क्षण चकित होकर सोचने लगा, 'ठाकुर ने अब यह किस तत्त्व की बात कही? तीव्र वैराग्य का अवलम्बन करके युग-युगान्तर तक लगातार कठोर साधन-भजन में रक्त, मांस, अस्थि, मज्जा को विलीन कर-करके, प्राचीनकाल के ब्राह्मण लोग जिस एक तत्त्व को आयत्त करने से ऋषि-पद के योग्य हो जाते थे; कुछ घण्टे आसन पर बैठकर, क्षण-क्षण में हँसी-मजाक में समय बिताकर भी इस धर्म-विरोधी घोर कलिकाल में वही तत्त्व ठाकुर प्रत्येक दिन दो-एक सहज में प्राप्त कर रहे हैं। यह कितनी असम्भव बात है! मैं स्थिर न रह सका, ठाकुर से पुनः पूछा– तत्त्व किसे कहते हैं? तत्त्व कुल कितने हैं? किस प्रकार से साधना करने पर ये सब तत्त्व प्राप्त होते हैं? मेरा मुँह खुलते ही ठाकुर मेरा सारा भाव समझ गए, इसलिए मन्द-मन्द मुस्कुराते

हुए कहने लगे– **'स्वयं भगवान् ही तत्त्व हैं। भगवान् के भाव का, कार्य का और लीला का क्या कोई विराम है? तत्त्व अनन्त हैं। फिर इन तत्त्वों को क्या साधनादि द्वारा प्राप्त किया जाता है? लाखों जन्म कठोर साधन-भजन में देह पतन करके भी इनमें से एक तत्त्व को भी कोई जान नहीं पाता। फिर ये सब तो साधन-सापेक्ष नहीं, साधनातीत हैं; एकमात्र भगवान् की कृपा से ही ये सब तत्त्व प्राप्त होते हैं। साधना द्वारा इसे प्राप्त करना असम्भव है। उनकी कृपा से पलभर में ही सब हो सकता है। जीव मुक्त होकर एकमात्र भगवान् की कृपा से लीलातत्त्व में प्रवेश कर सकता है। यही परतत्त्व है।'**

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर मैं उसका अभिप्राय समझ गया। फिर कोई बात न करके नाम-जप करने लगा।

नवीन तिलक: श्रीअद्वैत प्रभु द्वारा संस्कार

3 अगस्त, रविवार। वृन्दावन में इस बार ठाकुर को नये रूप में देख रहा हूँ। ठाकुर का अभिप्राय क्या है, पता नहीं; उद्देश्य क्या है, वह भी समझ नहीं आता। मुझे उनके कार्य-कलाप के सम्बन्ध में पूछने का अधिकार ही कहाँ है? स्वयं दया करके वे जब हम लोगों के साथ हिल-मिलकर बातचीत करते हैं, तभी सुयोग मिलने पर केवल दो-एक विषय में पूछकर ही सन्देह का समाधान कर लेता हूँ। इतने समय से ठाकुर को जैसा देखा, अब उनका वैसा रूप नहीं हैं। इस समय वे सहज भाव से मन्दिर जाकर मूर्ति को साष्टांग प्रणाम करते हैं; पाषाण-मूर्ति के सामने रखी खाद्य-सामग्री को प्रसाद मानकर खाते हैं; गले में विभिन्न प्रकार की मालाएँ हैं, फिर द्वादश अंगों में गोपी चन्दन द्वारा तिलक आदि लगाया करते हैं। सीधे शब्दों में कहें तो अब उन्होंने वैष्णवों के समस्त आचरण को आपना लिया है। इस विषय में सारी बातें पूछने की इच्छा होती है; लेकिन साहस नहीं होता।

जो भी हो, आज भोजन के बाद ठाकुर से पूछा– श्रीवृन्दावन में वास करने से क्या इस प्रकार तिलक लगाना पड़ता है? आपको पहले कभी माला-तिलक धारण करते देखा नहीं। आपने कहा था, हमारा कोई सम्प्रदाय नहीं है, लेकिन तिलक तो वैष्णव लोगों के जैसा ही है। ठाकुर ने कहा– **"वह ठीक है। मैं जब श्रीवृन्दावन में आया, तिलक धारण करने का आदेश हुआ। उस समय किस प्रकार तिलक लगाऊँगा, सोचने लगा। किसी सम्प्रदाय-विशेष का चिह्न नहीं लूँगा, यह निश्चय करके एक नये प्रकार का तिलक लगाया। मेरे उस नवीन तिलक को देखकर वैष्णव बाबाजी लोग उग्र आन्दोलन**

आरम्भ कर दिए। एक दिन गौर शिरोमणि जी ने आकर मुझसे कहा– 'प्रभु, आप इस प्रकार का तिलक क्यों लगाए हैं, समझ नहीं पा रहा हूँ। ऐसा तिलक तो किसी सम्प्रदाय में देखा नहीं! दया करके इस तिलक का तात्पर्य मुझे बताएँ।' मैंने उनसे कहा, 'हमारा कोई सम्प्रदाय नहीं है; इसलिए मोहम्मद का अर्धचन्द्र, यीशु खीष्ट का क्रॉस एवं महादेव का त्रिशूल लेकर यह एक नये प्रकार का तिलक लगाता हूँ।' शिरोमणि जी ने कहा– 'आप सब कर सकते हैं; लेकिन आप जो करेंगे, उसका अनुकरण हजारों लोग करके एक सम्प्रदाय गठित करेंगे। अतएव शास्त्र की व्यवस्था के अनुसार ही क्यों नहीं लगाते? नवीन सम्प्रदाय फिर क्यों खड़ा करोगे? हमारा विनयपूर्वक अनुरोध है, आप यह तिलक त्यागकर यथारीति तिलक धारण करें!' मैंने शिरोमणि जी की बात सुनकर कहा– 'इस विषय में जो उचित होगा, शीघ्र ही आपको पता चल जाएगा।' फिर एक दिन श्रीअद्वैत प्रभु ने इस प्रकार तिलक दिखाकर मुझसे कहा– 'तुम ऐसा तिलक लगाओ।' अद्वैत प्रभु इसी प्रकार का तिलक लगाते थे। उनके आदेश के अनुसार ही मैं ऐसा तिलक लगाता हूँ।"

श्रीवृन्दावन में साम्प्रदायिक भाव

मैंने कहा, आप जब श्रीवृन्दावन पहुँचे, माला-तिलक न देखकर बाबाजी लोग गड़बड़ नहीं करते थे? इन लोगों का भाव देखकर लगता है, साम्प्रदायिक कट्टरता इनमें बहुत अधिक है। अन्य वेशधारी साधुओं को ये लोग स्वीकार नहीं करते, उन्हें साधु ही नहीं मानते। कोई माला-तिलक धारण न करे, तो उन्हें अपवित्र समझते हैं। मैंने जितने दिनों तक मुण्डन कराकर चोटी नहीं रखी, और जब तक माता ठाकुरानी ने मेरे गले में कण्ठी नहीं पहनाई, उतने दिनों तक वैष्णव-बैरागी लोग मुझे प्रसन्न दृष्टि से नहीं देखते थे; अब मेरे इस मुण्डित सिर पर चोटी और गले में कण्ठी देखकर वे लोग कहते हैं, 'अहा, कैसा सुन्दर रूप है, अंग से ज्योति फूट रही है।' फिर मैं अपना रूप एक बार जब आईने में देखता हूँ, तो पुनः देखने की इच्छा नहीं होती; मुण्डित सिर पर चोटी इतनी भद्दी दिखती है।

ठाकुर मेरी बात सुनकर खूब हँसे; फिर कहने लगे– **"वेश लिए बिना यहाँ रहना बड़ा कठिन हो जाता है। मेरे इस गेरुए को छुड़वाने के लिए उन लोगों ने कितना प्रयास किया! यहाँ तक कि गौर शिरोमणि जी के द्वारा भी कितना अनुरोध करवाया। एक दिन शिरोमणि जी के साथ भागवत सुनने गया था। सभी बैठकर भागवत सुन रहे हैं, एकजन ने नाली के गंदे पानी में गोबर घोलकर ऊपर से मेरे सिर पर गिरा दिया।**

मेरे पास में गौर शिरोमणि जी बैठे थे, सारा पानी उनके ऊपर ही गिरा। वे सब समझ गए, फिर मुझसे बोले, 'देख लिया प्रभु, इन लोगों का कर्म? चलिए, अब इस स्थान पर नहीं रहना!' कहकर वे मुझे लेकर चले आए। वैष्णव वेश न देखकर यहाँ बाबाजी लोग ऐसा ही व्यवहार करते हैं।"

यह बात सुनकर सोचा, 'इतने दिन हो गए ठाकुर को यहाँ पर आए हुए; इस बीच न जाने और भी कितने अत्याचार इन लोगों ने उनके ऊपर किया है!' बातों-बातों में ठाकुर के मुख से कभी-कभी ऐसी बातें अचानक निकल पड़ती हैं, इसी से एकाध घटना का पता चल जाता है, अन्यथा इन सब बातों को जानने का तो कोई उपाय नहीं है। जो भी हो, दामोदर पुजारी और श्रीधर आदि से पूछने पर हो सकता है कुछ-कुछ खबर मिल जाए, यह सोचकर मैंने कुछ समय बाद नीचे आकर उन लोगों से पूछा– ठाकुर जब श्रीवृन्दावन में आए, तब यहाँ के लोगों ने ठाकुर को नीचा दिखाने के लिए क्या किसी प्रकार का प्रयास किया था? उन्होंने मुझसे जो सब बातें कही, सुनकर मैं चकित रह गया। उनमें से केवल एक ही विषय को यहाँ लिखकर रख रहा हूँ, घटना इस प्रकार है–

दर्शन में विरोध करने वाले प्रभुसन्तान को उत्कट शिक्षा

श्रीवृन्दावन पहुँचकर ठाकुर ब्रजवासी दामोदर पुजारी के कुंज में ठहरे। कुछ दिन बाद उन्होंने कहा– **"कल प्रातः गोविन्दजी का दर्शन करने जाऊँगा।"** ठाकुर के ऐसा कहते ही सभी जगह यह बात फैल गई। श्रीवृन्दावन में बड़ा कोलाहल मच गया! बिजली की गति से यह संवाद प्रभुपाद के दरबार में पहुँचा। सबसे प्रभावशाली सम्मानित वैष्णव नेता एक प्रभुसन्तान उत्तेजित होकर कह उठे, 'यह क्या? ऐसे ही मन्दिर में जाएगा? आकर हम लोगों का दर्शन किया नहीं, अनुमति ली नहीं। उसको तो जानते हैं। इतने सहज में ही वह मन्दिर जाएगा? अच्छा, देखा जाएगा।' यह कहकर उन्होंने तीन-चार प्रभुसन्तानों के साथ समस्त वैष्णव समाज को बुलवाकर एक बहुत बड़ी सभा का आयोजन किया। प्रभुपाद ने विरक्त होते हुए सबसे कहा, 'अद्वैत परिवार के कुल में कलंक लगाने वाला जाति-नाशक म्लेच्छाचारी एक गोसाँई इस समय श्रीवृन्दावन में आया हुआ है। सनातन धर्म-विरोधी ब्राह्मधर्म का प्रचार करके हजारों लोगों को धर्मभ्रष्ट किया है। दीर्घकाल अनाचार में बिताकर अब गेरुआ पहनकर संन्यासी के वेश में वह वृन्दावन में उपस्थित है। हमसे भेंट किए बिना ही अनुमति की उपेक्षा करके वह कल गोविन्दजी के दर्शन करने के लिए मन्दिर में जाने का साहस कर रहा है। अब उसको मन्दिर में प्रवेश करने देना है या नहीं?' प्रभुपाद का प्रश्न सुनकर

वैष्णव बाबाजी लोग तुरन्त चीत्कार उठे और सब लोगों ने उत्तेजित होकर कहा, 'यह कभी नहीं होगा। हम रोकेंगे।' इस बात से सन्तुष्ट न होकर प्रभुपाद ने कहा, 'केवल रोकना नहीं है; मन्दिर में घुसने से द्वार पर ही उसको विशेष रूप से अपमानित करके भगा देना।' गोविन्दजी के पुजारी को भी यह आदेश दिया गया। दो-चार अत्यन्त उदासीन वैष्णवों के अतिरिक्त सभी इस कार्य में खूब उत्साह प्रकट करते हुए अपने-अपने कुंज में चले गए।

रात्रि भोजन के बाद प्रभुसन्तान गहरी नींद में थे, अचानक उत्पात हुआ। उन्होंने स्वप्न देखा– एक भयानक जंगली वाराह ने गर्जन करते-करते दौड़ते हुए आकर प्रभुसन्तान पर तीव्र गति से आक्रमण किया। धक्के खा-खाकर प्रभुपाद की नींद टूट गई; हाय-हाय करते हुए वे जाग उठे। फिर कुछ क्षण बैठकर हाथ-मुँह रगड़कर पुनः शयन किए एवं नींद लग गई। कुछ समय के भीतर पुनः वही जंगली सूअर भयंकर गर्जन करते हुए प्रभुजी के ऊपर टूट पड़ा एवं धक्के मार-मारकर उनको बेचैन कर डाला। प्रभु तब 'हाय-हाय' करके चीत्कार करते हुए जाग उठे। कुछ क्षण विचलित अवस्था में रहकर पुनः सोने लगे। इस बार वैसी नींद न रही। थोड़ी झपकी आते ही प्रभुपाद ने देखा– स्वयं बलदेवजी वाराह मूर्ति धारण करके भयानक गर्जन से चारों दिशा को कम्पित करते हुए भयंकर दाँत दिखाकर अत्यन्त तीव्र गति से उनको लक्ष्य करके अग्रसर हो रहे हैं। क्षणभर में वे प्रभुजी के ऊपर टूट पड़े; बार-बार घसीटते और कुचलते हुए उनके सर्वांग को दबाकर, मुख के अग्रभाग से छाती को मसलकर कहने लगे– 'तेरा इतना साहस! गोसाँई को मन्दिर जाने से रोकेगा? जानता नहीं वे कौन हैं? उनको सामान्य समझता है? आज तेरे को खतम करूँगा।' प्रभुजी की तन्द्रा दूर हो गई; काँपते हुए चैतन्य अवस्था में वे वाराहदेव का बारम्बार गर्जन सुनने लगे। कड़े दबाव से उनकी श्वास रुद्ध होने लगी, करवट बदलने का भी सामर्थ्य नहीं रहा। फिर वे चीत्कारते हुए उठ गए एवं धीरे-धीरे श्वास लेकर क्रमशः स्वस्थ हुए। उस समय उन्होंने सोचा, 'अब क्या करूँ? इस अपराध से कैसे बचूँ?' श्रीवृन्दावन में श्री गौर शिरोमणि जी को सभी सिद्ध महापुरुष मानकर उन पर श्रद्धा करते हैं। प्रभुसन्तान तुरन्त रात्रि में ही उनके पास जा पहुँचे; उनसे बिना कुछ छिपाए समस्त विवरण विस्तार से कहकर, शरीर के नाना स्थानों पर वाराह के प्रहार का चिह्न दिखलाते हुए बोले, 'अब हमारा क्या कर्त्तव्य है? कृपा करके कहिए।' शिरोमणि जी ने कहा, 'प्रभु, आपने भयंकर दुःसाहस किया था। इस प्रकार का संकल्प करना तो बड़ा अपराध है। प्रातः होते ही आप जाकर गोस्वामी प्रभु से क्षमा माँगिए एवं ससम्मान आदरपूर्वक उन्हें गोविन्दजी के मन्दिर में ले जाएँ!' अगले दिन प्रातः प्रभुसन्तान ने वही किया। श्रीगोविन्दजी का दर्शन करके ठाकुर भावावेश में अचेत हो गए; उस समय ठाकुर

की वह अवस्था देखकर विद्रोही लोग बहुत लज्जित होकर पश्चात्ताप करने लगे। उसके बाद सभी लोग बडे आनन्द के साथ ठाकुर को लेकर हमारे कुंज में आए। ऐसा लगता है, इस प्रकार कोई असाधारण घटना न होने से इतने कम समय में इस स्थान पर ठाकुर का इस प्रकार गौरव और ऐसी प्रतिष्ठा असम्भव थी।

साधक का सुरापान क्या है?

आज ठाकुर अपराह्न के समय आसन से उठे नहीं। ठाकुर के पास बैठकर हम लोग विविध विषयों पर प्रश्न करने लगे। मैंने पूछा– हम लोगों के लिए तो नशा करना बिल्कुल ही निषिद्ध किया गया है, परन्तु साधु-संन्यासी लोग तो खूब नशा करते हैं। शास्त्र में क्या मादक पदार्थ का सेवन निषिद्ध है?

ठाकुर ने कहा– **"मादक पदार्थ का सेवन सम्पूर्ण रूप से निषिद्ध है; शास्त्र में धर्मार्थियों के लिए मादक पदार्थ के सेवन की व्यवस्था कहीं नहीं है। जो लोग सदा पहाड़ों में घूमा करते हैं, उन स्थानों पर ही रहकर साधनादि करते हैं, उन्हें बहुत शारीरिक कष्ट सहना पड़ता है। विभिन्न स्थानों पर सर्दी-गर्मी आदि में शरीर को ठीक रखने हेतु उनके लिए मादक पदार्थ का सेवन आवश्यक होता है; परन्तु वह केवल शरीर की रक्षा के लिए ही है, उससे साधना में कोई सहायता नहीं मिलती; वरन् बहुत अनिष्ट ही होता है, चित्त विचलित होता है। योग-शास्त्र एवं आयुर्वेद में मादक पदार्थ के प्रयोग को बहुत बड़ा दोष बतलाया गया है। केवल शरीर रक्षा के लिए औषधि के रूप में लोग उसका सेवन करेंगे, औषधि का प्रयोजन पूर्ण होते ही फिर छोड़ देंगे– यही व्यवस्था है।"**

मैंने कहा– क्यों? देखते तो हैं, तान्त्रिक साधक खूब शराब पीया करते हैं। शराब न पीने से मानो साधना ही नहीं होती है। वीराचारी लोग तो बहुत शराब पीते हैं, मांस खाते हैं, ये तो सभी जानते हैं।

ठाकुर ने कहा– **"शराब पीकर साधना करने की व्यवस्था वीराचारियों के लिए भी नहीं है। फिर भी स्वयं की परीक्षा करने के लिए वीर लोग उसका उपयोग कर सकते हैं, इतनी ही बात है। तन्त्र में जिस अवस्था को 'वीर' कहते हैं, वह तो बहुत सहज नहीं है।"**

मैंने पूछा– किस अवस्था में तान्त्रिक साधक 'वीर' होते हैं?

ठाकुर ने कहा– **"वीर सहज में नहीं होते; समस्त पशुभाव विनष्ट होने से ही वीर होते हैं। काम-क्रोधादि समस्त रिपु जब बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं, तभी वीराचारी हो सकते हैं।"**

मैंने कहा– शास्त्र में सुरापान की व्यवस्था नहीं है, आपने कहा; परन्तु तान्त्रिक लोग तो सुरापान का माहात्म्य दिखलाकर कहते हैं– 'पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा जावत्पतति भूतले। उत्थाय च पुनः पीत्वा, पुनर्जन्म न विद्यते।।'

ठाकुर ने कहा– **"जिस सुरापान की यह व्यवस्था है, वह बाहर की सुरा नहीं है। ये सब मादक नहीं हैं। लोग इस बात को समझे बिना गड़बड़ करते हैं। भक्ति के द्वारा इस देह से ही एक प्रकार की सुरा उत्पन्न होती है; उसे पीने से भयंकर नशा होता है। उसे अमृत कहते हैं; उसे पीने से फिर जन्म नहीं होता।"**

मैंने कहा– भक्ति से देह के भीतर किस प्रकार सुरा उत्पन्न होती है? उसको पीएँगे कैसे?

ठाकुर ने कहा– **"देखो, जब हम लोगों को क्रोध आता है, तब मस्तिष्क के किसी एक विशेष स्थान पर एक प्रकार के प्रभाव से उस स्थान के रक्त में कुछ अन्य प्रकार का परिवर्तन होता है। वह रक्त तब गरम होकर अस्वाभाविक रूप से पूरे शरीर में फैल जाता है। काम से भी वैसा ही होता है। इस प्रकार सत्-असत् सभी भाव मस्तिष्क के विशेष-विशेष स्थान पर एक-एक प्रकार की अनुभूति से रक्तादि में परिवर्तन लाते हैं। वही शिरा-धमनी से होकर पूरी देह में फैल जाता है। भाव, भक्ति, आनन्द से भी रक्त में इस प्रकार का परिवर्तन होता है! भक्ति से मस्तिष्क के रक्त की जो अवस्था होती है, बहुत अधिक होने से वह क्रमशः भाव के द्वारा गरम होकर एक प्रकार का रस बन जाता है। वह रस धीरे-धीरे तालू से चूकर जीभ पर गिरता है, वही रस अमृत है। उसकी दो-तीन बूँद ही पीने से इतना नशा होता है कि पाँच-सात दिन सहज में बिता दिया जाता है, भोजन की भी आवश्यकता नहीं होती। उसको ही सुरा कहा गया है; वही पीने की व्यवस्था है। उस सुरा की मादकता इतनी अधिक होती है कि जिन्होंने नहीं पी है, बताने से वे किसी प्रकार भी समझ नहीं पाएँगे। उसको पीते ही मनुष्य अचेत हो जाता है– शरीर बिल्कुल अचल हो जाता है; लेकिन भीतर का ज्ञान कम नहीं होता, जैसा है, वैसा ही रहता है; केवल बाह्यज्ञान नहीं रहता।"**

मैंने कहा– जिस अमृत की बात आपने कही, वह पीने में कैसा लगता है? वह जब रक्त में किसी एक प्रकार के परिवर्तन से उसका ही टपका हुआ रस है, तब उसे पीने से क्या कोई अनिष्ट नहीं होता?

ठाकुर ने कहा– **"प्रत्येक बार उसका स्वाद भिन्न-भिन्न प्रकार का**

होता है। भक्ति के सब भावों के साथ उसका योग है। जिस भाव से भक्ति होती है, स्वाद भी उसी प्रकार का हुआ करता है– कभी नमकीन, कभी मीठा, तो कभी खट्टा-मीठा, फिर कभी तीखा; इस प्रकार विभिन्न स्वाद मिलता है। भक्ति का जब जैसा भाव, उस समय वैसा ही स्वाद। मैं तो देखता हूँ, उसको पीने से कोई हानि नहीं होती; वरन् शरीर और भी स्वस्थ रहता है। उसको पीने से दीर्घकाल भोजन न करने पर भी कोई दुर्बलता नहीं आती; शरीर खूब बलिष्ठ और स्वस्थ हो जाता है। उससे शरीर का बड़ा कल्याण साधित होने के कारण ही शास्त्र में उसको 'अमृत' कहा गया है। वह यथार्थ में अमृत है।"

मैंने कहा– जिस भक्ति से वह अमृत उत्पन्न होता है, वह भक्ति कैसे प्राप्त होती है? हम लोग वह अमृत प्राप्त कर नहीं सकते?

ठाकुर ने कहा– **"इस अमृत को प्राप्त करने के लिए श्वास-प्रश्वास में खूब नाम-जप करो। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर पाने से ही देखना धीरे-धीरे सभी प्राप्त होगा। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना ही सबसे श्रेष्ठ उपाय है।"**

नाम-जप से ठाकुर की शुष्कता और ज्वाला परमहंसजी की सान्त्वना

ठाकुर की बात सुनकर कहा– चेष्टा तो कम नहीं करता; लेकिन श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना असम्भव ही लगता है। नाम-जप करने से यदि आनन्द मिले, तब तो श्वास-प्रश्वास में प्रयास किया जा सकता है। नाम जितने दिन शुष्क लकड़ी के समान नीरस रहता है, तब तक चेष्टा करने का धैर्य कैसे रहेगा? नाम-जप करने से क्या उपकार हो रहा है, वह भी तो समझ नहीं आता।

ठाकुर कहने लगे– **"उपकार क्या हो रहा है, वह अभी नहीं समझोगे। केवल नाम-जप करते जाओ। धीरे-धीरे सब समझोगे। श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करना बहुत ही कठिन है, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु उस कारण से नाम-जप छोड़ मत देना। पहले-पहले नाम बहुत ही नीरस लगता है। मुझे जब गुरुदेव ने श्वास-प्रश्वास में नाम-जप करने को कहा, कुछ दिन चेष्टा करने के बाद ही मुझे बहुत विरक्ति होने लगी। क्योंकि कुछ समझे बिना नीरस नाम का जप कब तक किया जाएगा? कई बार नाम जपते-जपते इतना नीरस लगता था कि व्यर्थ ही जप कर रहा हूँ सोचकर छोड़ देने की इच्छा होती थी। तब एक दिन परमहंसजी**

ने दर्शन दिया; मैंने कहा– व्यर्थ में ही इस प्रकार नाम-जप अब नहीं कर सकता। फिर नीरस नाम का जप करने से क्या होगा? कुछ भी तो जानता नहीं। तब उन्होंने थोड़ा हँसते हुए मुझसे कहा– 'केवल मेरा अनुरोध समझकर नाम-जप करते जाओ। नीरस लगता है लगने दो, उससे क्या होता है? विरक्ति लगने पर भी उससे कोई हानि नहीं है। नाम-जप करते रहो, धीरे-धीरे सब अनुभव होगा।' मैंने परमहंसजी की बात मानकर फिर नाम-जप करने लगा। गया के आकाशगंगा में, बराबर पहाड़ और विन्ध्याचल में खूब नाम-जप करके छः मास बिताया, तब कुछ-कुछ बोध होने लगा। वहाँ मेरी नाना प्रकार की अवस्था होने लगी। तब सो रहा हूँ या जाग रहा हूँ, इस विषय में भी समय-समय पर संशय होता था, तब संशय दूर करने के लिए कभी-कभी तो शरीर में काँटा चुभाकर भी देखा; कितना कुछ किया! बाद में जब दरभंगा आया, गुरुदेव ने एक दिन दर्शन दिया। उन्हें मैंने अपनी सभी अवस्था खुलकर बतलाई; तब उन्होंने मुझसे इतना ही कहा– 'हठयोग प्रदीपिका' एवं 'विचारसागर' ये दो ग्रन्थ लेकर एक बार पढ़ो। मैंने पूछा– कहाँ मिलेंगें? उन्होंने एक दुकान का उल्लेख करके कहा– 'दरभंगा में केवल उस दुकान में ये ग्रन्थ हैं, पाँच रुपये लेगा। जाओ, ले आओ।' गुरुजी के कथनानुसार उस दुकान में जाकर देखा– केवल वही दो पुस्तकें उस दुकान में हैं। मूल्य भी पाँच रुपये लिया। मैंने दोनों पुस्तकें लेकर पढ़ी। देखा उन दोनों ग्रन्थों में जितनी भी अवस्थाओं की बातें लिखी हुई हैं, वे सब मुझे प्राप्त हो गई हैं। वे सब अवस्थाएँ जब मुझे प्राप्त हुई थी, तब सोचा था, मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है। ग्रन्थ पूरा पढ़ते ही गुरुदेव ने फिर दर्शन दिया। उस समय उनसे कहा– ये दोनों पुस्तक पढ़ने के लिए आपने मुझे पहले क्यों नहीं कहा; फिर इतना काण्ड नहीं करता। गुरुजी ने कहा– 'नहीं, पहले देने से ठीक नहीं होता। तुम बड़े कट्टर लड़के हो, वह तो मैं जानता ही हूँ। दोनों ग्रन्थ पहले पढ़ा लेने से अभी तुम सोचते– उसको पढ़ने के संस्कार से तुम्हारा माथा गड़बड़ा गया है। इन सब अवस्थाओं पर तुम्हें यथार्थ विश्वास नहीं होता। अभी तुम अपनी अवस्था स्वयं अनुभव कर रहे हो। हजारों वर्ष पहले ऋषि-मुनि जो सब शास्त्र लिख गए हैं, उससे उन अवस्थाओं की पुष्टि होती है; अब मैं भी कहता हूँ, साधना द्वारा तुम्हें जो सब अवस्थाएँ प्राप्त हुई हैं, सभी सत्य है। फिर उस विषय में तुम्हें अब कोई संशय नहीं होगा।' अवस्था प्राप्त करके ही उसकी सत्यता के प्रमाण के लिए शास्त्र देखना

ठीक है। उससे शास्त्र में भी ठीक विश्वास होता है।" इतना कहकर ठाकुर थोड़ा रुक गए; फिर पुनः कहने लगे– **"अनेक लोग मुझसे विभिन्न विषयों पर प्रश्न करते हैं; लेकिन उसका उत्तर देने में मुझे अच्छा नहीं लगता। एकमात्र श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर पाने से धीरे-धीरे सब अवस्थाएँ प्रकट होती रहेंगी। तब उसके प्रमाण के लिए शास्त्र देख लेना चाहिए। शास्त्र ही यथार्थ अवस्था का प्रमाण देगा। जो कुछ प्रत्यक्ष करोगे, ठोक-बजाकर देख लेना। तुम लोग तो थोड़ा-कुछ प्रत्यक्ष होने से ही विश्वास कर लेते हो; परन्तु मेरे साथ वैसा नहीं है। मैं जब तक समस्त इन्द्रियों द्वारा अच्छे-से ठोक-बजाकर समझ नहीं लेता कि सत्य है, तब तक उसे सत्य मानकर ग्रहण नहीं करता। वास्तव में, सब इन्द्रियों द्वारा ठोक-बजाकर जिसको सत्य मानते हैं, उसी पर विश्वास किया जाता है। किसी विषय को केवल देखकर, सुनकर अथवा स्पर्श करके तुरन्त सत्य मानकर ग्रहण नहीं करना; समस्त ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय द्वारा ठीक से ठोक-बजाकर सत्य को समझ लेने के बाद पुनः शास्त्र देखो। उसमें जब प्रमाण मिले, तभी निःशंक हो सकोगे; अन्यथा सच नहीं होता।"**

मैंने कहा– सुना है, सभी देवी-देवता, विशेषतः ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि पंच-देवताओं को सन्तुष्ट किए बिना मुक्ति नहीं मिलती; तो क्या उन सब लोगों की पूजा करनी होगी?

ठाकुर ने कहा– **"सभी का बहुत सम्मान करना; अनादर, अपमान किसी का भी नहीं करना। उनकी पूजा न करने से भी चल जाता है। पूजा द्वारा केवल उनका ही लोक प्राप्त होता है, मुक्ति प्राप्त नहीं होती।"**

मैंने फिर कहा, पूजा द्वारा उनको सन्तुष्ट न किया जाए, तो मार्ग में वे लोग किसी प्रकार का विघ्न तो उत्पन्न नहीं करेंगे?

ठाकुर ने कहा– **"एकमात्र भगवान् की पूजा से ही सब हो जाता है। जैसे वृक्ष की जड़ में पानी देने से शाखाओं-प्रशाखाओं, फूल-पत्तों सभी में वह पानी जाता है, उसी प्रकार एकमात्र भगवान् की पूजा करने से सभी को उससे सन्तोष होता है, आनन्द होता है।"**

हरिमोहन और मेरे वृन्दावन छोड़ने के सम्बन्ध में ठाकुर का कथन

4–5 अगस्त। कुछ दिनों से मेरे मस्तिष्क पीड़ा का रोग बहुत बढ़ गया है। ब्रह्मचर्य ग्रहण करने के बाद से रात्रि का भोजन छोड़ दिया था। लगता है, उसी से इस रोग की पुनः उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मचर्य आश्रम के नियमानुसार गुरु के प्रसाद

के सिवा अन्य कुछ भी दूसरी बार ग्रहण नहीं करते। लगता है, इसी कारण आजकल कुछ दिनों से ठाकुर प्रतिदिन मुझे रात्रि में दूध-रोटी का प्रसाद देते हैं। ठाकुर के आहार की मात्रा निर्दिष्ट है; मुझे प्रसाद देना है, इसके लिए वे परिमाण से अधिक कभी ग्रहण नहीं करते, अपने आहार के ही अंश से दिया करते हैं। कदाचित् ऐसी ही व्यवस्था है। अपने इस रोग के सम्बन्ध में ठाकुर को कुछ भी पता चलने नहीं दिया, क्योंकि उनको पता चलने से हो सकता है वे मुझे बड़े भैया के पास जाने के लिए कहेंगे।

ठाकुर की आज्ञानुसार योगजीवन नौकरी की प्रत्याशा से भागलपुर गए हैं। श्री मथुर बाबू ने उन्हें भरोसा देकर चिट्ठी लिखी थी। स्वामीजी (हरिमोहन) भागलपुर में बहुत दिन थे। वे भी अब शीघ्र ही वहाँ जाने के लिए व्यग्र हो रहे हैं। सतीश को भी ठाकुर मातृ-सेवा करने हेतु गाँव जाने के लिए बार-बार कहते हैं, पर सतीश किसी प्रकार भी ठाकुर का संग छोड़कर न जाने की जिद कर रहे हैं। ठाकुर के साथ परम आनन्द से दिन बिता रहा हूँ, परन्तु मस्तिष्क पीड़ा की तीव्रता से बीच-बीच में बहुत ही सुस्त हो जाता हूँ।

आज नित्यकर्म समाप्त करके ठाकुर के पास जाकर बैठते ही ठाकुर ने मेरी ओर देखकर कहा– **"देख रहा हूँ, तुम्हारा शरीर बहुत दुर्बल हो गया है; आधा सेर दूध तुम्हें पीना ही होगा। नहीं तो खूब अस्वस्थ हो जाओगे। फिर रात में नियमानुसार रोटी खाओ। ब्रह्मचर्य के सभी नियम ठीक-ठीक मानकर चलना पहले-पहल सहज नहीं है; धीरे-धीरे अभ्यास करना पड़ता है। शरीर के लिए जो आवश्यक है, वह नहीं करने से कैसे होगा? शरीर ठीक नहीं रहने से कुछ भी नहीं कर पाओगे। मस्तिष्क का रोग बड़ा खराब है। मस्तिष्क से ही सब काम-काज होते हैं। वह खराब होने से जीवन ही व्यर्थ हो जाता है। वरन् तुम कुछ समय के लिए अपने भैया के पास जा सकते हो। फैजाबाद बहुत अच्छा स्थान है। मस्तिष्क की अस्वस्थता भी दूर होगी, फिर साधना में भी कोई हानि नहीं होगी। भैया के संग से तुम्हारा उपकार ही होगा। शरीर थोड़ा स्वस्थ होने पर फिर चले आना।"**

ठाकुर की बात सुनकर समझ गया, शीघ्र ही मुझे फैजाबाद जाना होगा। स्वामीजी (हरिमोहन) कुछ स्वस्थ होकर मथुरा से यहाँ आ गए हैं। रोग की यन्त्रणा से अत्यन्त दुःखी होकर उन्होंने मुझसे कहा– 'भाई, भागलपुर में अच्छा था, क्यों मेरी ऐसी दुर्मति हुई, यहाँ आ गया? देह का यह क्लेश तो अब सहन नहीं होता। किसी प्रकार से थोड़ा स्वस्थ और सबल होने पर मैं पुनः भागलपुर जाऊँगा। धर्म-कर्म तो सभी जगह हो सकता है, आत्मीयजनों के पास रहना सुरक्षित भी है।'

बातों-बातों में आज स्वामीजी के पश्चात्ताप करने की बात मैंने ठाकुर से कही। सुनकर ठाकुर ने कहा— **"तीव्र वैराग्य न आने से कर्म समाप्त नहीं होता। बलपूर्वक क्या कभी कर्म क्षय किया जाता है? हरिमोहन को मैंने बार-बार पहले ये सब कर्म समाप्त कर लेने के लिए कहा था। अब देखो, संन्यास लेकर उन्होंने पछतावा तक कर लिया है। इस अनुताप से उसका सब कुछ तो नष्ट हो गया। अब नियम के अनुसार कर्म समाप्त किए बिना हरिमोहन किसी प्रकार भी स्थिर नहीं हो पाएँगे। कुछ भी नहीं होगा।"**

स्वामीजी ने भी ठाकुर की ये सब बातें सुनकर शीघ्र ही यह स्थान छोड़ने का निश्चय कर लिया।

वैराग्य, वासना और वैध कर्म

मैंने ठाकुर से पूछा— कर्म समाप्त न करने से लोगों की मुक्ति नहीं होती, आपने कहा है; लेकिन ऐसा क्या कोई उपाय नहीं है, जिसका अवलम्बन करने से मनुष्य कर्म क्षय करके मुक्त हो सके?

ठाकुर ने कहा— **"हाँ, है क्यों नहीं? तीव्र वैराग्य द्वारा भी मुक्त हो सकते हैं; लेकिन वैसा वैराग्य है कहाँ? जब मन को विषय से हटाकर सम्पूर्ण रूप से भीतर की ओर आकर्षित कर सको और प्रत्येक श्वास-प्रश्वास में नाम-जप कर सको, तभी आशा की जा सकती है। एक भी श्वास अथवा प्रश्वास व्यर्थ होने से यह नहीं होगा; क्योंकि उस छिद्र को पाते ही कितने शत्रु भीतर प्रवेश कर सकते हैं! इस निष्काम मुक्ति के पथ में कितने मनुष्य, गन्धर्व, देवतादि नाना प्रकार से विघ्न उत्पन्न करते हैं; इस पथ में सभी कठोर परीक्षा लेते हैं। वासनाहीन होकर तीव्र साधना किए बिना इस पथ पर चलना सम्भव नहीं है। इसीलिए वैध कर्म की व्यवस्था है। वैध कर्म द्वारा भोग समाप्त कर लेना ही सहज होता है।"**

मैंने कहा— जिस कर्म को समाप्त करने की बात आपने कही है, वह कर्म किस प्रकार का है? नौकरी करके संसार-गृहस्थी चलाना ही क्या कर्म है?

ठाकुर ने कहा— **"कर्म का अर्थ गृही होना या नौकरी करना नहीं है। जिसकी जिस विषय में आसक्ति है, उसका कर्म उसी को लेकर है।"**

मैंने पूछा— वैध भोग की बात जो आपने कही है, वह किस प्रकार का है? शास्त्र के अनुसार भोग करने से ही तो वह वैध भोग है?

ठाकुर ने कहा— **"वैध भोग क्या है, उसे समझना बड़ा कठिन है। शास्त्र के अनुसार भोग तो ठीक है; लेकिन शास्त्र में भोग काटने के**

लिए प्रकृति की भिन्नता के अनुसार भिन्न-भिन्न कर्म की व्यवस्था है। जिसकी जैसी प्रकृति है, उसके लिए उसी प्रकार के कर्म की व्यवस्था है। इस प्रकार व्यवस्था के अनुसार कर्म का भोग ही वैध भोग है। शास्त्र देखकर प्रकृति के अनुरूप व्यवस्था ठीक कर लेना बहुत कठिन काम है। नियम से प्रकृति के अनुरूप कर्म करने से धीरे-धीरे भोग कट जाते हैं।"

मैं– शास्त्रोक्त लक्षण द्वारा क्या प्रकृति को पहचाना नहीं जा सकता?

ठाकुर– **प्रकृति को जानना क्या इतना सहज है? शास्त्र पढ़कर अथवा अन्य किसी चेष्टा द्वारा उसका कुछ पता नहीं चलता।**

मैं– तो फिर अन्दाज से किस प्रकार कर्म करूँगा?

ठाकुर– **अपनी प्रकृति स्वयं कभी कोई समझ ही नहीं पाता। इसीलिए सद्‌गुरु का आश्रय लेना होता है; सद्‌गुरु जिसकी जैसी प्रकृति स्पष्ट प्रत्यक्ष करते हैं, प्रकृति के अनुसार कर्म की व्यवस्था कर देते हैं। बिना विचार किए उनके आदेशानुसार कर्म करते जाने से सहज में कर्म समाप्त हो जाते हैं। इसके सिवा कोई उपाय नहीं है।**

मैं– अभी तक मेरा मानना था कि नौकरी करना, गृहस्थ होना ही कर्म है।

ठाकुर ने कहा– **"कर्म तो वासना में ही है; वासना की निवृत्ति ही कर्म का उद्देश्य है। वैध भोग द्वारा ही वासना समाप्त करनी पड़ती है। जिसकी जिस ओर वासना है, उसका कर्म भी उसी ओर है। केवल गृहस्थी करना अथवा नौकरी करना कर्म नहीं है।"**

मैंने पूछा– धर्म-प्राप्ति के लिए घर-बार, माता-पिता को छोड़कर जो लोग आते हैं, वह धर्म-प्राप्ति भी तो उसकी वासना है। अतएव वही तो उसका कर्म है।

ठाकुर ने कहा– **"वह तो है ही, फिर भी यदि केवल धर्म की ओर वासना रहे, तब तो वह निर्विघ्न उसको कर सकेगा। और यदि अन्य ओर भी वासना रहती है, तो स्थिर होकर धर्मानुष्ठान नहीं कर सकेगा। जिस परिमाण में अन्य ओर वासना रहेगी, उसी परिमाण में उसको उद्विग्न होना होगा और भुगतना होगा। इसीलिए अन्य वासना को समाप्त करके आना पड़ता है।"**

मैं– कर्म जिससे समाप्त हो जाए, सद्‌गुरु तो वही करने के लिए कहते हैं; किन्तु उस प्रकार करने से कर्म समाप्त हुआ या नहीं कैसे समझूँगा?

ठाकुर ने कहा– **"जब देखोगे किसी ओर भी कोई वासना नहीं है, विषय के सम्पर्क से भी सब इन्द्रियाँ सम्पूर्ण अनासक्त हैं, निवृत्त हैं, तभी**

समझना ये सब कर्म समाप्त हो गए हैं।"

गोसाँईजी प्रदत्त उपवीत की शक्ति

आज मध्याह्न में सतीश ने मुझे एकान्त में ले जाकर कहा– 'भाई, बतलाओ तो क्या करूँ? मेरी दुर्दशा दिनो-दिन बढ़ती ही जा रही है। प्रायः गोसाँईजी मुझे घर जाकर माँ की सेवा करने के लिए कहते हैं– मेरी तो बिल्कुल ही वैसी इच्छा नहीं होती। कर्म में यदि मातृ-सेवा है, तो क्या गोसाँईजी उसको काट नहीं सकते?' मैंने कहा– थोड़ा भोगे बिना सहज में ये कर्म काटे जा सकते तो फिर क्या वे काट नहीं देते? ठाकुर ने जो कहा है, बिना विचार किए वैसा करना ही तो अच्छा है। सतीश ने कहा– 'भाई, वह तो नहीं कर पाऊँगा। वैसी बात फिर मत कहना। गोसाँईजी इच्छा करने से सब कुछ कर सकते हैं। केवल व्यर्थ में हम लोग को भुगताकर मार रहे हैं। मैं उनकी अद्‌भुत शक्ति देखकर चकित हो गया। जानते तो हो मैं कट्टर ब्रह्मसमाजी था। सहज में कुछ भी विश्वास नहीं करता था; लेकिन गोसाँईजी की अद्‌भुत शक्ति देखकर तो अविश्वास करने का कोई उपाय नहीं है। कुछ दिन पहले की एक घटना सुनो, समझ जाओगे।' उसके बाद सतीश मुझसे इस प्रकार कहने लगे– "भाई, जनेऊ त्यागकर ब्राह्मधर्म में दीक्षा ली थी। वह पूरी घटना तो जानते ही हो। कुछ दिन पहले पिता की मृत्यु हो गई। माँ ने मुझे घर आने के लिए संवाद भेजा; लेकिन पिता की मृत्यु का संवाद सुनते ही न जाने मुझे क्या हो गया। सब छोड़-छाड़कर तुरन्त पैदल श्रीवृन्दावन के लिए निकल पड़ा। रास्ते में कितनी अवस्थाओं में पड़ा, कितना दुःख भुगतना पड़ा, कह नहीं सकता। बहुत कष्ट के बाद श्रीवृन्दावन पहुँचा। तब प्रतिदिन गोसाँईजी के साथ मेरा झगड़ा होता था। यहाँ आते ही उन्होंने मुझसे कहा– **'तुम्हारे पिता की प्रेतात्मा सब समय तुम्हारे ऊपर रहती है, जाकर शास्त्र के अनुसार श्राद्धादि करो। उससे उनका बड़ा कल्याण होगा, तुम्हारा भी उपकार होगा।'** मैंने गोसाँईजी से कहा– जनेऊ त्यागकर मैं ब्राह्म हुआ था। शास्त्र के अनुसार श्राद्ध कैसे करूँगा? गोसाँईजी ने कहा– **'जनेऊ पुनः ग्रहण करो, तब फिर हो जाएगा।'** मैंने कहा– यदि ग्रहण ही करना होता, तो फिर त्याग क्यों किया था? जनेऊ का यदि वैसा कोई गुण रहता, तो क्या उसका त्याग करता– अथवा त्याग कर पाता? गोसाँईजी ने मेरी यह बात सुनकर बड़े तेज स्वर में कहा– **'अच्छा, जनेऊ का गुण नहीं है! उस प्रकार से जनेऊ मिला नहीं है, तभी तो; उस प्रकार से ब्राह्मण जनेऊ देता तो सामर्थ्य था जो तुम त्याग करते? जनेऊ का गुण देखोगे? अच्छा मैं जनेऊ देता हूँ, तुम त्याग करो तो।'**

यह कहकर कुछ क्षण बाद गोसाँईजी ने मेरे गले में जनेऊ पहनाकर कहा– **'सतीश, इस जनेऊ को अब तुम फेंको तो।'** भाई, गोसाँईजी के जनेऊ देते ही तुरन्त उसे फेंक दूँगा, मन में पहले से सोच रखा था– जिद भी मेरी बहुत थी। गोसाँईजी ने जब वैसा कहकर मुझे जनेऊ दिया, मैं उसको उसी क्षण फेंकने के लिए जैसे ही जनऊ को स्पर्श किया, मेरी न जाने कैसी अवस्था हो गई, सारा शरीर बारम्बार सिहरने लगा, भीतर से वेग के साथ गायत्री-मन्त्र उठने लगा, भीतर में एक प्रकार के अपूर्व आनन्द की स्फूर्ति हुई। मेरे सारे अंग अवसन्न हो गए, तब मैं रोने लगा, बारम्बार गोसाँईजी को प्रणाम करने लगा; इसीलिए कहता हूँ भाई, मैंने तो कई बार देखा है, गोसाँईजी सब कुछ कर सकते हैं। फिर हमें क्यों व्यर्थ में भुगता रहे हैं?" सतीश की बात सुनकर मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। ठाकुर से ब्रह्मचर्य मिलने के बाद से अपने स्वयं के ही जीवन में जो सब अद्‌भुत घटनाएँ अनुभव कर रहा हूँ, उसका स्मरण करके सोचा– 'ये फिर है ही क्या?' अपनी अद्‌भुत अनुभूतियों की बात को गुप्त रखकर सतीश से कहा– यह सब देखकर ही तो ठाकुर की किसी बात को अस्वीकार करने का साहस नहीं होता।

सतीश ने अपने रिपु की उत्तेजना के सम्बन्ध में जिन सब शोचनीय दुर्दशाओं की बात कही, उसे सुनकर आश्चर्य हुआ। मैं उसकी दुरावस्था का विवरण सुनकर दुःखी मन से चुपचाप बैठा रहा। कुछ क्षण बाद ठाकुर के पास पहुँचते ही उन्होंने कहा– **"सतीश अपनी जिन सब अवस्थाओं की बात तुमसे कह रहे थे, उससे लगता है, यहाँ अब उनका रहना ठीक नहीं है। उनसे कह दो, अन्यत्र जाकर रहें।"**

मैंने ठाकुर के कहे अनुसार जाकर सतीश से सब कहा। सतीश ने मुझसे विरक्त होकर डाँटते हुए कहा– 'जा, जा, बेटा; गोसाँईजी मुझसे नहीं कह सकते?' तब मैंने जाकर ठाकुर से वह बात कही, तो ठाकुर ने सतीश को बुलाकर कहा– **"सतीश तुम्हारे भीतर की जैसी अवस्था है, स्त्री लोगों से दूर रहना ही अच्छा है। यहाँ जब स्त्रियाँ रहती हैं, तब तुम अन्यत्र जाकर रहो। भोजनादि यहाँ कर लिया करो, रहने का बन्दोबस्त अन्य कहीं कर लो।"**

ठाकुर की बात सुनकर सतीश सीधे उछल पड़े। तेज स्वर में कहने लगे– 'क्यों, मैं क्यों जाऊँ? स्त्री लोग यहाँ से जाएँ। उनको अन्यत्र जाने के लिए क्यों नहीं कहते? संन्यासी के आश्रम में स्त्रियाँ क्यों रहेंगी? मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा।' सतीश यह कहकर ठाकुर के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना तुरन्त नीचे चले गए। माता ठाकुरानी ने कहा– 'सतीश की माँ की जो भयंकर दशा है, कहा नहीं जाता। समय-समय पर उनकी ज्वाला की आँच मेरी छाती में आकर लगती है। उसी से

मैं बेचैन हो पड़ती हूँ।' ठाकुर ने कहा– "पिता का श्राद्ध किए बिना सतीश इस प्रकार आ गए हैं, इसी कारण विभिन्न प्रकार के कष्ट भोग रहे हैं।"

श्राद्ध से प्रेतात्मा की यन्त्रणा की शान्ति

तब मैंने पूछा, 'श्राद्ध से क्या वास्तव में प्रेतात्मा का क्लेश दूर होता है?' ठाकुर ने यहाँ पर कुछ दिन पहले हुई एक घटना का उल्लेख करते हुए कहा– "एक दिन मैं यमुना के किनारे-किनारे चलते हुए जैसे ही कालीदह के पास पहुँचा, एक प्रेत मेरे सामने गिरकर भयंकर रूप से छटपटाने लगे। मैंने उनसे पूछा– वैसा क्यों कर रहे हो? प्रेत ने कहा– 'प्रभु, रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, अब यह क्लेश सहन नहीं कर पा रहा हूँ। सैकड़ों-हजारों बिच्छू मुझे सब समय डंक मार रहे हैं। यन्त्रणा से छटपटाकर रात-दिन मैं दौड़-धूप करता हूँ। क्षणभर के लिए भी मुझे छुटकारा नहीं मिल रहा है। आप मेरी रक्षा कीजिए।' मैंने उनसे कहा– यह आपके किस पाप का दण्ड है? प्रेत ने चीखकर रोते-रोते कहा– 'प्रभु, यहाँ मैं ••• मन्दिर में पुजारी था। ठाकुर की सेवा के लिए जो अर्थादि मिलता था, सेवा में न लगाकर मैं भोग-विलास और बदमाशी में उसे उड़ाता था। यही मेरा सबसे बड़ा अपराध है।' मैंने उनसे पूछा– आपके इस भोग की शान्ति कैसे होगी? उस प्रेतात्मा ने मुझसे कहा– 'मेरा श्राद्ध नहीं हुआ है; श्राद्ध होने से ही इस क्लेश की शान्ति होगी। आप दया करके मेरे श्राद्ध की पूरी व्यवस्था कर दीजिए।' मैंने कहा– कैसे व्यवस्था करूँगा? प्रेत ने कहा– 'अपने श्राद्ध के लिए डेढ़ हजार रुपये अपने भतीजे को दिया था; उसने अभी तक मेरा श्राद्ध नहीं किया। आप दया करके उस रुपये को लेकर कुछ ठाकुर की सेवा में दे दीजिए; बचे रुपयों द्वारा मेरे कल्याण हेतु श्राद्ध करके महोत्सव करने से ही मैं इस यन्त्रणा से बचूँगा।' प्रेत की बात सुनकर मैंने उस मन्दिर के वर्तमान पुजारी के पास जाकर सब कहा। फिर पूरी घटना उस प्रेत के भतीजे को भी विस्तारपूर्वक बतलाई गई। वे सोचे थे, रुपये की अब कोई खबर नहीं लेगा। जो भी हो, उन्होंने पूरे रुपये से विधिपूर्वक श्राद्धादि किया। महोत्सव आदि भी हुआ। फिर उस प्रेत की वह यन्त्रणा दूर हो गई। यहाँ कुछ दिन पहले ही यह घटना हुई है।"

चीरघाट में नौका-लीला

संध्या के कुछ पहले हम लोग ठाकुर के साथ बाहर निकले। यमुना के किनारे-किनारे चलकर चीरघाट पहुँचे। वहाँ ठाकुर एक वृक्ष के नीचे बैठकर दूसरे छोर के बेलबाग की ओर देखने लगे, थोड़े समय के बाद ही वे समाधिस्थ हो गए। कुछ क्षण तक स्थिर भाव से नाम-जप करके संध्या के बाद हम लोग कुंज में लौटे। कुतु तुरन्त एक लोटा पानी लाकर ठाकुर के चरण धोने के लिए सीढ़ी के किनारे खड़ी हो गई। ठाकुर ने परिहास करके कुतु से कहा– **"कुतु, आज बिल्लियों का कितना ही मल रौंदते हुए आया हूँ। पैरों में सब मैला सना हुआ है।"** कुतु 'ठीक है, ठीक है' कहकर जैसे ही पैरों को पकड़ने गई, ठाकुर ने दोनों पैर हटाते हुए कहा– **"अरे, रुक न, पैर में सब घृण्य मल लगा हुआ है।"** कुतु ने कहा– 'ठीक है न, उससे मुझे थोड़ी भी घृणा नहीं। मैं रगड़कर अच्छे-से धो देती हूँ।' ठाकुर ने कहा– **"अरे तेरे हाथ में मल लगेगा।"** कुतु ने थोड़ा हँसकर कहा– 'ये क्या कहते हो, तुम्हारे पैरों में जो लगा है, वह फिर मल कैसा?' ठाकुर ने फिर कुछ नहीं कहा। मैं कुतु का यह भाव देखकर चकित रह गया। 'अहा! ठाकुर के श्रीपादपद्म में जो लगा है, वह क्या फिर गू है? उससे घृणा किसलिए?' ठाकुर के प्रति कहाँ तक श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न होने से इस प्रकार का भाव स्वाभाविक होता है, मैं उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता। धन्य है कुतु!

हम सभी बरामदे में आकर ठाकुर के पास बैठे हैं, कुतु ने ठाकुर से कहा– "बाबा, यमुना के किनारे में जब हम सभी बैठे थे, तब तुम समाधि अवस्था में **'डूबोगे नहीं, डूबोगे नहीं'** कहकर खूब हँसे क्यों थे? वह बात तुमने किससे कही थी?"

ठाकुर ने कहा– **"और किससे कहूँगा?"** कुतु ने कहा– 'खुलकर क्यों नहीं कहते?' ठाकुर ने कहा– **अरे यमुना के किनारे में बैठते ही कृष्ण नौका लेकर आए, मुझसे कहे– 'उठ! एक बार यमुना में नौका-विहार करें।' कृष्ण के कहने पर नौका पर चढ़ गया। कृष्ण नौका के एक सिरे पर थे। यमुना के बीच में नौका ले जाकर उन्होंने उस सिरे को पानी के भीतर दबा दिया। तब नौका मानो डूबने लगी। नौका में जो लोग थे, सभी एकदम चिल्लाने लगे। मैंने देखा, कृष्ण नौका को डुबाने ही वाले हैं। तब मन में सोचा, कृष्ण केवल डरा रहे हैं। यह नौका कभी डूबेगी नहीं। नौका के डूबने से तो केवल हम लोग नहीं डूबेंगे, कृष्ण जब नौका में हैं, उस सिरे पर नौका में पानी चढ़ने पर पहले कृष्ण ही डूबेंगे। वही सबसे कहा था, 'डरो मत, डूबोगे नहीं, डूबोगे नहीं; ये कृष्ण की चालाकी है!'**

कुतु– तुम कृष्ण के साथ गए, हम लोगों को क्यों नहीं ले गए?

ठाकुर– **अरे, वह तो बहुत छोटी नौका थी; फिर उसमें क्या अधिक लोग आ पाते?**

माता ठाकुरानी ने कहा– 'अपना खेल कम-से-कम देखने देते। आपने वह भी तो नहीं किया।'

ठाकुर ने कहा– **"उससे फिर क्या लाभ होता? एक चित्र देखने के जैसा देखना, उसके सिवा कुछ नहीं है।"**

माता ठाकुरानी ने कहा– 'तो भी हानि क्या थी? नहीं से तो काना अच्छा।'

माता ठाकुरानी, कुतु एवं ठाकुर श्रीकृष्ण-लीला के सम्बन्ध में और भी कई बातें करने लगे; किन्तु मैं उसे कुछ समझ नहीं पाया।

कुतु ने ठाकुर से कहा– 'बाबा, जब गेण्डारिया में थी, तब तुमने मुझे चिट्ठी क्यों नहीं लिखी?'

ठाकुर ने कहा– **"तेरे को क्या चिट्ठी लिखता? तू तो सब समय मुझे देख पाती थी।"**

कुतु ने कहा– 'देख लेती थी, इसलिए तुमको क्या चिट्ठी भी नहीं लिखना चाहिए?'

ठाकुर ने कहा– **"देख लेने, बात सुन लेने के बाद भी चिट्ठी की आवश्यकता है?"**

कुतु ने कहा– 'देख तो लेती थी; लेकिन बातें तो सदा सुन नहीं पाती थी।'

ठाकुर ने कहा– **"सब समय बातें सुनना भी क्या अच्छा लगता है?"**

मैंने थोड़ा अवसर पाकर कुतु से पूछा– कुतु! आजकल तुम्हें मच्छर काटते नहीं?

कुतु ने कहा– 'काटेंगे क्यों? बाबा ने मच्छर को जो मना कर दिया है।'

बहुत समय तक इन लोगों की इस प्रकार बातचीत के बाद हम लोग शयन करने चले गए।

माता ठाकुरानी को ठाकुर के साथ रखने की बात

6 अगस्त, बुधवार। कल सतीश ने क्रोधवश ठाकुर को जो सब बातें कही थीं, उससे चिन्ता हुई, ऐसा लगता है ठाकुर फिर माता ठाकुरानी को अन्यत्र जाकर रहने के लिए कहेंगे। ठाकुर ने तो कहा था कि साथ में माता ठाकुरानी के रहने से आश्रम की मर्यादा का उल्लंघन होता है। माता ठाकुरानी को साथ में रखे हैं।

यह ठाकुर की अपनी इच्छा है या परमहंसजी का आदेश, वह समझ में नहीं आता। इस विषय में पूछना आरम्भ करते ही ठाकुर मन्द-मन्द मुस्कुराकर कहने लगे–

"कुछ समय पहले एक दिन गुरुदेव मुझे सूक्ष्म शरीर से ले जाकर पहाड़ों में घूमने-फिरने लगे। फिर मुझे लेकर मन्दार पर्वत में पहुँचे। वहाँ उन्होंने कृपा करके मुझे ऊर्ध्वरेता कर दिया। बहुत समय से ऊर्ध्वरेता होने की मेरी एक इच्छा थी। मेरी वह अवस्था होने पर मैंने उनके लिए विशेष रूप से कहा, दया करके उनको भी उन्होंने वह अवस्था दे दी। फिर एक दिन गुरुदेव ने आकर मुझसे कहा, 'तुम तो सम्पूर्ण निरापद् हो गए हो। तुम पहाड़-जंगल में रहो या घर-गृहस्थी में ही रहो, सभी जगह तुम्हारी अवस्था एक ही प्रकार है। उनको तुम यहीं रखो; अच्छा होगा।' गुरुदेव के आदेशानुसार ही उन्हें फिर लाया गया है, अन्यथा मैं तो उत्तरकुरु ही जाऊँगा, सोचा था।"

ठाकुर की बात सुनकर बड़ा लज्जित हुआ। सोचने लगा, 'हाय रे! क्या दुर्दशा है। ठाकुर के कार्य में भी मेरी फिर प्रश्न करने की प्रवृत्ति हुई।' जो भी हो, कुछ क्षण बाद ही पूछा– क्या उत्तरकुरु जाना सम्भव है?

ठाकुर ने कहा– **"जा क्यों नहीं सकते? किन्तु बड़ा कष्टदायक है।"**

मैंने कहा– सुना है, मानससरोवर और कैलास में कोई जा नहीं सकता?

ठाकुर ने कहा– **"जा क्यों नहीं सकता? हठयोग का अच्छा अभ्यास रहने से जा सकता है। नहीं तो जाना असम्भव होता है। उस दिन जो परमहंस यहाँ आए थे, वे कैलास से ही आए थे।"**

कैलास-यात्रा का विवरण

मैंने ठाकुर से पूछा– उस साधु के साथ क्या पहले से आपका परिचय था? वे किस प्रकार गए थे– अकेले या साथ में कोई और भी थे?

ठाकुर कहने लगे– **"कुछ वर्ष पहले उस परमहंस से भेंट हुई थी। एक हठयोगी साधु, ये परमहंस और मैंने कैलास जाने के संकल्प से यात्रा आरम्भ की। पहाड़ी रास्तों पर बहुत दूर चलते-चलते एक बहुत बड़े पर्वत के समीप पहुँचे। एक व्यक्ति ने आकर हमें जाने से रोकते हुए कहा– 'उस पहाड़ पर जाने का हुकुम नहीं है।' उनसे पूछा गया, क्यों? उन्होंने कहा, 'उस पहाड़ पर चढ़ते ही मनुष्य पत्थर हो जाता है।' उनकी बात पर सन्देह करने से उन्होंने हमें बहुत दूर में पहाड़ के ऊपर**

तीन मनुष्यों को दिखलाते हुए कहा– 'वह देखो, वे पत्थर हो गए हैं।' उस पहाड़ पर चढ़ने के रास्ते में पहाड़ के ही किनारे एक बड़े पत्थर पर बड़े-बड़े अक्षरों से खुदा हुआ है– 'अत्र अग्रे न गच्छन्ति।' (यहाँ से आगे नहीं जाना।) पहाड़ की वैसी दशा देखकर युधिष्ठिर स्वर्ग जाते समय उस प्रकार की बात लिख गए थे, ऐसा न हो कि कोई उस पथ से चलकर संकट में पड़ जाए। हमने वह सब देखकर उस ओर से जाने का संकल्प त्याग दिया। हठयोग का मेरा अभ्यास नहीं है, मार्ग में और भी कितने प्रकार के विघ्न रह सकते हैं, यह सोचकर मैं लौट आया; परन्तु वे दोनों संन्यासी लौटे नहीं। उन लोगों ने कहा– 'अग्नि का अभाव हमें नहीं होगा, क्योंकि साथ में 'चकमक' पत्थर है। मार्ग में यदि पानी मिले, तो फिर हम लोगों की क्रिया चलेगी; क्रिया के चलने से हम लोगों के शरीर को कुछ नहीं होगा।' यह बात कहकर वे लोग अन्य पथ से थोड़ा घूमते हुए चले गए। इस बार श्रीवृन्दावन में आने से उसी परमहंस के साथ मेरी भेंट हुई। उन्होंने रास्ते का सारा विवरण मुझसे कहा। सुना– वे लोग पहाड़ी रास्ते से बहुत दिन तक चलकर मानससरोवर पहुँचे। कैलास जाने के लिए मानससरोवर से होकर ही जाना पड़ता है। कैलास के सभी यात्री एक निर्दिष्ट दिन तक वहाँ पर प्रतीक्षा करते हैं। उस निर्दिष्ट दिन में मानससरोवर के बीच से महादेव का रथ निकलता है। जिन लोगों को उस रथ का चूड़ा भी दिख जाता है, वे लोग कैलास-यात्रा करते हैं, अन्य सब रह जाते हैं। यदि कोई रथ अथवा चूड़ा का दर्शन न पाकर भी कैलास जाते हैं, तो कैलास जाकर उनके भाग्य में महादेव का दर्शन नहीं रहता। कैलास के यात्रियों के लिए महादेव-दर्शन की वही परीक्षा है। हठयोगी और परमहंस ने मानससरोवर जाकर देखा, निर्दिष्ट दिन आने में समय है तो उन्होंने मानससरोवर की परिक्रमा की। परिक्रमा में उनको 17 दिन लगे। निर्दिष्ट दिन आने पर सरोवर के चारों ओर हजारों साधु-महात्माओं का 'हर हर, बम बम' शब्द उठने लगा; फूल, विल्वपत्र, धूप-धूना, चन्दनादि लेकर सभी सरोवर में महादेव की पूजा-आरती करने लगे। उस समय मानससरोवर का जल चक्कर खाता हुआ खूब घूमने लगा। महादेव की स्तुति करते-करते सभी सरोवर की ओर ताकते रहे। यथासमय घूर्णित जल के बीच से स्वर्णरथ का चूड़ा निकला। परमहंस तो उसका दर्शन पाकर कैलास की ओर चल पड़े; परन्तु हठयोगी साधु को चूड़ा नहीं दिखा, अतएव वे वहाँ से लौट आए।"

"परमहंस अन्य कुछ महात्माओं के साथ जाकर ठीक समय पर

कैलास पहुँच गए। कैलास पर्वत के एक सौ आठ शिखर एक के बाद एक शृंखलाबद्ध ऊँचे हैं। प्रत्येक शिखर ही शिवलिंग के आकार के हैं। उन सब शिखरों को भी शिवलिंग कहते हैं। उन सब शिवलिंग की परिक्रमा करके कैलास में चढ़ने का नियम है। एक-एक शिखर की परिक्रमा में लगभग एक-एक दिन लगते हैं। सुना है, एक सौ आठ शिखर की परिक्रमा में उन लोगों को पूरे एक सौ आठ दिन लगे थे। ठीक शिवचतुर्दशी के दिन कैलास के ऊपर मन्दिर के समीप वे लोग पहुँच गए। यथासमय रात्रि में अपने-आप मन्दिर का दरवाजा खुल गया। तब सभी ने मन्दिर के भीतर प्रत्यक्ष रूप से साक्षात् महादेव और भगवती का दर्शन पाया। यह दर्शन अधिक समय के लिए नहीं होता, केवल तीन-चार मिनट ही होता है। परमहंस के साथ भेंट होने पर अनेक बातें हुई। तीन-चार वर्ष के बाद इस बार उनके साथ भेंट हुई।"

तिब्बत में बंगाली बाबू

ठाकुर की ये सब बातें सुनकर पूछा– सुना है, तिब्बत देश में भी बहुत अच्छे-अच्छे बौद्ध लामा योगी हैं। उन सब स्थानों पर हम जा नहीं सकते?

ठाकुर ने कहा– **"पहले इस देश के साधु लोग वहाँ जा सकते थे, किन्तु अब वहाँ जाने का कोई उपाय नहीं है। एक बंगाली बाबू के जाने के बाद से वहाँ पर बड़ी कठिनाई हुई थी। वहाँ कानून निकल गया। अब तिब्बत में अन्य किसी को घुसने का हुकुम नहीं है।"**

पूछा– बंगाली के जाने से क्या अनिष्ट हुआ था?

ठाकुर ने कहा– **"कुछ दिनों पहले छद्म वेश में एक बंगाली बाबू तिब्बत जाकर उस देश की भाषा सीखने लगे और गुप्त रूप से उस देश का नक्शा अंकित करने लगे। फिर अन्त में पकड़े जाने पर वे अपने देश लौट नहीं पाएँगे, राजा का ऐसा आदेश हुआ। बंगाली बाबू ने राजा के पण्डित की शरण ली एवं जिससे अपने देश लौट पाएँ, ऐसी व्यवस्था कर देने के लिए उनसे प्रार्थना की। विपत्ति में पड़े शरणागत का परित्याग नहीं करना चाहिए सोचकर पण्डितजी ने उनको आश्रय दिया। फिर पण्डितजी के कथनानुसार उन्होंने शपथ ली कि देश में जाकर वह भाषा वे अन्य किसी को नहीं सिखाएँगे और तिब्बत के रास्ते आदि की जानकारी भी किसी को नहीं देंगे। राजपण्डित बड़े धार्मिक व्यक्ति थे। उन्होंने उस बात पर विश्वास करके, उस बंगाली बाबू को कन्धे पर**

उठाकर गहन रात्रि के समय पहाड़ी रास्ते से लगभग चार-पाँच कोस चलकर एक निरापद् स्थान पर पहुँचा दिया। बाबू ने कोलकाता आते ही सब प्रकट कर दिया एवं तिब्बती भाषा भी सीखाने लगे। इस बात का क्रमशः तिब्बत में प्रचार होने से वहाँ के राजा ने उस पण्डित को भयानक दण्ड दिया। एक चमड़े के भीतर उनको भरकर चारों ओर से सिलाई करके नदी में डुबवा दिया। एक लामा-गुरु ने कुछ दिन पूर्व मुझे ये सब बातें बतलाई। उन्होंने यह भी कहा– 'राजा यदि हमारे जैसे दस हजार लोगों का सिर लेकर भी योगीश्रेष्ठ पण्डितजी को छोड़ देते, तो देश के सब लोग उससे प्रसन्न होते। गुरुजी सभी विषयों में सर्वश्रेष्ठ थे, राजा भी उनका बड़ा सम्मान एवं पूजन करते थे; लेकिन इस प्रकार कठोर शासन नहीं होने से देश की रक्षा करना बड़ा कठिन होगा, सोचकर उन्होंने देश के प्रधान व्यक्ति को इस प्रकार मृत्यु-दण्ड दिया। वह लामा-साधु बारम्बार 'बेईमान बंगाली, बेईमान बंगाली' कहने लगा। फिर बंगाली लोगों के ऊपर तिब्बती लोगों को अब विश्वास नहीं रहा– वे सभी अब 'बेईमान बंगाली' ही कहते हैं।"

माता ठाकुरानी का योगैश्वर्य और आकांक्षा

श्रीवृन्दावन में आकर माता ठाकुरानी के असाधारण कार्यों को देखकर आश्चर्य हो रहा है। ये सब घटनाएँ किस प्रकार घट रही हैं, कुछ भी समझ नहीं पा रहा हूँ। माता ठाकुरानी ने आकर हम लोगों के आहारादि का समस्त भार स्वयं ग्रहण कर लिया है। हम इतने लोगों को जब जिस वस्तु की आवश्यकता होती है, वह न बतलाने पर भी, माता ठाकुरानी स्वयं उसे समझकर जुगाड़ कर देती हैं। रुपया-पैसा पहले जैसा आता था, अब भी ठीक उसी प्रकार आ रहा है; फिर भी हम लोगों को किसी वस्तु का अभाव नहीं है। भण्डारघर सर्वदा ही वस्तुओं से भरा रहता है। प्रतिदिन हम नौ-दस लोग दोनों समय भोजन किया करते हैं, उसके अतिरिक्त कुंज में निमन्त्रणादि का कार्य भी दो-तीन दिन के अन्तर में चलता है– माता ठाकुरानी एक छोटे 'पतीले' में केवल एक बार चावल पकाती हैं; उस पात्र में एक सेर से अधिक चावल समाता नहीं। दाल, तरकारी आदि पाँच-छः प्रकार के व्यंजन एक छोटी कढ़ाही में बना लिया करती हैं। पात्र छोटा होने पर भी एक ही वस्तु को दुबारा बनाना, माता ठाकुरानी का नियम नहीं है। कभी-कभी जब हम 15-20 लोग भोजन के लिए पहुँच जाते हैं एवं अतिरिक्त लोगों का भोजन के लिए निमन्त्रण होता है, तब भी माताजी नियमित परिमाण से अधिक रसोई नहीं बनातीं। रसोई हो जाने पर दाऊजी को भोग लगाती हैं; भोग लग जाने के बाद सारा

प्रसाद रसोईघर में रखा जाता है। रसोईघर में ही हम लोग भोजन करते हैं। आश्चर्य का विषय यह है कि केवल एक छोटे पतीले के प्रसाद एवं निर्दिष्ट परिमाण के व्यंजनादि द्वारा हम जितने भी लोग उपस्थित क्यों न रहें, माता ठाकुरानी अपने हाथ से परिवेषण करके सभी को तृप्तिपूर्वक भरपेट भोजन करा दिया करती हैं। सबका भोजन हो जाने पर माताजी एवं कुतु प्रसाद पाती हैं। अतिरिक्त भात एवं तरकारी आदि का जुगाड़ कहाँ से किस प्रकार होता है, समझ में नहीं आता। यह आश्चर्यजनक घटना प्रतिदिन ही यहाँ होती है। दाल, तरकारी आदि सभी व्यंजन का स्वाद भी एक नये प्रकार का देखता हूँ; इस प्रकार का स्वादिष्ट व्यंजन जीवन में और कभी कहीं खाया हूँ, ऐसा स्मरण में नहीं आता। कुतुबुड़ी भोग की रसोई के समय माता ठाकुरानी की सहायता किया करती हैं। उस समय हम लोगों को उस ओर जाने का हुकुम नहीं है। रसोई का सारा जुगाड़ करके भात और पाँच-सात प्रकार के व्यंजन बना लेने में माता ठाकुरानी को दो-तीन घण्टे से अधिक समय किसी दिन भी नहीं लगता। किस कौशल से माता ठाकुरानी यह सब कार्य शृंखलाबद्ध रूप से जो पूर्ण किया करती हैं, विभिन्न प्रकार से जाँच-पड़ताल करके भी उसे कुछ समझ नहीं पाया। एक दिन मध्याह्न में भोजन के बाद हरिवंश का पाठ करके मैं माता ठाकुरानी के कमरे में जाकर बैठ गया। माता ठाकुरानी ने मुझसे कहा– 'कुलदा, लगता है, शीघ्र ही तुम्हें गाँव जाना होगा। गाँव जाकर माँ की अच्छे-से सेवा करना।' माता ठाकुरानी की बात सुनकर मैं चौंक उठा। पूछा– 'मुझे गाँव जाना होगा, क्या आप यह स्पष्ट देखकर कह रही हैं?' माता ठाकुरानी ने कहा– 'क्यों? गाँव जाने की तुम्हारी इच्छा नहीं होती? गाँव जाने से तुम्हारा भला होगा।' मैंने कहा– माँ, आपके विषय में तो मैं कुछ नहीं जानता। अपनी अवस्था की दो-एक घटना मुझे बताइए न। आप कृपण के समान सब छिपाकर क्यों रखती हैं? माताजी ने कहा– 'तुमको एक बात कहती हूँ, यदि धर्म-जगत् में बड़े व्यक्ति बनना चाहते हो, धनी होना चाहते हो, तो कृपण बनो। अपनी कोई भी अवस्था किसी को मत बतलाना, बतलाने से फिर वह नहीं रहती।'

मैंने पूछा– भविष्य की सब घटनाएँ क्या आपके सामने प्रकट होती हैं?

माता ठाकुरानी– होंगी क्यों नहीं? फिर सभी क्या प्रकट होती हैं? दूर की विशेष-विशेष घटनाओं का पता चल जाता है; और आने वाले पाँच-सात दिनों की घटनाएँ सदा ही ज्ञात रहती हैं।

मैं– साधना के समय आपको दर्शनादि नहीं होते? कभी समाधि होती है?

माता ठाकुरानी– साधन-भजन करती कहाँ हूँ? दिन का समय तो सेवा के काम-काज में बीत जाता है। मध्याह्न में समय मिलने पर थोड़ा विश्राम करती हूँ। संध्या का समय भी विग्रह-दर्शन में ही निकल जाता है, केवल रात्रि में बैठती हूँ।

तब दर्शन भी होता है। कभी-कभी इच्छा होती है, समाधि लेकर पड़ी रहूँ, फिर वह इच्छा होती नहीं; समाधि की अपेक्षा इस प्रकार से सेवा का कार्य करके दिन बिता देना ही अच्छा है।

इस प्रकार कई बातें कहने के बाद माताजी ने मुझसे अपने-आप ही कहा– 'भविष्य में किसकी क्या दशा होगी, वह तो इस समय कहा नहीं जा सकता। इसलिए तुमको कुछ बातें कह रही हूँ, ध्यान रखना। माँ के लिए मुझे बड़ा कष्ट होता है। माँ बड़ी दुःखी हैं। वे सदैव मेरे ही भरोसे रही हैं। कितना कष्ट पाई हैं। एक दिन के लिए भी वे सुखी नहीं हो सकीं। भविष्य में माँ के भाग्य में क्या है, कह नहीं सकते। माँ को देखना; वृद्धावस्था में किसी के लिए भारस्वरूप न हो। मॉ यदि किसी तीर्थ में जाकर रहना चाहे तो चार-पाँच रुपये मासिक की व्यवस्था कर देना और उनको खूब सान्त्वना देना।'

मैंने कहा– नानीजी के लिए आप चिन्ता न करें। किसी समय भी उन्हें कष्ट नहीं होगा। अन्ततः भिक्षा करके मैं नानीजी का अभाव दूर करूँगा।

माता ठाकुरानी ने फिर कहा– 'तुम्हें और एक काम करना होगा। शान्तिसुधा गर्भवती है। मैं उसको छोड़कर आ गई हूँ। माँ के साथ उसका वैसा प्रेमभाव नहीं है। शान्ति का दिमाग भी स्वस्थ नहीं है। गर्भावस्था में यदि सदा मानसिक कष्ट पाए, तो गर्भस्थ सन्तान का अनिष्ट होगा। तुम शान्ति को मेरी ओर से एक पत्र लिख दो। मेरा जो कुछ है, सभी शान्ति का है। गेण्डारिया-आश्रम शान्ति का ही है, जिससे शान्ति वहीं पर निश्चिन्त होकर रहे।'

माता ठाकुरानी के आदेशानुसार उनके नाम से मैंने तुरन्त श्रीमती शान्तिसुधा को पत्र लिखा। उन्होंने उस पर हस्ताक्षर कर दिया। माता ठाकुरानी की ये सब बातें सुनकर मुझे नाना प्रकार की दुश्चिन्ता होने लगी। ठाकुर ने कहा था कि माताजी को अब गेण्डारिया नहीं लौटाया जा सकता। उस बात का भी मुझे इस समय स्मरण हुआ। सोचा, यदि माता ठाकुरानी शीघ्र ही देह त्याग करेंगी, तो मैं उनकी कोई सेवा कर ही नहीं पाया।

मैंने माताजी से पूछा– माँ, आपकी बातें सुनकर मुझे नाना प्रकार की आशंका होती है। आपके मन में किसी प्रकार की कुछ आकांक्षा है या नहीं, जानने की इच्छा है।

माताजी ने कहा– 'कुतु का विवाह हिन्दू समाज में हो और योगजीवन समाज में सम्मिलित हो, मेरी यही दो आकांक्षाएँ हैं। फिर 'गोस्वामीजी महाराज' महाभारत पढ़ना चाह रहे थे, उनको एक महाभारत देने की इच्छा होती है। कुतु बच्ची है, ब्रजमाइयों के समान उसके पैरों में एक जोड़ा पायल देने से अच्छा होता।

मेरी और कोई वासना नहीं है।'

माता ठाकुरानी कुतु के विवाह के लिए थोड़ा व्याकुल हैं, उनकी बातों से लगता है। उन्होंने इस सम्बन्ध में मुझसे और भी कई बातें कही।

स्वप्न में भूत का उपद्रव

7 अगस्त, गुरुवार। आज अवसर पाकर रात के एक भयानक स्वप्न का वृत्तान्त ठाकुर को बतलाया। 'रात्रि में लगभग ढाई बजे देखा, मैं आसान पर बैठकर नाम-जप कर रहा हूँ, अचानक एक विशाल आकृति का भूत मेरे सामने आ गया। वह विभिन्न प्रकार से डराकर मुझे साधना से विरत करने का प्रयास करने लगा। मैं डर के कारण बीच-बीच में काँपने लगा; लेकिन नाम-जप छोड़ते ही विपत्ति में फँसना पड़ेगा सोचकर बड़ी दृढ़ता के साथ नाम-जप करने लगा। तब उस भूत ने एक विशाल खड्ग हाथ में लेकर मुझे काट डालने का भय दिखाते हुए कहा– 'वह नाम लेगा, वह साधना करेगा तो तेरे को काटकर टुकड़े-टुकडे कर दूँगा। शीघ्र उस साधना को छोड़ दे।' मैं भूत का वह विशाल आकार एवं भयंकर आक्रोश देखकर बहुत घबरा गया। तब अचानक मुझे स्मरण हुआ, गुरुदेव ने कहा है– **'स्थिर भाव से साधना करने, नाम-जप करने से फिर कोई थोड़ी भी बाधा नहीं दे सकता।'** इस बात का स्मरण होते ही भूत की ओर दृष्टि रखकर मैं नाम-जप करने लगा। तब भूत मेरी ओर बढ़ न सका। 'नाम-जप छोड़, नाम-जप छोड़' कहकर चीखने लगा। फिर छटपटाते हुए वह सीधे भागकर अदृश्य हो गया। मैं भी नाम-जप करते-करते जाग उठा।' स्वप्न का विवरण सुनकर ठाकुर ने कहा– **"ये क्या, यह तो कुछ भी नहीं है! जिस पथ पर चले हो– कितने बाघ, साँप, कितने भूत-प्रेत, कितने देवी-देवता आकर बाधा देंगे। सब साधना छुड़ाने का प्रयास करेंगे। बहुत सावधान रहना, कभी किसी प्रकार भी नाम-जप छोड़ना नहीं। नाम-जप करने से ही वे सब उत्पात दूर होंगे। नाम-जप छोड़ने के लिए अनेक लोग ही कहेंगे।"**

प्रकृति का रोग: कर्म ही धर्म है

मैंने पूछा– हरिवंश-पाठ शेष हो जाने के बाद अब और कौन-कौन-सा ग्रन्थ पढूँगा?

ठाकुर ने कहा– **"महाभारत आरम्भ से अन्त तक अच्छे-से पढ़ो। उद्योगपर्व, शान्तिपर्व एवं अश्वमेधपर्व को बड़े ध्यान से पढ़ना। भागवत का एकादश और द्वादश स्कन्ध एवं तृतीय स्कन्ध पढ़ना। ये सब पढ़ने**

के बाद रामायण और योगवाशिष्ठ पढ़ सकते हो। अन्य कोई पुराणादि का पाठ अभी मत करना। इन कुछ ग्रन्थों को पढ़ लेना ही पर्याप्त है।"

मैंने कहा— जिसकी कभी कल्पना नहीं की थी, ऐसी श्रेष्ठ अवस्था में आपने मुझे रखा है। काम-क्रोधादि के नाम की गन्ध भी मेरे भीतर है, पता नहीं चलता; परन्तु आपका साथ छूटने पर कितने प्रकार की परीक्षा-प्रलोभन में पड़ सकता हूँ! तब मेरे ब्रह्मचर्य की किस प्रकार रक्षा होगी?

ठाकुर ने कहा— **"परीक्षा-प्रलोभन में भले ही पड़ो। उसके लिए तुम्हें चिन्ता क्यों है? जहाँ भी रहो, ब्रह्मचर्य के नियम का प्रतिपालन करके चलने का प्रयास करो। उससे ही सब ठीक होने लगेगा। काम, क्रोध ये सब तो मनुष्य की प्रकृति नहीं है— ये सब मनुष्य की प्रकृति के रोग हैं। रोग होने से जिस प्रकार औषधि का सेवन आवश्यक है, उसी प्रकार इन सब उत्पातों के प्रतिकार के लिए ब्रह्मचर्य आवश्यक है। शरीर के रस से ही ये सब नाना प्रकार के विकारों की उत्पत्ति होती है। इसलिए शरीर के रस को घटा लेना चाहिए। रस को कम करने के लिए आहार के सम्बन्ध में बहुत सावधान रहना पड़ता है। इन सब विषयों में जितना हो सकता है प्रयास करो, क्रमशः सब ठीक होने लगेगा।"**

इसके बाद ठाकुर से धर्म-कर्म, पाप-पुण्य एवं वैराग्य के सम्बन्ध में पूछा। उसके उत्तर में ठाकुर ने संक्षेप में कहा— **"जो कर्म धर्म-प्राप्ति के अनुकूल है, उसे ही करना चाहिए। धर्म के प्रतिकूल कर्म करना ही पाप है। मनुष्य चाहे तो दो दिन की साधना से हो सकता है पाप को दूर कर भी ले; मनुष्य में पाप छोड़ने की क्षमता है, किन्तु कर्म छोड़ने की क्षमता नहीं है। कर्म करके ही कर्म क्षय करना पड़ता है। कर्म किए बिना किसी का भी उद्धार नहीं होता। कर्म धर्म के बाहर का विषय नहीं है, कर्म ही धर्म है। धर्म-कर्म की अतीत अवस्था बहुत दूर की बात है। वैराग्य का अर्थ यह नहीं है कि काम-काज छोड़ दिया, भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह कर लिया। सभी विषयों से इन सब इन्द्रियों का सम्पूर्ण रूप से निवृत्त होना ही वैराग्य है। विषयों में अनासक्ति होने पर ही समझना कि वैराग्य हुआ है। कर्म किए बिना वैराग्य नहीं होता। तुम लोग निश्चित रूप से जान लो; जितना ही क्यों न करो, कर्म जिसका जितना है, आज हो, कल हो चाहे दो दिन बाद हो, एक दिन करना ही होगा। उसको किए बिना किसी प्रकार से छुटकारा नहीं मिलेगा। एकमात्र भगवान् की कृपा से ही क्षणभर के भीतर सब समाप्त हो सकता है, अन्यथा बलपूर्वक कर्म त्यागने का सामर्थ्य किसका है?"**

मातृ-सेवा एवं भ्रातृ-सेवा का आदेश

ठाकुर की बातें सुनकर मैं भयभीत हो गया। कितने कर्म का बोझ मेरे भाग्य में है, कुछ भी तो नहीं जानता। शीघ्र ही उन सबको दूर किए बिना किसी भी प्रकार से स्थिर नहीं हो पाऊँगा; निश्चिन्त होकर साधन-भजन, भगवान् का नाम कुछ कर नहीं पाऊँगा। गुरुदेव तो मेरा सब जानते ही हैं। मेरा क्या-क्या कर्म है, उनसे स्पष्ट पूछकर उसे समाप्त कर डालूँगा। ऐसा सोचकर मैंने ठाकुर से कहा– मेरा जो कर्म है, मैं तो वह जानता नहीं। आप मुझे स्पष्ट रूप से बतला दीजिए, मैं बड़े उत्साह के साथ वही करूँगा। सतीश को मातृ-सेवा करने के लिए प्रतिदिन तो कहते हैं; स्वामीजी को भी कर्म करने हेतु कितना कहते हैं, लेकिन उन लोगों की वैसी मति नहीं होती। इस प्रकार की दुर्मति बाद में मेरी भी तो हो सकती है। इसलिए आप स्पष्ट रूप से बतला दीजिए, मुझे क्या करना होगा?

ठाकुर ने कहा– **"तुम्हारा कर्म मातृ-सेवा ही है। उसे कर लेने से सब ठीक हो जाएगा। नियम के अनुसार ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए अभी जाकर माँ की सेवा करो। उससे ही सब ठीक होगा। कुछ समय माँ की सेवा करने से ही समझ जाओगे कि उससे कितना उपकार होता है? तुम्हें नौकरी करके अर्थोपार्जन की चेष्टा या गृहस्थी नहीं करनी होगी। माता की सेवा कर लेने से ही तुम्हारे सब कर्म कट जाएँगे।"**

मैंने कहा– मेरी सेवा से माँ सन्तुष्ट होकर, यदि मुझे धर्म-प्राप्ति के लिए आशीर्वाद देकर छोड़ देती हैं, तब फिर आपके साथ रह पाऊँगा तो?

ठाकुर ने कहा– **"सेवा से सन्तुष्ट होकर माँ तुम्हें छोड़ देती हैं, तो उनकी अनुमति लेकर सहज में हमारे साथ रहना। वह सब हो जाएगा। अभी जाकर खूब भक्ति के साथ माँ की सेवा करो।"**

ठीक इसी समय दस रुपये के एक मनी-आर्डर पर मेरे हस्ताक्षर करवाने के लिए पोस्टमैन मुझे पुकारने लगा। हस्ताक्षर करके मैंने दस रुपये ले लिए। देखा, फैजाबाद से बड़े भैया ने ये रुपये भेजे हैं। अचानक वे इस समय मुझे रुपये क्यों भेजे, समझ में नहीं आया। ठाकुर से यह बात कहते ही उन्होंने कहा– **"अभी तुम यहाँ से अपने भैया के पास चले जाओ। कुछ दिन वहाँ उनकी सेवा करो। सन्तुष्ट होकर वे अनुमति दें, तो घर जाकर माँ की सेवा करना। सेवा द्वारा सब गुरुजनों को सन्तुष्ट करके उनकी अनुमति और आशीर्वाद लेकर फिर धर्म के पथ पर चलना चाहिए। ऐसा होने से सहज में इस पथ पर चल सकते हैं। गुरुजन और आत्मीयजन में यदि एक व्यक्ति भी विरोधी हो, तो धर्म पथ में अनेक विघ्न आते हैं।"**

इन सब बातों के बाद ठाकुर ने मुझे कांगाल फिकिर के 'ब्रह्माण्डवेद' का पाठ करने के लिए कहा। कांगाल ने ठाकुर की दीक्षा और हम लोगों की साधना में शक्ति-संचार के कुछ-कुछ प्रसंग को इस पत्रिका में जगह-जगह पर लिखा है। ठाकुर के कहने पर मैं उसे पढ़कर सुनाने लगा।

कांगाल के ब्रह्माण्डवेद में ठाकुर की दीक्षा और शक्ति-संचार की बातें

कांगाल का ब्रह्माण्डवेद, प्रथम भाग, पृष्ठ– 392। "23 जनवरी, सन् 1885 ई॰ को प्रातःकाल पण्डित विजयकृष्ण महोदय ने जिस समय कोलकाता के साधारण ब्राह्म-समाज की वेदी का कार्य सम्पादन किया, उस समय ऐसा एक दृश्य प्रकाशित हुआ था; तब अनेक लोग 'माँ माँ' करते हुए उच्च स्वर में रो पड़े थे। इस दृश्य में मोहम्मद नानक देव का हाथ पकड़कर, फिर नानक अन्य भक्तों के साथ गले मिलकर 'एकमेवाद्वितीयम्' का कीर्तन करते हुए भावावेश में नाचे थे। महात्मा राजा राममोहन राय भी वहाँ उपस्थित थे। उसके अगले वर्ष 23 जनवरी, 1886 ई॰ को प्रातः विजयकृष्ण महोदय ढाका के साधारण ब्राह्म-समाज की वेदी में उपासना कर रहे थे, तब उसी प्रकार का एक आध्यात्मिक दृश्य प्रकाशित हुआ। सन् 1886 ई॰ के अप्रैल महीने में रंगपुर काकिनिया के जमींदार कुमार महिमारंजन राय ने जिस समय वहाँ ब्राह्म-मन्दिर की प्रतिष्ठा की एवं जिस दिन विजयकृष्ण गोस्वामीजी ने प्रातः वेदी का कार्य सम्पादन किया, उस दिन भी उस प्रकार का एक दृश्य पुनः प्रकाशित हुआ था; लेकिन वह पहले के समान स्पष्ट नहीं दिखा।"

कांगाल का ब्रह्माण्डवेद, द्वितीय भाग, पृष्ठ– 243। "असाम्प्रदायिक धार्मिक-प्रवर श्रीमत् विजयकृष्ण गोस्वामी ने कहा कि वे किसी समय पर्वतवासी कुछ योगियों के साथ भेंट करने गए थे। उनके पथ-प्रदर्शक एक मद्रासी व्यक्ति भी साथ में थे। पर्वत के पास पहुँचते ही, ललाट आदि स्थानों में सिन्दुर लगाए हुए एक भीषणमूर्ति भैरव ने उन लोगों को आगे आने से रोकने के लिए पत्थर फेंकना आरम्भ किया। भैरव के इस व्यवहार से मद्रासी तो जातीय तेज से गरम हो उठे। गोस्वामीजी ने उनको रोककर कहा, 'गरम होने से काम नहीं होगा। मैं इसका उपाय करता हूँ।' उसके बाद भैरव के थोड़ा अन्यमनस्क होने से गोस्वामीजी शीघ्रता से जाकर उनके दोनों पैर पकड़ लिए। भैरव ने हँसते हुए कहा, 'तुम लोग समझ रहे हो मैं बड़ा पाखण्डी और निर्दयी हूँ, वास्तव में वैसा नहीं है। इस पर्वत में जो कुछ एक योगी रहते हैं, वे लोग सिद्ध-पुरुष हैं। मैं उन लोगों की सेवा के लिए नियुक्त हूँ। विषयी लोग विषय का शुभ-अशुभ जानने के लिए उन्हें सदैव विरक्त करते हैं।

इससे साधना में विघ्न पड़ता है। इस कारण वे लोग अब सुरंग के पथ से पर्वत के भीतरी भाग में चले गए है। धर्म-जिज्ञासुओं के लिए वहाँ जाना निषिद्ध नहीं है। कौन धर्म-जिज्ञासु हैं और कौन विषयी, मैं पत्थर फेंक-फेंककर उनकी परीक्षा लिया करता हूँ। विषयी होने से भयभीत होकर चले जाएँगे और यथार्थ धर्म-जिज्ञासु होने से तुम लोगों के समान उद्देश्य को नहीं छोड़ेंगे। यदि इच्छा हो तो मेरे साथ चलो, योगीजनों को देख सकोगे; लेकिन वहाँ पानी नहीं है, यहीं पर कुछ खाकर झरने से पानी पी लो।' यह कहकर उस भैरव ने नर-कपाल में नर-मांस लाकर उन लोगों को खाने के लिए दिया। 'मैं किसी प्रकार का मांस नहीं खाता' कहकर गोस्वामीजी ने उसे छोड़ दिया। इससे भैरव ने विरक्त होकर उन लोगों के प्रति घृणा का भाव दिखलाया; किन्तु मार्ग-दर्शक बनकर उन्हें योगियों के पास ले गया। गोस्वामीजी सुरंग के मार्ग में लेटकर कोहनी के बल चलते हुए बड़े कष्ट से योगियों के पास पहुँचे और उन लोगों को प्रणाम करके उन्होंने देखा, वह स्थान बिना छत का एक दरवाजे वाले कोठे की भाँति है; अर्थात् चारों ओर दीवाल के समान चट्टानें हैं, बीच का स्थान अति सुन्दर स्वच्छ एवं वृक्ष-लता से सुशोभित है। उन योगियों में से एक ने गोस्वामीजी से पूछे बिना ही भैरव को डाँटते हुए कहा-- 'तुमने अघोरपन्थी का पथ अवलम्बन किया है, अतएव नर-मांस तुम्हारा खाद्य है; लेकिन अन्य पथावलम्बियों का जो खाद्य नहीं है, उनको तुमने वह क्यों दिया? इससे तुम्हारी विचित्र निर्लज्जता दिखाई पड़ती है। तुम क्या सोचते हो, अघोरपन्थी न होने से कोई सिद्ध नहीं हो सकता? यह तुम्हारी बहुत बड़ी भूल है। पथ कुछ नहीं है, केवल उपाय है। सिद्धि प्राप्त करना अलग बात है। हम जो चार लोग यहाँ पर हैं, सभी ने क्या एक ही पथ का अवलम्बन करके साधना की थी? कोई वैष्णव, कोई अन्य प्रणाली का अवलम्बन करके साधना करने में प्रवृत्त हुए थे। अब सभी का पथ और उद्देश्य एक है। अतः इस समय अन्य कोई प्रणाली नहीं है।' गोस्वामीजी ने योगियों से जो कुछ पूछने का विचार किया था, भैरव को दी गई चेतावनी के रूप में ही योगीवर ने उस प्रश्न का उत्तर दे दिया। योगी लोग बाहरी दोनों नेत्र की भाँति जो ललाट के भीतर तृतीय नेत्र से सब कुछ जान सकते हैं, देख पाते हैं, यह घटना उस बात की पुष्टि करती है। उसके बाद योगियों ने गोस्वामीजी के साथ जिस प्रकार की बातचीत की, उसमें उन्होंने पृथ्वी के भिन्न-भिन्न देशों की भिन्न-भिन्न घटनाएँ कही। गोस्वामीजी को संवाद-पत्र पढ़कर जो ज्ञात हुआ था एवं लोक-परम्परा से उन्होंने जो सुना था, उसके साथ उन समस्त बातों का मेल देखकर गोस्वामीजी चकित हो गए। घने वनाच्छादित पहाड़ी क्षेत्र में संवाद-पत्र तो दूर रहा, सांसारिक लोगों का भी आवागमन नहीं है। विशेषकर, पृथ्वी के सब देशों का इतिहास और वर्तमान घटनाओं का संवाद पाठक

जिससे अवगत नहीं हैं, योगीगण उसे जानते हैं; यह जो दिव्य-दृष्टि का फल है, उसे कौन अस्वीकार कर सकता है?"

ठाकुर से पूछा– भैरव जब पत्थर फेंकने लगे, आप लोगों ने क्या किया? वह क्या आप लोगों के शरीर में लगा था?

ठाकुर– **भैरव भयंकर चिल्लाते हुए गाली देकर पत्थर फेंकने लगे, तब साथ के ब्रह्मसमाजी मित्र तो दौड़कर भाग गए। पत्थर मेरे शरीर पर पड़ने लगे। पैर में एक ही स्थान पर दो पत्थर पड़ने से चोट लगकर झर-झर रक्त बहने लगा। मैं पैर को झटकारकर उसी स्थान से हाथ जोड़कर भैरव की ओर एकटक देखता रहा। भैरव तब चकित होकर मेरी ओर देखते रहे। उसी अवसर में दौड़कर मैं उनके पैरों पर गिर पड़ा। तब वे आदरपूर्वक मुझे पकड़कर पहाड़ के एक निर्जन स्थान पर ले गए। वहाँ पर भैरव ने मुझे एक जले हुए हाथ की हथेली लाकर खाने के लिए देते हुए कहा, 'महाप्रसाद लीजिए'। हाथ की हथेली उन लोगों के लिए बड़े सम्मान का आहार है। मैं मांस नहीं खाता कहकर उसका परित्याग कर दिया तो वे बड़े दुःखी हुए। फिर मुझे महापुरुषों के पास ले गए। देखा, एक कमरे के चार कोने में चार महात्मा समाधि लगाकर बैठे हैं। उनमें से एक महात्मा पहले आचारी थे, एक अघोरी, एक कापाली और एक महात्मा नानकपन्थी थे। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध पथावलम्बी थे। गया के गम्भीरनाथजी भी उनमें से एक थे। वे सभी एक ही स्थान पर शान्तिपूर्वक परमानन्द से हैं। उन लोगों के साथ अनेक विषयों में बातचीत हुई।**

मैं ठाकुर के कहने पर ब्रह्माण्डवेद तृतीय भाग के 178 पृष्ठ में ठाकुर की दीक्षा के विषय में कांगाल का लेख पढ़ने लगा।

कांगाल का ब्रह्माण्डवेद, तृतीय भाग, पृष्ठ– 178। "बहुतों को स्मरण होगा, किसी समय खूब चर्चा उठी थी, असाम्प्रदायिक धार्मिक-प्रवर पण्डित विजयकृष्ण गोस्वामी संसार-धर्म त्यागकर संन्यासी हो गए हैं। ऐसा कहना बिल्कुल निराधार नहीं है। गोस्वामीजी ने दार्जिलिंग के वनाच्छादित प्रान्त में षट्चक्रभेदी किसी योगी का साधन देखकर उनके पास बैठकर चर्चा की थी; बाद में उनके नर्मदा के किनारे अवस्थित गुरुदेव के दर्शन करने हेतु अपने आत्मीयजनों से विदा माँग ली थी। घटनावश वे वहाँ न जाकर गयाधाम में स्थित ब्रह्मयोनि पर्वत पर पहुँचे एवं वहाँ के वैष्णव महन्त से उन्होंने साधन की शिक्षा लेनी चाही। इस समय उन्होंने विलास-वेश त्यागकर संन्यासी वेश में वहाँ के आश्रम के महन्त परमहंस से लगभग

नौ महीने तक अनुष्ठान के साथ ज्ञान, योग, भक्ति और कर्म की पद्धति सीखी थी। इतना करके भी अपने साधन के धन को हृदयमन्दिर में न देख पाने से इस प्रकार व्याकुल हो गए थे कि वे एक निर्जन वन में अचेत अवस्था में कुछ दिन पड़े रहे। उसके बाद लगातार स्पर्श के अनुभव से जागने पर उन्होंने देखा, एक परमहंस की गोद में लेटे हैं। प्रकृतिस्थ होने पर गोद से उतरकर उस अपरिचित परमहंस को प्रणाम करके उनके चरणों में गिर पड़े एवं प्रार्थना की, 'आप मुझे अपने आश्रम में ले चलिए, मैं जिससे साधन के धन को हृदय में देख सकूँ, वैसा उपदेश दीजिए; मैं अब गृहस्थाश्रम में नहीं लौटूँगा।' परमहंसप्रवर ने कहा– 'वत्स! शान्त होकर हमारी बात सुनो, तुम्हारी पत्नी, पुत्र, कन्या एवं अनाथ सास तुम्हारे ही आश्रित हैं; उनका त्याग करने से तुम दोषी होगे और कुछ भी साधन नहीं कर पाओगे।' गोस्वामीजी के स्त्री-पुत्र आदि हैं, सम्पूर्ण अपरिचित बहुत दूर स्थित निर्जन पर्वतवासी उसे किस प्रकार जान गए! गोस्वामीजी इस कारण विस्मयपूर्ण दृष्टि से उनके मुख की ओर देखते रह गए। फिर पुनः एक अन्य बात सुनकर और भी चकित हो गए, जब परमहंस ने हास्यपूर्वक कहा, 'वत्स! तुम कुछ लोगों ने मिलकर एक घर को 'उजाड़' दिया है; घर को पुनः आच्छादित कर सके, ऐसा एक भी व्यक्ति तुम लोगों के बीच नहीं देख पा रहा हूँ। जैसा उजाड़े हो, वैसे ही छाने का उपाय करो; अन्यथा ईश्वर के समक्ष अपराधी होगे।' गोस्वामीजी ने परमहंसजी के रहस्यमय उपदेश का तात्पर्य समझकर, उनके चरण पकड़कर कातर स्वर में कहा, 'भगवान्! मुझमें थोड़ा भी वह सामर्थ्य नहीं है। योग्यता प्राप्त करने के लिए ही इतने दिन आश्रम में वास किया और अब आपका अनुगामी होना चाहता हूँ।' परमहंसदेव ने कहा, 'मैं मानससरोवरवासी योगी हूँ, तुम्हारे वैराग्य के बारे में जानकर तिब्बत छोड़कर इस गयाधाम में आया हूँ, अब डर नहीं है। मैं जो उपदेश दे रहा हूँ, वह कार्य में परिणत हो जाने से घर जैसा था, नये आच्छादन से पुनः वैसा ही हो जाएगा।' उन्होंने यह बात कहकर ज्ञान, योग और भक्ति साधना के लिए उपयोगी सहज प्राणायाम सिखला दिया एवं कहा, 'मैं आज से तुम्हारी साधना में सहायक हो गया हूँ। जो किसी भी देश में किसी भी साधन पद्धति का अवलम्बन करके साधना करते हैं, मैं उन लोगों की सहायता किया करता हूँ।' इस प्रकार के विविध वार्तालाप के बाद गोस्वामीजी समझ गए, वे सामान्य परमहंस नहीं हैं। उनका जो शरीर दिख रहा है, वह भी जड़मय देह नहीं है। परमहंसप्रवर ने सूक्ष्म शरीर में आकर उन पर कृपा की है। अतएव उनके शिक्षा-साधन को आदरपूर्वक धारणकर अपने विरही पुत्रादि के साथ कोलकाता पहुँचकर कार्यक्षेत्र में लग गए।"

"हम लोगों ने देखा है, विजयकृष्ण गोस्वामीजी जिस पद्धति से प्राणायाम की शिक्षा देकर साधन प्रदान कर रहे हैं, उसमें ज्ञान-साधना के साथ योग और

भक्ति-साधना संयुक्त है। अतएव उक्त साधन-प्रणाली श्रीचैतन्यदेव द्वारा चलाई हुई साधन-प्रणाली के सम्पूर्ण अनुरूप है एवं बहुत ही सहज है और विषयी लोगों के समय के अनुसार आवश्यक है। जो लोग ब्रह्माण्डवेद में प्रदर्शित साधन-प्रणाली को कठिन समझते हैं, वे लोग गोस्वामीजी की प्रणाली का अवलम्बन करके साधना करने से सहज में कृतार्थ हो सकते हैं। हमने उक्त प्रणाली का अवलम्बन करने वाले तीन-चार लोगों को कृतार्थ होते देखा है एवं गोस्वामीजी को उपदेश देने वाले परमहंसप्रवर जो साधनार्थी के सहायक हुआ करते हैं, उसे निःसन्देह रूप से केवल समझा ही नहीं हैं, वरन् कभी-कभी प्रत्यक्ष भी किया है।"

नाना स्थानों से ठाकुर को मन्त्र प्राप्त: विविध साधना परमहंसजी से दीक्षा: तैलंग स्वामी की कथा

ब्रह्माण्डवेद पाठ के बाद ठाकुर से पूछा— आपकी दीक्षा के सम्बन्ध में कांगाल जिस प्रकार लिखे हैं, वह क्या ठीक है?

ठाकुर ने कहा— **"बहुत-कुछ वैसा ही है। फिर कहीं-कहीं गड़बड़ भी है।"**

इसके बाद सतीश, श्रीधर एवं मैंने ठाकुर के साथ बातों-बातों में उनके मन्त्र प्राप्ति और साधनादि के विषय में बहुत-सी बातें पूछी। उत्तर में ठाकुर ने जिस प्रकार कहा, यथासाध्य लिखकर रख रहा हूँ—

ठाकुर कहने लगे— **"बचपन में माताजी के साथ मुझे शिष्यों के घर जाना पड़ता था। हमारी कुल-प्रथा के अनुसार तब माताजी ने ही मुझे मन्त्र दिया था। उपनयन के बाद मैं खूब निष्ठापूर्वक प्रतिदिन संध्या आदि नित्यकर्म किया करता था। कुछ दिनों के बाद पाठशाला में संस्कृत पढ़कर वेदान्त की आलोचना से मैं अद्वैत मत को मानने लगा। मैंने तभी जनेऊ का त्याग कर दिया। चारों ओर हलचल मच गई। माताजी तो आत्महत्या करने के लिए तत्पर हो गईं। क्या करता? माँ की बात मानकर फिर जनेऊ धारण किया। तब तक मैं ब्राह्म-समाज में नहीं गया था। उसके बाद ब्राह्म-समाज में प्रवेश करने से लगा कि उपवीत जातिभेद का चिह्न है, उसे धारण करना बहुत बड़ा अपराध है। तब पुनः जनेऊ त्याग दिया। माताजी को बता दिया— यदि वे इस बार मुझे जनेऊ ग्रहण करने के लिए जिद करेंगी तो मैं आत्महत्या करूँगा। माताजी ने फिर कुछ नहीं कहा। ब्राह्म-समाज में प्रवेश करके रीति के अनुसार उपासनादि करने लगा और विविध स्थानों में ब्राह्मधर्म का**

प्रचार करने लगा। तब मुझे पूरा विश्वास था, जो मेरा व्याख्यान सुनेगा, वही ब्राह्मधर्म ग्रहण करेगा।"

"एक बार जब मैं 13 नम्बर, मिर्जापुर स्ट्रीट (कोलकाता) में था, एक दिन गहन रात्रि में बैठकर उपासना कर रहा था; थोड़ी झपकी लग गई। अचानक दरवाजा खटखटाने का शब्द हुआ। तुरन्त द्वार खोला तो देखा, महाप्रभु का पूरा दल है; कमरा भर गया; बिजली जैसा प्रकाश है। अद्वैत प्रभु ने मुझसे कहा– 'मैं तुम्हारा पूर्वज हूँ, अद्वैत आचार्य। ये नित्यानन्द प्रभु हैं और ये महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य। प्रणाम करो। ये तुम्हें मन्त्र देंगे; स्नान करके आओ।' मैंने तीनों प्रभु को प्रणाम करके बैठने के लिए आसन दिया। फिर छोटे कुँए पर जाकर स्नान करके आ गया। महाप्रभु ने मुझे नाम (मन्त्र) दिया। मैं अचेत हो गया। प्रातःकाल नींद से उठने पर पूरी घटना का स्पष्ट स्मरण होने लगा। सोचा– लगता है, स्वप्न देखा था; किन्तु कमरे में आसन बिछे हुए और कुँए के किनारे भीगे कपड़े देखकर वह संशय दूर हुआ। तब सोचा– मैं कैसा ब्राह्म हूँ, वही परीक्षा लेने के लिए कुछ 'स्पिरिट' आई थीं। तब तो जानता नहीं था, महाप्रभु स्वयं भगवान् हैं। इसलिए वह 'नाम' दबा ही रह गया।"

"ब्राह्मधर्म की पद्धति के अनुसार उपासना करने से मेरे भीतर विभिन्न प्रकार की अवस्थाएँ प्रकट होने लगीं। अप्राकृत सब दर्शन, श्रवणादि होने लगे, परन्तु कुछ भी स्थायी नहीं रहता था। होता था, फिर चला जाता था, ऐसी अवस्था थी। सत्य वस्तु प्रकट होकर फिर चली क्यों जाती है, मुझे यह संशय होने लगा। तब सत्य वस्तु की खोज के लिए बाहर निकला। बहुत घूमा; कहाँ क्या है, देखने के लिए कबीरपन्थी, दाउदपन्थी, गोरखपन्थी, सुन्दरपन्थी, बाउल, दरवेशादि सब सम्प्रदायों के भीतर प्रवेश किया। एक-एक करके उनकी प्रणाली के अनुसार साधना करके, किस सम्प्रदाय में कहाँ तक क्या है, देख लिया; परन्तु किसी प्रकार भी मेरी आकांक्षा पूर्ण नहीं हुई। मैं जो चाहता था, वह कहीं नहीं मिला।"

मैंने पूछा– आपने क्या बाउल सम्प्रदाय के भीतर भी साधना की थी? उनकी साधना किस प्रकार है?

ठाकुर– **वह एक भयानक घटना है। मैं तो संकट में पड़ गया था। बाउल सम्प्रदाय में कई जगह बहुत ही निकृष्ट काम होते हैं। वह फिर मुँह से कहा नहीं जाता। बाउल लोगों के बीच अच्छे-अच्छे लोग भी हैं। वे सभी चन्द्रसिद्धि करते हैं। शुक्र चाँद, शनि चाँद, गरल चाँद, उन्माद**

चाँद, ये चार चाँद सिद्ध हो जाने से ही वे समझते हैं, सब हो गया। शरीर का रक्त, मवाद, मल, मूत्र कुछ भी वे फेंकते नहीं, सब खाते हैं। एक दिन एक बाउल को खूनी आँव (मल) खाते देखकर मैंने बहुत अप्रसन्नता प्रकट की। अखाड़े के महन्त ने सुनकर मुझे धमकाते हुए कहा, 'तुम्हें उन्माद चाँद, गरल चाँद सिद्ध करने हेतु मल-मूत्र खाना होगा।' मैंने कहा, वह मैं नहीं कर सकूँगा। मल-मूत्र खाकर जो धर्म प्राप्त होता है, वह मुझे नहीं चाहिए। महन्त ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा, 'इतने दिन तक तुम हमारे सम्प्रदाय में रहकर हमारा सब जान लिए हो और अब कहते हो साधन नहीं करोगे! तुमको वह सब साधन करना ही होगा।' मैंने कहा, वह कभी नहीं करूँगा! महन्त सुनकर गाली देते-देते मुझे मारने आए; शिष्य लोग भी 'मारो, मारो' कहते हुए आ गए। तब मैंने खूब धमकाते हुए कहा, 'अच्छा, इतना साहस, मारोगे? जानते हो मैं कौन हूँ? मैं शान्तिपुर के अद्वैतवंश का गोस्वामी, मुझसे कहते हो मल-मूत्र खाने?' मेरी धमकी से सभी चौंक गए। महन्त भयभीत होकर, प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभु! आप गोस्वामी सन्तान हैं, अद्वैत प्रभु के वंशज हैं! मैं जानता नहीं था। मुझसे अपराध हुआ है, दया करके क्षमा कीजिए।' मैं तुरन्त वहाँ से चला आया। ऊर्ध्वरेता होना ही उन लोगों के साधन का लक्ष्य है। वैसे लोग भी बाउलों के बीच हैं।

प्रश्न— ब्रह्मोपासना करने से ही जब धीरे-धीरे आपकी सब अवस्थाएँ प्रकट हो रही थीं, तब फिर गुरु की आवश्यकता क्यों समझी?

ठाकुर— **प्रकट होने से क्या होगा? स्थायी तो होती नहीं थीं। एक दिन मछुआबाजार स्ट्रीट (कोलकाता) में एक महापुरुष का दर्शन हुआ। उनको अपनी सारी अवस्था खुलकर बतलाने पर उन्होंने कहा, 'अनेक अवस्थाएँ प्राप्त हो सकती हैं, उससे क्या होता है? रहती तो हैं नहीं। शास्त्रानुसार गुरु से दीक्षा लिए बिना कोई भी अवस्था टिकेगी नहीं।' वे एक दिन अचानक ब्राह्म-समाज में आकर उपासना में सम्मिलित हुए। फिर जाते समय कह गए, 'घर तो अच्छा बना है, किन्तु अलग खूँटे पर है, नींव नहीं है— खड़ा कैसे होगा? गुरु नहीं है; यह कभी टिकेगा नहीं।' मैंने इस महापुरुष के सामने दीक्षा के लिए प्रार्थना की थी। उन्होंने पीठ पर थपकी मारकर आशीर्वाद देते हुए कहा, 'बच्चा, घबराओ मत। गुरु तुम्हारा है, बखत् में मिल जाएगा।' मैं स्थिर न रह सका; विन्ध्याचल में, तिब्बत में, हिमालय में, अनेक स्थानों और पहाड़ों पर गुरु की खोज की। गुरु कहीं नहीं मिले। सभी महापुरुषों ने एक ही बात कही 'गुरु तुम्हारे**

निश्चित हैं, समय पर मिलेंगे।' अन्त में गया में आकाशगंगा पहाड़ पर रघुवर बाबाजी के आश्रम में कुछ दिन रहा। एक दिन उस पहाड़ के ऊपर एक निर्जन स्थान में बैठा था, गुरु नहीं मिले सोचकर निराशा से मन में कष्ट होने के कारण मूर्च्छित हो गया। चेतना लौटने पर देखा, एक महापुरुष की गोद में सिर रखकर लेटा हूँ। वे बड़े स्नेह के साथ मेरे शरीर पर हाथ फेर रहे हैं। मैंने तुरन्त उठकर उनके चरणों में गिरकर प्रणाम करके पूछा, 'आप कौन हैं? यहाँ कब आए?' उन्होंने कहा, 'मैं परमहंस हूँ, मानससरोवर में रहता हूँ। तुम्हारे इस क्लेश की दशा को देखकर तुम्हें दीक्षा देने अभी तुरन्त यहाँ आया हूँ।' मैंने पूछा, 'मानससरोवर से आप इतने शीघ्र किस प्रकार आए?' परमहंसजी ने कहा, 'योगी वैसा कर सकते हैं। योगी लोग देह के पंचभूत को पंचभूत में मिलाकर केवल चैतन्य का अवलम्बन करके जहाँ इच्छा हो, जा सकते हैं; फिर इच्छाशक्ति द्वारा उस पंचभूत को आकर्षित करके पुनः स्थूल देह धारण कर लेते हैं। योगियों में ऐसी क्षमता है। मेरा जो यह स्थूल शरीर देख रहे हो, यह वैसा ही है।' इस प्रकार अनेक बातें होने के बाद उन्होंने मुझे दीक्षा दी।

मैंने पूछा– दीक्षा लेने के बाद क्या किए?

ठाकुर– **दीक्षा ग्रहण करते ही मेरा बाह्यज्ञान लुप्त हो गया था। चेतना आने पर देखा, परमहंसजी नहीं हैं। मुझे भयंकर नशा हुआ था। ठीक से आँखें खोल नहीं पाया। ऊँघती हुई अवस्था में ही किसी प्रकार उतरकर बाबाजी के आश्रम में आया। गुफा के किनारे बेल क़े पेड़ के नीचे एक बड़ी चट्टान पर बैठ गया। 11 दिन 11 रातें एक ही अवस्था में बीत गईं। उस समय बाबाजी ने यत्नपूर्वक मेरी देह की रक्षा की थी। वे मुझे बहुत चाहते थे।**

प्रश्न– तैलंग स्वामी ने भी तो आपको दीक्षा दी थी न?

ठाकुर– **तैलंग स्वामी ने भी मुझे मन्त्र दिया था। यह बहुत पहले की बात है। एक बार काशी में एक महीने रहा था। केदार घाट के पास होमियोपैथी डॉक्टर लोकनाथ बाबू के निवास पर ठहरा था। उन्होंने अपने निवास में रहने के लिए मुझसे बहुत आग्रह किया। मैंने कहा, आप लोगों को बहुत असुविधा होगी। मैं रात-दिन घूमता फिरूँगा; प्रयोजन के अनुसार निवास में आऊँगा। दिन में, रात में कभी एक निर्दिष्ट समय पर भोजन नहीं कर पाऊँगा। फिर मुझे एक कमरे की भी आवश्यकता होगी; उसमें अन्य लोगों के रहने से नहीं चलेगा। लोकनाथ बाबू सब बातों में सहमत होकर अपने निवास पर ही रहने के लिए जिद करने लगे।**

मुझको निर्जन कमरा दिया। मैं रात-दिन इच्छानुसार घूमता-फिरता था; प्रयोजन के अनुसार निवास पर आता था। अधिकांश समय तैलंग स्वामी के पास रहता था। पहले-पहले कुछ दिन उन्होंने मेरी बड़ी परीक्षा ली। शरीर पर कुत्ते की विष्ठा, मैला, कीचड़ मलकर रहते, पास जाने पर वही फेंकते थे। बाद में 'छोड़ेगा नहीं' देखकर बड़ा आदर करते थे, जाते ही अपने पास बैठने के लिए कहते। समय अधिक होने से, 'भूख लगी है या नहीं' संकेत द्वारा पूछते; पास में जो लोग रहते थे, उनसे कुछ खाने की वस्तु लाने के लिए कहते। एक को खाना लाने के लिए इंगित करते ही पाँच-छः लोग दौड़ पड़ते थे। अधिक मात्रा में खाद्य-सामग्री आ जाती; अपनी आवश्यकता के अनुसार ही निकालकर अन्य सब स्वामीजी से खाने के लिए कहता। वे भी मुझसे संकेत द्वारा खाना मुँह में डाल देने को कहते थे। मैं उनके मुँह में कौर दे देता। वे अच्छा खा सकते थे। शरीर अच्छा सबल और स्वस्थ पहलवानों के जैसा था। कभी-कभी वे केदार घाट जाकर गंगा में डुबकी लगाते, फिर सीधे मणिकर्णिका में निकलकर तैरते थे। मैं उस समय गंगा के किनारे-किनारे दौड़ता था।

एक दिन देखा, वे काली मन्दिर में जाकर काली के सामने खड़े होकर मूत्र त्याग कर रहे हैं और उस मूत्र को चुल्लू में ले-लेकर 'गंगोदकम्, गंगोदकम्' कहते-कहते काली के ऊपर ही छिड़क रहे हैं। मैंने पूछा, यह क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा, 'पूजा।' मैंने फिर पूछा, इस पूजा की दक्षिणा क्या है? उत्तर दिए, 'यमालय।' रात्रि में भी कई बार तैलंग स्वामी के पास रहता था। वे मुझे कई प्रकार के अद्‌भुत योगैश्वर्य दिखलाते थे। एक दिन कहा, आप मुझे इतना दिखला रहे हैं, परन्तु मुझे थोड़ा भी विश्वास नहीं होता। कृपा करके मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे विश्वास हो। उन्होंने मुझे स्नान करके आने को कहा। रात्रि के लगभग एक बजे हैं, कड़कती ठण्ड है; मैं तो टाल-मटोल करने लगा! उन्होंने तुरन्त गर्दन पकड़कर मुझे अधर में उठा लिया और झपपट गंगा में डुबाकर निकाल लिया। फिर मेरे सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए उन्होंने कहा, 'विश्वास बन जाए।' आश्चर्य है! उस दिन से फिर सत्य विषय पर मुझे संशय नहीं होता। उन्होंने मुझे मन्त्र देना चाहा। मैंने कहा, मैं आपके पास से मन्त्र कैसे लूँगा? आप साकार उपासक हैं, देखता हूँ, आप सौ बेलपत्ता और गंगाजल शिव के ऊपर चढ़ाते हैं, शिव-पूजा करते हैं; फिर मैं निराकार ब्रह्मोपासक हूँ, मैं आपको गुरु नहीं बनाऊँगा। उन्होंने सावलम्ब और निरवलम्ब उपासना के सम्बन्ध में

अनेक उपदेश दिया। फिर कहा, 'नल राजा को जिस प्रकार सर्प ने डस लिया था, मैं भी उसी प्रकार तुमको थोड़ा स्पर्श कर दे रहा हूँ। इसका गूढ़ तात्पर्य है। मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ; तुम्हारे गुरु निर्दिष्ट हैं, वे ही तुम्हें यथासमय दीक्षा देंगे।' यह कहकर उन्होंने मेरे कान में तीन मन्त्र दिया। एक तो राधाकृष्ण के युगल उपासना का मन्त्र है। यह मन्त्र पहले मुझे मेरी माताजी ने भी दिया था। दूसरा, सर्वदा जप करने के लिए भगवान् का नाम है और एक का संकट में पड़ने पर जप करने को कहा। परमहंसजी से दीक्षा प्राप्ति के बाद जब तैलंग स्वामी से मेरी भेंट हुई, तब लगभग 20 वर्ष पहले की घटना के सम्बन्ध में हाथ की हथेली पर लिखकर उन्होंने पूछा, 'याद है?'

मैंने पूछा– तैलंग स्वामी क्या मौनी थे?

ठाकुर– हाँ; बातें नहीं करते थे, संकेत द्वारा सब बतलाते, कभी-कभी लिख भी देते थे। रात्रि में कई बार वे मेरे साथ बातें किया करते थे। तब उन्होंने अजगर-व्रत नहीं लिया था। अन्त में अजगर-व्रत लेकर सब छोड़ दिया। किसी प्रकार का संकेत भी नहीं करते थे। एक स्थान पर ही बैठे रहते थे। शरीर स्थूल हो गया था; वात हो गया। ऊपर से उन्हें जीवन्त शिव समझकर सब उनके सिर पर दूध, गंगाजल ढालने लगे। भोर 4 बजे से लेकर दिन के 12 बजे तक पौष-माघ की ठण्ड में भी इस जल ढालने के क्रम में विराम नहीं था। देह का धर्म है– अन्त में घाव होकर शरीर गल गया। एक प्रकार से निर्विकार अवस्था में रहकर उन्होंने देह त्याग दी। गंगा में उनको जल-समाधि दी गई।

—: 0 :—

(प्रथम भाग समाप्त)

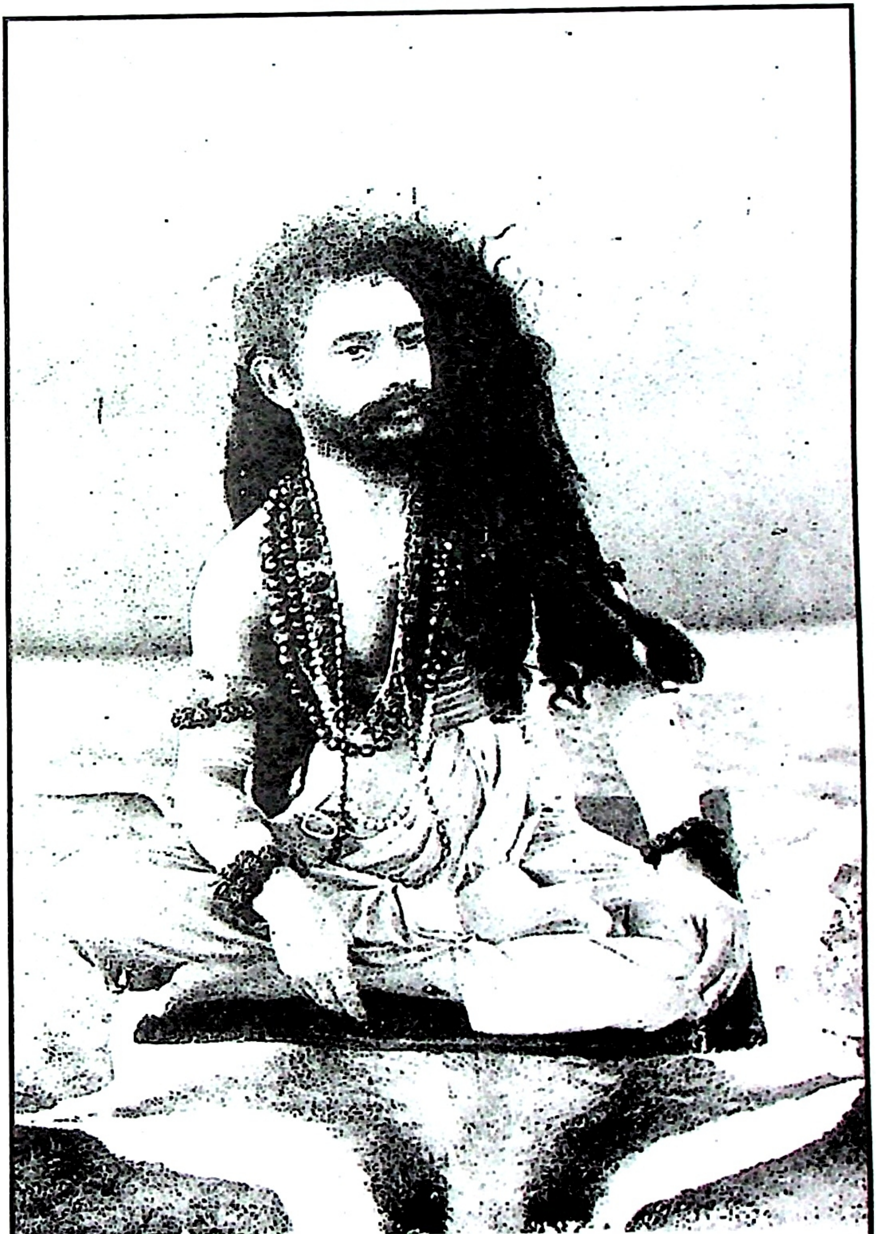

श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

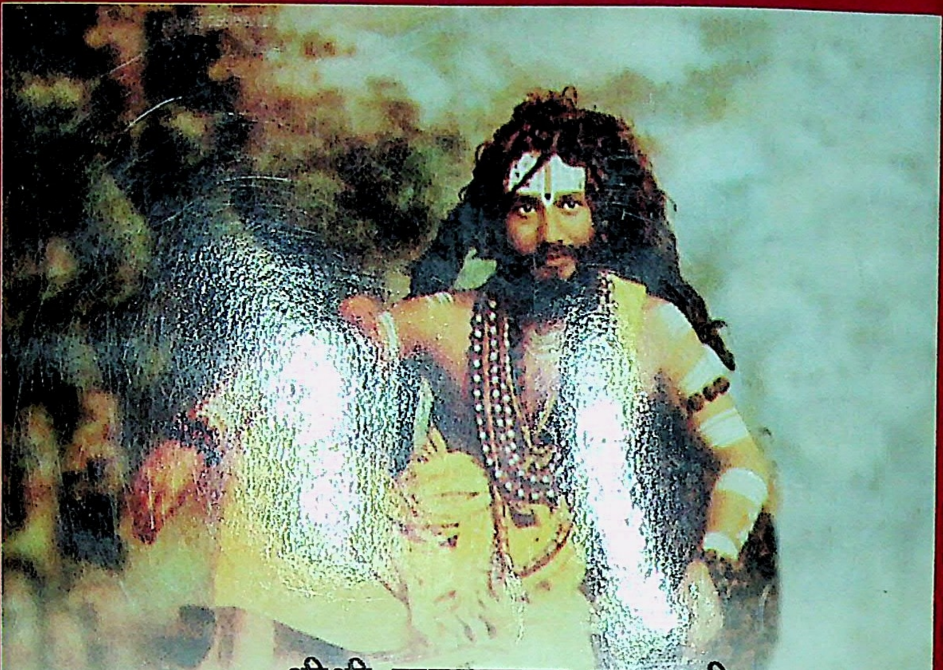

श्रीश्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी

• "ब्रह्मचारी जो लिख रहे हैं, सौ साल बाद वह देश का शास्त्र होगा।"

–श्रीश्री विजयकृष्ण गोस्वामी

• "अरे तू तो प्रतिदिन का 'नोट' लिखता है न? उसमें अपने सम्बन्ध में मेरी दो बातें लिख रखना– 'विलासिता छोड़। विद्या नहीं आएगी। ..... धर्म–कर्म सब होगा, बेचैन मत हो। कोई डर नहीं है।"

–श्रीश्री लोकनाथ ब्रह्मचारी

• ब्रह्मचारीजी ने इस ग्रन्थ में अपने आध्यात्मिक जीवन की बातों की आलोचना अकपट भाव से हृदय खोलकर की है। उस आलोचना से एक ओर जिस प्रकार उनकी सरलता, निर्भयता और आत्मोन्नति के लिए किए गए कठोर संग्राम प्रभृति का पूरा परिचय मिलता है उसी प्रकार दूसरी ओर उनके परमाराध्य गुरुदेव की अपार करुणा और अनन्त शक्ति का खेल भी पग–पग पर दृष्टिगोचर होता है। सद्‌गुरु की शक्ति विश्वानुग्राहक श्रीभगवान् की ही साक्षात् शक्ति है।

–महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज

• महादेव भाई देसाई जी परम श्रद्धा के साथ प्रतिदिन 'श्रीश्री सद्‌गुरु संग' का पाठ करते थे। महात्मा गाँधीजी को इस ग्रन्थ का परिचय मिला एवं वे इसके विशेष अनुरागी बन गए। देश के कल्याण के लिए इस ग्रन्थ का गुजराती भाषा में अनुवाद करने की उन्होंने इच्छा भी व्यक्त की थी।